卐 श्रीमद्राघवो विजयते 卐

धर्मचक्रवर्ती, महामहोपाध्याय, जीवनपर्यन्त कुलाधिपति, वाचस्पति, महाकवि
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य **स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज**
का राष्ट्रीय, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक चेतना का संवाहक

# श्रीतुलसीपीठसौरभ

**( मासिक पत्र )**

सीतारामपदाम्बुजभक्तिं भारतभविष्णु जनतैक्यम्।
वितरतु दिशिदिशि शान्तिं श्रीतुलसीपीठसौरभं भव्यम्।।


वर्ष १३ जनवरी, २००९ (४, ५ फरवरी को प्रेषित) अंक-५

# रामानन्दः स्वयं रामः प्रादुर्भूतो महीतले

## विषयानुक्रमणिका



# सुधी पाठकों से विनम्र निवेदन

१. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' का प्रत्येक अंक प्रत्येक दशा और परिस्थिति में प्रत्येक महीने की ४ तथा ५ तारीख को डाक से प्रेषित किया जाता है। पत्रिका में छपे महीने का अंक आगामी महीने में ही आपको प्राप्त होगा।

२. 'श्रीतुलसीपीठ सौरभ' मंगाने हेतु बैंक ड्राफ्ट 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' के नाम से ही बनवाएँ तथा प्रेषित लिफाफे के ऊपर हमारा नाम तथा पूरा पता स्पष्ट अक्षरों में लिखें। मनीआर्डर पर हमारा नाम-पता ही लिखें प्रधान सम्पादक अथवा प्रबन्ध सम्पादक कभी न लिखें।

३. पत्रव्यवहार करते समय अथवा ड्राफ्ट-मनीआर्डर भेजते समय अपनी वह ग्राहक संख्या अवश्य लिखें जो पत्रिका के लिफाफे के ऊपर आपके नाम से पहले लिखी है।

४. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' में **'पूज्यपाद जगद्गुरु जी'** से अभिप्राय **धर्मचक्रवर्ती श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज समझा जाए।**

५. 'श्रीतुलसीपीठ सौरभ' में प्रकाशित लेख/कविता/अथवा अन्य सामग्री के लिए लेखक/कवि अथवा प्रेषक महानुभाव ही उत्तरदायी होंगे, सम्पादक मण्डल नहीं।

६. सुधी पाठक अपने लेख/कविता आदि स्पष्ट अक्षरों में लिखकर भेजें। यथासमय-यथासम्भव हम प्रकाशित करेंगे। अप्रकाशित लेखों को लौटाने की हमारी व्यवस्था नहीं है।

### सदस्यता सहयोग राशि

| | |
|---|---|
| संरक्षक | ११,०००/– |
| आजीवन | ५,१००/– |
| पन्द्रह वर्षीय | १,०००/– |
| वार्षिक | १००/– |

**–सम्पादकमण्डल**

श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास, चित्रकूट के स्वामित्व में मुद्रक तथा प्रकाशक डॉ० कु० गीतादेवी (प्रबन्धन्यासी) ने श्री राघव प्रिंटर्स, जी-१७ तिरुपति प्लाजा, बेगम पुल रोड, बच्चापार्क, मेरठ, फोन (का०) 4002639, मो०-9319974969, से मुद्रित कराकर कार्यालय २२० के., रामनगर, गाजियाबाद से प्रकाशित किया।

सम्पादकीय-

# हम अपने से दूर हैं और अपनों से सुदूर

आज के भौतिकवादी वातावरण में अध्यात्म अथवा धर्म शब्द मानव से इतने दूर होते जा रहे हैं कि प्रगति का पथ समझाने वाले और समझने वाले महानुभाव वैदिक परम्परा तथा पौराणिक मान्यताओं की चर्चा सुनना भी आवश्यक नहीं मानते। वेदादि धर्मशास्त्रों में जिन वैज्ञानिक तथ्यों तथा मान्यताओं की खोज हमारे पूर्वजों ने लाखों-करोड़ों वर्ष पूर्व की थी उसको देखते हुए भी नहीं देखते भौतिकवादी लोग। अंग्रेजी का रिसर्च शब्द यद्यपि 'पुनः खोज' के अर्थ को द्योतित करता है किन्तु इसके मूल में यदि ऋष्यर्चा (ऋषीणाम् अर्चा अर्थात् ऋषियों की पूजा) का भाव समझ लिया जाए तो हमें पूर्ववर्ती साहित्य को पढ़ने में सहायता मिलेगी। हमारे पास रिसर्च करने के न तो साधन हैं और न विषय। मनुष्य मस्तिष्क का अधिकांश प्रतिशत चिन्तन तो हमारे ऋषिमुनियों आचार्यों और विद्वानों ने पहले ही कर लिया था।

आज हम अपने से और अपनों से इतने दूर हैं कि आचार एवं विचार दोनों में नवीनता का बलात् आधान करके सब कुछ चौपट करने पर तुले हैं। प्रातः काल के जागरण से निशाकाल के शयन तक की सम्पूर्ण दिनचर्या का सविस्तर शास्त्रों में मानवहित को ध्यान में रखकर उल्लेख किया गया है किन्तु मनोराज्य के धनी-मानी लोग उसमें अपने अपने वार्तिक लगाते हैं। जो शुद्धता से धर्माचरण करते हैं वे भलीभाँति जानते हैं कि धर्माचरण में भ्रमप्रमाद आलस्य आदि शत्रुओं को मारते रहना पड़ता है। फिर भी धर्माचरण का जो सुख है वही शाश्वत सुख है। इसके विपरीत धर्माचरण न करने वाले जन्तुओं के ये कुतर्क प्रायः देखे-सुने जाते हैं कि परिस्थितिवशात् हमने अपना नियम छोड़ दिया। धैर्य की परीक्षा तो होती ही आपद्धर्म में है। आज के भौतिकवाद में आकण्ठनिमग्न रहने वाले लोग आचार-विचार की तिलांजलि की हानि प्रत्यक्ष देख रहे हैं उनको अनेक प्रकार के भीषण रोग घेर लेते हैं। असाध्य रोगों के उपचार में घर-बाहर नष्ट होते हैं। जीवन तक से हाथ धोना पड़ता है। दूसरी ओर सद्विचारों में विष घोलने वाले तथा कुत्सित विचारों को धारण करने वाले लोगों से समाज और राष्ट्र की कितनी हानि होती है इसका अनुमान आप इसी से लगा सकते हैं कि वैचारिक प्रदूषण ने आज विश्व को विनाश के कगार पर ले जाकर रख दिया है। आतंकवाद भी दुर्विचारों का समूह ही तो है।

भारतीय मनीषा में अन्नमयं हि सौम्यं मनः प्रसिद्ध है अर्थात् जैसा अन्न वैसा मन होता है। आज जल-अन्न-फल आदि तक दूषित हैं। शासन किसी विकास का दिवास्वप्न देख रहा है और विनाश लीला सुरसा की भाँति आ रही है। जो योजनाएँ कागजों पर बन रही हैं उनमें वस्तु की मात्रावृद्धि की चिन्ता है गुणवृद्धि की नहीं। इसी का दुष्परिणाम यह हो गया है कि आज स्वदेशी वस्तुओं का अभाव है। विदेशी वस्तुओं का प्रभाव है। संक्षेप में कहें तो हम अपने ही देश में पराये हो गए हैं। एक बार सबको मिलकर पुनः सोचना विचारना होगा कि यदि हम विनाश विकास के विवाद में पड़े रहे तो धर्म विरोधी शक्तियाँ हमारी और भयंकर हानि करेंगी। अब भी समय है सबके चेतने का और विपरीत दिशा में जाने वाले समाज को पुनः भारत के वास्तविक वैभव की ओर लाने का। इस अपेक्षा की पूर्ति के लिए हम सबको मनवाणी और कर्म की एकता करके ईश्वराराधन, ईश्वर-विश्वास, राष्ट्रसेवा, दीनहीन की सहायता, आदि सद् गुणों का निष्ठापूर्वक संग्रह करना चाहिए। नमो राघवाय।

**आचार्य दिवाकर शर्मा**
प्रधान सम्पादक

(गतांक से आगे)

# वाल्मीकिरामायण सुधा ( ४५ )

❑ धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

रावण के हाथों भी मरना है या राम के हाथों मरना है दोनों के द्वारा यदि मरना है तो राम के हाथ मरना अच्छा है रावण के हाथों नहीं। गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज लिखते हैं–

**उभय भाँति देखेसि निज मरना।**
**तब ताकेसि रघुनायक सरना।।**

मारीच ने कहा ठीक है, चलो। रावण और मारीच दोनों पहुँच रहे हैं। मारीच स्वर्णमृग बन गया और सीता जी के पास भ्रमण करने लगा। ये माया की सीता हैं क्योंकि राघवेन्द्र जी की मूल सीता तो किसी को देखती ही नहीं हैं। उनके नेत्र रामजी के सिवा किसी पर नहीं जाते। इसलिए कहीं एक चौपाई बड़ी सुन्दर है। रामजी जब सीताजी के वियोग में विलाप कर रहे हैं तब गोस्वामी जी महाराज कहते हैं–

**हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी।**
**तुम देखी सीता मृगनयनी।।**

यहाँ मृगनयनी शब्द का प्रयोग क्यों किया? भगवान झूठ नहीं बोलते। यहाँ भगवान वास्तविक सीता जी के लिए नहीं कह रहे हैं। वे तो कह रहे हैं कि हे खग मृग, हे मधुकर श्रेणी यह बताओ कि क्या तुमने मृगनयनी सीता को देखा है। मृगनयनी माने क्या है? मृग के समान नेत्रों वाली नहीं अपितु सोने के हरिण पर जिसके नेत्र चले गये ये ऐसी माया की सीता को तुमने देखा है? यही तो मानस जी का आनन्द है। रामजी ने वास्तविक सीताजी की बात ही नहीं कही। सीताजी ने मृग को देखा और अपने पास बुलाने लगीं–

**आहूयाहूय च पुनस्तं मृगं साधु वीक्षते।**
**आगच्छागच्छ शीघ्रं वै आर्यपुत्र सहानुज।।**

सीता जी बोलीं– आर्यपुत्र! अपने भाई के साथ आइये शीघ्र आइये। यह देखिए कितना सुन्दर मृग है। लक्ष्मण जी ने कहा– नहीं। यह मारीच की माया होगी। सीता जी ने उन्हें बोलने के लिए मना किया। वे बोलीं–

**आर्यपुत्राभिरामोऽसौ मृगो हरति मे मनः।**
**आनयैनं महाबाहो क्रीडार्थं नो भविष्यति।।**

आर्यपुत्र! यह मृग मेरे मन को चुरा रहा है इसे लाइये यदि जीवित न मिले तो इसे मारकर लाइये इसकी छाल पर बैठकर भजन करूँगी। श्रीराम ने पूछा ऐसा आपने क्यों कहा? तब सीता जी ने कहा कि लगभग २६ वर्ष तक निरन्तर रामनाम का जप किया है। चमड़ी पवित्र हो गयी है अतः इस पर बैठकर भजन करने में बहुत मन लगेगा। लक्ष्मण जी ने मना किया पर राम जी नहीं माने और बोले तुम सीताजी की रक्षा करो यदि यह मारीच है तो भी इसका वध करना अनिवार्य है। यदि यह मारीच है तब भी और राक्षस है तब भी इसका मारना ठीक है। भगवान राम मारीच को मार रहे हैं और उसने रामजी के स्वर में–

**स प्राप्तकालमाज्ञाय चकार च ततः स्वनम्।**
**सदृशं राघवस्येव हा सीते लक्ष्मणेति च।।**

रावण के बताये हुए उपाय को काम में लाते हुए मारीच ने हा सीते! हा लक्ष्मण! कहकर पुकारा। वास्तव में उसने नहीं बोला वह तो रामजी के ध्यान में था रामाकारवृत्ति होने के कारण राम जी का स्वर उसके मुख से निकला। सीता जी ने यह स्वर सुना और वे लक्ष्मण जी से कह रही हैं कि तुम रामजी के पास चले जाओ। लक्ष्मण जी नहीं जा रहे हैं फिर

सीताजी को क्रोध आया। क्रोध आने का मूल यह है कि सीताजी जानती हैं (माया की सीता) कि यदि लक्ष्मण जी रामजी के पास नहीं जायेंगे तो उनका हरण नहीं होगा और यदि सीताजी का हरण नहीं होगा तो राक्षसों का वध नहीं होगा फिर अवतार का प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। इसलिए किसी भी मूल्य पर लक्ष्मण जी का यहाँ रहना उचित नहीं होगा। इसका पारमार्थिक कारण भी बहुत अच्छा है। सीता जी माया की सीता हैं। सीताजी जानती हैं कि यहाँ लक्ष्मण जी का रहना ठीक नहीं है। लक्ष्मण माया की शरण में रहेंगे तो इनकी हानि होगी। इनको तो मायापति रामजी की शरण में चले जाना चाहिए इससे इनका व्यक्तिगत लाभ होगा। सीता जी के कहने पर भी जब लक्ष्मण जी नहीं गये तो माया की सीता जी ने क्षुब्ध होकर कहा–

**सौमित्रे मित्ररूपेण भ्रातुस्त्वमसि शत्रुवत्।**
**यस्त्वमस्यामवस्थायां भ्रातरं नाभिपद्यसे।**
**इच्छसि त्वं विनश्यन्तं रामं लक्ष्मण मत्कृते।।**

हे लक्ष्मण! तुम मित्र रूप में अपने भाई के शत्रु हो। सीता जी आगे कहती हैं तुम दोनों अकेले अकेले रहोगे तो ठीक नहीं रहेगा अतः यदि तुम रामजी के साथ रहोगे तब रावण तुम्हारा बाल भी बाँका नहीं कर सकेगा अतः तुम रामजी के पास चले जाओ। इसका अर्थ भी बहुत सुन्दर है टीकाकार इसको ठीक से नहीं समझ सके। रामायण शिरोमणिकार ने कुछ कहा तो इतना भयंकर कहा कि समझ में नहीं आता क्या कहा। वास्तव में अर्थ तो यह है कि इस अवस्था में भी तुम रामजी की शरण में नहीं जा रहे हो अतः यह तो निश्चित ही है किंतु रावण का विनाश चाह रहे हो? यदि राम जी के पास तुम जाओगे तभी तो रावण मेरा हरण करेगा और तभी रावण का विनाश हो सकेगा। सीता जी का तात्पर्य यह है कि यदि तुम यह चाहते हो कि मुझे निमित्त मानकर रावण का विनाश हो जाय तो निश्चित रूप से अपने भैया राम जी के पास चले जाओ जिससे सुनसान वातावरण देखकर रावण मेरा हरण कर ले। कितना ललित अर्थ है। अतः जल्दी करो। गोस्वामिपाद कहते हैं–

**मरम वचन सीता जब बोली।**
**हरि प्रेरित लछमन मति डोली।**

लक्ष्मण! मेरी बात मान लो और चले जाओ। क्योंकि मैं तुम्हारी भाभी माँ नहीं हूँ वे अग्नि में चली गई हैं। मैं माया की सीता हूँ। यदि तुम नहीं जाओगे तो रावण मेरा हरण नहीं करेगा यदि मेरा हरण नहीं होगा तो रावण का मरण नहीं होगा। यदि राक्षसों का मरण नहीं होगा तो राम के अवतरण का प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। जल्दी करो जल्दी चले जाओ।

**लोभात्तु मत्कृते नूनं नानुगच्छसि राघवम्।**
**व्यसनं ते प्रियं मन्ये स्नेहो भ्रातरि नास्ति ते।।**

मैं जानती हूँ कि तुम्हारे बड़े भैया ने तुम्हें मेरी रक्षा में छोड़ रखा है। मेरे लिए लोभ के कारण तुम राघव के पास नहीं जा रहे हो। मुझे भी यह लगता है कि तुम्हें व्यसन अच्छा नहीं (अप्रिय) लग रहा है पर एक बात बताओ कि क्या तुमको अपने भैया के प्रति प्रेम नहीं है? यहाँ काकुवक्रोक्ति है। यदि तुम्हें अपने बड़े भैया पर प्रेम है और तुम्हारे बड़े भैया ने राक्षसों को मारने का संकल्प लिया है तो तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम उनके संकल्प में सहायता करो और उनके पास जाओ तब रावण मेरा हरण कर सकेगा। लक्ष्मण जी फिर कहते हैं कि मैं नहीं जाऊँगा। सीताजी फिर कहती हैं कि तुम बहुत भूल कर रहे हो। सीता जी फिर कठोर वाक्य कहती हैं–

**अनार्यकरुणारम्य नृशंस कुलपांसन।**
**अहं तव प्रियं मन्ये रामस्य व्यसनं महत्।**

अब थोड़ा डाँटती हैं। लक्ष्मण! तुम अनार्यों (दुष्टों) पर कृपा क्यों कर रहे हो? तुम अपने स्वरूप का विचार करो। तुम दयाहीन राक्षसों के कुल को धूलि में मिलाने वाले हो। अपने स्वरूप को तुम भूल

गये हो। तुम्हारे रहते हुए शेषावतार में तुम्हारी बेटी सुलोचना को इसी रावण का बेटा (मेघनाद) घसीट कर ले गया था फिर भी तुम उस पर कृपा कर रहे हो। क्या मैं मान लूँ कि राक्षसों का नाश नहीं होगा तो रामजी पर विपत्ति आयेगी तो क्या वह तुमको अच्छी लगेगी? सीता जी बात बिल्कुल ठीक कह रही हैं। सीता जी आगे लक्ष्मण जी से और भी कहती हैं–

**सुदृष्टस्त्वं वने राममेकमेकोऽनुच्छति।**
**मम हेतोः प्रतिच्छिन्नः प्रयुक्तो भरतेन वा।।**
**तन्न सिध्यति सौमित्रे तवापि भरतस्य वा।**
**कथमिन्दीवरश्यामं रामं पद्मनिभेक्षणम्।।**

लक्ष्मण तुम सुदुष्ट हो (शोभनाः दुष्टाः यस्मात्) तुम्हारी कृपा से दुष्ट भी शुद्ध हो जाते हैं तुम इतने कृपालु हो तुम जीवाचार्य हो। इसीलिए जीवों का उद्धार करने के लिए तुम रामजी के पीछे पीछे चल रहे हो। अथवा संसार के भार को उतारने वाले मृग की शोभा को देखने वाले राम जी के द्वारा प्रेरित होकर तुम मेरी रक्षा के लिए छिपे हुए हो मेरी रक्षा करना चाहते हो। परन्तु यदि तुम नहीं जाओगे तो तुम्हारा और रामजी का जो प्रयोजन है वह सिद्ध नहीं होगा। तब न तो तुम्हारे और न श्रीराघव के अवतरण का प्रयोजन सिद्ध होगा अतः शीघ्र रामजी के पास चले जाओ। तब लक्ष्मण जी ने हाथ जोड़कर कहा–

**अब्रवील्लक्ष्मणः सीतां प्रांजलिः स जितेन्द्रियः।**
**उत्तरं नोत्सहे वक्तुं दैवतं भवती मम।।**

देवि! मैं आपकी बात का जवाब नहीं दे सकता क्योंकि आप मेरे लिए आराध्या देवी के समान हैं। परन्तु मुझे आश्चर्य है कि आपमें जिस महिला का आवेश हुआ है (माया का) उसे इतना तीखा नहीं बोलना चाहिए था। क्योंकि–

**न्यायवादी यथावाक्यमुक्तोऽहं परुषं त्वया।**
**धिक् त्वामद्य विनश्यन्तीं यन्मामेवं विशंकसे।।**

उस माया को धिक्कार है क्योंकि उसका नाश तो अब होना ही है। मुझको सीधा सीधा कह देती आपका बहाना लेकर इतना तीखा क्यों कह डाला? प्रेम से मुझे समझा देती। इतना कहकर चारों ओर धनुष की रेखा खींचकर लक्ष्मण जी चल पड़े। बोलो कुमार लक्ष्मण की जय। इस प्रवचन के पश्चात् आपको सीताजी प्रति सन्देह नहीं रहना चाहिए। और लक्ष्मण जी के प्रति यह–

**जे गावहिं यह चरित सँभारे।**

यह कथा दाम के लिए नहीं रामजी के प्रेम के लिए है। इस प्रकार लक्ष्मण जी ने कहा कि हे लोकपालो! सुनो– मेरी माता जी ने मुझे कभी नहीं डाँटा। माया की सीता ने मुझे कठोर वचन कहे हैं जो मेरे कानों में बाण के समान लगे हैं। भैया रामजी ने मुझे रोका था पर मैं जा रहा हूँ। भगवती सीताजी के रूप में आकर उन्होंने मुझे कहा है, अब मुझे कोई दोष न दे। हे वन देवताओं! सीताजी की रक्षा करना रामजी कहीं दुःखी न हो जायें। लक्ष्मण जी चल पड़े–

**चहुँ दिशि रेख खचाइ अहीशा।**
**बारहिं बार नाइ पद शीशा।।**
**बन दिशि देव सौंपि सब काहू।**
**चले जहाँ रावण शशि राहू।।**

लक्ष्मण जी मन में बहुत डर रहे हैं, क्या करें? उन्हें ऐसा धर्मसंकट है। एक ओर तो श्रीराम का डर दूसरी ओर सीता जी अकेली हैं। लक्ष्मण जी राघव जी के पास जा रहे हैं। इधर–

**तदासाद्य दशग्रीवः क्षिप्रमन्तरमास्थितः।**
**अभिचक्राम वैदेहीं परिव्राजकरूपधृक्।।**

तब रावण ने शून्य देखा और रेखा के बीच सीताजी को देखा। नकली संन्यासी का वेश बनाकर माया की सीता के पास आया। यहाँ एक गम्भीर प्रसंग और सुनिये। रावण के स्वरूप का चित्रण महर्षि वाल्मीकि ने इस प्रकार किया है–

**श्लक्ष्णकाषायसंवीतः शिखी छत्री उपानही।**
**वामे चांसेऽवसज्याथ शुभे यष्टिकमण्डलू।।**

अर्थात् सुन्दर गेरुए रंग का वस्त्र पहने हुए है, चोटी है, छाता भी लिया है और जूता पहन रखा है। धूमकेतु ने बायें हाथ में डण्डे में कमण्डलु लटकाया हुआ है। यहाँ एक निवेदन है कि चार लोगों ने इस प्रसंग पर हमारे साथ अन्याय किया है। चार टीकाकारों में एक हिन्दी के टीकाकार और तीन संस्कृत के टीकाकार हैं। इन्होंने कहा कि रावण त्रिदण्डी बनकर आया। मैं चेलैंज करता हूँ कि यदि चारों यहाँ होते (दुर्भाग्य है कि चारों में से कोई भी नहीं है) तो मैं इस सभा में उनको बुलवाता। गोविन्दराज ने भी कहा, रामायण शिरोमणिकार ने भी कहा, तिलककार ने कहा और बहुत दुर्भाग्य से कह रहा हूँ कि गूढार्थ चन्द्रिका के रचयिता जिन्होंने हमारी दी रोटी खायी, हमारी अयोध्या में ही पढ़े, साधुओं से पढ़कर मणिराम छावनी आदि भिन्न-भिन्न आश्रमों में रहकर रोटी खायी और लिख दिया कि रावण त्रिदण्डी बना था। मैं इन सबको चेलैंज करके कहता हूँ कि त्रिदण्ड निरन्तर दायें हाथ में लिया जाता है बायें हाथ में कभी नहीं लिया जाता सभी जानते हैं क्योंकि हम स्वयं त्रिदण्डी हैं और भगवान हमारी रक्षा कर रहे हैं त्रिदण्डी जैसे दिव्य सन्यासी का अपमान न हो, मनु ने त्रिदण्ड की चर्चा की है दण्ड की चर्चा नहीं की जिससे जानना चाहो जान सकते हो। त्रिदण्ड वैष्णवों का चिह्न है–

**वाग्दण्डोऽथ मनोदण्ड कायदण्डस्तथैव च।**
**यस्यैते नियता दण्डाः स त्रिदण्डीति कथ्यते।।**

यदि रावण ने त्रिदण्ड लिया होता तो वाल्मीकि जी लिखते कि–

**दक्षे चांसेऽवसज्याथ स त्रिदण्ड कमण्डलू।**

रावण ने दायें कन्धे पर त्रिदण्ड और कमण्डलु ले रखा था किन्तु उन्होंने तो लिखा 'यष्टिकमण्डलू' अर्थात् छड़ी में कमण्डलु लटकाए हुए हैं। इसी से वैष्णव धर्म की रक्षा हो गई। वैष्णव धर्म की जय हो। इन टीकाकारों को पता नहीं था कि किसी प्रतिभा का फिर जन्म होगा–

**ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवजां**
**जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः।**
**उत्पत्स्यते हि मम कोऽपि समानधर्मा**
**कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी।।**

यह त्रिदण्डोत्सव अयोध्या में हुआ था मणिराम छावनी में सब लोगों के सामने। श्रीरामचन्द्र परमहंस और श्री हर्याचार्य जी इत्यादि अनेक गण्यमान्य सन्त एवं विद्वज्जन उपस्थित थे। यह हमारी परम्परा किसी सामान्य व्यक्ति की झोंपड़ी नहीं है कि जब चाहो तब उसका अतिक्रमण कर दो। यह सिंह की परम्परा है। टीकाकारों को इतना अनुचित नहीं बोलना चाहिए था जिससे त्रिदण्ड के प्रति अनास्था हो जाय। प्रज्ञानन्द सरस्वती तुम जहाँ हो वहाँ जिस योनि में जन्मे हो क्योंकि इस कुकर्म के बाद मैं तो नहीं मानता कि तुम्हें निर्वाण मिला होगा क्योंकि तुमने इसलिए लिखा कि त्रिदण्ड का अपमान हो जाय। इतनी बड़ी क्षति करने का किसी को अधिकार नहीं होना चाहिए। अस्तु, सीताजी ने जब देखा तो समझ गईं कि यह संन्यासी हो ही नहीं सकता। क्योंकि–

**द्विजातिवेशेन समीक्ष्य मैथिली**

सीता जी ने कहा कुर्सी पर बैठो क्योंकि जानती थीं कि आसन ठीक नहीं रहेगा कुर्सी पर बैठकर ही खायेगा। रावण ने सीताजी का बलात् अपहरण करना चाहा तो सीताजी ने क्रुद्ध होकर कहा–

**यदन्तरं सिंहसृगालयोर्वने**
**यदन्तरं स्यन्दनिका समुद्रयोः।**
**सौराग्र्य सौवीरकयोर्यदन्तरं**
**तदन्तरं दाशरथेस्तवैव च।।**

क्रमशः........

# श्रीमद्भगवद्गीता ( ७६ )

( गतांक से आगे )

**( विशिष्टाद्वैक श्रीराघवकृपाभाष्य )**

**भाष्यकार–धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज**

**व्याख्या–** तू शब्द यहाँ पक्षान्तर का सूचक है। अनुतिष्ठन्ति शब्द भी पूर्व प्रक्रिया के अनुसार भविष्य काल के अनुसार वर्तमान काल का प्रयोग अचेतसः शब्द में "अपवित्रं चेतः येषां ते अचेतसः" ऐसा विग्रह मानना चाहिए। अर्थात् ज्ञानी को भी भगवत प्रीति के लिए कर्म करना ही चाहिए। यही निष्कर्ष हैं।।श्री।।

**संगति–** अब अर्जुन का प्रश्न है कि ज्ञानियों को कर्म क्यों करना चाहिए। इस पर भगवान कहते हैं।

**सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।**
**प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति।**
३/३३

**रा०कृ०भा० सामान्यार्थ–** क्योंकि ज्ञानवान भी अपनी अनेक पूर्व जन्मों में अनुभूत वासनाओं से युक्त स्वभाव नाम वाली प्रकृति के अनुरूप ही चेष्टा करता है। सभी प्राणी प्रकृति को ही प्राप्त करते हैं। उसमें मेरा तुम्हारा या श्रुतियों का निषेध रूप प्रतिबन्ध क्या करेगा।

**व्याख्या–** मेरी भक्ति के बिना कोई प्रकृति को नहीं जीत पाता। विश्वामित्र, पराशर जैसे ज्ञानवान भी प्रकृति के झटके में आ गये। इसलिए निष्काम कर्मयोग रूप मेरा आराधन न करके ज्ञानी प्रकृति पर विजय नहीं प्राप्त कर सकता। उसे तो मेरा भक्त ही वश में करता है। यदि कहो कि श्रुतियों स्मृतियों के निषेध से ज्ञानी प्रकृति पर विजय प्राप्त कर लेगा। इस पर भगवान कहते हैं– निग्रहः किं करिष्यति प्रकृति की आँधी के सामने किसी का भी निषेध नहीं चलता। जैसा कि श्री मानस में गोस्वामी जी कहते हैं–

**धरे न काहू धीर सबके मन मनसिज हरे।**
**जेहि राखे रघुवीर तेहि उबरे तेहि काल मँह।।**
मानस–१/८५

इसलिए परमेश्वर की पूजा स्वरूप निष्काम कर्म योग का अनुष्ठान करके प्रकृति को जीतो। क्योंकि विग्रह कुछ नहीं करेगा पर मेरा अनुग्रह तुम्हें प्रकृति जयी बना देगा।

**संगति–** ज्ञानी के बहुत शत्रु होते हैं और कर्मयोगी भक्त अजातशत्रु होता है। इस तथ्य को भगवान स्पष्ट करते हुए कहते हैं–

**इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।**
**तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्यपरपन्थिनौ।।**३/३४

**रा०कृ०भा० सामान्यार्थ–** हे अर्जुन! प्रत्येक इन्द्रिय के अपने–अपने विषय में ही पूर्व वासनाओं के अनुसार रागद्वेष व्यवस्थित है। इसलिए साधक को उनके वश में नहीं आना चाहिए। क्योंकि राग और द्वेष ही उसके शत्रु हैं।

**व्याख्या–** दो बार इन्द्रियस्य कहने का तात्पर्य यही है कि प्रत्येक इन्द्रिय के उसी के विषय में राग द्वेष है। जैसे श्रवण का संगीत में राग गाली में द्वेष। चक्षु राग का स्वरूप में राग विरूप में द्वेष। रसना का मधुर में राग, तीखे में द्वेष। घ्राण का सुगन्ध में राग

और दुर्गन्ध में द्वेष। उसी प्रकार त्वगिन्द्रिय का कोमल स्पर्श में राग और कठोर स्पर्श में द्वेष होता है। इसलिए साधक को उनके वश में नहीं आना चाहिए। परिपन्थी शब्द छान्दस शत्रु अर्थ में प्रयुक्त है।

**संगति-** इस प्रकार ज्ञानी की दुर्दशा कहकर अब भगवान सिद्धान्त कहते हैं।

**श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।**
**स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।।३/३५**

**रा०कृ०भा० सामान्यार्थ-** भली प्रकार से अनुष्ठित अर्थात सम्पादित दूसरे के धर्म से गुण रहित अपना धर्म भी विपुल गुणों वाला एवं श्रेष्ठ है। अपने धर्म में स्थित रहकर मर जाना श्रेष्ठ है एवं दूसरों का धर्म भयावह है।

**व्याख्या-** अपने वर्ण और आश्रम के अनुसार विहित धर्म ही स्वधर्म है। यदि व दूसरे आश्रम वाले व दूसरे वर्ण वालों की दृष्टि से विगुणः दूषण युक्त हो। विगत गुणः तो भी अपने लिए श्रेयान अर्थात् श्रेष्ठ है और विगुणः अर्थात् विपुलगुणोवाला है। यहाँ विगुण शब्द की दो व्याख्या समझनी चाहिए। विगताः गुणाः यस्मात् स विगुणाः। "विपुलाः गुणाः यस्मिन् स विगुणाः।" युद्ध तुम्हारा स्वधर्म है। तुम श्री वैष्णव हो। अतः यह मेरी आज्ञा पालन रूप धर्म है। तुम क्षत्रिय हो। अतः शत्रुओं का बध करना तुम्हारा धर्म है। तुम गृहस्थ हो अर्थात् निष्काम कर्म तुम्हारा धर्म है। इसी स्वधर्म युद्ध के पालन में निधन अर्थात् मरण तुम्हारे लिए श्रेयस्कर हैं यही यच्छ्रेयाह का उत्तर है। पर धर्मो भयावात भैक्ष्यं भोक्तुं श्रेयः। गीता२/५ ये जो तुम्हारी मान्यता है वह परधर्म है। तुम्हारा धर्म नहीं। क्योंकि श्री वैष्णव, गृहस्थ और क्षत्रिय इन तीनों का भिक्षा मांगना धर्म नहीं है। इसलिए यह तुम्हें भय देगा। तुम भिक्षा देने वाले हो भिखमंगे नही ।श्री।

**संगति-** अब अर्जुन जिज्ञासा करते हैं कि पाप करने में कौन प्रेरणा देता है मेरे द्वारा भी बहुत पाप किये गये। क्षत्रिय धर्म से विरुद्ध हथियार डालना और आप परमेश्वर का अपमान करना। तो मुझे इस पाप की किसने प्रेरणा दी होगी अर्जुन की इस जिज्ञासा की संजय धृतराष्ट्र के प्रति अवतारण करते हैं।

**व्याख्या-** अर्जुनोवाच- यहाँ उवाच का अर्थ है प्रपच्छ। अर्थात् अर्जुन ने भगवान् से पूछा-

**अथकेन प्रयुक्तोऽयंपापं चरति पूरुषः।**
**अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः।।**
३/३६

**रा०कृ०भा० सामान्यार्थ-** अर्जुन प्रश्न करते हैं विष्णु कुल कमल दिवाकर। अच्छा तो इच्छा न करता हुआ भी बलपूर्वक विकर्म में नियुक्त किया गया जैसा यह पुरुषार्थी साधक किस प्रेरक से प्रेरित होकर शास्त्र विरुद्ध विकर्म रूप पाप का आचरण करता है। अर्जुन का तात्पर्य यह है कि जीव के हृदय में आपके रहते हुए भी आपकी अनुपस्थित को अनदेखी करके कौन पाप करवाता है जबकि जीव पाप नहीं करना चाहता।।श्री।।

**संगति-** अर्जुन की जिज्ञासा का समाधान करने के लिए भगवान वाक्य को भी उपक्रान्त करते हैं।

**काम एष कोध एष रजोगुण समुद्भवः।**
**महाशनो महापाप्म विद्ध्येनमिह वैरिणाम्।।**
३/३७

**रा०कृ०भा० सामान्यार्थ-** हे अर्जुन! रजोगुण से उत्पन्न यही काम है, यही क्रोध है यह अग्नि के समान बहुत भोजन करने वाला है। यह अत्यन्त पापी है, इस विषय में इसी को ही शत्रु समझो, अर्थात् यही मेरी उपस्थिति की भी अनदेखी करके प्रत्येक प्राणी से पाप कराता है। क्रमशः........

(गतांक से आगे)

# सकल अमानुष करम तुम्हारे

❑ धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

सामान्य प्रतिज्ञा नहीं थी ये। और धनुष भी सामान्य नहीं था। स्वयं भगवान शंकर का धनुष था। इसलिए यहाँ, द्रौपदी स्वयंवर जैसी भी स्थिति नहीं है कि कृष्ण भगवान को छल करना पड़े। यह शिवजी का धनुष है तो जो शिवजी से अधिक शक्तिमान होगा, वही न इसको तोड़ेगा। ब्रह्मा और अन्य देवता इसे तोड़ ही नहीं सकते। ये देवताओं का धनुष नहीं, महादेव का धनुष है। और महादेव का धनुष वही तोड़ सकता है जो महादेव का भी देव हो, जो महादेव से भी बलवान हो। क्योंकि शिवजी जगदात्मा हैं– 'जगदातमा महेश पुरारी।' और रामचन्द्र परमात्मा हैं– 'परमातमा ब्रह्ममय रूपा' हैं न? शिव कौन हैं? जगदात्मा। कहते हैं– 'जगदातमा प्रानपति रामा'। इसका क्या अर्थ है। जगदातमा शिवजी हैं उनके प्राणपति हैं भगवान राम। यहाँ समास करना पड़ेगा। जगदातमा शिवजी के भी प्राणों के पति हैं प्रभु श्रीराम। भगवान शिव सृष्टि का नाश करते हैं पर उन्हें ताण्डव करना पड़ता है। और यहाँ– 'उमा राम की भृकुटि बिलासा। विश्व होइ पुनि पावइ नाशा।।' इसलिए शिव धनुष बहुत कठोर है जिसे तोड़ना कोई साधारण बात नहीं है। इसे साधारण व्यक्ति नहीं तोड़ सकता, उठा भी नहीं सकता। गोस्वामी जी कहते हैं, कवितावली रामायण में, इतना कठिन है ये, पहले इसे सुनते हैं शिव महिम्न से, इतना कठिन है बोले त्रिपुरासुर को मारने के लिए शिवजी को क्या क्या नहीं करना पड़ा। ब्रह्मा जी रथ के सारथी बने। पिनाक नामक धनुष में मारने की शक्ति आयी। पिनाक हिमालय की शक्ति से बना। स्वयं भगवान नारायण शंकर भगवान के बाण बने। तब वो त्रिपुरासुर को मार सकते थे। और वही धनुष, जिस धनुष पर विष्णु को ही चढ़ाकर वैष्णव बाण बनाया था, भगवान शिव ने। शिव ने चलाया था और वैष्णव बाण इस पर चढ़ा था, विष्णु ही बाण बनकर चढ़े थे तब त्रिपुरासुर को मार सके थे वो। वही धनुष यहाँ विराजमान है। इसका अर्थ कि इसे वही तोड़ सकेगा जो शिव जी से भी बलवान हो और विश्व में सर्वाधिक बलवान हो। और उसी धनुष को भगवती सीताजी ने घोड़ा बनाकर घसीटा था बालपन में। बार बार घसीटा। 'भार्गव राघवीयम्' में बड़ा विस्तृत इसको लिखा है। तो भार्गव राघवीयम् के १२वें और १३वें सर्ग में इसका अच्छा वर्णन है। सीता जी खेलती खेलती यज्ञ स्थल में जाती हैं। और यज्ञ स्थल में जाकर के देखती हैं कि पिताजी शिव धनुष की पूजा कर रहे हैं। उन्होंने कहा– पिताजी क्या है ये? क्यों इसकी आप पूजा करते हैं? ये पृथ्वी पर पड़ा हुआ है, इसमें धूल लगी है। उन्होंने कहा– बेटी, ये साधारण धनुष नहीं है। हमारे पूर्वज इसकी पूजा करते थे, मैं भी इसकी पूजा करता हूँ। उन्होंने कहा– इसको उठाइये। क्या करते हैं? इतना कहते कहते महाराज, उन्होंने सबके देखते देखते उठाया, खींचा और घोड़ा बनाकर 'टिक-टिक' करने लगीं। जनकजी भयभीत हो गए। क्या है ये? कहा कि इसको फेंक देती हूँ यहाँ से। बेकार का स्थान कबूल किए हुए है यहाँ का यह। बहुत मनाया सीताजी को। पर सीताजी– 'यतो यतो धावति मृगशावकाक्षी।' जहाँ

जहाँ से धनुष को लेकर भगवती सीताजी धनुष को लेकर दौड़ती हैं वहाँ-वहाँ लगता है मानो पृथ्वी अपने हृदय को ही कमल का आसन बनाकर भगवती जी का स्वागत कर रहीं हैं। ऐसा धनुष। इसलिए जनकराज ने प्रतिज्ञा की है कि जो इसे तोड़ेगा उसी के साथ सीताजी का विवाह होगा। और इतने ही नहीं। जब से प्रतिज्ञा की है तब से लोग आकर बल को आजमाते जा रहे हैं। आज अन्तिम दिन है। अब इसके बाद स्वयंवर नहीं होगा। तो आज ही तिथि है स्वयंवर की, तो स्वयंवर की तिथि के पहले ही अपने अपने बल आजमा कर चले गए। और आज यहाँ बन्दिगन इस धनुष के सम्बन्ध में विज्ञापन करते हैं 'छोनी छोनि छोनिपति छोनी छोनी छोनि। प्रबल प्रचंड बरिबंड बाहुब्रह्म बोले बन्दिगण बिरुद बजाइ तुलसी मुदित सब बार-बार जोहे मुख अवध महाराज के।' सब लोग राघवेन्द्र जी का मुखारविन्द निहार रहे हैं अहाहा! सब आए हैं। और बन्दियों ने कहा- 'बोले बंदी बचन बर, सुनहु सकल महिपाल। पन विदेह कर कहहिं हम, भुजा उठाइ बिसाल।।' हम जनक का प्रण कह रहे हैं। तुम महिपाल हो। बन्दीगण बड़ा गम्भीर कहते हैं। तुम महिपाल हो। तुम इतने विदित हो गए हो। तुम महिपाल हो और ये महि की बेटी है। वास्तव में तो ये तुम्हारी धर्म पुत्री हुयीं। अब तुम पुत्री से विवाह करने आए हो, राक्षस हो। नीचता की तुमने सीमा कर दिया। इसीलिए रामजी अभी राजा नहीं राजकुमार हैं। तब राजाओं ने कहा- जनक ने क्यों प्रतिज्ञा कर ली? कहा-'पन विदेह कर', उनके पास तो देह ही नहीं है, तुम तो जानते हो। वो तो व्यवहार से परे हैं पर तुम तो व्यवहार जानते हो। तुमने क्यों व्यवहार तोड़ा? और ऐसी बात कही- 'नृप भुजबल बिधु शिव धनु राहू। गरुअ कठोर बिदित सब काहू।।' बन्दियों ने कहा- जैसे चन्द्रमा को राहु ग्रस लेता है उसी प्रकार राजवंश के भुजबल का राहु है ये शंकर का धनुष। और राहु कहने का एक और बड़ा गम्भीर भाव था कि राहु है राहु, विष्णु भी जिसको नहीं मार सके। इसलिए विष्णु भी इसे नहीं तोड़ सकेंगे। इस चक्कर में मत रहना। यहाँ बड़ा गम्भीर संकेत है कि राहु का सुदर्शन चक्र से सिर काटने पर भी राहु नहीं मरा था, उसे विष्णु भी नहीं मार सके थे, इसी प्रकार इसको विष्णु भी नहीं तोड़ सकते। इसको तोड़ने के लिए तो महाविष्णु को आना पड़ेगा- 'सकल अमानुष करम तुम्हारे।' ध्यान रखिए। और मित्रों- 'रावन बान महाभट भारे। देखि शरासन गवहिं सिधारे।।', तुम कौन होते हो? रावण और बाणासुर भी इसे देखकर चले गए। बाणासुर परिक्रमा करके चला गया और रावण पराभव पाकर गया। 'सकेउ उठाय.... गेरू। सो.... फेरू।।' फिर आया है रावण आज। अन्तिम बार भी आया है। इस बार भी है इस सभा में। क्योंकि मन्दोदरी कही- 'जनक सभा अगनित भोला। रहे तुमहू बल बिपुल बिशाला।' तुम भी थे वहाँ पर। 'भंजिधनुष जानकी बियाही। तब संग्राम जितेहु किन ताही।।' तब क्यों नहीं युद्ध में जीता? बन्दीगण कहते हैं- राजाओं, समझ लेना। 'सो पुरारि कोदंड कठोरा।', यह सामान्य नहीं है। यह कछुए की पीठ से भी कठोर है, वज्र के शिखर से भी कठोर है ये। इसे तोड़ना कोई सामान्य बात नहीं होगी। इसे तोड़कर कोई दिखा दे। पहले चढ़ाए, फिर तोड़े। उठे लोग। आप पूरी कथा जानते हैं। ये टूट क्यों नहीं रहा है। बड़ी मधुर बात है। टूट नहीं रहा है, किसी से नहीं टूट रहा है। इसके प्रति भिन्न भिन्न उत्प्रेक्षाएँ दी गयीं। तुलसीदास जी ने कहा है इधर धनुष बिना राम के नहीं टूटेगा और उधर 'नृप सब लखत करहिं उजियारी। टारि न सकहिं चाप तम भारी।।'

क्रमशः........

गतांक से आगे–

# ‘काका विदुर’ ( हिन्दी खण्डकाव्य )

❑ पूज्यपाद जगद्गुरु जी

होकर भी दूषण वह भुवन विभूषण है,
यदुवंश भूषण ने जिसे है किया अंगिकार।
भूषण भी दूषण के रूप में प्रतीत होता,
जिसे किया सर्वथा मुकुन्दजु ने अस्वीकार।
जिसकी निज सत्ता से संसार सा बिराजता है,
दुःख का आगार भी संसार नित्य निरासार।
‘‘गिरिधर’’ असार भी संसार हुआ नाथ पाके
श्याम को अनाथ नाथ है ये देवकी-कुमार।।९७।।
मेरी अन्तरंगता की एक साक्षिणी है यह,
सरित भावना की मंजु मूर्ति करुणा की है।
मूर्तिमति श्रद्धा मेरी भक्ति की निधानभुता,
साधना की पूंजी कुंज सकल कला की है।
इसने स्निग्ध दृष्टि द्वारा भावना निगूढ़ मेरी,
मानस में बार बार बाँकी झाँकी झाँकी है।
कहते हैं प्रेम में विनोद भावना में हरि,
काका से करोड़ों गुनी चतुर मेरी काकी है।।९८।।
पत्र पुष्प फल जल जो भी भक्ति भावना से
श्रद्धा के सहित मेरे चरणों में चढ़ाता है।
होकर साकार रूप करता हूँ स्वीकार उसे,
पूत भावना का ही समर्पण मुझे भाता है।
भाव का हूँ भूखा मैं समर्पित शुद्ध धारणा से,
कालकूट मेरे लिए अमृत बन जाता है।
मैं हूँ निर्लेप निरपेक्ष मुक्त गुणातीत,
भक्तों से तो मेरा एक प्रेम का ही नाता है।।९९।।
अगम अगाध भववारिधि से तरने को दृढ़,
विराग युक्त ज्ञान सलिल यान के समान।
किन्तु उसे सर्वदा संचालित करने के लिए,
परम विशुद्ध प्रेम कर्णधार है प्रधान।
प्रेम बिना थोथे सब जप तप व्रत अनुष्ठान,
प्रेम जन जीवन धन प्रेम ही शाश्वत निधान।
प्रेम ही है माध्यम दिव्य मेरे प्रागट्य का भी,
‘‘गिरिधर’’ के हेतु प्रेम सर्वदा है जीवनप्राण।।१००।।
रोक यदुनाथ को बिहसी बैन काकी बोली,
छोड़ो इन निरसों को कितना समझाओगे?
लीलाधर! ज्ञानियों की होती है विचित्र लीला,
इनके क्रम का तो पार तुम भी नहीं पाओगे।
इनके तर्कवाद के चपेटे में कृपानिधान,
‘‘गिरिधर’’ मृदु हृदय की सरसता गँवाओगे।
अंचलकी ओट कान्ह पास कान में यूँ बोली,
सत्य सत्य कहो लाला! और कुछ खाओगे?।।१०१।।
सम्मति मूक बिलोकी मुकुन्द की,
शाक अलोने को ले तब आई।
गोद बिठाय के फूँक सप्रेम सो,
माधव को जननी ज्यों खिलाई।
भाव से तृप्त किये जगदीश को,
शीतल जाह्नवी नीर पिलाई।
अंचल से मुख पोंछ रही,
पद पंकज में प्रभु के लपटाई।।१०२।।
काकी औ भतीजे का देख पारस्परिक प्रेम,
भाव मुग्ध विदुर कुछ क्षण के लिए रहे मौन।
बोले हे अनाथ नाथ! मेरे आज भाग खुले,
करुणाकर स्वयं ही पधारे दीन के यों भौन।
प्रार्थना मैं करूँ एक भक्तवश्य कृपासिंधु,
दम्पत्ति के उरालय से न करो कदापि गौन।
साँवरे सलोने लोने लाल नंद जसोदा के,
वसुदेव नन्दन मुकुन्द राधिका के रौन।।१०३।।

क्रमशः........

# गुरुवर दर्शन मंगलकारी

❑ श्री विशेष नारायण मिश्र ( संगीत विभाग )
जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय, चित्रकूट ( उ०प्र० )

दोहा- श्री पद नख में नमन कर, कलुषित मन को त्याग।
गुण-गण प्रतिपल ध्यान धर, लेश न मन में आस।।
युगल चरण छबि हृदय में, है विशेष अति भाग।
सद्गुरुवर प्रभु राममय, हौं दासन को दास।।

जय गुरुप्रवर संत हितकारी। भारत भूमि आपको प्यारी।।
जन्म जौनपुर जनपद लेके। हृदय प्रकाश किये जन लेखे।।
बाजै मंगल बाज बधाई। भुवन चौदहों आनँद छाई।।
भौतिक ज्योति नयन की जाई। दिब्य दृष्टि प्रभु आपन पाई।।
जिह्वा लसें सरस्वति माई। आशिष दीन्हि देव समुदाई।।
शिर पर लम्बी शिखा विराजै। गुरुवर काँध जनेऊ छाजै।।
तीन रेख माथे पर सोहै। कर त्रिदण्ड सब जन मन मोहै।।
माल सुकंठ सुमन की छाई। सकल वाङमय सम गति पाई।।
चरण पादुका गेरूव वस्त्रम्। माल फिरे नित गुरु के हस्तम्।।
सपनेहुँ नाहिं लखे परदोषा। राम नाम को हृदय भरोसा।।
गुरुवर भारत रत्न हमारे। सकल जगत के भाग सँवारे।।
करुणाकर की करुणा छाया। नहिं प्रभाव दिखलाये माया।।
ऋषिवर रामभद्र - रघुराई। इक दूजे की प्रीति समाई।।
हिन्दी - हिन्दू - हिन्दुस्थान। इन सबके हित दे दें प्राण।।
कूट कूट हिन्दुत्व भरा है। धन्य धन्यता धन्य धरा है।।
चित्रकूट श्री गुरुवर छाये। रघुवर कृपा सकल विधि पाये।।
अनुज सिया संग राम विराजैं। गुरुवर काँच के मंदिर छाजैं।।
मानवता के एक पुजारी। गुरुवर रामभद्र आचारी।।
धन्य हो गुरुवर की गुरुताई। विकलांगों को हिये लगाई।।
दीन जनों के यही सहाई। सुर-नर-मुनिजन करें बड़ाई।।
हैं संकल्प हिमालय के सम। जब तक पूर्ण करें ना लें दम।।

अनुपम विद्या मंदिर दाता। विकलांगों के भाग्य विधाता।।
मानस मंदिर के निर्माता। गुरुवर का रघुवर सो नाता।।
मन ही मन विश्वकर्मा लाजें। अन्तर्मन इनके गुण गाँजें।।
गुरुवर सम कोई नहिं दूजा। करते सब देवन की पूजा।।
धर्म ध्वजा केसरिया लहरे। विश्व के कोने कोने फहरे।।
गुरुवर का विकल्प नहिं जग में। रघुपति कृपा फूल पग पग में।।
शचीपूत हुलसी के नंदन। जानें जगत करे पद वंदन।।
धन्य कोख गुरुदेव की माई। रघुपति कृपा प्रकट भै आई।।
धन्य धन्य वह धरणी माता। जिसकी माटी पले विधाता।।
जय जय जय श्री जय गुरुदेवा। धन्य भाग हम पाये सेवा।।
धन्य हो मेरे गुरुवर की जय। दरसन से हो पापों का क्षय।।
ऐसे हैं गुरुदेव हमारे। सबके ही अँखियों के तारे।।
अतिशय कृपा प्रभू की पाई। जय जय करें जानकी माई।।
रोम रोम श्री राम विराजें। संभव है हनुमत भी लाजें।।
गुरुवर दर्शन मंगलकारी। प्रवचन भी है अति सुखकारी।।
राम प्रेम की परछाईं हैं। सुखमंगलमय शहनाई हैं।।
जो गुरुदेव की छैंयाँ आता। छूटे दोष दुखों से नाता।।
गुरुवर ताही गरे लगइहैं। भाव ''विशेष'' शरण जो अइहैं।।
जो गुरुवर के सद्‌गुण गावै। नवधा भगति उसी को पावै।।

दोहा- गुरुवर संबल आपका, आपहि रघुपति मोर।
मन मंदिर में आ बसो, पाऊँ भक्ति अथोर।।

( १ )

कोसलनंदन राम कृपा ही, निश्चय रूप से आइ गई है।
श्री गुरुदेव के रूप में आइकै, तीनिहुँ लोक समाइ गई है।
काज किये विकलांगन के हित, नैन बदरिया छाइ गई है।
आजु दिशा-विदिशाओं में जाइके सोन चिरैया गाइ गई है।।

( २ )

बालपने से ही काया गुरू जी की, राम के रंग रँगाइ गई है।
श्री चित्रकूट में आइ बसे जबसे तबसे सुख छाइ गई है।

होत अनन्द महाछबि देखिके कामिहुँ शोभा लजाइ गई है।
आजु दिशा-विदिशाओं में जाइके सोन चिरैया गाइ गई है।।

( ३ )

राम सुप्रेम में प्रीति बढ़ी अस प्रीति की प्रीति भुलाइ गई है।
प्रीति की रीति कही नहिं जाय कि प्रीति की भीति ढहाइ गई है।
संत-असंत-महंत-श्रीमन्तको प्रेम को पंथ बताइ गई है।
आजु दिशा-विदिशाओं में जाइके सोन चिरैया गाइ गई है।।

( ४ )

मानस मेघ झमक्कि झमाझम मानस भूमि नहाइ गई है।
श्री गुरुदेव के माध्यम मानस-मानस-मानस छाइ गई है।
मानस ही नहिं शास्त्र समुन्दर बुद्धि अकूत थहाइ गई है।
आजु दिशा-विदिशाओं में जाइके सोन चिरैया गाइ गई है।।

( ५ )

कोकिल बैन हिये सुख दैन सभै सुन कानन भाइ गई है।
पावन कीर्ति महाप्रभु रामकी राग-विराग सुझाइ गई है।
माई सरस्वति कंठ समाइके सरगम गीत सुनाइ गई है।
आजु दिशा-विदिशाओं में जाइके सोन चिरैया गाइ गई है।।

( ६ )

कारज एक से एक किये बहु तर्जनी दांते दबाइ गई है।
कीरति आजु सुगंध स्वरूप में दिग् औ दिगंत में छाइ गई है।
ऐसी न देखी न सुनी न एकहुँ ज्योति बिना सब आइ गई है।
आजु दिशा-विदिशाओं में जाइके सोन चिरैया गाइ गई है।।

( ७ )

ऐसी है कौन मती जो किसी गुरु ज्ञान के थाह थहाइ गई है।
एक मती जो बृहस्पति जी की मती को भी आजु लजाइ गई है।
गुरुवर के गुरुवर प्रति उत्तर गुरुवर की गुरुवाइ गई है।
आजु दिशा-विदिशाओं में जाइके सोन चिरैया गाइ गई है।।

( ८ )

रामहिं राम बसें प्रति रोम में रामहिं के मन भाइ गई है।
प्रीति की रीति निहारि गुरू की कुरीति की पाक पिराइ गई है।

हर्षित हैं सब शिष्य समूह कि लोचन के फल पाइ गई है।
आजु दिशा-विदिशाओं में जाइके सोन चिरैया गाइ गई है।।

दोहा- सीयराम छवि छँकि रहे, मात शची के पूत।
जय गुरुवर जय जय कृपा, जय श्री राम के दूत।।

आरती कीजै माँ शची लला की।
प्रेममूर्ति सियराम कला की।।
जाके मति सों बुधजन झांपें।
जिसकी गति जाई नहिं मापे।।
रघुपति दूत महासुखदाई।
दीन-हीन के सदा सहाई।।
रघुवर चरित वीथिनिन्ह बिहरें।
भाव अकूत लिये प्रभु हियरे।।
भारत भूषण श्री गुरुराई।
महिमा नेति नेति जन गाई।।
जगद्‌गुरुत्व के भाग सँवारे।
भक्तजनों के प्राण अधारे।।
भगवावस्त्र त्रिदंडीधारी।
अनाचार की रीति पँवारी।।
गुरुवरजी की यही कहानी।
चित्रकूट ही है रजधानी।।
पुष्ट शरीर वामनी काया।
प्रज्ञा का कोई पार न पाया।।
तीनिहुँ लोक सुकीरति गावैं।
गुरुवर नेम को पाठ पढ़ावैं।।
आरति थाल अकाशहुँ छाई।
दीपक तारे विविध सजाई।।
भाव ''विशेष'' जो आरति गावैं।
सोइ गुरुदेव कमल पद पावैं।।

❑❑❑

## भरतहिं त्याग धरम धन खानी

❑ श्रीशिव कुमार सिंह 'शिवम्', श्री परमधाम ( फरीदाबाद )

आत्मधरम सद् चिद् आनन्दमन घट मँह सारंगपानी।
नन्दिग्राम बसि चरित त्यागमय आत्म राम पहिचानी।।
भरतहिं त्याग धरम धन खानी
रामकृपा बिनु सत नहिं उपजै चिद् बिनु रामहिं जानी।
बिनु त्यागहिं आनन्द न उपजै रामानन्द रस खानी।।
भरतहिं त्याग धरम धन खानी
रामानन्द रति रामभद्र बर भरत चरित्र बखानी।
जेहिं करनी रघुबर रस बरसै भरत धरम सोइ जानी।।
भरतहिं त्याग धरम धन खानी
भरत धरम सद् चिद् आनन्दहिं मनुवा बनत निमानी।
गुरुपद जगत आचार्य रामभद्र बिनु देखेहिं पहिचानी।।
भरतहिं त्याग धरम धन खानी
सेवा बिकल अंग हित अवधहिं चित्रकूट सम जानी।
भरतहिं धरम रामरति हित पुरु त्यागहिं भोग निमानी।।
भरतहिं त्याग धरम धन खानी
त्याग कथा यह भरतचरितरस शिव तुलसी उर आनी।
शिवम् परमरचना केशवकरि रामहिं भद्र बखानी।।
भरतहिं त्याग धरम धन खानी

❑❑❑

# भारतीय जीवनमूल्य

❑ डा० धर्मपाल मैनी (गुड़गाँव)

मानव को सच्चे अर्थों में मानव बनाने का श्रेय उन उदात्त जीवन-मूल्यों को है, जिनके माध्यम से वह अपना सात्त्विक जीवन बिता रहा है। वस्तुतः किसी भी राष्ट्र का मूल्यांकन वहाँ के जन-समाज के आचरणगत मूल्यों के आधार पर ही होता है। प्रत्येक राष्ट्र की एक परम्परागत संस्कृति होती है, जिसका सृजन उन मूल्यों के आधार पर होता है जिन्हें वहाँ के महापुरुषों ने अपने जीवन में अपनाया। वस्तुतः उन मूल्यों के और उनके माध्यम से ही उनका चरित्र एवं व्यक्तित्व गौरवमय बनकर स्वर्णाक्षरों में अंकित हुआ है। किसी भी देश की भौतिक प्रगति का भी महत्त्व है लेकिन भौतिक प्रगति को उस देश का शरीर कहा जा सकता है, जबकि उसमें प्राण-तत्त्व का संचार करने वाले जीवन-मूल्य ही हैं। इससे किसी भी व्यक्ति, जाति, समाज, देश व राष्ट्र के जीवन-मूल्यों का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है।

किसी भी समाज की धारणाएँ, मान्यताएँ, आदर्श और उच्चतर आकाक्षाएँ ही वहां के जीवनमूल्यों का सृजन करती हैं और यह देश, काल व परिस्थिति सापेक्ष होती हैं। यद्यपि इन जीवन मूल्यों की आधार-भूमि में प्रायः परिवर्तन नहीं होता, परन्तु उनके व्यवहृत रूप में परिस्थिति-जन्य परिवर्तन होता रहता है। भारतीय जीवन में नारी के शील की रक्षा का सदा से विशेष महत्त्व रहा है। मध्य युग में सशक्त विदेशी आक्रमणकारियों की ज्यादतियों से जब यहाँ के अशक्त राजा और जन-समाज उनकी रक्षा न कर सके, तो न केवल सामूहिक जौहर को प्रश्रय मिला अपितु सम्भवतः सती-प्रथा का प्रचलन भी तभी हुआ। भारतीय नारी ने विदेशी पाशविक-शक्ति का शिकार होने की अपेक्षा प्राणों की बलि दे देने को श्रेयस्कर समझा। उन परिस्थितियों में यही यहाँ का जीवन मूल्य था, लेकिन बदलते परिवेश में आज इसकी आवश्यकता नहीं, अतः वही सती-प्रथा, जो उस युग में गौरव का कारण बनी थी, आज निंदनीय व अवांछनीय हो गयी। मूलाधार वही रहा- नारी के शील की रक्षा। आज भी मदोन्मत्त मानव की राक्षसी वृत्तियों का शिकार होने से बचने के लिए प्राणों की आहुति देने वाली नारियों को यहाँ सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है- यह क्या कम है? जीवन के उच्चतर मूल्य ही वह आदर्श बने रहते हैं, जिनके लिए मानव न केवल अनंत कष्ट सहकर जीवन व्यतीत करने के लिए तैयार हो जाता है, अपितु समय आने पर प्राण तक न्यौछावर कर देता है लेकिन अपने मूल्य नहीं छोड़ता। पितृ-भक्त राम सहर्ष राज्य त्याग कर चौदह वर्षों के लिए वन को चले गए और ''**प्राण जाहिं बरु वचन न जाई**'' का पालन करते हुए दशरथ पुत्र-वियोग में स्वर्ग ही सिधार गए, पर अपने वचन का पालन करने में नहीं चूके। महाराणा प्रताप वन-वन मारे फिरते रहे, बच्चे को घास की रोटी तक खिलाई लेकिन न स्वाभिमान का त्याग किया और

न ही पराधीनता स्वीकार की। नौ वर्ष के गुरु गोविन्द सिंह ने धर्म की रक्षा के लिए पिता तेज बहादुर को ही श्रेष्ठ मानव बताते हुए धर्म की बलिवेदी पर चढ़ने के लिए प्रेरित किया। इतना ही नहीं, **''स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः''** (अपने धर्म में मर जाना अच्छा है लेकिन धर्म-परिवर्तन नहीं करना, क्योंकि वह भयावह है)। इस जीवन-मूल्य से अभिसिंचित होने के कारण उनके सात और नौ वर्ष के पुत्रों ने भी अपने को दीवार में जिन्दा ही चिनवा लेना अच्छा समझा, लेकिन धर्म-परिवर्तन से मनाही कर दी। स्वतः गुरु गोबिन्द सिंह दूसरे दोनों पुत्रों के युद्ध में शहीद हो जाने के बाद भी जीवन-भर अत्याचारी औरंगजेब और उसके सेनापतियों से जूझते रहे, लेकिन धर्म, जाति और देश की पराजय स्वीकार न की। भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव को कौन भुला सकता है, जिन्होंने देश की स्वतन्त्रता के लिए हँसते-हँसते फाँसी के तख्ते चूम लिए और उफ तक न की। ये हैं इन देश-भक्तों के मूल्य-स्वाभिमान, स्वतन्त्रता-प्रेम, धर्म-रक्षा और देश-प्रेम जिन्होंने इन मूल्यों के लिए बड़े से बड़ा त्याग किया और भारत ही क्या, विश्व के इतिहास में अमर हो गए।

### जीवन-मूल्यों का आधार

भारतीय जीवन-मूल्यों को जानने के लिए उनके आधार को समझना आवश्यक है। मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ मनुष्य ने मात्र पशुवत् जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा कुछ और अच्छी तरह जीवन जीने की कला सीखनी चाही होगी। समूह में जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा सम्भवतः आत्मरक्षा के सिद्धांत से मिली हो। यह आत्म-रक्षा ही सम्पूर्ण समूह की रक्षा में परिणत हो गई। इसी से मानव को अमूल्य जीवन का महत्त्व समझ में आया। मानव में **''जीवन की आस्था''** उत्पन्न हो गयी और वह अपने समूह व समाज के सभी मनुष्यों के जीवन के महत्त्व को अनुभव करने लगा। यही जीवन-मूल्यों के प्रति उसके विश्वास का आरंभ था। वस्तुतः इन मूल्यों का आधार श्रुति, स्मृति, पुराणों में अन्तर्निहित सत्य एवं महापुरुषों का अनुभूत सत्य एवं सदाचरण ही है, जिसे हम इस रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। बौद्धिक प्राणी होने के कारण वह प्रत्येक कार्य के औचित्य-अनौचित्य पर विचार करने लगा- पहले वैयक्तिक दृष्टि से, पुनः सामाजिक दृष्टि से और अन्ततः मानवीय दृष्टि से। धीरे-धीरे उसने अपने अन्तर्मन में स्वीकार कर लिया कि इस औचित्य-अनौचित्य का आधार उसका बौद्धिक विवेक है, चाहे वह किसी भी क्षेत्र में क्यों न हो। वैयक्तिक क्षेत्र में व्यक्ति अपने-आप ही दोनों पक्षों की ओर से तर्क-वितर्क कर किसी निर्णय पर पहुँचता है, जबकि सामाजिक क्षेत्र में सभी व्यक्ति दो या अधिक पक्षधर बनकर अपना-अपना पक्ष स्पष्ट और सशक्त करने का प्रयत्न करते हैं। मानव ने इस विवेक शक्ति के महत्त्व को भी स्वीकार किया और जीवन-मूल्यों के आधार-स्वरूप इसे अपनाया। जब उसका एक ही मूल्य अन्यान्य देश, काल व परिस्थितियों में उपयुक्त न प्रयुक्त हुआ, तो उसने इन पर भी विचार करना आवश्यक समझा और इस निर्णय पर पहुँचा कि इन परिवर्तनों के साथ जीवन-मूल्यों में भी परिवर्तन आवश्यक है, अतः समग्र

परिवेश को भी इसका आधार स्वीकार कर लेना चाहिए। यदि ये जीवनमूल्य इस व्यापक जन-समाज के कल्याण के लिए न हों, तो उन्हें भी नहीं स्वीकार किया जा सकता, अतः जीवनमूल्यों का एक महत्त्वपूर्ण आधार बना लोक-कल्याण की चेतना। यह सब तो ठीक है, लेकिन एकाकी मानव का क्या हो? क्या वह अपने सभी मूल्यों का लोक-कल्याण के लिए त्याग कर दे अथवा वहाँ भी विवेक एवं अन्य आधारों का आश्रय लेकर अपने ''**आन्तरिक उन्नयन**'' पर विचार करे? स्पष्ट है कि जो मूल्य व्यक्ति का "आन्तरिक उन्नयन" नहीं करते, वे भी जीवनमूल्य नहीं हो सकते। संक्षेपतः हम कह सकते हैं कि भारतीय जीवन-मूल्यों के निम्न आधार हो सकते हैं:-

१. जीवन के प्रति आस्था और लगाव
२. विवेकशील चिन्तन
३. परिवेश-बोध
४. लोक-कल्याण की चेतना और
५. वैयक्तिक उदात्तीकरण अथवा आन्तरिक उन्नयन

इन आधारों को ध्यान में रखते हुए मानव-मूल्य की परिभाषा है- किसी देश, काल और परिस्थिति में जन-सामान्य की उदात्त मान्यताएँ ही मानव मूल्य होती हैं। और कसौटियाँ हैं:-

१. जिसका ध्येय व्यापक लोक-कल्याण हो।
२. जिससे व्यक्ति का उदात्तीकरण हो।

## मूल्यों का वर्गीकरण

जीवन-मूल्यों का व्यापक ज्ञान प्राप्त करने के लिए उनका वर्गीकरण भी किया जा सकता है। जैसे:- शारीरिक मूल्य में स्वस्थ देह की बात कही जा सकती है, जिसके अनिवार्य तत्त्व हो सकते हैं:- नीरोग, सशक्त, सहनशील, सब अंगों का आनुपातिक विकास, आयु के अनुसार आनन पर तेज, सौंदर्य और स्फूर्ति। इसीप्रकार वैयक्तिक मूल्यों में आत्मबल, आत्मविश्वास, स्वाभिमान, आत्म-निर्भरता, निर्भीकता, सन्तोष, धैर्य, संकल्प, सहृदयता आदि को लिया जा सकता है। आर्थिक मूल्यों में उचित साधनों से धन का उपार्जन, सत्य मार्ग से ही उसका व्यय, मितव्ययता, उपयुक्त दान तथा अनावश्यक संग्रह न करना आदि। हमारे यहाँ कहा भी है- ''**अर्थस्य तिस्रः गतयः दानं भोगो नाशश्च**'' (धन की तीन गतियाँ होती हैं- उपभोग कर लो, दान दे दो अन्यथा नष्ट हो जायेगा)। नैतिकजीवन मूल्यों में कर्त्तव्य पालन, ईमानदारी, त्याग, बलिदान, परोपकार, सेवा, सदाचार, शिष्ट व्यवहार, सत्यनिष्ठा, व्यवस्था के प्रति आदर आदि को लिया जा सकता है। सामाजिक मूल्यों में सद्‌भावना, सहानुभूति, सहयोग, मानवीयता आदि को रखा जा सकता है। राजनीतिक मूल्यों में राष्ट्रप्रेम, स्वतन्त्रता, अनुशासन, विजयोल्लास आदि का महत्त्व है। धार्मिक मूल्यों में अव्यक्त सत्ता में विश्वास, भगवद्‌भक्ति, कीर्तन, गुणगान, प्रार्थना आदि को लिया जा सकता है। बौद्धिक मूल्यों में महत्त्वपूर्ण है- कल्पना, जिज्ञासा, विवेचन, विश्लेषण, वैज्ञानिक चिंतन, मनन, रचना-धर्मिता और विवेक। सौंदर्य संबंधी मूल्यों में संवेदनशीलता, कलाप्रेम, प्रकृति-प्रेम, मानव सौंदर्य प्रेम आदि को स्थान दिया जा सकता है। आध्यात्मिक मूल्यों में ध्यान-परायणता, शरीर-बोध से अतीत अवस्था को प्राप्त करना, ब्रह्मानुभूति के पथिक बनना व ब्रह्म-तत्त्व की खोज आदि हैं।

इन्हें अन्यान्य वर्गों में रखने का तात्पर्य यह नहीं कि इनका परस्पर संबंध नहीं। वस्तुतः यह सभी मूल्य-वटवृक्ष रूपी जीवन-मूल्य की शाखा-प्रशाखाएँ ही हैं।

❑❑❑

# केवट की भक्ति

❑ श्री जगदीशप्रसाद गुप्त (जयपुर)

प्रभु श्रीराम सुमंत्रजी (महाराज दशरथजी के मंत्री) को अयोध्या जाने को लौटाकर, स्वयं सीता, लक्ष्मण व निषादराजगुह के साथ गंगा जी के तट पर आकर, गंगा-पार कर, आगे वन की ओर जाना चाहते हैं। गंगा-पार के लिए उन्हें नाव की आवश्यकता होती है। वे सर्वसमर्थ प्रभु श्रीराम, जिनके चरण कमल से श्री गंगा प्रकट हुई, जो बड़े-बड़े पापों का नाश करने वाली है, केवट से नाव माँगते हैं-

**तुलसी जेहि के पद पंकज ते प्रगटी तटिनी, जो हरै अघ गाढ़े।**
**ते प्रभु या सरिता तरबे कहुँ मांगत नाव करारे ह्वै ठाढ़े।।**

(कवितावली-अयोध्याकाण्ड ५ (३-४))

केवट नाव लेकर नहीं आता है और प्रभु से कहता है कि उसने उनके रहस्य को जान लिया है- आपके चरण कमलों की धूल के लिए सभी कहते हैं कि वह मनुष्य बना देनी वाली कोई जड़ी है-

**माँगी नाव न केवट आना।**
**कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना।।**
**चरन कमल रज कहुँ सबु कहई।**
**मानुष करनि मूरि कछु अहई।।**

(रामचरितमानस-अयोध्याकाण्ड १००(३-४))

केवट कहता है-"हे प्रभो! इस घाट से थोड़ी ही दूर पर केवल कमर भर जल है। चलिए, मैं यह थाह दिखला दूँगा। आपकी चरण-रज का स्पर्श कर मेरी नाव का उद्धार हो गया तो मैं घर की स्त्री को कैसे समझाऊँगा-

**एहि घाटतें थोरिक दूर अहै कटि लौं जलु, थाह देखाइहौं जू।**
**परसे पग धूलि तरै तरनी, घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू।।**

(कवितावली अयोध्याकाण्ड ६(१-२))

केवट आगे कहता है-हे प्रभो! आपके चरण कमलों की धूलि से पत्थर की शिला सुन्दर स्त्री हो गई; कहीं मेरी नाव भी मुनि की पत्नी न बन जाये, मेरी नाव की लकड़ी पत्थर से कठोर नहीं है, मेरी नाव तो अवश्य ही मुनि पत्नी होकर उड़ जायेगी। मैं कुछ और काम करना नहीं जानता हूँ, सिर्फ इसी नाव से अपने सारे परिवार का पालन-पोषण करता हूँ-

**छुअत सिला भइ नारि सुहाई।**
**पाहन तें न काठ कठिनाई।।**
**तरनिउ मुनि घरिनी होइ जाई।**
**बाट परइ मोरि नाव उड़ाई।।**
**एहिं प्रतिपालउँ सबु परिवारू।**
**नहिं जानउँ कछु अउर कबारू।।**

(रामचरितमानस-अयोध्याकाण्ड-१००(५-६-७))

केवट की इस मनोदशा का चित्रण बाबा सूरदास जी ने अपने पद में इस प्रकार किया है-

**बार-बार श्रीपति कहैं, धीवर नहिं मानै।**
**मन प्रतीति नहि आवई, उड़िबौ ही जानै।।**
**नेरें ही जलथाह है, चलौ, तुम्हें बताऊँ।**
**सूरदास' की बीनती, नीकैं पहुँचाऊँ।।**

(सूर राम चरितावली-पद ३० (९-१२))

भोला केवट प्रभु से पूछता है कि वास्तव में वे गंगा-पार जाना चाहते हैं तो मुझे पहिले अपने चरण कमल धोने के लिए आज्ञा दीजिए-

**जौं प्रभु पार अवसिगा चहहू।**
**मोहि पद पदुम पखारन कहहू।।**

(रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड १००(८))

देखिए! केवट भोला ही नहीं, चतुर भी है। प्रभु के श्रीचरणों को धोने के लिए क्या अजीब भूमिका बनाई। क्या प्रभु ऐसे भक्त से चरण धोने के लिए मना कर सकते हैं? कभी नहीं। इसी बीच, केवट सोचता है कि प्रभु श्रीराम चरण धोने के लिए मना तो नहीं करेंगे, लेकिन कहीं लक्ष्मण स्वभाववश बाधक नहीं बन जायें- कहीं स्वयं ही श्रीचरण धोने लगें,

और ये सोचें कि केवट को अधिक उतराई लेने का लोभ है। इसलिए, इन सभी आशंकाओं पर अपनी ओर से पहल करते हुए प्रभु के श्रीचरणों में अपनी इच्छा प्रकट कर देता है–

**पद कमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं।**
**मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब साची कहौं।।**
**बरू तीर मारहुँ लखनु पै जब लगि न पाय पखारिहौं।**
**तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपाल पार उतारिहौं।।**

(रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड १०० छंद)

केवट के प्रेम में लपेटे हुए अटपटे वचन सुनकर प्रभु सीता और लक्ष्मण की ओर देखकर हँसते हैं–

**सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे।**
**बिहसे करूनाऐन चितइ जानकी लखन तन।।**

(रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड १००सोरठा)

मानस के इस केवट पर आजकल के कथावाचक उसके पूर्वजन्म के अनेक प्रसंग, 'प्रभु क्यों हँसे' पर, सुनाते हैं–विशेषतः, १. क्षीर समुद्र में श्री विष्णु भगवान के श्रीचरणों के पास एक कच्छप को आने पर लक्ष्मीजी और शेषनाग जी ने रोका था– आज वही कच्छप केवट है, लक्ष्मीजी सीताजी हैं और शेषनाग लक्ष्मण जी हैं। २. सीताजी और लक्ष्मणजी ने प्रभु के दायें चरण व बायें चरण की सेवा का बँटवारा कर रखा है, अब यह केवट दोनों ही चरण धोना चाहता है।

केवट के अटूट प्रेम को देखकर कृपालु प्रभु उससे मुस्करा कर कहते हैं कि तू वही कर जिससे तेरी नाव न जाये। प्रभु तो भक्त के वश में रहते हैं। केवट से कहते हैं कि हमें देर हो रही है, जल्दी से जल लाकर, पैरों को धोकर पार उतार। पता नहीं प्रभु को कहाँ के लिए देर हो रही है, हो सकता है कि प्रभु के भक्त की कामना को पूर्ण होने में देरी का आभास हुआ हो और इसलिए, जल्दी से जल्दी अपने चरणों को धुलवा लेना चाहते हों–

**कृपासिंधु बोले मुसुकाई।**
**सोइ करू जेहिं तव नाव न जाई।।**
**बेगि आनु जल पाय पखारू।**
**होत बिलंबु उतारहि पारू।।**

(रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड १०१(१–२))

ये प्रभु ऐसे हैं, जिनके नाम को एक बार स्मरण करते ही मनुष्य अपार भवसागर से पार उतर जाते हैं– वे ही कृपालु प्रभु गंगा पार के लिए केवट से अनुग्रह कर रहे हैं, जिन्होंने संसार को तीन पग से भी छोटा कर दिया था–

**जासु नाम सुमिरत एक बारा।**
**उतरहिं नर भव सिंधु अपारा।।**
**सोइ कृपालु केवटहिं निहोरा।**
**जेहिं जगु किय तिहु पगहु ते थोरा।।**

(रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड १०१(३–४))

प्रभु की ऐसी भक्तवत्सलता को देखकर माँ गंगा भी हर्षित होती हैं। केवट को प्रभु का आदेश मिल गया है, वह कठौते में जल भरकर ले आया–

**पद नख निरखि देवसरि हरषी।**
**सुनि प्रभु बचन मोहँ मति करषी।।**
**केवट राम रजायसु पावा।**
**पानि कठवता भरि लेइ आवा।।**

(अयोध्याकाण्ड १०१(५–६))

केवट की मनोकामना पूरी हो रही है, उसे अति आनन्द हो रहा है। उसे प्रभु के चरण सुलभ हो गये हैं, अति आनन्द व प्रेम में उमंगकर प्रभु के चरण कमल धोने लगा। आज तक किसी भक्त को प्रभु का ऐसा आशीर्वाद नहीं मिला है जैसा केवट को मिला है। समस्त देवता फूलों की वर्षा कर केवट की प्रशंसा करते हैं कि इसके समान कोई पुण्यवान नहीं है–

**अति आनन्द उमगि अनुरागा।**
**चरन सरोज पखारन लागा।।**
**बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं।**
**एहि सम पुन्य पुंज कोउ नाहीं।।**

(रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड १०१(६–७))

**तुलसी सराहै ताको भागु, सानुराग सुर।**
**बरषैं सुमन, जय जय कहै टेरि टेरि।।**

(कवितावली अयोध्याकाण्ड १०(५–६))

वह केवट अपने परिवार सहित प्रभु के चरण कमलों को धोये जल का पान करता है, अपने पूर्वजों का भी उद्धार कर लेता है और फिर, इसके बाद ही मुदित होकर प्रभु को गंगा जी के पार ले जाता है। केवट को प्रभु कृपा पूरी मिली है और पूरा पूरा लाभ लिया है–

**पद पखारि जलु पान करि आपु सहित परिवार।**
**पितर पार करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार।।**

(रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड दोहा १०१)

राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त अपने 'साकेत' में उस केवट के लिए यह सम्मान देते हैं–

**प्रभु पद धोकर भक्त आप भी धो गया।**
**कर चरणामृत पान अमर वह हो गया।।**

अब प्रभु श्रीराम सीता, लक्ष्मण और निषादराज गुह के साथ नाव पर से उतर कर गंगा जी के रेत में खड़े हो गये हैं। केवट नाव पर से उतरकर प्रभु को दंडवत करता है, प्रभु को संकोच होता है कि केवट को कुछ नहीं दिया है– उसे अपनी मजदूरी मिलनी चाहिए–

**उतरि ठाढ़ भए सुरसरि रेता।**
**सीय राम गुह लखन समेता।।**
**केवट उतरि दंडवत कीन्हा।**
**प्रभुहिं सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा।।**

(रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड १०२(१–२))

दाम्पत्य–जीवन में किसी को किसी चीज का अभाव न अखरे–हमें माँ सीता से प्रेरणा लेनी है। प्रभु को कुछ देना है, सीता जी जान जाती हैं और प्रसन्नचित्त से अपनी रत्नजड़ित अँगूठी उतार देती हैं। कृपालु प्रभु अंगूठी को उतराई के रूप में लेने को कहते हैं लेकिन केवट अकुलाकर प्रभु के श्रीचरणों को पकड़ लेता है। वह कहता है– "हे प्रभु! आज मैंने आपके श्रीचरण धोकर क्या नहीं पाया– सब कुछ पा लिया और दोष, दुख और दरिद्रता की आग बुझ गई। मैंने बहुत समय से मंजूरी की है, आज विधाता ने पूर्ण रूपेण मजदूरी अच्छी तरह से दे दी। हे नाथ! हे दयालु! आपकी कृपा से मुझे कुछ नहीं चाहिए। लौटते समय आप मुझे जो कुछ देंगे, वह प्रसाद मैं सिर चढ़ाकर लूँगा।"

**पिय हिय की सिय जाननि हारी।**
**मनि मुदरी मन मुदित उतारी।।**
**कहेउ कृपाल लेहु उतराई।**
**केवट चरन गहे अकुलाई।।**
**नाथ आजु मैं काह न पावा।**
**मिटे दोष दुख दारिद दावा।।**
**बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी।**
**आजु दीन्ह बिधि बनि भलि भूरी।।**
**अब कुछ नाथ न चाहिय मोरे।**
**दीनदयाल अनुग्रह तोरे।।**
**फिरती बार मोहि जो देबा।**
**सो प्रसादु मैं सिर धरि लेबा।।**

(रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड १०२(३–८))

लक्ष्मण व सीताजी भी केवट को लेने को कहते हैं लेकिन केवट कुछ भी नहीं लेता। प्रभु धर्म संकट में पड़ गये। आखिर में, करुणा के धाम प्रभु अपनी निर्मल भक्ति का वरदान देकर केवट को विदा करते हैं–

**बहुत कीन्ह प्रभु लखन सियँ नहिं कछु केवट लेइ।**
**बिदा कीन्ह करुनायतन भगति बिमल बरु देइ।।**

(रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड दोहा १०२)

केवट को प्रभु की निर्मल भक्ति मिल गई है लेकिन उसकी उतराई शेष रही। रामवतार में प्रभु का यह संकोच बना ही रहा। बाल सखा श्रीसुदामा जी के चरणों को धोकर और अपनी द्वारिका से अधिक धन सम्पदा देकर–

**देखि सुदामा की दीन दशा,**
**करुणा करिकै करुणानिधि रोए।**
**पानी परात को हाथ छुयौ नहिं,**
**नैनन के जल सों पग धोए।।**

❑❑❑

## गुरुदेव का जनमदिन

❑ डा० श्रीमती वन्दना श्रीवास्तव

गुरुदेव का जनमदिन है पर्व परम पावन।
संक्रान्ति माघ षट्तिल एकादशी सुहावन।।
गुरुवर का बुद्धि निर्झर
झर झर झरें सरस्वति
उनकी गिरा से झरती
सिया राम प्रेम भक्ति
नित ज्ञान घन बरसता जैसे बरसता सावन।
संक्रान्ति ..................................।।
सम्पूर्ण ज्ञानियों में
निज ज्ञान से हैं चर्चित
गुरु सूर्यवंशियों के
उनसे सदैव वन्दित
गुरुवर वसिष्ठ जी को है वन्दना का वन्दन।
संक्रान्ति ..................................।।

विकलांगों के हित में
जीवन किया समर्पित
सत्यार्थ में जगद्गुरु
के पद पै वे प्रतिष्ठित
हैं ज्योतिपुञ्ज गुरुवर जगमग है माँ का आँगन।
संक्रान्ति ..................................।।
वर्धिष्णु बनें गुरुवर
शुभकामना हमारी
जीवन सदैव सुरभित
केसर की जैसे क्यारी
माँ भारती हैं गर्वित है दिव्य उनका लालन।
संक्रान्ति ..................................।।

## पूज्यपाद जगद्गुरु जी के आगामी कार्यक्रम

❑ प्रस्तुति-पूज्या बुआ जी

| दिनाङ्क | विषय | आयोजक तथा स्थान |
|---|---|---|
| ०५ फरवरी २००९ से<br>०९ फरवरी २००९ तक | मानस सम्मेलन<br>सायं २ से ५ बजे | महन्त श्रीरामभूषणदास, श्रीरघुनाथ मंदिर<br>खनेता गोहद, जि०- भिण्ड, म०प्र०<br>फोन- ०७५३९-२८०७२६ |
| ११ फरवरी २००९ से<br>१५ फरवरी २००९ तक | दिव्य प्रवचन<br>सायं २ से ५ तक | सैक्टर-१० A रावतुलाराम पार्क<br>गुडगाँव (हरियाणा)<br>मो०- ९८७१५५०५८० |
| ०१ मार्च २००९ से<br>०९ मार्च २००९ तक | श्रीरामकथा<br>सायं ३ से ६ बजे | श्री सनकादिक देवनारायणदास, देवपत्तम,<br>काठमाण्डू, नेपाल।<br>फोन-०९७७-९७४७०२२००९ |
| १६ मार्च २००९ से<br>२२ मार्च २००९ तक | श्रीमद्भागवतकथा<br>प्रातः ९:३० से १:३० तक | गीताभवन नं० ३ घाट पर<br>स्वर्गाश्रम, ऋषिकेश (उत्तराखण्ड)<br>आयोजक- श्री नारायण डालमिया |

# शंख-ध्वनिविज्ञान

❑ विद्यावागीश पूज्यपाद पं० दीनानाथ शास्त्री सारस्वत

सन्ध्या कर चुकने पर तथा हिन्दुओं के धर्म मन्दिरों में, धर्म कथाओं में शंख का नाद किया जाता है, यह भी रहस्यपूर्ण है। वैज्ञानिकप्रोफेसर जगदीशचन्द्र बसु महोदय ने अपने प्रयोगों से सिद्ध किया है कि– जहां तक शंख की ध्वनि जाती है वहां तक संक्रामक रोगों के अनेक विषाक्त परमाणु स्वयं ही दूर हो जाते हैं, वहां का वायुमण्डल विशुद्ध हो जाता है।

जो लोग हम पर यह आक्षेप करते हैं कि– यह लोग मुँह से हड्डी छूते हैं, इस पर उन्हें जानना चाहिए कि– जैसे चमड़ा अशुद्ध होने पर भी प्रतिपक्षी भी मृगचर्मादिरूप में उसका उपयोग लेते हैं, और उसे शुद्ध मानते हैं। जैसे देवमन्दिर में चमड़े के बने होने से जूता ले जाने का निषेध होने पर भी चमड़े का मृदंग या ढोल वहां ले जाया जाता है। जैसे बाल अशुद्ध होने पर भी प्रतिपक्षी लोगों से शिखा (चोटी) रूप में प्रयुक्त किये जाते हैं, चमरी की पूछ चमर मन्दिरों में, गुरुद्वारों वा राजभवनों में झुलते हैं, और उन्हें शुद्ध माना जाता है, जैसे पुरीष अशुद्ध होने पर भी प्रतिपक्षी भी गोपुरीष (गोबर) रूप में उसका उपयोग करते हैं, और उसे शुद्ध मानते हैं, मल अशुद्ध होने पर भी भस्म रूप से प्रयुक्त की जाती है, क्योंकि– भस्म अग्नि की मल होती है, जैसे कि कृष्णयजुर्वेद में कहा है– 'अग्नेर्भस्मासि, अग्नेः पुरीषमसि' (तै० सं० १/२/१२ (३) जैसे दांत अशुद्ध होने पर भी, अस्थिमय होने पर भी, गजदन्तरूप में प्रतिपक्षियों से भी उपयुक्त किये जाते हैं, बल्कि अपने मुख में भी लगाये जाते हैं, अपनी स्त्रियों के हाथ में चूड़ी रूप में पहिनाये जाते हैं। जैसे मूत्र अशुद्ध होने पर भी प्रतिपक्षी भी गोमूत्रादिरूप में उसका प्रयोग करते हैं, और उसे शुद्ध मानते हैं। जैसे कि– कृमि-विशेष के मुख की लार से उत्पन्न भी रेशम को पवित्र माना जाता है। जैसे वमन (उल्टी) अशुद्ध होती हुई भी मधु-रूप में प्रतिपक्षियों से प्रयुक्त की जाती हैं, और यज्ञ में भी उसका प्रयोग किया जाता है, जैसे हड्डीरूप कौडियाँ भी सभी से प्रयुक्त की जाती हैं, इसी तरह अस्थि अशुद्ध होती हुई भी शंख आदि रूप में उसका प्रयोग होता है, और शंख को शुद्ध माना जाता है। यह सब सामान्य-शास्त्र के अपवाद हैं।

यदि कहा जावे कि– 'यह तो आपकी इच्छा हुई, जिसे चाहे शुद्ध बना दें, जिसे अशुद्ध'। इस पर यह जानना चाहिए कि– सामान्य-शास्त्र के अपवाद सर्वत्र हुआ करते हैं, और वे स्वाभाविक होते हैं, उन्हें वैसा ही मानना पड़ता है। आक्षेप्ता लोग जिन्हें हड्डी एवं अस्पृश्य कहते हैं, उनके मुख में भी क्या हड्डी जुड़ी हुई नहीं जिन्हें दाँत कहते हैं? क्या आप उन्हें निकलवा डालते हैं आपके शरीर में रक्त भी है, हड्डियाँ भी हैं, उन्हें भी अस्पृश्य होने से निकलवा डालेंगे? शुक्र अस्पृश्य है, उससे बने हुए पुत्र को भी गिरा देंगे क्या? यदि नहीं, तो स्पष्ट हो जाता है कि जिसके बिना निर्वाह न हो, या जिसमें कई गुणविशेष अनुभूत हों, उसकी अस्पृश्यता बाधित हो जाती है, और उसे अपवादस्थल माना जाता है। जब अनिर्वाह्यस्थल में भी अस्पृश्यता नहीं मानी जाती, तब जहां हमारे विज्ञानज्ञाता प्राचीन ऋषि-मुनियों ने विशिष्ट वस्तुओं में वैज्ञानिक-दृष्टि से शुद्धता देखी, वहाँ भला अस्पृश्यता या अशुद्धता या त्याज्यता कैसे हो सकती है? इस प्रकार सभी सामान्य-शास्त्र के अपवादों में जानना चाहिये।

इसके अतिरिक्त प्राकृतिक नियमों से भी यही प्रतीत होता है कि अस्पृश्यता बलाबल पर निर्भर है। जिस वस्तु में वैज्ञानिक गुणों का बल अधिक होता है, वहाँ अस्पृश्यता प्रवृत्त नहीं होती। जैसे सायंकालीन वायु अस्पृश्य होती है, वह सम्पूर्ण वृक्षों को दूषित कर देती है, परन्तु अधिक बल रखने वाले पीपल और बड़ आदि वृक्ष, तुलसी आदि पौधे उस वायु से दूषित नहीं किये जा सकते। पूर्ववत् वे शुद्ध ही रहते हैं। अवश्य इनमें विशिष्ट शक्ति हुआ करती है; जो अशुद्ध वायु को बलवान नहीं होने देती। तभी हमारे शास्त्रों में तुलसी, पीपल आदि वृक्षों को उत्तम वृक्ष माना गया है, सायं वा रात में भी इनके पास रहने से हमारी कोई हानि नहीं होती।

इस प्रकार ऋषि-मुनियों ने मृगचर्म आदि तथा ऊन के वस्त्र, रेशमी कपड़ा आदि और गजदन्त एवं शङ्ख आदि को भी पवित्र कहा है। इस प्रकार की विशिष्ट शक्ति को हमारे वैज्ञानिक मूर्धन्य पूर्वज जानते थे; तभी उन्होंने एतदादि की व्यवहार्यता बताई है।

अब शङ्ख के वैज्ञानिक गुणों पर विचार करना चाहिए। पहले हम वैज्ञानिक श्रीजगदीशचन्द्र बसु का इस विषय में अभिमत बता चुके हैं। धार्मिक लोगों में प्रसिद्ध है कि प्रातः-सायं शङ्ख बजाने से भूत हट जाते हैं- 'शङ्ख बाजे, भूत भागे'। उनमें कीटाणु भी सूक्ष्म-भूतों में माने जाते हैं। दोनों सन्ध्याओं में तम और प्रकाश के मिश्रण से रोग के कीटाणु पैदा होते हैं; और इधर-उधर फैल जाते हैं; और वे वायुमण्डल को अशुद्ध कर दिया करते हैं। तब शंखनाद कीटाणुओं का दूर करने वाला होने से स्वयं ही आरोग्यकारक सिद्ध हुआ; क्योंकि कीटाणु आरोग्य के विघातक हुआ करते हैं। संक्रामक रोगों में शङ्ख विशेष-उपयोगी होता है।

आजकल के वैज्ञानिक जिस नवीनता की गवेषणा करते हैं, आज के भारतीय उसमें बहुत हैरान हो जाते हैं। स्वयं कुछ भी नहीं करते, और न प्राचीन मुनियों के वचनों पर विश्वास या श्रद्धा करते हैं। यह शंख मूकों (गूंगों) को भी भाषणशक्ति देता है। यदि गूंगे प्रतिदिन तीन-चार बार शंख बजावें; और उन्हें बोलने का अभ्यास कराया जाय, शंख में डाला हुआ जल उन्हें पिलाया जाया करे, शंखभस्म उन्हें खिलाई जाए; और छोटे-शंखों की माला उन्हें पहराई जावे; तो वे मूक भी बोलने में कुछ सहायता प्राप्त कर लेते हैं। गण्डमाला-रोग में शंख घिसकर लगाने से लाभ होता है। क्षय, कृशता, विष तथा नेत्र-रोगों पर शंख को लाभदायी कहा गया है। शंख शूल, गुल्म, संग्रहणी, दन्तरोग, आँख का फूला और फोड़ों का नाश करता है।

इसी कारण प्राचीन समय में बच्चों की ग्रीवा में छोटे-छोटे शंखों को धागे में पिरोकर पहिनाते थे। इससे बच्चे शीघ्र बोल सकते थे, दृष्टिदोष भी उन्हें नहीं होता था। महाराष्ट्र में शंख का जल बच्चों को पिलाते हैं, इससे कई उनके रोग दूर हो जाते हैं। प्राचीन-शास्त्रों में शंख को इसीलिए रत्न कहा जाता है। समुद्र से जब चौदह रत्न निकले थे; उनमें शंख भी था।

सब आगमों के मूल वेद में भी शंख का लाभ आया है। जैसे कि- 'शंखेन हत्वा रक्षांसि' (अथर्वसं० ४/१०/२) यहाँ शंख से सूक्ष्म राक्षसों का नाश कहा है। सन्ध्या के बाद जो कि शंख बजाया जाता है, इससे भूत-प्रेत-राक्षसादि का नाश होता है- इस सनातनधर्मियों की प्रसिद्धि को यहाँ वेद का समर्थन प्राप्त है। प्रातः शुद्ध वायु में शंख बजाने से श्वासों की शुद्धता, और छाती की विशालता, और फेफड़ों की शुद्धि होती है, जिससे भीतर निरन्तर श्वासों की शुद्धि होने से राजयक्ष्मा आदि रोग नहीं होते, ऐसा वैज्ञानिकों

का कथन है। आर्य समाज के प्रवर्तक स्वा० दयानन्द जी ने अपने यजुर्वेद भाष्य में 'अवरस्पराय शंखध्मम्' (३०/१९) 'नीचे के शत्रुओं के अर्थ शंख बजाने वाले को उत्पन्न वा प्रकट कीजिए' यह लिखकर शंख बजाने की वैदिकता सिद्ध की है। उनके अनुयायी इधर दृष्टि डालें-यहाँ शत्रु रोग कीटाणु भी विवक्षित हो सकते हैं।

'समुद्राद् अधिजज्ञिषे' (अथर्व० ४/१०/२) यहाँ शंख की समुद्र से उत्पत्ति बतलाई है। 'शंखो नो विश्वभेषजः कृशनः पातु अंहसः' (अथर्व० ४/१०/३) यहाँ शंख को सब रोगों का औषधस्वरूप, और पाप या दुःख को दूर करने वाला कहा है। 'दिवि जातः समुद्रजः सिन्धुतस्पर्याभृतः। स नो हिरण्यजःशंख आयुष्प्रतरणो मणिः' (अ० ४/१०/४) यहाँ शंख को आयु देने वाला भी माना गया है। 'तत् ते बध्नामि आयुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय' (अ० ४/१०/७) यहाँ शंख को दीर्घ-आयु, बल एवं तेज देने वाला बताया है। जब वेद शंख की इस प्रकार की महिमा बताता है तब वैदिकम्मन्य इस पर आक्षेप कैसे कर सकते हैं? बृहदारण्यक उपनिषद् में तथा अन्य श्रौतग्रन्थों में भी शंख के पर्याप्त प्रसंग हैं। शंख बजाने के साथ 'कौशिकसूत्र' में आयुवृद्धि के लिए बालक के शरीर पर अभिमन्त्रित शंख बांधने का भी विधान है। नक्षत्रकल्प (१०/२) में शंख को पापहारी रक्षोघ्न, महौषध तथा दीर्घायुःप्रद बताया गया है। उसकी महत्ता इसी से सूचित होती है कि- भगवान् विष्णु उसे नित्य धारण करते हैं।

सनातन धर्म के देवमन्दिरों में, मठों में, संस्थाओं में, भजन मण्डलियों में, साधुओं की कुटियों में, कथाओं में, पूजा में, जप-पाठों में मांगलिक-उत्सवों में, शंख का पवित्र नाद भारत के घर-घर में होता है, और होता था। कुरुक्षेत्र-युद्ध में भगवान् श्रीकृष्ण ने पाञ्चजन्य नामक शंख बजाया था, युधिष्ठिर ने अनन्त विजय, भीमसेन ने पौण्ड्र, अर्जुन ने देवदत्त, नकुल ने सुघोष, सहदेव ने मणिपुष्पक शंख बजाया। (गीता १/१५-१६)। उससे शत्रुओं के हृदय फट गये। इस प्रकार इसके बजाने में प्राचीनता भी सिद्ध हुई। इसकी श्रेष्ठता होने से ही भगवान् की आरती के समय शंख का जल भक्तों पर डाला जाता है। यूरोपीय विज्ञानवेत्ताओं ने भी शंख में मनुष्य हितकारिणी विद्युत् मानी है।

आयुर्वेद में भी शंख की अपूर्व शक्ति का वर्णन है। शंखद्रव के सेवन करने से गुल्म, ताप, तिल्ली, मूत्रकृच्छ आदि रोग दूर हो जाते हैं। शंखभस्म से पत्थरी, पीलियायन आदि रोग हट जाते हैं। इसी के योग से वैद्य लोग बहुत सी दिव्य औषधियां तैयार करते हैं, लाभ प्राप्त करते तथा कराते हैं। यदि शंख में जल या गंगाजल सिद्ध करके पिलाया जाया करे, तो कीटाणुजनित सभी रोग दूर हो जाते हैं। इसमें विशेष खर्च भी नहीं पड़ता। इसमें विविध लाभों को देखकर प्राचीनकाल में कुमारियां भी अपने बाहु में शंख की चूड़ियां पहिरती थीं, 'सांख्यदर्शन' में इसका संकेत आया है- 'बहुभिर्योगे विरोधो रागादिभिः कुमारीशं-खवत्' (४/९) इसका भाष्य यह है- 'यथा कुमारी हस्तशंखानामन्योन्यसंगेन झणत्कारो भवतीत्यर्थः'। यदि हड्डी की भांति शंख की अपवित्रता होती, तो प्राचीनकाल में इसका उपयोग कैसे होता? गीता और सांख्यदर्शनादि ने उसका संकेत कैसे किया? तब 'शंख यह हड्डीमात्र है, उसे सनातनधर्मी मुख से क्यों लगाते हैं? उसका बजाना पोपलीलामात्र है, यह कहते हुए आक्षेप्ता वैदिक-ज्ञान-शून्य तथा विज्ञान के ककहरे को भी न जानने वाले सिद्ध हुए। यह 'आलोक' पाठकों ने अनुभूत किया होगा। ❑❑❑

# श्रीमद्भागवत कथा ( श्रीरामेश्वर धाम )

❑ प्रस्तुति- आचार्य दिवाकर शर्मा एवं डा० सुरेन्द्र शर्मा 'सुशील'

दिनांक १७-१-०९ माघ कृष्ण सप्तमी शनिवार को प्रातः ८ बजे श्रीमद्भागवत कथा की शोभायात्रा श्री रामेश्वर मन्दिर रामेश्वरम् से आरम्भ हुई। यहाँ भगवान शिव का नाम 'रामनाथ स्वामि' है। मन्दिर से ही परमपूज्य जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज एक सुसज्जित रथ में विराजमान होकर चल रहे थे। उनकी श्रीचरणों में (रथ में ही) मुख्य यजमान श्री राजेन्द्र गुप्ता एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती सुशीला देवी बैठी हुई थीं। आगे आगे ढोल नगाड़ों की ध्वनि के साथ भारत के विभिन्न प्रदेशों से पधारे हुए सहस्त्रों भक्तजन कीर्तन और नृत्य करते हुए चल रहे थे। क्योंकि आज ही श्रीमद्जगद्गुरु आद्यरामानन्दाचार्य का जन्म दिवस था अतः पूज्यपाद जगद्गुरु जी ने कहा कि आज मैं स्वयं श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्य भगवान की पादुकाओं का पूजन करूँगा। पूजन करने के पश्चात् गुरुदेव ने श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्य जी महाराज की पादुकाओं को सश्रद्ध शिर पर धारण किया भक्तजनों ने श्रीमदाद्य रामानन्दाचार्य का जय जयकार किया। तदनन्तर मुख्य यजमान श्री राजेन्द्रगुप्ता एवं उनकी धर्मपत्नी ने पूज्यपाद जगद्गुरु जी का पूजन किया। श्री पं० चन्ददत्त सुवेदी ने मन्त्रोच्चार करते हुए पूजन का कार्यक्रम सम्पन्न कराया। इसके पश्चात् रामेश्वरम के प्रतिष्ठित समाजसेवी एवं कर्मनिष्ठ श्रीमुरलीधरन जी ने पूज्यपाद जगद्गुरु जी के श्रीचरणों में नमन करके सम्पूर्ण व्यवस्था के सम्बन्ध में प्रकाश डाला। जगद्गुरु जी महाराज ने श्री मुरलीधरन को आशीर्वाद दिया। मुरलीधरन जी के भाषण से पूर्व श्रीराजेन्द्र गुप्ता ने परमपूज्य गुरुदेव एवं समस्त आगत सज्जनों का स्वागत करते हुए गुरुमहिमा पर प्रकाश डाला। इसके बाद परमपूज्य जगद्गुरु जी महाराज ने अपना प्रवचन आरम्भ किया।

श्रीमद्राघवो विजयतेतराम्, श्री रामेश्वरो जयति। तथा कीर्तन आरम्भ कराया-

**हरि हरि हरि हरि सुमिरन करौ। हरि चरणारविन्द उर धरौ।**
**हरि की कथा होत है जहाँ गंगाहू चलि आवै तहाँ।**
**गंगा सिन्धु सरस्वति आवै गोदावरी विलम्ब न लावै।**
**सभी तीर्थ का वासा तहाँ। सूर हरि कथा होवे जहाँ।**

**यस्यामलं नृपसदस्सु यशोऽधुनापि,**
**गायन्त्यघघ्नमृषयो दिग्भिेन्द्रपट्टम्।**
**तं नाकपाल वसुपाल किरीटजुष्ट,**
**पादाम्बुजं रघुपतिं शरणं प्रपद्ये।**

**नमस्यामः शुकाचार्यं वासिष्ठं व्याससम्भवम्।**
**पिबामो यत्कथाम्भोजच्युतं भागवतामृतम्।।**
**शुकाचार्य के पद कमल पुनि पुनि करौ प्रणाम।**
**श्रीमद् भागवती कथा सुनसु सुजन अभिराम।**
**राधे गोविन्द गोविन्द राधे राधे राधे गोविन्द गोविन्द राधे।**
**राधे राधे गोविन्द गोविन्द राधे राधे राधे गोविन्द गोविन्द राधे।**

परम श्रद्धेय गुरुवर्य ने कथा आरम्भ करते हुए कहा कि हमारे देश में बड़े बड़े उद्योगपति हैं पर श्रीराजेन्द्र गुप्ता मन से उद्योगपति हैं। हमारा भारत एक है। काश्मीर से कन्याकुमारी तक सबकी राष्ट्रभाषा

हिन्दी है पर यहाँ के लोग अंग्रेजी बोलते हैं परन्तु हिन्दी नहीं बोलते। **हमें हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान पर गर्व करना चाहिए।** उत्तर में बदरीनाथ, दक्षिण में रामेश्वरम् पूर्व में श्रीजगन्नाथ और पश्चिम में श्री द्वारकापुरी चारों धाम भगवान के चार ज्योतिर्लिंग हैं। श्रीमद् वाल्मीकिरामायण में महर्षि वाल्मीकि जी ने भगवान श्रीराम के गुणों का वर्णन करते हुए लिखा–

**समुद्र इव गाम्भीर्ये धैयेण हिमवानिव।**

इस प्रकार समुद्र से हिमालय पर्यन्त भारत की सीमा का वर्णन किया। आज हम भगवान शंकर के चरणों में बैठकर भगवान श्रीराम और भगवान शंकर दोनों को एक दूसरे से छोटा समझते हैं। परन्तु आद्यरामानन्दाचार्य भगवान ने दोनों को जोड़ने का प्रयास किया। कुछ लोग रावण के वध को लेकर दुष्प्रचार करते हैं परन्तु सत्य यह है कि भगवान श्रीराम ने आतंकवाद के सरगने रावण का वध करके आतंकवाद का नाश किया। शरणागति का शंखनाद भी यहीं से किया गया।

**सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।**
**अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम।।**

शरणागत की रक्षा करनी चाहिए। श्रीरामेश्वर भारत के नवें ज्योतिर्लिङ्ग हैं। भगवान श्रीराम का अवतरण नवमी को हुआ। उन्हें नवधाभक्ति प्रिय है अत: नवे ज्योतिर्लिंग पर शिवलिंग की स्थापना की। भगवान श्रीराम के सेतु पर पुल बाँधकर सागर पार करने का भाव यह है कि **वैदिक धर्म के सेतु पर आस्था रखकर ही संसार सागर को पार करना ही मानव के लिए कल्याणकारी है।** गोस्वामी जी महाराज ने भी यहाँ की धरती को परमरम्य कहा है और इस भूमि की महिमा को अनुपम बताया है। भगवान श्रीराम कहते हैं–

**करिहउँ इहाँ शम्भु स्थापना।**
**मोरे हृदय परम कलपना।।**

अर्थात् मैं इस भूमि पर शिवलिंग की स्थापना करुँगा। भगवान श्रीराम ने हनुमान जी को काशी से शिवलिंग लाने को कहा। हनुमान जी को आने में विलम्ब होता देख ऋषियों ने कहा भगवन्! स्थापना का मुहूर्त हो रहा है कृपया विलम्ब न हो तब भगवान ने बालुका का शिवलिंग स्थापित किया। इसका तात्पर्य यह है कि भगवान पृथ्वी से जुड़े हैं। हनुमान जी द्वारा लाया गया शिवलिंग भी पास में ही स्थापित किया गया। गुरुदेव ने भगवान रामेश्वर का कीर्तन कराया–

**नम: शिवाय ओं नम: शिवाय, हर हर शंकर रामेश्वराय।**
**रामेश्वराय शिव रामेश्वराय, गिरिजाशंकर रामेश्वराय।**
**रामप्रियंकर रामेश्वराय गौरीशंकर रामेश्वराय।**
**रघुवर सुखकर रामेश्वराय परमेश्वराय ओं रामेश्वराय।।**

सन्त शिरोमणि गोस्वामी जी महाराज ने मानस जी में लिखा–

**लिंग थापि विधिवत करि पूजा।**
**शिव समान प्रिय मोहि न दूजा।।**
**जे रामेश्वर दर्शन करिहैं।**
**ते तनु तजि मम लोक सिधरिहैं।।**

भगवान श्रीराम ने इनका नाम रामेश्वर करते हुए कहा– रामस्य ईश्वर: रामेश्वर: अर्थात् राम के ईश्वर रामेश्वर। तुरन्त शिवलिंग से नाद निकला राम: ईश्वर: यस्य स: रामेश्वर: अर्थात् राम जिनके ईश्वर हैं वही रामेश्वर हैं। प्रभु श्रीराम कहते हैं–

**मम कृत सेतु जो दर्शन करिहैं।**
**ते बिनु श्रम भवसागर तरिहैं।।**

आज भी वह सेतु है। सरकार ने तुडवाना चाहा पर वह नहीं टूटा। इसी रामसेतु के कारण सुनामी की लहरें यहाँ तक नहीं आई और तमिलनाडु सुरक्षित रह सका। भगवान श्रीराम भारत के कण कण में बसे हैं यह हमारे देश के कर्णधारों को अच्छी तरह समझ लेना और मान लेना चाहिए। सरकार विदेश से थोरियम आयात करने की तो सोचती है जबकि रामसेतु से २१ प्रतिशत थोरियम प्राप्त हो सकता है। श्रीमद्भागवत को पुराणतिलक और वैष्णवों का धन कहा गया है–

**श्रीमद्भगवतं पुराणतिलकं यद् वैष्णवानां धनम्।**

भगवान शंकर परम वैष्णव हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में कहा भी गया है–

**वैष्णवानां यथा शम्भुः**

शिव जी जैसा तो वैष्णव ही नहीं हुआ। समुद्र मंथन से जो विष निकला उससे देवता और राक्षसों के प्राण संकट में हो गये सारा संसार विष के प्रभाव से जलने लगा तो भगवान शंकर ने ही 'राम' कहकर विष पान किया। पुष्पदन्ताचार्य ने शिवमहिम्नस्तोत्र में लिखा–

**अकाण्ड ब्रह्माण्ड क्षयचकित देवासुर कृपा**
**विधेयस्यासीद् यस्त्रिनयन विषं संहृतवतः।**
**स कल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो**
**विकारोऽपि श्लाघ्यः भुवनभयभंगव्यसनिनः।।**

इतना बड़ा वैष्णव कौन होगा। भगवान शिव वैष्णवचक्रवर्ती हैं। भक्त नरसी मेहता ने कहा–

**वैष्णव जन तो ते ने कहिए जे पीर पराई जारे रे।**
**परदुःखे उपकार करे तोय मन अभिमान न माने रे।।**

श्रीमद् भागवत पर सबसे बड़ा अधिकार शिव जी का है। क्योंकि भागवत को वैष्णवों का धन कहा गया है। गीता जी और रामायण मेरी अन्दर की आँखें हैं। मैं दृष्टिबाधित नहीं हूँ। यह तो आपको चकमा दे रहा हूँ। गीता जी और रामायण जी मेरे उड़ने के दो पंख हैं। जिसके गले में तुलसीमाला है, शालग्राम है, ऊर्ध्वपुण्ड्र है वही परमवैष्णव है। रामेश्वर जी क्षमा करें उनके दिये धन से मैं वैष्णवधर्म चर्चा करता हूँ। यह धन–

**न चौरहार्यं विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्।**

भारतीय धर्म में रूप का मूल्य नहीं है गुणों का मूल्य है–

**गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वयः।**

कामदेव सौन्दर्य का देवता है पर वही शिव जी ने तीसरे नेत्र से भस्म कर दिया।

**तब शिव तीसर नेत्र उघारा।**
**चितवत काम भयउ जरि खारा।।**

उन्हीं शिव जी ने भगवान श्रीराम को पन्द्रह नेत्रों से निहारा पर भगवान राम का एक रोम भी नहीं जला। गोस्वामी जी लिखते हैं–

**राम रूप राकेश निहारी।**
**बढी बीचि पुलकावलि भारी।।**

भगवान शिव श्रीराम के रूप को निहार कर प्रेमाश्रु बहाते रहे। भागवत उनका धन है। द्रव्य और धन में अन्तर होता है। जिसे प्राप्त कर किसी प्रकार के दूसरे धन की इच्छा न रह जाय वह धन है। भागवत में भगवत्प्रेम ही सच्चा धन है उसे पाकर किसी अन्य प्रकार के धन की इच्छा नहीं रहती–

**सच्चिदानन्दरूपाय हरये परमात्मने।**
**तापत्रयविनाशाय श्रीकृष्णाय वयं नुमः।।**

मंगलाचरण में कहे गये इस श्लोक में वयम् का अर्थ है हम सब वक्ता और श्रोता नमन करते हैं। वे भगवान श्रीकृष्ण कैसे हैं? जिनका रूप 'सत्, चित् आनन्दमय है सत् जिसका कभी नाश न हो, चित् - जिसमें अज्ञान न आये जहाँ ज्ञान ही ज्ञान हो, आनन्द- जहाँ अनुकूलता प्रतिकूलता का बोध न हो आनन्द ही आनन्द हो वे ही सच्चिदानन्द रूप श्रीकृष्ण भगवान हैं।

२१ जनवरी २००९ षट्तिला एकादशी का पावन दिवस श्रीराघव परिवार के सदस्यों के लिए इसीलिए बहुत महत्वपूर्ण था कि श्रीराघवपरिवार के संरक्षक एवं परमाराध्य गुरुदेव जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज का ६० वाँ जन्मजयन्ती महोत्सव आज ही मनाया जाना था। अपराह्नकाल में पूज्यपाद आचार्यचरणों के दीर्घायुष्य एवं यशस्वी होने की कामना से सैंकड़ों कथाश्रोताओं ने श्रीसुन्दरकाण्ड का पाठ किया। इधर पूज्यपाद जगद्गुरु जी ने समुद्र स्नान करके श्रीरामेश्वर भगवान् के मन्दिर में २२ कुण्डों में सानन्द स्नान किया। तदनन्तर श्रीरामेश्वर भगवान् का पूजन अभिषेक आदि कार्य सम्पन्न करके कथापाण्डाल में सायं ७.३० बजे जैसे ही पदार्पण किया, हजारों नर-नारियों ने आपश्री का हार्दिक स्वागत-अभिनन्दन किया। श्रीराघवपरिवार की पूज्या बुआ जी एवं पूज्यपाद जगद्गुरु जी की अग्रजा डा० कुमारी गीतादेवी मिश्रा ने इस समारोह की अध्यक्षता की। जगन्नाथपुरी से पधारे डा० विजयनारायण रामानुजदास श्रीमहन्त कटकीमठ ने पूज्यआचार्यश्री को शाल एवं भगवान् जगन्नाथ जी का भव्यचित्र समर्पित करके प्रणाम किया और अपने सम्बोधन में कहा- ''पूज्यपाद आचार्यश्री अध्यात्मजगत की ऐसी धरोहर हैं जिनकी सभी को आज्ञाएँ मानते हुए इनके संकल्पों में तन मन धन समर्पित करने चाहिए। मैनपुरी से पधारी श्रीमती प्रस्तरशिला जी की सुस्वरबद्ध कविता ने सभी को आनन्दित किया। गाजियाबाद से श्रीतुलसीपीठ सौरभ के प्रधान सम्पादक आचार्य दिवाकर शर्मा, प्रबन्ध सम्पादक श्रीललिता प्रसाद बड़थ्वाल ने पूज्यपाद गुरुदेव के दिव्यगुणों का गान किया। आकाशवाणी एवं दूरदर्शन के कलाकार, महान संगीतकार एवं आचार्य चरणों के अनन्यकृपापात्र श्रीभोपाल प्रसाद द्विवेदी (छत्तीसगढ़) ने अपनी सुपुत्री श्रीमती ज्योतिपाण्डेय के साथ दिव्यभावों से भरा गीत जब प्रस्तुत किया तो श्रोता भावुक हो उठे। श्रीतुलसी प्रज्ञाचक्षु उ० मा० विद्यालय चित्रकूट की प्राचार्या एवं प्रतिभा की प्रतिमा आदरणीया नीरुबेन श्रीवैष्णव ने भी मधुरगीत प्रस्तुत किया। श्रीरामेश्वरम् के ही सामाजिक कार्यकर्ता एवं भागवत कथा में श्रीराजेन्द्र गुप्ता जी के अनन्य सहयोगी श्रीमुरलीधरन जी ने पूज्य गुरुदेव को विशिष्ठ हार पहनाकर तथा शाल अर्पित करके प्रणाम किया। आचार्य चन्द्रदत्त सुवेदी जी ने पूज्यपाद जगद्गुरु जी की दिव्यता एवं सरलता के बोधक संस्मरण सुनाकर सभी को आनन्दित किया। अन्य जिन महानुभावों ने पूज्यपाद गुरुदेव की समर्चा में भावोद्गार व्यक्त किए उनमें प्रमुख थे- श्रीउदयवीर शर्मा शिकोहाबाद, श्रीमती शुभदा वशिष्ठ ज्वालापुर, श्रीकिशनचन्द्र शर्मा गाजियाबाद, श्रीसुशील जी अग्रवाल कीर्तनिया सहारनपुर, श्रीअनिरुद्धाचार्य जी मन्दसौर (म० प्र०)। समारोह की अध्यक्षा पूज्या बुआ जी ने आशीर्वादात्मक उद्बोधन में कहा- पूज्यपाद जगद्गुरु जी का संकल्प विकलांगों की रात-दिन सेवा करना है। आपश्री ने

निष्ठा विश्वास और प्रेम से विकलांगों की सेवा का संकल्प ले रखा है। साहित्य सेवा, सन्तसेवा, समाज सेवा का आदर्श प्रस्तुत करके आचार्यश्री ने भारतीय आचार्यों के सामर्थ्य को प्रकट किया है। पूज्यपाद जगद्‌गुरु जी के आविर्भावकाल की झाँकी का सुन्दर प्रसंग उपस्थित करते हुए जैसे ही रात्रि के १० बजकर ३४ मिनट हुए, हर्ष ध्वनि से सारा पाण्डाल गूंज उठा। तालियों की गड़गड़ाहट एवं जयघोषों के स्वर से समारोह दिव्य हो गया। सभी ने भगवान सीताराम जी से पूज्यपाद आचार्यश्री के स्वस्थ एवं प्रसन्न दीर्घापुष्य की प्रार्थना की मञ्च संचालन गुरुवर चरणानुरागी डॉ० सुरेन्द्र शर्मा 'सुशील' किया।

### सेनाचार्य जी नियुक्त

इस विशाल कार्यक्रम में मन्दसौर (म० प्र०) की श्रीसेनाचार्य जी की गद्दी पर श्रीअनिरुद्धाचार्य जी को पूज्यपाद जगद्‌गुरु जी ने नियुक्त किया। श्रीतिलक लगाकर तथा चादर पुष्प माला देकर जब पूज्य जगद्‌गुरु जी ने अनिरुद्धाचार्य जी को आशीर्वाद दिया तब सभी दर्शकों ने समर्थन की तालियाँ बजाईं। नवनियुक्त सेनाचार्य जी ने भी पूज्यपाद जगद्‌गुरु जी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए श्रीराघवपरिवार को आश्वासन दिया कि मैं सनातनधर्म की अहर्निश सेवा करुँगा और पूज्यपाद गुरुदेव की आज्ञा का सदैव पालन करुँगा। ज्ञातव्य है कि साकेतवासी अनुरागी बापू (सेनाचार्य श्रीरामकुमाराचार्य जी महाराज) के सुपुत्र हैं श्रीअनिरुद्धाचार्य जी महाराज।

### मेरी सेवा की नौकरी चलती रहे

श्रीरामेश्वरम्‌धाम में समायोजित इस श्रीमद्‌भागवत् कथा के मुख्य यजमान श्रीराजेन्द्र प्रसाद गुप्ता (दिल्ली) ने कथा विश्राम के दिन पूज्यपाद जगद्‌गुरु जी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए भावुक स्वर में कहा– भगवान ने पूज्यपाद गुरुदेव की सेवा करने की मुझे आज्ञा दी है। अर्थात् मेरी गुरुदेव के यहाँ सेवा करने की नौकरी लग गई है आप सबसे मेरी यही प्रार्थना है कि आप सब भगवान् से प्रार्थना करें कि मेरी यह नौकरी आजीवन चलती रहे। कार्य की व्यस्तता के कारण मैंने किन्हीं महानुभावों पर क्रोध भी किया है मैं उनके श्रीचरणों में हृदय से क्षमाप्रार्थी हूँ। आप यहाँ से क्रोध विरोध न ले जाएँ अपितु मेरा अनुरोध है कि यहाँ से भगवत्प्रेम का बोध करके ले जाएँ। सबके नयनों में आनन्दाश्रु थे ऐसे गुरुवर चरण कमल के मधुकर को देखकर। इस धाम में धन्य हैं भक्ति भागीरथी के भगीरथ पूज्यपाद जगद्‌गुरु जी, साधुवाद उन सभी सुधी श्रोताओं को जिन्होंने ऐसी ही दिव्यकथा आगामी पुरुषोत्तम मास में द्वारका में सम्पन्न होने का शुभसमाचार एवं आमन्त्रण प्राप्त किया। भगवान् दीर्घायुष्य प्रदान करें ऐसे हमारे गुरुभाई श्रीराजेन्द्र प्रसाद गुप्ता (दिल्ली) जी को जिन्होंने अपना तन मन धन और जीवन धन्य कर लिया भक्तों की सेवा करके, गुरुदेव की आज्ञापालन करके और भगवान् की कृपावृष्टि प्राप्त करके। इस कथा में जिनका अनन्य सहयोग रहा। उनमें प्रमुख थे– श्री नुनाराम अग्रवाल, श्रीहरीश बंसल, श्री पूरनचन्द जैन, श्री बिहारीलाल जी , श्री राजकुमार जी, श्री आचार्य चन्द्रदत्त सुवेदी जी तथा श्री मुरलीधरन जी। सभी के प्रति सभी ने पुनर्दर्शनाय नमोराघवाय कहकर अपने अपने गन्तव्य को प्रस्थान किया।

❑❑❑

# व्रतोत्सवतिथिनिर्णयपत्रक

## माघ मास शुक्ल पक्ष/सूर्य उत्तरायण शिशिर ऋतु

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | व्रत पर्व आदि विवरण |
|---|---|---|---|---|
| एकादशी/द्वादशी | शुक्रवार | मृगशिरा | 6 फरवरी | जया एकादशी व्रत (वैष्णव), द्वादशी तिथि का क्षय |
| त्रयोदशी | शनिवार | आर्द्रा/पुनर्वसु | 7 फरवरी | शनि प्रदोष व्रत |
| चतुर्दशी | रविवार | पुष्य | 8 फरवरी | — |
| पूर्णिमा | सोमवार | आश्लेषा | 9 फरवरी | सत्यनारायण व्रत सन्त रविदास जयन्ती माघी पूर्णिमा |

## फाल्गुन कृष्णपक्ष /सूर्य उत्तरायण, बसन्त ऋतु

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | व्रत पर्व आदि विवरण |
|---|---|---|---|---|
| प्रतिपदा | मंगलवार | मघा | 10 फरवरी | — |
| द्वितीया | बुधवार | पू०फा० | 11 फरवरी | — |
| तृतीया | गुरुवार | उ०फा० | 12 फरवरी | श्रीगणेश चतुर्थी व्रत संक्रान्ति सूर्य कुम्भ में |
| चतुर्थी | शुक्रवार | हस्त | 13 फरवरी | — |
| पंचमी | शनिवार | चित्रा | 14 फरवरी | — |
| षष्ठी | रविवार | स्वाति | 15 फरवरी | — |
| सप्तमी | सोमवार | विशाखा | 16 फरवरी | कालाष्टमी |
| अष्टमी | मंगलवार | अनुराधा | 17 फरवरी | — |
| नवमी | बुधवार | ज्येष्ठा | 18 फरवरी | — |
| दशमी | गुरुवार | मूल | 19 फरवरी | — |
| एकादशी | शुक्रवार | मूल | 20 फरवरी | **विजया एकादशी व्रत (सबका)** |
| द्वादशी | शनिवार | पू०षा० | 21 फरवरी | — |
| त्रयोदशी | रविवार | उ०षा० | 22 फरवरी | प्रदोष व्रत |
| चतुर्दशी | सोमवार | श्रवण | 23 फरवरी | **श्रीमहाशिवरात्रि व्रत रुद्राभिषेक** |
| अमावस्या | मंगलवार | धनिष्ठा | 24 फरवरी | पंचक प्रारम्भ 6/54 प्रातः से |
| अमावस्या | बुधवार | शतभिषा | 25 फरवरी | अमावस्या तिथि की वृद्धि |

## फाल्गुन शुक्ल पक्ष/सूर्य उत्तरायण, बसन्त ऋतु

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | व्रत पर्व आदि विवरण |
|---|---|---|---|---|
| प्रतिपदा | गुरुवार | पू०भा० | 26 फरवरी | चन्द्रदर्शनम् |
| द्वितीया | शुक्रवार | उ०भा० | 27 फरवरी | फुलैरा दूज श्रीरामकृष्णपरमहंस जयन्ती |
| तृतीया | शनिवार | रेवती | 28 फरवरी | पंचक समाप्त रात 10/24 श्रीगणेश चतुर्थी व्रत |
| चतुर्थी | शनिवार | — | 28 फरवरी | चतुर्थी तिथि का क्षय |
| पंचमी | रविवार | अश्विनी | 1 मार्च | — |
| षष्ठी | सोमवार | भरणी | 2 मार्च | — |
| सप्तमी | मंगलवार | कृतिका | 3 मार्च | — |
| अष्टमी | बुधवार | रोहिणी | 4 मार्च | दुर्गाष्टमी—होलाष्टक प्रारम्भ |
| नवमी | गुरुवार | मृगशिरा | 5 मार्च | बरसाने की होली |
| दशमी | शुक्रवार | आर्द्रा | 6 मार्च | नन्दगाँव की होली |
| एकादशी | शनिवार | पुनर्वसु | 7 मार्च | **आमलकी एकादशीव्रत (सबका)** |

卐 श्रीमद्राघवो विजयते 卐

धर्मचक्रवर्ती, महामहोपाध्याय, जीवनपर्यन्त कुलाधिपति, वाचस्पति, महाकवि
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य **स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज**
का राष्ट्रीय, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक चेतना का संवाहक

# श्रीतुलसीपीठसौरभ

**( मासिक पत्र )**

सीतारामपदाम्बुजभक्तिं भारतभविष्णु जनतैक्यम्।
वितरतु दिशिदिशि शान्तिं श्रीतुलसीपीठसौरभं भव्यम्।।

वर्ष १३ | फरवरी २००९ (४, ५ मार्च को प्रेषित) | अंक–६



**पूज्यपाद जगद्गुरु जी के सम्पर्क सूत्र :**
**श्रीतुलसीपीठ, आमोदवन,**
पो० नया गाँव श्रीचित्रकूटधाम (सतना) म०प्र०485331
✆–07670–265478, 05198- 224413

**वसिष्ठायनम् –** जगद्गुरु रामानन्दाचार्य मार्ग
रानी गली नं०–1, भूपतवाला, हरिद्वार (उत्तरांचल)
दूरभाष–01334–260323

**श्री गीता ज्ञान मन्दिर**
भक्तिनगर सर्कल, राजकोट (गुजरात)
दूरभाष–0281–2364465

**पंजीकृत सम्पादकीय कार्यालय एवं पत्र व्यवहार का पता**
आचार्य दिवाकर शर्मा,
220 के., रामनगर, गाजियाबाद–201001
दूरभाष–0120–2712786, मो०– 09971527545

# रामानन्दः स्वयं रामः प्रादुर्भूतो महीतले

## विषयानुक्रमणिका



## सुधी पाठकों से विनम्र निवेदन

१. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' का प्रत्येक अंक प्रत्येक दशा और परिस्थिति में प्रत्येक महीने की ४ तथा ५ तारीख को डाक से प्रेषित किया जाता है। पत्रिका में छपे महीने का अंक आगामी महीने में ही आपको प्राप्त होगा।
२. 'श्रीतुलसीपीठ सौरभ' मंगाने हेतु बैंक ड्राफ्ट 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' के नाम से ही बनबाएँ तथा प्रेषित लिफाफे के ऊपर हमारा नाम तथा पूरा पता स्पष्ट अक्षरों में लिखें। मनीआर्डर पर हमारा नाम-पता ही लिखें प्रधान सम्पादक अथवा प्रबन्ध सम्पादक कभी न लिखें।
३. पत्रव्यवहार करते समय अथवा ड्राफ्ट-मनीआर्डर भेजते समय अपनी वह ग्राहक संख्या अवश्य लिखें जो पत्रिका के लिफाफे के ऊपर आपके नाम से पहले लिखी है।
४. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' में **'पूज्यपाद जगद्गुरु जी'** से अभिप्राय **धर्मचक्रवर्ती श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज समझा जाए।**
५. 'श्रीतुलसीपीठ सौरभ' में प्रकाशित लेख/कविता/अथवा अन्य सामग्री के लिए लेखक/कवि अथवा प्रेषक महानुभाव ही उत्तरदायी होंगे, सम्पादक मण्डल नहीं।
६. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' प्राप्त न होने पर हमें पत्र लिखें अथवा फोन करें। हम यद्यपि दूसरी बार पुनः भेजेंगे। किन्तु अपने डाकखाने से भलीप्रकार पूछताछ करके ही हमें सूचित करें।
७. **डाक की घोर अव्यवस्था के चलते हमें दोषी न समझें। हमें और आपको इसी परिस्थिति में 'पूज्यपाद जगद्गुरु जी' का कृपा प्रसाद शिरोधार्य करना है।**
८. सुधी पाठक अपने लेख/कविता आदि स्पष्ट अक्षरों में लिखकर भेजें। यथासमय-यथासम्भव हम प्रकाशित करेंगे। अप्रकाशित लेखों को लौटाने की हमारी व्यवस्था नहीं है।

**–सम्पादकमण्डल**

### सदस्यता सहयोग राशि

| | |
|---|---|
| संरक्षक | ११,०००/– |
| आजीवन | ५,१००/– |
| पन्द्रह वर्षीय | १,०००/– |
| वार्षिक | १००/– |

श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास, चित्रकूट के स्वामित्व में मुद्रक तथा प्रकाशक डॉ० कु० गीतादेवी (प्रबन्धन्यासी) ने श्री राघव प्रिंटर्स, जी-१७ तिरुपति प्लाजा, बेगम पुल रोड, बच्चापार्क, मेरठ, फोन (का०) 4002639, मो०-9319974969, से मुद्रित कराकर कार्यालय २२० के., रामनगर, गाजियाबाद से प्रकाशित किया।

**सम्पादकीय-**

# राम जनम सुखमूल

भारतभूमि को ही यह सौभाग्य प्राप्त है कि जो परब्रह्म परमात्मा विमलात्मा, अमलात्मा, योगियों के ध्यान में नहीं आ पाते वे ही निर्गुण से सगुण, व्यापक से व्याप्य, निराकार से साकार और ब्रह्म से बालक बनकर कभी माँ कौसल्या और कभी देवकी-यशोदा के आँचल में प्रकट हो जाते हैं। वे ही परब्रह्म परमात्मा श्रीराम आज से करोड़ों वर्ष पूर्व चैत्र शुक्ला नवमी को श्रीअयोध्या जी में महाराज दशरथ के आँगन में माता कौसल्या के गर्भ से प्रकट हुए। उनके अवतरण का हेतु श्रीगीता जी में-

**परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।**
**धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।**

साधुओं की रक्षा करना, दुष्टों का विनाश करना और धर्म की स्थापना करना कहा गया है। जिसे सन्तशिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज ने श्रीमानस में इस प्रकार वर्णन किया है-

**जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी।।**
**करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं विप्र धेनु सुर धरनी।।**
**तब तब प्रभु धरि विविध शरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।।**

अधर्म की वृद्धि होने पर दुष्ट, नीच और अभिमानी लोग जब बहुत अन्याय करने लगते हैं और ब्राह्मण, गौ, देवता और पृथ्वी बहुत कष्ट पाते हैं तब प्रभु विविध शरीर धारण करके दुष्टों का विनाश कर सज्जनों की पीड़ा हरते हैं।

श्रीमद्भागवत में तो भगवान श्रीराम के अवतरण का उद्देश्य इस प्रकार कहा गया है-

**मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्य शिक्षणं**
**रक्षो वधायैव न केवलं विभो।**
**कुतोऽन्यथा स्याद् रमतः स्व आत्मनः**
**सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य।।**

विभो! आपका मनुष्यावतार केवल राक्षसों के वध के लिए नहीं है, मुख्य उद्देश्य तो मनुष्यों को शिक्षा देना है। अन्यथा अपने स्वरूप में रमण करने वाले आप जगदीश्वर को श्रीसीता जी के वियोग में इतना दुःख कैसे हो सकता था।

यह निर्विवाद सत्य है कि भगवान श्रीराम का अवतरण सबको सुख देने के लिए ही हुआ। उनकी बाल लीलाएँ जहाँ अवध के बालकों को सदाचार और भारतीय संस्कृति की रक्षा करने हेतु प्रेरित करती हैं वहीं व्यावहारिक स्तर पर माता-पिता, गुरुजनों तथा बड़ों के प्रति सम्मानभाव सिखाती हैं। सन्तशिरोमणि गोस्वामी जी महाराज ने कहा भी है-

**प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मात पिता गुरु नावहिं माथा।।**
**अनुज सखा संग भोजन करहीं। मातु पिता आज्ञा अनुसरहीं।।**
**जेहि विधि सुखी होहिं पुरलोगा। करहिं कृपानिधि सोइ संयोगा।**

श्रीराम का चरित्र आरम्भ से ही लोकमर्यादा के अनुकूल है। बड़े होने पर जब महाराज दशरथ उन्हें युवराज बनाना चाहते हैं श्रीराम का यह कथन कितना लोकमर्यादा से पूर्ण है–

**बिमल वंश यह अनुचित एकू।**
**बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू।।**

इतना ही नहीं बनवास को जाते समय उनका धैर्य, लक्ष्मण–सीता जी को समझाना, बनवासियों को दर्शन देना, राक्षस विनाश आदि सभी अवसरों पर भगवान श्रीराम का स्वरूप मर्यादा से पूर्ण है। इसी कारण उन्हें मर्यादापुरुषोत्तम कहा गया है। हिन्दू संस्कृति की पूर्ण प्रतिष्ठा उनके चरित्र में अभिव्यक्त हुई है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, प्रत्येक परिस्थिति में उनके जीवन से प्रेरणा लेकर मानव समाज का कल्याण कर सकता है। चाहे पुत्र के नाते, भाई के नाते, पति के नाते, स्वामी के नाते और राजा के नाते सभी सम्बन्धों का श्रीराम ने मर्यादापूर्वक निर्वाह किया और भारतीय समाज के समक्ष ऐसा आदर्श उपस्थित किया जो युगों युगों तक भारतीय ही नहीं विश्व के जनमानस को प्रेरणा देता रहेगा।

श्रीराम का आदर्श आज के सन्दर्भ में और भी अधिक प्रासंगिक है। आज भारत का युवक पश्चिम की चकाचौंध में दिग्भ्रमित होकर सारे सामाजिक मूल्यों को नष्ट करने पर तुला है। भाई भाई को, पुत्र पिता को, राजा प्रजा को उचित महत्त्व नहीं देता। शासक येन केन प्रकारेण कुर्सी सुरक्षित रखने में तथा ऐश्वर्य के साधन जुटाने में संलग्न हैं तो समाज का प्रत्येक वर्ग कदाचार एवं भ्रष्टाचार में लिप्त है। भगवान श्रीराम से प्रार्थना है कि वे पुनः अवतार लेकर भारतभूमि को पाप से बचाएँ और इस देश को पुनः प्राचीन सम्मान प्राप्त करायें। नमो राघवाय।

**आचार्य दिवाकर शर्मा**
प्रधान सम्पदक

# वाल्मीकिरामायण सुधा ( ४६ )

(गतांक से आगे)

❑ धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

रावण ने सीता जी का बलात् अपहरण करना चाहा तो सीता जी ने क्रुद्ध होकर कहा–

**यदन्तरं सिंहसृगालयोर्वने**
**यदन्तरं स्यन्दनिका समुद्रयोः।**
**सौराग्र्य सौवीरकयोर्यदन्तरं**
**तदन्तरं दाशरथेस्तवैव च।।**

बन में रहने वाले सिंह और सियार में, समुद्र और छोटी नदी में तथा अमृत और काँजी में जो अन्तर है वही अन्तर श्रीराम और तुझमें है। रामजी सिंह हैं तू सियार है, राम जी समुद्र हैं तू गन्दी नाली है, राम जी अमृत हैं तू खट्टी छाछ है। तब रावण–

**अंकेनादाय वैदेहीं रथमारोपयत्तदा।**

माया की सीता को (छाया को) पकड़कर ले चला। सीताजी सबके प्रति 'रक्षा करो, रक्षा करो' कह रही हैं। कोई भी रक्षा करने को तैयार नहीं है। जटायु ने सुना–

**गीधराज सुनि आरत बानी।**
**रघुकुल तिलक नारि पहिचानी।।**

और कहा– अरे रावण! खड़ा रह। सीता जी मेरी बहूरानी हैं, मैं चक्रवर्ती सम्राट् दशरथ का मित्र हूँ, मैं अयोध्या का हूँ। एक बात बताऊँ कि सीता हरण एक ऐसी घटना है कि पूरा का पूरा दक्षिणापथ राम जी के पक्ष में हो गया। वानर और भालुओं ने भी इस घटना की निन्दा की और सक्रिय भाग लिया। ऐसा क्यों हुआ? **सत्य यह है कि सीता जी भारतीय संस्कृति हैं और रावण के द्वारा हरण का अर्थ है- भारतीय संस्कृति पर विदेशी संस्कृति का वर्चस्व हो जाना। इसको कोई भी सहृदय भारतीय नहीं सह सका। पशु भी इस घटना के विरोध में संघर्ष करने के लिए इकट्ठे हो गये।** यदि सीता जी राम जी की मात्र व्यक्तिगत पत्नी रहीं होतीं तो कदाचित् इतनी बड़ी सहायता उन्हें किसी से नहीं मिलती। भीष्म और जटायु दोनों का अन्तर देखिये। आचार्य भी जब अनुचित करेगा तो उसे दण्ड मिलना ही चाहिए। ऐसी कौन सी घटना घट गई कि भीष्म के प्रति भगवान इतने दुःखी हुए कि युधिष्ठिर से कहा कि चलकर पूछो कि आचार्य भीष्म जी आप कब मरेंगे? आपको तो शीघ्र मर जाना चाहिए। इसका अर्थ है कि भगवान श्रीकृष्ण को भीष्म का व्यवहार अच्छा नहीं लगा होगा। दोनों घटनाएँ एक जैसी हैं, एक ओर मैथिली का हरण हो रहा है और दूसरी एक नारी (द्रौपदी) का वस्त्रापहरण हो रहा है। यहाँ पति (श्रीराम) नहीं हैं वहाँ पति (पाण्डव) बैठे हैं अतः वहाँ की घटना और भी अधिक करुण है। भीष्म आदि के प्रति द्रौपदी चिल्ला रही है। किन्तु वे सिर नीचा करने बैठे हैं। अवस्था से कोई वृद्ध नहीं होता व्यवस्था से वृद्ध होता है। अन्याय को सहते रहना ही बुढ़ापा है और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करके यावज्जीवन कुचलते रहना ही युवावस्था है। भीष्म अन्याय देखते रहे। उधर जटायु ने आक्रमण किया, घनघोर युद्ध किया। रावण की दायीं ओर की दसों भुजाएँ उखाड़कर फैंक दीं। फिर गम्भीर युद्ध हुआ अन्त में रावण ने तलवार निकाली और जटायु के दोनों पंख, पैर और पार्श्वभाग काट डाले। तब–

**स च्छिन्नपक्षः सहसा रक्षसा रौद्रकर्मणा।**
**निपपात महाग्रध्रो धरण्यामल्पजीवितः।।**

रावण के द्वारा पंख काट देने पर महागृध्र जटायु पृथ्वी पर गिर पड़े। गोस्वामिपाद लिखते हैं–

**काटेसि पंख परा खग धरनी।**
**सुमिरि राम करि अद्भुत करनी।।**

जटायु ने अपने प्राणों की आहुति दे दी भीष्म नहीं दे पाये। भीष्म समर्थ थे। एक बार जोर से कह देते तो दुर्योधन इतना बड़ा कुकर्म करता क्या? शक्ति के रहने पर भी अन्याय का विरोध नहीं किया भीष्म ने, इतिहास भीष्म को क्षमा नहीं करेगा। भगवान ने भी उनको क्षमा नहीं किया। दोनों के अन्तर पर विचार कीजिए। लक्ष्मण जी के प्रति सीता जी कृतज्ञ हैं। वे लक्ष्मण को बार–बार पुकार रहीं हैं। कपट मृग के अवसर पर लक्ष्मण ने जब जाने को मना किया था तब सीता जी ने कहा था–

**नैव चित्रं सपत्नेषु पापं लक्ष्मण यद्भवेत्।**
**त्वद्विधेषु नृशंसेषु नित्यं प्रच्छन्नचारिषु।।**

जब लक्ष्मण ने कहा था माँ! मेरे चले जाने से अनर्थ होगा तब सीता जी ने कहा था होने दो। कोई आश्चर्य नहीं है राक्षस जैसे शत्रु जो छिपकर काम करते हैं उनके सम्बन्ध में यह पाप हो कोई आश्चर्य नहीं। वे घनघोर कार्य करेंगे, घृणित कर्म करेंगे पर उसका हमें उत्तर देना चाहिए। सीता जी ने थोड़ा कटु कहा था अतः पश्चात्ताप कर रही हैं। माया का नाटक है। इधर भगवान दोनों स्थानों पर हैं जटायु के पास भी और भीष्म के पास भी। शय्या पर हैं भीष्म बाणों की शय्या पर और जटायु भगवान श्रीराम की गोद की शय्या पर।

**राघव गीध गोद करि लीन्हों।**
**नयन सरोज सनेह सलिलशुचि**
**मनहुँ अरघ जल दीन्हों। राघव गीध.....**

भगवान भीष्म के यहाँ रथ से आ रहे हैं जटायु के यहाँ पैदल आ रहे हैं। भीष्म को स्पर्श नहीं कर रहे हैं और जटायु को स्पर्श कर रहे हैं जैसे पिता को बेटा स्पर्श करता है–

**कर सरोज सिर पर सेउ कृपासिन्धु रघुवीर।**
**निरखि राम छवि धाम मुख बिगत भई सब पीर।।**

भगवान भीष्म से पूजा ले रहे हैं और जटायु की पूजा कर रहे हैं। भीष्म पृथ्वी पर पड़े हैं और जटायु भगवान की गोद में पड़े हैं। भगवान राम जटायु की धूलि को अपनी जटाओं से झाड़ते हैं–

**जटायु की धूर जटानि सों झारी।**

भगवान श्रीराम आज जटायु को गोद में लिए हुए हैं और लक्ष्मण जी से कहते हैं सीताहरण का आज तुझे उतना दुःख नहीं है जितना हमारे लिए प्राणत्याग करने वाले जटायु की मृत्यु से हो रहा है।

**राजा दशरथः श्रीमान् तथा मम महायशाः।**
**पूजनीयश्च मान्यश्च तथायं पतगेश्वरः।।**

जिस प्रकार मेरे पिताजी राजा दशरथ मेरे लिए मान्य थे उसी प्रकार जटायु मेरे पूजनीय भी हैं मान्य भी हैं। अपने बाप को आज कोई श्राद्ध ही नहीं करता हैं भगवान जटायु का श्राद्ध करते हैं। जटायु मुस्कुराने लगे। राघव जी के पूछने पर जटायु ने कहा– मैं अपने भाग्य को देखकर मुस्कुरा रहा हूँ। क्या भाग्य है? जटायु ने कहा– ब्रह्मा जी से मेरे पिताजी ने मेरा नाम रखवाया तो ब्रह्मा जी ने कहा इनका नाम जटायु होगा। मैंने सोचा ऐसा नाम कैसे रख दिया। पर आज जब आप मेरी धूल को अपनी जटाओं से झाड़ रहे हैं तो मुझे जटायु शब्द का अर्थ समझ में आ गया। जटा+आयुः जटायां आयुः यस्य सः जटायुः। अर्थात् राम जी की जटाओं में जिसकी आयु छिपी हुई है वह है जटायु। इतिहास चकित हो गया; प्रभु आप कितने

प्यारे हैं। श्री भगवान राम से पूछा पिता जी! आपकी बहू सीताजी कहाँ गई? तब जटायु ने कहा–

**यामोषधीमिवायुष्मन्नन्वेषसि महावने।**
**सा देवी मम च प्राणा रावणेनोभयं हृतम्।।**

हे आयुष्मन्! आपकी आयु तो रहेगी पर मैं अब जा रहा हूँ। मेरी आयु भी आपको मिल जाय।

**राजन के राज महाराज महाराजन के**
**उमर दराजे महाराज तेरी चाहिए।**

हे राघव! जिसको औषधि की भाँति आप खोज रहे हैं। उन बहूरानी सीता जी को और मेरे प्राणों को दोनों को रावण चुरा ले गया है। श्रीराम को विलाप करते हुए देखकर धर्मात्मा जटायु ने कहा–

**सा हृता राक्षसेन्द्रेण रावणेन दुरात्मना।**
**मायामास्थाय विपुलां वातदुर्दिनसंकुलाम्।।**

हे रघुनन्दन! दुरात्मा रावण ने विपुल माया का आश्रय लेकर आँधी वर्षा की सृष्टि करके बहूरानी सीता का हरण किया था किसी को भी दिखाई नहीं पड़ा। मैंने देखा, लड़ाई की, मेरे पंख कटे मैं बहूरानी को बचा नहीं पाया। इसीलिए पृथ्वी पर मैं उलटा नहीं गिरा। क्योंकि पृथ्वी मेरी समधिन है, मैं उनसे क्षमा माँग रहा हूँ कि आप मुझे क्षमा करें मैं आपकी बेटी की रक्षा न कर सका। राघव! कैसी विडम्बना है कि दशरथ जी और मैं दोनों ही आपका राज्याभिषेक न देख सके। दशरथ जी पुत्र के वियोग में प्राण दे गये और मैं आज पुत्रवधू के वियोग में प्राण त्याग रहा हूँ। राघव! दशरथ जी के तो और भी बेटे हैं। पर मैंने तुमको अकेले को दत्तक के रूप में लिया था मेरा श्राद्ध अवश्य करना। राघव ने कहा– तात! मैं आपका श्राद्ध अवश्य करूँगा। राघव १३ दिन यहाँ रुक जाना। तेरहवीं के श्राद्ध में तो ब्रह्म भोजन करना। ब्राह्मणों को फल खिला देना वार्षिक श्राद्ध के समय ही रावण का वध करना। रावण की भुजाओं के माँस से मेरे वर्ग को भोजन करा देना। यही मेरी वास्तविक श्रद्धांजलि होगी। जिन भुजाओं से दुष्ट रावण ने मेरी बहू को घसीटा है उन भुजाओं को काट काट कर मेरे वर्ग के पक्षियों को खिला देना।

**या गतिर्यज्ञशीलानां आहिताग्नेश्च या गतिः।**
**अपरावर्तिनां या वै या च भूमिप्रदायिनाम्।।**
**मयात्वं समनुज्ञातो गच्छ लोकाननूत्तमान्।**
**गृध्रराज महासत्व संस्कृतश्च मया व्रज।।**

पिता जी! आज आपको मैं चार मुक्तियाँ दूँगा। यज्ञशीलों को जो गति मिलती है नित्य अग्निहोत्र करने वालों को जो गति मिलती है, युद्ध में मरने वालों को जो गति मिलती है, भूमिदान करने वालों को जो गति मिलती है एक साथ चारों गतियाँ (सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य) आपको दे रहा हूँ। किसी को चारों गतियाँ एक साथ नहीं मिलीं। सालोक्य दे रहा हूँ मेरे लोक को चलिये, सामीप्य दे रहा हूँ मेरे पास रहा करिये, सारूप्य दे रहा हूँ वैष्णव रूप शंकचक्र गदा पद्म रूप ले लीजिए, सायुज्य अपना हाथ मैंने आपके शरीर पर रख दिया है आप मुझसे चिपक गये। भक्ति भुक्ति और मुक्ति भी आपको मिली। जटायु गद्गद हो गये और राघव से चलने का निवेदन किया। जब राजा बनो तब मेरा श्राद्ध अवश्य करना। राघव ने कहा मैं नहीं भूलूँगा पिताजी।

**संग्रही सनेह बस अधम असाधु को**
**गीध सबरी को कैहो करिहैं सराध को।**

भगवान आनन्दकन्द प्रभु आगे चल रहे हैं। आगे अयोमुखी नाम की राक्षसी ने लक्ष्मण से चिपकना चाहा। अयोमुखी के लक्ष्मण जी ने नाक कान काटे। कबन्ध नामक राक्षस ने भगवान को भुजाओं में घेर लिया तब लक्ष्मण जी ने कहा कि मेरा तो मन है सरकार–

**मयैकेन तु निर्युक्तः परिमुच्यस्व राघव।**
**मां हि भूतबलिं दत्त्वा पलायस्व यथासुखम्।।**

इस भूत को मेरी बलि देकर आप यहाँ से चले जाइये। श्रीराम बोले– नहीं लक्ष्मण! मैं अभी इसकी भुजाएँ काट देता हूँ। दोनों ने कबन्ध राक्षस की भुजाएँ काट दीं। कदम्ब ने कहा– सरकार! मैं दम नाम का राक्षस था। इन्द्र ने मेरी जाँघ, मस्तक और मुख सभी वज्र से तोड़ दिये तब मैंने उनसे प्रार्थना की कि अब मैं आहार कैसे ग्रहण करूँगा। प्रार्थना करने पर इन्द्र ने मेरी भुजाएँ एक योजन लम्बी कर दीं और तत्काल ही मेरे पेट में तीखी दाड़ों वाला एक मुख बना दिया। इन्द्र ने मुझे यह भी बतला दिया था कि जब लक्ष्मण सहित श्रीराम तुम्हारी भुजाएँ काट देंगे उस समय तुम्हारी मुक्ति हो जाएगी और तुम स्वर्ग में आ जाओगे। कबन्ध ने कहा अब आप मुझे जला दीजिए। श्रीराम लक्ष्मण जी ने उसे जलाया। तब कबन्ध बोला आपने पिता (जटायु) का श्राद्ध तो कर दिया पर एक मैया भी आपके पास है जिनका नाम शबरी माता है। भक्ति के गीत गाने चाहिए। शेरो शायरी और कव्वाली को कथा में गाना पाप है। सनातन धर्म भगवान का धर्म है–

**धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।**

सरोवर के तट पर बैठी शबरी राम जी का नाम रट रही है। शबरी परमभागवत है। उनके विवाह के समय भूतबलि देने के लिए बहुत से पशु इकट्ठे किये गये हैं। शबरी को लगा कि ऐसे विवाह से मुझे क्या लेना देना अतः रात में ही घर छोड़ दिया। भागकर आईं मतंग जी के आश्रम में रहने लगीं। चुपके चुपके मतंग जी की बड़ी सेवा की । झाड़ू लगा देना, चटाई बिछा देना यह सब छिपकर कर देती थीं। सन्तों ने कहा हमारे भजन को कौन चुरा रहा है। जब हम किसी से सेवा लेते है तो हमारा भजन समाप्त हो जाता है। समर्थ शरीर हो तो सेवा लेनी नहीं चाहिए। एक दिन सन्तों ने शबरी को पकड़ लिया मतंग ऋषि के सामने लाए काँप रही थीं। पूछा– क्या नाम है तुम्हारा– श्रमणा। ऋषिगण प्रसन्न हुए और आशीर्वाद दिया कि किसी न किसी दिन राघव तुम्हारे पास आयेंगे। तभी सहसा श्रीराम लक्ष्मण शबरी के आश्रम में पधारे। शबरी बोली–

**अद्य मे सफलं तप्तं स्वर्गश्चैव भविष्यति।**
**त्वपि देववरे पूज्ये पूजिते पुरुषोत्तमे।**

आज मेरी तपस्या सफल हुई आपका सत्कार करके मुझे निश्चय ही आपके दिव्यधाम की प्राप्ति होगी। शबरी ने पूछा– कुछ खाओगे राघव? शबरी खिला रही है भगवान पा रहे हैं। रामरसायनकार कहते हैं:

**बेर बेर बेर सराहैं बेर बेर बहु**
**रसिकबिहारी बेर बेर कहैं टेरि कै।**
**हेरि हेरि चाखि चाखि भाखि यह वाहू ते**
**महान मीठो लेहु क्यों न बखानत दै फेरि फेरि**
**बेर बेर सबरी को देवै को बेर बेर**
**पुनि रघुवीर बेर बेर कहैं टेरि टेरि**
**बेर जनि लाओ बेर लाओ बेर लाओ बेगि**
**बेर जनि लाओ बेर लाओ कहैं बेर बेर।**

धन्य कर दिया शबरी जी ने। शबरी जी भगवान के सामने लीन हो रही हैं। सन्त ने दोहा गाया–

**ब्याह न कीन्हों सपनेहु पति दर्शन नहिं कीन्ह।**
**शबरी पुत्रवती भई प्रभु गोदी भरि दीन्ह।।**

शबरी ने विवाह नहीं किया, स्वप्न में भी पतिदर्शन नहीं किया परन्तु भगवान ने शबरी को पुत्रवती बना दिया।

क्रमशः........

# श्रीमद्भगवद्गीता ( ७७ )

( गतांक से आगे )

**( विशिष्टाद्वैतपरक श्रीराघवकृपाभाष्य )**

**भाष्यकार–धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज**

**व्याख्या-** श्री भगवान् अर्थात् षड़ैश्वर्य सम्पन्न भगवान बोले, भगवान शब्द की मैंने पहले व्याख्या कर दी है। 'रजोगुण समुद्भवः' शब्द में द्वन्द्वगर्भमध्यम पदलोपी बहुब्रीही है। अर्थात् रजोगुण और तमोगुण हैं उत्पत्ति स्थान जिसके ऐसा यह काम ही किसी कारण से व्याहत होने पर यह क्रोध हो जाता है। दोनों ही अति निकट हैं इसीलिए दोनों के प्रति एष शब्द का प्रयोग करते हैं। जब यह शुद्ध काम रहता है तब यह महाशन अर्थात् बहुत भोजन वाला हो जाता है, कभी भोगों से विरत ही नहीं होता, जैसा कि मनु कहते हैं, कामनाओं के उपभोग से कभी काम शांत नहीं होता, वह तो घी की धारा से अग्नि की भाँति अधिकाधिक बढ़ता ही जाता है। अथवा महापुरुष भी जिसका भोजन बन जाते हैं, उसे महाशन कहते हैं। इसीलिये भर्तृहरि ने चुनौती भरे शब्द में कहा, कुछलोग मतवाले गजेन्द्र के गण्डस्थल को विदीर्ण करने में वीर होते हैं और कुछ लोग उन मृगेन्द्रों का बध करने में भी कुशल हो जाते हैं, किन्तु मैं उन बलशालियों के समक्ष घोषणा करके कहता हूँ कि कन्दर्प। अर्थात् काम के दर्प के दलन में बहुत कम लोग समर्थ हो पाते हैं।

फिर यही काम जब क्रोध संज्ञा को प्राप्त करता है तब यह महापाप्मा हो जाता है, पाप्मा शब्द पाप का पर्याय है। जिसमें बहुत पाप हो, अथवा जिससे बहुत पाप हो, अथवा जो स्वयं बहुत पापी हो, वही महापाप्मा है इस सम्बन्ध में इसी को शत्रु जानो। यहाँ वामनाचार्य के भी विचार द्रष्टव्य हैं।–

**महाशनो महापाप्मेत्युभयं लक्षितं क्रमात्।**
**सर्वभक्ष्योऽप्यसन्तुष्टः कामः क्रोधश्च पातकी।।**

आचार्य वामन कहते हैं कि काम को भगवान श्री कृष्ण ने महाशन और क्रोध को महापापी कहा क्योंकि काम व्यक्ति का सब कुछ खाकर असन्तुष्ट बना रहता है, और क्रोध भयङ्कर से भयङ्कर पाप करा देता है।

**क्रोधोऽपि काम एव स्याद् भेदेऽप्याह्वानरूपयोः।**
**किन्तु क्रोधस्तमोरूपो ज्ञेयः काम रजोगुणः।।**

आह्वान और स्वरूप में भेद होने पर भी क्रोध काम ही है, परंतु क्रोध का स्वरूप तमोगुण है, और काम का स्वरूप रजोगुण।

**अत्रैवं सति कृष्णेन क्रोधोऽपि रजसो यदा।**
**वक्ष्यते सूक्ष्मबुद्धीनां तदा सन्देह उद्भवेत् ।।**

ऐसी परिस्थिति में भी यदि भगवान श्रीकृष्ण क्रोध भी काम ही है ऐसा कहेंगे, तब तो सूक्ष्मबुद्धिवाले लोगों के मन में भी सन्देह हो जायेगा।

**तत्रावधेयं कुशलै किमेतत् कामोनु तन्निर्मलमाविलं च।**
**प्रसन्नमप्येति कमाविलत्वं चलाचलं पंकिलपल्लवस्थम्।।**

इस प्रसंग पर कुशल बुद्धिवालों को विचार करना चाहिये, वस्तुत यह एक ही काम उसी प्रकार दो स्वरूपों में दिखाई पड़ता है जैसे एक ही जल गड्ढे और शुद्ध तालाब में दो प्रकार का दिखाई पड़ता है

अर्थात् गड्ढे में मटमैला और तालाब में स्वच्छ गड्ढे में चंचल और तालाब में शान्त। उसी प्रकार यह काम भी रजोगुण के साथ काम, और यही तमोगुण के साथ क्रोध बन जाता है।

**वारो यथाधार इहास्ति पंकस्तथैव वेद्यो रजसस्तमोऽपि।**
**क्षुब्धे रजस्याशु ततो नितान्तं क्रोधभ्रमं तत्र तमस्तनोति।।**

अर्थात् जिस प्रकार जल कीचड़ से मिलता है उसे मटमैला कहते हैं, उसी प्रकार जब रजोगुण का तमोगुण आधार बन जाता है, तभी काम क्रोध की संज्ञा प्राप्त कर लेता है। तमोगुण के कारण जब रजोगुण अत्यन्त क्षुब्ध हो जाता है, तब तमोगुण क्रोध और भ्रम को उत्पन्न करता है। यहाँ मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि काम और क्रोध इन दोनों की उत्पत्ति में रज और तम ये दोनों कारण होते हैं। परन्तु जहाँ रजोगुण को दबाकर तमोगुण प्रबल पड़ता है वहाँ क्रोध उत्पन्न होता है।

**अविद्यमाने सलिले तु शुष्यन् निषद्वरः प्राच्छंति मृत्तिकात्वम्।**
**स्वान्ते तथैवासति कामलेशे न कोपशंकापि पदं करोति।।**

अर्थात् जैसे गड्ढे में जल न रहने पर कीचड़ सूखकर मिट्टी हो जाता है, उसी प्रकार अन्तःकरण में काम के न रहने पर क्रोध की आशङ्का भी नहीं आ पाती।

**यावदस्ति जलं तावन्निर्मलं चाविलं तथा।**
**भासते किन्तु समलमपि कीलालमेव तत्।।**

जब तक जल है तब तक वही विमल और समल दीखता है मल के न रहने पर वही विमल, और मल से युक्त होने पर समल, पर है जल ही, ठीक उसी प्रकार जब इच्छा के साथ रजोगुण होता है तब काम और जब उसमें तमोगुण आता है तब वही क्रोध होता है, पर अन्ततोगत्वा है काम ही।

**भेदावुभौ जलस्यैव यथाच्छकलुषाभिधौ।**
**कामक्रोधौ तथा भेदौ रजसः परिकीर्तितौ।।**

जिस प्रकार जल के ही निर्मल और मटमैला ये दोनो भेद हैं, उसी प्रकार रजोगुण के ही काम और क्रोध दो भेद कहे गये हैं।

**जम्बालेनाविलमिव जलमेवोच्यते पयः।**
**तमो युक्तस्तथा काम रज एवेति गीयते।।**

जिस प्रकार जम्बल अर्थात् सेवाल से युक्त जल को जल ही कहते हैं, उसी प्रकार तमोगुण से युक्त क्रोधसंज्ञक काम को रज ही कहते हैं।

**काम एव कथं क्रोध इति चिन्तयतां हृदि।**
**बोधं गूढतमं कञ्चित् स्फोरयति माधवः।।**

काम ही कैसे क्रोध है इस प्रकार का चिन्तन करने वालों के मन में भगवान श्री कृष्ण कोई गोपनीयतम रहस्य स्फुरित कर रहे हैं।

**तमोऽत्र विषयाः ज्ञेयाः हृषीकाणि रजोगुणः।**
**तद्वासनामयः कामो विषयाधारतो भवेत्।।**

यहाँ विषय ही तमोगुण हैं और इन्द्रियाँ रजोगुण, इस प्रकार विषय के आधार से उसी की वासना के कारण काम उत्पन्न होता है अर्थात् उत्पत्ति में विषय सहायक बनता है, पद–आधार इन्द्रियाँ ही होती हैं, जो राजस हैं।

**भूमौ यद्वत्स्थिवति जले यात्यसौ पंकभावम्।**
**कालुष्यं द्राग् भजति च तदाधारमेवाभ्रपुष्टम्।।**
**पात्रेऽन्यस्मिन्निहितमिह तन्नाविलत्वं जिहीते।**
**तद् व्युद्युक्तः स हरिभजने क्रोधतां नैतिकामः।।**

जैसे जब जल पृथिवी पर स्थित रहता है तो जल के सम्पर्क से वही पृथ्वी का अंश कीचड़ बन जाता है, फिर वही गड्ढे में पड़ा हुआ आकाश के सम्पर्क से मलिन दिखाई पड़ता है। किन्तु उसी को

यदि शुद्ध करके दूसरे स्वच्छ पात्र में रख दिया जाय तो वह मलिन नहीं रह जाता, उसी प्रकार से यदि इसी काम को भगवान के भजन से जोड़ दिया जाये तब क्रोध नहीं बन सकता।

**हरिभक्तिकुठारोऽसौ छिनत्ति भवकाननम्।**
**तदुद्भवं कामकाष्ठं किन्तु तत्र नियोजयेत्।।**

भगवान की भक्ति का कुल्हाड़ा संसाररूप वन को काट डालता है। किन्तु भक्ति के कारणरूप काम को उसमें काष्ठदण्ड की भाँति भक्ति में जोड़ देना चाहिये।

**कामो निर्विषयस्तत्र नितान्तं रजसो लयः।**
**उदये शुद्धसत्वस्य भक्तिरित्यभिधीयते।।**

वहाँ काम विषय शून्य हो जाता है, और रजोगुण का नितान्तलय हो जाता है। इस प्रकार शुद्ध सत्वगुण का उदय होने पर वही काम भक्ति बन जाता है।

**यः कामो विषयाश्रितस्तु बलवान् स ज्ञानमार्गे रिपुः।**
**प्रारब्धं हि बलेन तस्य विषयेष्वासञ्जयत्यञ्जसा।।**
**वैराग्यप्रवणानपि क्षणमतोऽनिच्छन्त एते क्वचित्।**
**पापं चापि चरीकरीति भगवांस्तयानिन्दया।।**

जो काम विषयों का आश्रय करता है, वही ज्ञानमार्ग में बलवान शत्रु बन जाता है, और वह प्रारब्धवशात् ज्ञानी के मन को उसी के विषयों में लगा देता है। वैराग्य में लगे हुए ज्ञानी जनों को भी यह एक क्षण में डिगा देता है, इसीलिये वे इच्छा न करके भी पाप कर बैठते हैं, भगवान ने इसीलिये उसकी निन्दा की।

इस प्रकार आचार्य वामन की गवेषणा और अपने चिन्तन के आधार पर मैं यह कह सकता हूँ कि भगवान यहाँ यही कहना चाहते हैं कि समस्त पापों का बाप है काम, और उसका भी बाप है रजोगुण, अतः निष्काम कर्मयोगरूप भगवदाराधना से रजोगुण के समाप्त होने पर काम स्वयं समाप्त हो जायेगा, और फिर कोई पाप ही नहीं हो सकेगा।।श्री।।

**संगति–** काम ज्ञान का कैसे बैरी है? इस पर भगवान काम के आवरण का प्रकार कहते हैं।

**धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च।**
**यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम्।।**३।३८

**रा० कृ० भा० सामान्यार्थ–** हे अर्जुन! जिस प्रकार धूम के द्वारा अग्नि ढक लिया जाता है और जिस प्रकार दर्पण मल के द्वारा आवृत रहता है उसी प्रकार यह ज्ञान इस इच्छा नामक काम के द्वारा यह ज्ञान ढक जाता है।

**व्याख्या–** यथा आदर्श यह पदच्छेद है। आव्रियते शब्द आवृत होकर आदर्श शब्द के साथ भी अन्वित होगा। यहाँ क्रम से तीन उपमान युगल का प्रयोग हुआ है। धूम अग्नि, दर्पण मल, उल्ब और गर्भ। ठीक इसी प्रकार तीनों स्थलों पर काम और ज्ञान उपमेय है। ज्ञान तीन प्रकार का है, परमात्मा विषयक, जीवात्म नित्यत्व विषयक और संसारनित्यत्व विषयक। इसी प्रकार काम की भी तीन अवस्थायें हैं। इन्द्रियाश्रय, मानसआश्रय, और बुद्धिआश्रय। इन्द्रियाश्रय काम धूम के समान प्रकट होकर अग्निवत प्रकाशमान परमात्म विषयक ज्ञान को ढक लेता है। और मानस आश्रय काम मल के जैसे उत्पन्न होकर दर्पण के समान प्रतिबिम्बावभासक जीवात्मा के नित्य ज्ञान को ढक लेता है। और बुद्धिआश्रय काम जरायु की भाँति सूक्ष्म होता है और यह गर्भ के समान चेतनावान परन्तु अस्पष्ट संसार के अनित्यत्व ज्ञान को ढक लेता है। यह मेरी नवीन उद्भावना है।

क्रमशः........

(गतांक से आगे)

# सकल अमानुष करम तुम्हारे

❑ **धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज**

यह अंधकार है। और अंधकार को चन्द्रमा नहीं मिटा सकते, सूर्य ही मिटाएँगे। और सूर्यकुल के सूर्य राम जी विराज रहे हैं। जब तक रामचन्द्र जी चन्द्रमा रहेंगे तब तक उनसे भी नहीं टूटेगा। क्योंकि– 'राकापति षोडश उअहिं, तारागन समुदाइ। सकल गिरिन उव लाइय, बिनु रवि राति न जाई।।' अभी रामचन्द्र जी भी राकेश हैं 'राजसमाज बिराजत रूरे। उडुगन महँ जनु जुग बिधु पूरे।।' ये रामचन्द्र जी चन्द्रमा हैं, राजागण नक्षत्र हैं, शहर हैं। भगवान ने कहा– कोई बात नहीं, जब तक मैं चन्द्रमा रहूँ, इनको रहने दो, आनन्द लेने दो। ये उठाना चाहते हैं। तारागणों से कहीं अन्धकार मिटता है?– 'तमकि धरहिं धनु मूढ़ नृप, उठइ न चलहिं लजाइ।' और वास्तव में तारागण तब होते हैं जब चन्द्रमा का भी प्रकाश धूमिल पड़ जाता है। भगवान थोड़ा पीछे पड़ गए। सब तारागण इकट्ठे हो गए। और गरुअ होता जा रहा है। 'मनहुँ पाइ भट बाहुबल, अधिक अधिक गरुआइ।।' तब गोस्वामी जी ने बहुत सुंदर बात कही– नहीं उठेगा। बोले– 'भूप सहस दस एकहिं बारा। लगे उठावन टरइ न टारा।।' तब ९० हजार राजाओं ने सोचा। ऐसा करो, चलो पहले धनुष को तोड़ तो लें। फिर विवाह के लिए लड़ेंगे, जो जीतेगा वह विवाह कर लेगा। ९० हजार राजा उठा रहे हैं, ऐसा कभी आपने देखा था? एक साथ। पर क्यों उनसे उठता? उठ ही नहीं सकता उनसे। सब का बल समाप्त, 'जैसे बिनु बिराग संन्यासी।' बिना वैराग्य के संन्यासी। और भगवान राम तो 'अग जगमय सब रहित बिरागी। प्रेम ते प्रकट होंहि जिमि आगी।।' क्या बात है! टूटेगा ये? सब श्री हत हो रहे हैं। 'श्रीहत हुए हारि हिय राजा।' और रामचन्द्र तो श्रीपति हैं। कोई नहीं उठा पा रहा था। और दूसरी बात पर यहाँ ध्यान दीजिए कि बाणासुर और रावण ने संधि कर ली कि हम दोनों उठा लेते हैं। 'भूप सहस्र दस' यहाँ व्यंजना है। सहस्र माने सहस्रबाहु वाले वाणासुर और दस माने दस सिर वाला रावण, ये दोनों एक साथ उठाना चाहे, फिर भी नहीं उठा। इतना कठिन क्रमव्यूह। सारी सभा स्तब्ध। 'सकल अमानुष करम तुम्हारे' देखिएगा। अब सभा विसर्जित होनी है। जनक जी ने कह दिया। नहीं, कुछ नहीं। 'द्वीप द्वीप के भूपति नाना। आए सुनि हम जो पन ठाना।।' हमने बुलाया किसी को नहीं। 'देव दनुज धरि मनुज शरीरा।' अरे देवता और दानव भी मनुष्य शरीर धारण करके आए। परन्तु– 'कुअँरि मनोहर बिजय बड़, कीरति अति कमनीय। पावनहार विरंचि जनु, रचेउ न धनु दमनीय।।' जनक जी ने कहा– लगता है कि मनोहरी कुमारी, अत्यन्त कमनीय कीर्ति उनको पाने वाले की रचना ब्रह्मा ने नहीं की। लगता है कि धनुष तोड़ने वाले को ब्रह्मा ने नहीं बनाया। सरस्वती ने कहा– बिल्कुल ठीक कहा। ब्रह्मा ने नहीं, ब्रह्मा के बाप ने भी नहीं बनाया। ब्रह्मा की बात छोड़ो। ब्रह्मा का बाप कौन है?– विष्णु, वे भी नहीं बनाए हैं। इसलिए, चले जाओ– 'तजहु आस'। क्योंकि किसी ने धनुष चढ़ाया नहीं। 'रहेउ चढ़ाउब तोरब भाई। तिल

भरि भूमि न सकेउ छुड़ाई।।' चढ़ाना और तोड़ना तो बहुत दूर रहा, पर कोई इसे तिल भर पृथ्वी से अलग नहीं कर पाया। इसलिए हे वीरो, अब तुम दुखी मत होना– 'अब जनि कोउ माखै भट मानी। वीर बिहीन मही मैं जानी।।' अब कोई भी व्यक्ति अपने मन में दुःखी न हो, क्रुद्ध न हो। मैंने पृथ्वी को वीर-विहीन जान लिया। लक्ष्मण ने कहा– सरकार, एक बात बताइए। लक्ष्मण जी ने कहा– सरकार, आप तो जानते हैं कि आप ही को धनुष तोड़ना है। तो जनक जी से इतना बड़बड़वा क्यों रहे हैं आप? इतना जनक जी को आप सता रहे हैं, इतना रुला रहे हैं, अच्छी बात है क्या? राम जी ने कहा– तुम नहीं समझ रहे हो। बताओ, किसी नभोमण्डल में एक साथ दो सूर्य उदित हो सकते हैं? कहा– जब नहीं हो सकते, तो इसी मिथिला में जनक जी का जो ज्ञान है न– 'जासु ज्ञान रवि भव निशि नाशा।' जनक जी का ज्ञान भी रवि है और मुझे भी अभी सूर्य बनना पड़ेगा। तो पहले एक सूर्य अस्त हो तब न दूसरा सूर्य उदित होगा। इसलिए मैंने अपनी लीला से जनक जी के सूर्य को अस्त किया। चलो, पहले थोड़ा अज्ञान हो जाने दो। अब कोई सूर्य नहीं रहना चाहिए तब मैं उदित होउँगा। और दूसरी बात, सूर्य कब उदित होता है? जब थोड़ी लालिमा होती है। अर्थात्, जब तुम क्रोधित होगे तब न सूर्य उदित होगा। इसलिए, जनक जी के ज्ञान रूप सूर्य को अस्त किया, इससे मर्यादा न टूटे कि सूर्य उदित होना है। और जब कहा– 'तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न बिधि बैदेही बिबाहू।।' सब लोग आसा छोड़ दो। अपने-अपने घर चले जाओ। विधाता ने जानकी जी का विवाह नहीं लिखा है। जनक जी कहते हैं कि यदि मैं जानता कि पृथ्वी पर वीर नहीं है तो प्रतिज्ञा करके मैं हँसी न उड़वाता। अब लक्ष्मण को क्रोध आ गया। 'भाखे लखन कुटिल भईं भौहें।' क्या बात करते हैं! कुटिल हो गयी भौहें। 'रदपट फरकत नयन रिसौहें।' अहाहा! क्या बात है!! क्रोध से बिल्कुल फड़क गए हों और नेत्र बिल्कुल क्रुद्ध हो गए उनके। लाल हो गए लक्ष्मण। नेत्र बिल्कुल लाल, अरुण निकल आया। आप ध्यान से सोचिये और लक्ष्मण जी ने कह दिया। क्या विचित्र समस्या है। देखिए, अन्य स्वयंवरों जैसा यह स्वयंवर नहीं है। अन्य स्वयंवरों में वर कितना निर्बल है और यहाँ कितना प्रबल है यह वर। एक वाक्य केवल जनक जी ने कहा है– 'वीर बिहीन मही मैं जानी।।' लक्ष्मण कहा– नहीं। 'कही जनक जस अनुचित बानी।' अध्यक्षीय भाषण अब हो चुका। अयोध्या का राजकुमार है, क्या बात करते हैं! कहा– नहीं। रघुवंशियों में जहाँ कोई रहता है ऐसा अभद्र वाक्य कोई नहीं कहता। 'विद्यमान रघुकुलमनि जानी।।' राघवेन्द्र जी को इस सभा में विद्यमान जानकर भी जनक जी ने जैसी अनुचित बानी कही, ऐसा कोई नहीं कहता। जनक तुमको क्या पता है– 'वीर बिहीन मही मैं जानी।।' वीरता की परिभाषा हमसे सीखिए। ये ब्रह्मसूत्र की पंक्तियाँ नहीं हैं ये तो हथियार चलाने का प्रकरण है भगवन! 'सुनहु भानुकुल पंकज भानू।'– ललकार दिया। ये धनुष अंधकार है और आप सूर्यकुल के सूर्य हैं, उदित हो जाइए। मैं अरुण हूँ। देखिए, लक्ष्मण जी ने क्यों कहा कि मैं धनुष को तोड़ सकता हूँ? नियम यही है कि अंधकार को अरुण ही नष्ट करते हैं, सूर्य नहीं नष्ट करते। 'यावत्प्रतापनि–

धिराक्रमते न भानुरहनायतावदरुणेन तमो निरस्तं!' आज सुना देते हैं। रघुवंश महाकाव्यम् के ५वें सर्ग के ७१वें श्लोक में कालिदास कहते हैं– 'यावत्प्रताप–निधिराक्रमते न भानुरहनायतावदरुणेन तमो निरस्तम्। जब तक सूर्य नारायण नहीं तब तक तो अरुण ही अन्धकार दूर कर देते हैं। इसलिए रामजी के पहले लक्ष्मण जी कहते हैं कि मैं धनुष तोड़ सकता हूँ। इसीलिए कह दिया। अरुण अंधकार को दूर कर सकते हैं। उसी दृष्टि से लक्ष्मण ने कहा– 'जौ तुम्हार अनुशासन पावौं। कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं।। अगर आप का अनुशासन मिल जाए, तो धनुष की बात छोड़ दीजिए, इस ब्रह्मांड को मैं गेंद की भाँति उठा लूँ। 'काचे घट जिमि हारौं फोरी।' इसे पटक दूँ। काहे भैया? ब्रह्मांड काहे को फोड़ना चाहते हैं? बोले– इसलिए कि ये कच्चा घड़ा है। क्यों? कहा कि जो ब्रह्म को नहीं जान सका, वह पक्का घड़ा कैसे हो सकेगा? जिस ब्रह्मांड में ब्रह्म का अपमान हो रहा है वो पक्का घड़ा थोड़े हो सकता है। इसे पटक दो, फूटे ससुरा! मैं सुमेरु पर्वत को मूली की तरह तोड़ सकता हूँ। पर 'तव प्रताप महिमा भगवाना।' हे भगवान, देखिए आज पहली बार भगवान बोल रहे हैं। विश्वामित्र तो मन में कहे थे– 'प्रभु ब्रह्मण्यदेव मैं जाना। मोहि नित पिता तजेउ भगवाना।।' आज जनक सभा में ललकारकर कहते हैं लक्ष्मण– 'तव प्रताप महिमा भगवाना। का बापुरो पिनाक पुराना।।' का बापुरो पिनाक, ये बपुरा है, ये बेकार का पुराना धनुष क्या है ये, जिसने इसे जड़ किया है। एक क्षण में मैं इसे तोड़ सकता हूँ, आप आज्ञा दीजिए; पर जनक से कहिए संशोधन करे प्रतिज्ञा में। जनक ने प्रतिज्ञा की है कि जो धनुष तोड़ेगा उसके साथ सीता जी का विवाह होगा और मैंने प्रथम दृष्टि में सीता जी को माँ मान लिया है। जनक जी यदि प्रतिज्ञा में संशोधन कर लें कि लक्ष्मण जी के धनुष तोड़ने पर भी सीता जी का विवाह राम जी के साथ होगा तो मैं धनुष तोड़ता हूँ। ये विवेक देखिए। राम–कथा का यही व्यक्तित्व है। 'मेरो अनुचित न कहत लरिकाई' (गीतावली रामायण) बस पन परिमिति कछु आनि भाँति सुनी गयी है' अर्थात् जो धनुष तोड़ेगा उसके साथ विवाह होगा। 'नतरु प्रभु प्रताप उतरु चढ़ाइ चाप देत्यों पै देखाइ बल फल पापमयी है।' मैं धनुष को चढ़ा सकता हूँ। पर फल इसका पापमय हो जायगा, अनर्थ हो जाएगा। मैंने माँ मान लिया है सीता जी को। सीता जी गद्‌गद हो रहीं हैं। अहाहा, बेटे, इतनी मर्यादा, यदि प्रथम दृष्टि में तुमने मुझे माँ मान लिया है तो सीता जी कहती हैं कि जो वात्सल्य तुम्हें मिलेगा वह लवकुश को भी नहीं मिलेगा। अद्‌भुत आनन्द है। आज आनन्द हो रहा है। लक्ष्मण कह रहे हैं– 'नाच जानि अस आयसु होऊ। मैं कमलदण्ड की भाँति चढ़ाकर दौड़ता हूँ १०० योजन तक। 'तोरौं छत्रकदण्ड जिमि, तव प्रताप बल नाथ। जौं न करौं प्रभु पद शपथ, पुनि न धरौं धनु हाथ।।' यहाँ 'कर न धरौं' पाठ गलत है, 'पुनि न धरौं' पाठ है। मैं धनुष छूऊँगा नहीं फिर। पृथ्वी डगमगायी भी तो। कुछ भी हो, एक विचित्र क्रम बना। लक्ष्मण जी को राम जी ने कहा– शांत रहें, शांत रहें। उन्होंने कहा– क्यों प्रभु? आपका अपमान किया है इन्होंने। राघव जी ने कहा– क्या अपमान किया है, बताओ उन्होंने कहा– ये कह रहे हैं 'बीर बिहीन मही मैं जानी'– कैसे कहा? राघव जी ने कहा– लक्ष्मण, जनक जी बिल्कुल ठीक कह रहे थे।

क्रमशः........

गतांक से आगे–

# 'काका विदुर' ( हिन्दी खण्डकाव्य )

❑ पूज्यपाद जगद्‌गुरु जी

बानी नित्य आपकी सुकीर्ति गाथा गाया करें,
माधव मुखचन्द्र के चकोर दृग हमारे हों।
कान सदा सुनें सरस लीला तुम्हारी देव,
कर तव पद पद्मपूजा दिव्य व्रत धारे हों।
शीशनित्य नमे तेरे पदपंकज में मुकुन्द,
''गिरिधर'' के हित तेरे भक्त ही सहारे हों।
जहाँ जहाँ जन्में हम पूर्वकर्म अनुसार,
वहाँ वहाँ नाथ नित्य परिकर तुम्हारे हों।।१०४।।
विनय यूँ सुनाके भरे सलिल विलोचन युग,
गहे पद कंज अंक प्रभु को बिठलाये हैं।
भावुक विदुर के सुधासाने बर बैन सुनि,
कृपा सिंधु लोचन में नीर भरि आये हैं।
कृपाकंद ब्रजचन्द आनंदकंद आनंद में,
उमगि करकंज से उठाय उर लाये हैं।
मानो नील नीरद मिलत श्वेत पंकज से,
''गिरिधर'' यह झाँकी देख अनुपम सुख पाये हैं।।१०५।।
कर जोड़ फिर दंपति मुदित प्रभु से विनय करने लगे,
गद्‌गद हुआ कल कंठ उनका सरस बचन सुधा पगे।
गीता गुरो आनन्दसिंधो नाथ यह वर दीजिए,
संतत हमारे मन बिपिन में आप विहरण कीजिए।।१०६।।
कह एवमस्तु मुकुन्द ने संतोष दम्पति को दिया,
आदेश ले प्रस्थान पाण्डव शिविर को प्रमुदित किया।
इस ललितगाथा से पुनः शुभ शांति कृष्णा को दिया,
गीता निदेशक का कथा रस दास ''गिरिधर'' ने पिया।।१०७।।
हे मुकुन्द करुणानिधे, कृष्णचन्द्र घनश्याम।
''गिरिधर'' मानस भवन में, करो सदा विश्राम।।१०८।।

❑❑❑

## पूज्यपाद जगद्‌गुरु जी के आगामी कार्यक्रम

❑ प्रस्तुति-पूज्या बुआ जी

| दिनाङ्क | विषय | आयोजक तथा स्थान |
|---|---|---|
| ०१ मार्च २००९ से ०९ मार्च २००९ तक | श्रीरामकथा सायं ३ से ६ बजे | श्री सनकादिक देवनारायणदास, देवपत्नम, काठमाण्डू, नेपाल। फोन–०९७७–९७४७०२२००९ |
| १६ मार्च २००९ से २२ मार्च २००९ तक | श्रीमद्‌भागवतकथा प्रातः ९:३० से १:३० तक | गीताभवन नं० ३ घाट पर स्वर्गाश्रम, ऋषिकेश (उत्तराखण्ड) आयोजक– श्री नारायण डालमिया |
| २७ मार्च २००९ से ०४ अप्रैल २००९ तक | श्रीरामकथा सायं ३ से ६ बजे | श्रीतुलसीपीठ, आमोदवन चित्रकूट, जि–सतना (म० प्र०)। श्री रामनवमी महोत्सव। |

# सत्कर्म करिए, रोग भगाइए

❑ श्री जगदीशप्रसाद गुप्त ( जयपुर )

शरीर स्वस्थ रहे, शरीर की रक्षा होती रहे, यह मनुष्य का प्रथम धर्म है क्योंकि समस्त धर्म-साधन का आधार यह शरीर ही है- "शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्"। मनुष्य-योनि में चतुर्विध पुरुषार्थ (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष) प्राप्त करना ही मानव-जीवन की उपलब्धि है और यह तभी सम्भव है, जब शरीर स्वस्थ रहे। कहने का तात्पर्य यह है कि पुरुषार्थ-चतुष्टय की प्राप्ति का मूल कारण शरीर का नीरोग रहना है और आरोग्य का अपहरणकर्त्ता रोग है, जो श्रेयस और जीवन का विनाश करते हैं-

**धर्मार्थकाम मोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।।**
**रोगास्तस्यापहर्तारः श्रेयसो जीवितस्य च।**

(चरक० सू० १/१५-१६)

प्रसिद्ध लोकोक्ति है- "पहला सुख निरोगी काया"। वास्तव में, सभी प्रकार के धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक कार्य शरीर के स्वस्थ होने पर ही पूरे होते हैं। शरीर के अस्वस्थ रहने पर मनुष्य चाहता हुआ भी कुछ नहीं कर सकता। इसलिए, अन्यान्य कार्यों को छोड़कर सर्वप्रथम शरीर की देखभाल करे, शरीर का अभाव होने पर सब कुछ का अभाव हो जाता है-

**सर्वमन्यत् परित्यज्य शरीरमनुपालयेत्।**
**तदभावे हि भावानां सर्वाभावः शरीरिणाम्।।**

शरीर स्वस्थ रहे, अस्वस्थ न रहे। न चाहते हुए भी शरीर अस्वस्थ हो जाता है। क्यों? चिकित्सा शास्त्र कहता है-

१. प्रायः बाह्य तथा आन्तरिक शारीरिक रोगों की उत्पत्ति मिथ्या आहार-विहार के कारण होती है।

२. कुछ रोग संक्रामक अर्थात् स्पर्शजन्य होते हैं, जैसे- हैजा, प्लेग, चेचक, नेत्र-पीड़ा, खाँसी आदि।

३. कुछ रोग (कष्ट) दुर्घटना जनित होते हैं, जैसे- विष-प्रयोग, शस्त्राघात, पशु-पक्षी द्वारा आघात, सर्प-दंश, पानी में डूबना, ऊँचे स्थान से गिरना, सड़क-रेल-वायुयान दुर्घटना आदि।

४. भय, चिन्ता, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, हत्या अथवा आत्महत्या की प्रवृत्ति के अन्तर्गत मानसिक रोग।

५. जन्मजात रोग, जैसे- बधिरता, अंधत्व, काणत्व, गूंगापन, अंग-वैकल्य, नपुंसकता, वन्ध्यत्व आदि।

हमारे शास्त्रों की मान्यता है कि पूर्व जन्म के शुभाशुभ कर्मों के अनुसार ही सुख, दुख, रोग, शोक तथा दारिद्रय आदि प्राप्त होते हैं। पूज्य गोस्वामी जी ने श्रीरामचरितमानस में अयोध्याकाण्ड में कहा है-

**करम प्रधान बिस्व करि राखा।**
**जो जस करइ सो तस फल चाखा।।**

जन्म-जात रोग पूर्व-जन्म में किए हुए पाप-कर्म ही होते हैं। पैतृक रोगों के मूल में भी यही कारण रहता है। आकस्मिक दुर्घटनाएं भी कर्मफल ही हैं। अधिकांश, सामान्य रोग वर्तमान जीवन के कुसंस्कारों- मिथ्या आहार-विहार, अशुभ कर्म के फलस्वरूप होते हैं।

रोग निवारण के उपायों की चर्चा हमारे इन तीन शास्त्रों- १. ज्योतिष-शास्त्र २. आयुर्वेद शास्त्र और ३. मंत्र-शास्त्र में की गई है। ये तीन शास्त्र एक दूसरे के पूरक तथा अन्योन्याश्रित हैं। ज्योतिष-शास्त्र यही बता सकता है कि अमुक व्यक्ति को कौन सा रोग है या होगा; उसका क्या समयावधि है, रोग ठीक होगा या नहीं और ठीक होगा तो कब। इससे सम्भावित रोग की पूर्व-सूचना मिलने से वह सावधान हो सकता है और कष्ट सहन की क्षमता अर्जित कर सकता है।

इससे अधिक, रोग निवारण के उपाय बताना। रोग दूर कराना उसका विषय नहीं है, क्षेत्र नहीं है, एकमात्र छलावा है, ठगना है और रोगी को भ्रमित करना है। आयुर्वेद शास्त्र अर्थात् चिकित्सा-शास्त्र औषध-प्रयोग, शल्य-क्रिया आदि उपायों द्वारा रोग दूर करने का प्रयत्न करता है। अन्त में, जब रोग चिकित्सा-शास्त्र की सहायता से भी दूर नहीं हो पाते, उनसे छुटकारा पाने के लिए मन्त्र-शास्त्र आध्यात्मिक-उपायों का सम्बल देता है।

वस्तुत, चिकित्सा तथा आध्यात्मिक उपायों द्वारा रोग दूर हो जाते हैं। जीवन भर शुभ कर्म करे और आहार-विहार को संयमित रखे, ऐसा व्यक्ति सदैव निरोग और सुखी रहता है, यहाँ तक कि पूर्व जन्म के दोषों का प्रक्षालन करने में भी सफल हो जाता है। अर्थात् पूर्व-जन्म के अधिक पाप-फल वर्तमान जीवन के शुभ कृत्यों से कम हो जाते हैं, भविष्य सुखमय व आरोग्यमय बनता है। इसी प्रकार, पूर्व जन्म के पुण्य-फल से वर्तमान जीवन में रोग-शोक, दुर्घटना आदि के शिकार नहीं बन पाते। यदि वर्तमान जीवन में अशुभ कर्म करता है तो उसको अगले जन्म में दुष्परिणाम अवश्य ही भोगने पड़ेगे, यद्यपि वर्तमान जीवन निरोगी और सुखी रहे। हिन्दु-दर्शन के अनुसार प्राणी अपने जन्म जन्मान्तर के शुभाशुभ कृत्यों का फल जन्मांतरों तक भोगता रहता है। अतः जो लोग आरोग्य एवं सुखी जीवन के इच्छुक हो उन्हें सदैव शुभ कृत्यों में ही प्रवृत्ति रखनी चाहिए तथा छोटे से छोटे दुष्कृत्य का भी फल मिलना अवश्यम्भावी जानकर उनसे बचे रहना चाहिए।

रोग-निवारण के लिए चिकित्सा (treatment) अति महत्वपूर्ण कर्म है, सत्कर्म है। भूत, वर्तमान और भावीजीवन के सत्कर्मों से चिकित्सा की सोपान बनती है। चिकित्सा से रोग का निवारण होता ही है, अगर निवारण नहीं होता है तो उसे भव-रोग समझिए, भोगना है, एकमात्र परात्पर पुरुष, परमात्मा के आश्रय में, उनके स्मरण में। यहीं से मन्त्रशास्त्र में वर्णित आध्यात्मिक-उपायों की शृंखला प्रारम्भ होती है। भगवन्नाम-स्मरण ही रोगों के निवारण का सरलतम तथा श्रेष्ठतम उपाय है। उल्लेखनीय है-

१. भगवान धन्वन्तरि के आदेश से भगवान के तीन अमोघ-मन्त्रों के जप से सभी प्रकार के रोगों से तथा शारीरिक एवं मानसिक कष्टों से सभी व्यक्तियों को मुक्ति मिलती है; यथा-शक्ति जप करते रहना चाहिए:-

**ॐ अच्युताय नमः**
**ॐ अनन्ताय नमः**
**ॐ गोविन्दाय नमः**

हमारे हिन्दु-शास्त्र में उल्लेख है कि औषधि के रूप में अच्युत, अनन्त तथा गोविन्द के नामों का उच्चारण करने से सचमुच सभी रोग नष्ट हो जाते हैं-

**अच्युतानन्त गोविन्द नामोच्चारण मेषजात।**
**नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्।।**

(अर्थात् औषधि के रूप में अच्युत, अनन्त तथा गोविन्द के नामों का उच्चारण करने से सभी रोग नष्ट हो जाते हैं, यह मैं सत्य कहता हूँ, सत्य कहता हूँ।)

इतना ही नहीं, इनका (भगवान के तीन नाम मंत्रों का) जप करते रहने से अनेक लौकिक कार्यों में सफलता मिलती है।

२. गीता में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं-

**सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।**
**अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।**

(अर्थात् -समस्त कर्त्तव्य कर्मों का त्याग करके तुम मुझ एक परमात्मा की शरण में आ जाओ। मैं तुम्हें सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, तुम शोक मत करो।)

३. "श्रीदुर्गासप्तशती" (१२/२१-२२) में माँ भगवती दुर्गा स्वयं अपने मुखारविन्द से कहती हैं- "उत्तम सामग्रियों द्वारा पूजन करने से, ब्राह्मणों को भोजन कराने से, होम करने से, प्रतिदिन अभिषेक

करने से, नाना प्रकार के अन्य भोगों का अर्पण करने से तथा दान देने आदि से एक वर्ष तक जो मेरी आराधना की जाती है, उससे मुझे जितनी प्रसन्नता होती है, उतनी प्रसन्नता मेरे इस उत्तम चरित्र का एक बार श्रवण करने मात्र से हो जाती है। श्रवण किया हुआ यह माहात्म्य पापों का हरण करता है और आरोग्य प्रदान करता है–

**विप्राणां भोजनैर्होमैः प्रोक्षणीयैरहर्निशम्।**
**अन्यैश्च विविधैर्भोगैः प्रदानैर्वत्सरेण या।।**
**प्रीतिर्मे क्रियते सास्मिन् सकृत्सुचरिते श्रुते।**
**श्रुतं हरति पापानि तथाऽऽरोग्यं प्रयच्छति।।**

४. ज्योतिष्पीठ के ब्रह्मलीन जगद्गुरु शंकराचार्य अनन्तश्री स्वामी कृष्णबोधाश्रमजी महाराज कहते थे कि रामनाम के निम्न अमोघ मन्त्र के जप एवं स्मरण से मनुष्य के पापों का क्षय, रोग निवृत्ति एवं सुख–शान्ति प्राप्त होती है:–

"श्री राम जय राम जय जय राम"

५. "श्रीरामरक्षास्तोत्रं" में उल्लेख हुआ है–

"आपत्तियों को हरने वाले तथा सब प्रकार की सम्पत्ति प्रदान करने वाले लोकाभिराम भगवान राम को बारम्बार नमस्कार करता हूँ"–

**आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसम्पदाम्।**
**लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम्।।**
**(३५ वाँ)**

६. महर्षि वाल्मीकि राम–राम के स्थान पर मरा–मरा जपकर अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न, व्याधियों से मुक्त तथा रामायण महाकाव्य के रचियता हुए। परमपूज्य गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज ने लिखा है–

**उलटा नाम जपत जग जाना।**
**बालमीकि भए ब्रह्म समाना।।**
(रामचरितमानस–अयोध्याकांड–१९४(८))

७. अनेक सन्तों ने "श्रीराम" नाम के स्मरण को ही सब रोगों का अचूक इलाज बताया है। कहा गया है– रामनाम की औषधि खरी नीयत से खाय। अंग रोग ब्यापै नहीं, महारोग मिट जाय।

८. पूज्य गोस्वामी तुलसीदास जी के श्रीरामचरितमानस की निम्न चौपाई को जपकर तीनों प्रकार के तापों को शमन करते हैं–

**दैहिक दैविक भौतिक तापा।**
**राम राज नहिं काहुहि ब्यापा।।**
(उत्तरकाण्ड–२१(१))

श्रीरामचरितमानस में सभी शास्त्र भरे हुए हैं। मानस की एक–एक चौपाई सिद्धमन्त्र हैं– प्रतिदिन रामायण पाठ करिए, लाभ उठाइये। श्रीरामचरितमानस की श्रेष्ठता पर एक अतिरोचक तथा भक्ति–भाव पूर्ण प्रसंग है–

श्रीतुलसीदास गोस्वामी जी और बाबा सूरदास जी समकालीन सन्त हुए हैं। एक भक्त जिज्ञासु ने बाबा सूरदास जी से पूछा– "बाबा! कविता आपकी अच्छी है या गोस्वामी तुलसीदास जी की।" बाबा बोले– "बेटा। कविता तो मेरी अच्छी है।" जिज्ञासु कहने लगा– "बाबा! गोस्वामी जी की रामायण सभी के घर–घर पढ़ी जाती है, क्या वह अच्छी नहीं है?" बाबा ने फटकारा– "अरे पगले! कविता तो मेरी अच्छी है, उनकी रामायण क्या कोई कविता है? अरे! वे तो मंत्र हैं, मंत्र।"

अब, इस लेख को विराम देते हुए, यह लिखना अतिशयोक्ति नहीं है कि आज के कलियुग में एकमात्र प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद गोस्वामी जी महाराज द्वारा रचित "श्रीहनुमान चालीसा" के दैनिक पाठ से सभी रोगों से मुक्ति और सभी सुखों की प्राप्ति होती है–

**नासै रोग हरै सब पीरा। जपत निरंतर हनुमत बीरा।।**
**संकट कटै मिटै सब पीरा। जो सुमिरै हनुमत बलबीरा।।**

श्रद्धा और विश्वास होना चाहिए–तभी कल्याण होगा।

❑❑❑

# शान्ति की ओर

❑ पुष्पेन्द्र कुमार मिश्र (कम्प्यूटर सहायक)

**शान्ति का स्त्रोत है, अचल ब्रह्म का ज्ञान।**
**मानव! अपने जीवन के, पर्दे में पहचान।।**
**अचल ब्रह्म चंचल मन को, शीघ्र एकाग्र करता है।**
**चंचल अचल के मिलन से, जीवन बदल जाता है।।**

शान्ति का स्त्रोत सबके अन्दर अविनाशी आत्मा के रूप में विद्यमान है। लेकिन मन शान्ति को संसार के विज्ञान में खोज रहा है। संसार के विज्ञान का अपना भौतिक महत्व है। उससे मानव को कई प्रकार की शारीरिक सुविधाएँ मिल रही है। टेलीफोन, टेलीविजन, यातायात के साधन, बिजली की शक्ति, कम्प्यूटर आदि विज्ञान के चमत्कारों को देख-देख कर मन बाह्य रंग हो गया है। जितना ही भौतिक संसार का विकास बढ़ता जा रहा है, उतनी ही विश्व मानव की अशान्ति बढ़ती जा रही है। बाहर का विकास तेज हो रहा है, परन्तु अन्दर आत्मा का विकास सबका रुका हुआ है। आत्मा के विकास से अमृत, दया, प्रेम प्रकट होता है। तभी मानव को पूर्ण शान्ति मिलती है।

आत्म ज्ञान पर सबका बराबर का अधिकार है। यहाँ जाति-पाँति, छूत-अछूत का कोई भेदभाव नहीं होता है। जैसे- सूर्य का प्रकाश सबको बराबर प्रकाशित करता है। उसी प्रकार आत्मा रूपी सूर्य सभी जीवों के अन्दर समान प्रकाश देकर मोह एवं अंधकार को दूर करता है। आत्मा का प्रकाश सबके अन्दर पवित्र विवेक व नि:स्वार्थ प्रेम को प्रकट करता है। तभी संसार का स्वार्थमय प्रेम का लगाव समाप्त होता है।

आत्मा के प्रकाश को इन चर्मचक्षुओं से नहीं देखा जा सकता है, और न ही वह किसी विज्ञान के यंत्रों द्वारा देखना सम्भव है। समय के तत्त्वदर्शी पूर्ण सन्त, ज्ञान दृष्टि देकर आत्मा अविनाशी का साक्षात् अनुभव कराते हैं। तभी मानव का मोह, अंधकार व अशान्ति समाप्त होती है। यह ज्ञान भारत में पहले भी था, अब भी है, और आगे भी रहेगा। इसलिए भारत को विश्व मानव ने अध्यात्म मन्दिर बताया है। मन मन्दिर में ज्ञान के दीपक जलाने वाले सन्त हमारे भारत में रहते हैं। जैसे- कई बुझे हुए दीपों को जलाने के लिए एक ही जला हुआ दीपक पूर्ण समर्थ है उसी प्रकार सम्पूर्ण विश्व के मनुष्यों के अन्दर ज्ञान का दीपक जलाने के लिए भी संत पर्याप्त है। जैसे समदर्शी वायु-सूर्य सम्पूर्ण सृष्टि में वायु व प्रकाश को पहुँचाने में समर्थ हैं इसी प्रकार सम्पूर्ण विश्व को अंधकार से प्रकाश में लाने के लिए तथा विश्व के अशान्त मानव को शान्ति पहुँचाने के लिए संत शक्ति पर्याप्त है। सन्तों के सामर्थ्य ने विश्व को विवेक का आनन्द दिया है और शिवाजी, महाराणा जैसे अनेक राष्ट्र भक्त दिए हैं- इतिहास इसका साक्षी है।

❑❑❑

**जिस घर में नित्य सुन्दरकाण्ड का पाठ श्रद्धा और शुद्ध उच्चारण के साथ किया जाता है। वहाँ सदैव सुख शान्ति रहती है।**

**-पूज्यपाद जगद्गुरु जी**

## गुरु मेरे उर बसैं

❑ कपूरचन्द्र 'केतन' (लखनऊ)

शान्ति मंगल करन उर हीरक वरन हो।
चार अनुयोगी दमकती रवि किरन हो।
दीजिये दस धर्म लक्षण आत्म दर्शन।
गुरु मेरे उर बसें पावन चरन हों।
गुरु जब रुष्ट होते हैं तो कल्याण होता है।
गुरु जब प्रसन्न होते हैं तो निर्वाण मिलता है।
गुरु में वह अपार शक्ति है साथी
धन-यश-बल-बुद्धि भगवान मिलता है।
उदय जब पुण्य का होता है तो मिल जाते हैं गुणी ज्ञानी।
बड़ी मुश्किल से सुनने को मिला करती गुरुवाणी।

हमारे सामने बैठे मुनीश्वर रूप में भगवन।
इन्हीं की चरण रज से मुक्ति पा जाते सभी प्राणी।
रूप सुन्दर असुन्दर जब देह हो।
आदमी की सोच में संदेह हो।
गुरुवचन दर्शन करें शंकारहित,
जब हृदय में संत के प्रति स्नेह हो।
शान्ति का सागर उमड़ता गुरुवचन में
ज्ञान की गंगा प्रवाहित देह मन में।
बुझे दीपक को मिली नवज्योति 'केतन'
साधना की उच्च स्थिति आचरण में।

❑❑❑

## राघव प्रभु प्रगट भये

❑ आचार्य दिवाकर शर्मा

आज सब मिल मंगल गाओ
राघव प्रभु प्रगट भये हैं।
नौमी तिथि मधुमास पुनीता
शुक्लपक्ष अभिजित हरिप्रीता।
आज मोतियन चौक पुराओ।
राघव प्रभु प्रगट भये हैं।
शीतल मन्द सुरभि बह बाऊ।
हरषित सुर सन्तन मन चाऊ।
आज बन्दनवार सजाओ
राघव प्रभु प्रगट भये हैं।
सुमन वृष्टि आकाश ते होई।
ब्रह्मानन्द मगन सब कोई।
आज प्रभु चरणन चित लाओ

राघव प्रभु प्रगत भये हैं।
अनुपम बालक देखिय जाई।
रूप राशि गुन कहि न सिराई।
आज सकल सुकृत फल पाओ।
राघव प्रभु प्रगट भये हैं।
करि आरती निछावर करहीं
बार बार शिशु चरणन परहीं
इन्हें मन मन्दिर में बसाओ
राघव प्रभु प्रगट भये हैं।
जो आनन्द सिन्धु सुखरासी।
सीकर ते त्रैलोक सुपासी
इन पर सर्वस्व लुटाओ
राघव प्रभु प्रगट भये हैं।

❑❑❑

# श्रीराघव अवध प्रगटे आज

❑ पूज्यपाद जगद्गुरु जी

राघव अवध प्रगटे आज।
भगत हित बने नृपति बालक
मुदित सकल समाज।।
कोटि कोटि मनोज मदहर
नील नीरद श्याम।
मनहुँ सुषमा संग विराजत
सुभग सुख आराम।।
मुदित मन तिहुँ लोक बिकसत
साधु अति अनुकूल।
हरषि जय जय करत प्रमुदित
बिबुध बरसत फूल।।
सिद्ध मुनि गन्धर्व गावत
अपसरा नभ नाचि।
करि निछावर सकल मन
साँवरी छवि पर राचि।।
शिव विरंचि सिहात देखत
कौसिला कौ भाग।
भाव सरसिज देखि पुलकित
सुभग मेघ तडाग।
हरषि दर्शन करत पुरजन
लेत लाघ अघाइ।
जनम को फल पाव 'गिरिधर'
राम शिशु गुन गाइ।।

(राघव गीत गुंजन से)

❑❑❑

# विश्व शान्ति के प्रहरी

❑ डा० रामदेव प्रसाद सिंह 'देव'

शुचि कर्म निष्ठ हम भारतीय
ग्रामीण सरल नहीं, शहरी हैं
पर सर्व शुभैषी हित चिन्तक
हम विश्व शान्ति के प्रहरी हैं।
वसुधा कुटुम्ब की भाव ध्वजा
सर्वत्र आज भी फहरी है
समभाव बोध से परिपूरित
हम विश्व शान्ति के प्रहरी हैं।
आदर्श पूर्ण मानवता की
मर्यादा यहीं से उभरी है
साक्षी सारा इतिहास अहो
हम विश्व शान्ति के प्रहरी हैं।
मानव मूल्यों की मर्यादा
सच में हम पर ही ठहरी है
गीता मानस से आलोकित
हम विश्व शान्ति के प्रहरी हैं।
ऋषि परम्परा में विश्व वंद्य
समभाव पैठ अति गहरी है
खलु ब्रह्म भाव के दृष्टा ज्यों
हम विश्व शान्ति के प्रहरी हैं।
हम सबकी सबके प्रति श्रद्धा
अपनापन वृत्ति सुनहरी है
सब सीय राममय सृष्टि अहो
हम विश्व शान्ति के प्रहरी हैं।

❑❑❑

## निरंजन के दृग अंजन देख्यो

❑ पूज्यपाद जगद्गुरु जी

नील सरोरुह श्यामल अंगनि
कोटि अनंगन की छवि पेख्यो।
आँचर माहिं कौसल्या के राजत
लाजत काम कलानिधि लेख्यो।।
गोल कपोल लटैं लटकैं
अटकैं बिधु पै अलिवृन्द परेख्यो।
'गिरिधर' भाव विभोर भयो
ज्यों निरंजन के दृग अंजन देख्यो।।
(श्रीसीताराम केलि कौमुदी से।)

❑❑❑

## प्रस्तर शिला राम ने तारी

❑ श्रीमती श्रीदेवी चौहान (संस्कृत प्रवक्ता)

प्रस्तर शिला राम ने तारी, गुरुवर कृपा प्रसाद दीजिए।
आई हूँ मैं शरण विहारी, मेरा भी उद्धार कीजिए।
जीवन-दीप स्नेह से खाली, कैसे इसकी ज्योति जलाऊँ।
छाया मन में घोर अँधेरा, कैसे तम को दूर भगाऊँ।
स्नेह मिले हो ज्योति उजागर, ऐसा मुझे प्रयत्न दीजिए।
आई हूँ मैं शरण तिहारी, मेरा भी उद्धार कीजिए।।
आत्मोद्धार जगत का करने, देव पुरुष बनकर आये हैं।
अपनी कृपा दृष्टि से अगणित जन-मन दुःख मिटाये हैं।।
अशरण-शरण जगद्गुरु यतिवर, मुझ पर कुछ उपकार कीजिए।
आई हूँ मैं शरण तिहारी, मेरा भी उद्धार कीजिए।।
दिव्य दृष्टि के प्रखर तेज से, आगम-निगम सिद्धकर डाले।
त्याग-तपस्या के प्रकाश से, जीवन में भर गये उजाले।।
जीवन-दशक सफल हो जाये, ऐसा कुछ अनुदान दीजिए।
आई हूँ मैं शरण तिहारी, मेरा भी उद्धार कीजिए।।
भाव नहीं है, भक्ति नहीं है, कृपा पा सकूँ शक्ति नहीं है।
दिव्य तेज वर्णन करने की वाणी में अभिव्यक्ति नहीं है।।
बाल चपलता मात्र मानकर, थोड़े में बहु ग्रहण कीजिए।
आई हूँ मैं शरण तिहारी, मेरा भी उद्धार कीजिए।।
अर्जित तप-प्रताप से गुरुवर, मुझको कुछ भी नहीं चाहिए।
दैवी जो सम्पत्ति आपकी, केवल उसकी भक्ति चाहिए।।
गुरुवर परम प्रकाशक, मुझको निर्मल किरण प्रकाश दीजिए।
आई हूँ मैं शरण तिहारी, मेरा भी उद्धार कीजिए।।
'रामेश्वरम्' परम पावन है, रामसेतु से पूज्य उदधि है।
शिव की दिव्य शक्ति से अर्चित, दुखवभय मोचन भव वारिधि है।
यहाँ सभी भव शोक नशाऊँ, ऐसा प्रभु वरदान दीजिए।
आई हूँ मैं शरण तिहारी, मेरा भी उद्धार कीजिए।।
यह मेरी है मात्र प्रार्थना, पाने का अधिकार नहीं है।
भगवदीय ईप्सा, मम इच्छा, एक बने उपकार यही है।।
जिसमें निज सुध बुध खो जाऊँ, राघवीय वह भक्ति दीजिए।
आई हूँ मैं शरण तिहारी, मेरा भी उद्धार कीजिए।।

❑❑❑

卐 नमो राघवाय 卐

**चित्रकूट रघुनन्दन छाए।**
**समाचार सुनि सुनि मुनि आए ।।**

श्रीचित्रकूट बिहारी बिहारिणीजू का पंचदश पाटोत्सव एवं श्रीवसिष्ठानन्दवर्धन
राघव सरकार भगवान् श्रीराम का

## मंगलमय प्राकट्योत्सव

(विक्रमीसंवत् 2066 चैत्रशुक्ल प्रतिपद् से चैत्रशुक्ल नवमी तदनुसार 27 मार्च 2009 से 3 अप्रैल 2009 तक)

## सादर आमन्त्रण

सभी श्रीसीताराम भक्त बहिनों एवं भ्राताओं को सहर्ष आमन्त्रण के साथ सूचित किया जाता है कि विगत वर्षों की भाँति इस वर्ष भी मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम की पावन कर्मस्थली श्रीचित्रकूट के तुलसीपीठ परिसर में प्रतिष्ठापित **श्रीरामचरितमानस मन्दिर** में आगामी चैत्र शुक्ला प्रतिपद् से चैत्रशुक्ला नवमी पर्यन्त श्रीराघव सरकार का प्राकट्योत्सव एवं श्रीचित्रकूट बिहारी बिहारिणीजू का पन्द्रहवाँ पाटोत्सव श्रद्धा एवं उल्लास के साथ समायोजित किया जा रहा है।

**इस बार तिथिक्रम से एक दिन कम होने के कारण यह महोत्सव अष्ट दिवसीय होगा। इस क्रम में प्रतिदिन प्रातः 8 बजे से 12 बजे तक अष्टोत्तरशत श्रीरामचरितमानस संगीतमय नवाह पारायण एवं प्रतिदिन बाबा वंशी वालों का अखण्ड भण्डारा तथा अपराह्ण 3 बजे से 6 बजे तक धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज के श्रीमुख से श्रीरामकथा सम्पन्न होगी।**

**प्रतिदिन रात्रि को 8 बजे से 11 बजे तक विश्वेश्वर आदर्श रामलीला मण्डली द्वारा रामलीला का मंचन होगा।**

अतः इस अलौकिक-आध्यात्मिक सत्र में आप सबन्धुबान्धव पधार कर पूज्यपाद जगद्गुरु जी की दिव्य कथा एवं बाबा वंशीवालों के भोजन भण्डारे का पावन लाभ प्राप्त करें।

**आमन्त्रक**
**श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास**
**तथा**
**श्रीराघव परिवार**
**चित्रकूटधाम**
**फोन- 05198-224413, 07670-265478**

# गायत्री-मन्त्र की महत्ता का रहस्य

❑ पूज्यपाद पं० दीनानाथ शास्त्री सारस्वत

'गायत्री छन्दसामहम्' (भगवद्गीता १०/३५)

'उपनयन-रहस्य' हम बता चुके; उपनयन में गायत्री-मन्त्र का उपदेश किया जाता है। यह क्यों? इसका इतना महत्त्व क्यों? इस पर अब विचार किया जाता है।

'ॐ भूभुर्वः स्वः, तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।' यह मन्त्र धार्मिक जगत् में प्रसिद्ध है। **यह 'अथर्ववेदसं०' से अतिरिक्त तीन वेदों की संहिताओं में मिलता है। 'अथर्ववेद' की शौनकसंहिता से भिन्न किसी संहिता में उक्त मन्त्र कदाचित् मिल जाय; यह सम्भावना हो सकती है।** तथापि **अथर्ववेद-शौनकसंहिता ( १९/७१/१ )** में वेदमाता गायत्री की महिमा तो वर्णित है ही। **'ऋग्वेद' की शाकलसंहिता में ( ३/६२/१० ) उक्त** मन्त्र मिलता है, 'सामवेद' की 'कौथुमसंहिता' में भी उत्तरार्चिक (१३/४/३/१) में मिलता है। शुक्ल-यजुर्वेद की वाजसनेय-संहिता (३/३५, १६/३, २२/९, ३०/२) में, तथा काण्वसंहिता (३/४३, २४/१३, ३४/२) एवं 'कृष्णयजुर्वेद' की 'तैत्तिरीयसंहिता' (१/५/६/१२, १/५/८/१०, ४/१/११/७) में तथा कृष्णयजुर्वेद की 'मैत्रायणी-संहिता' (४/१०/७७) में भी मिलता है। इस प्रकार अन्य वेदसंहिता में भी इसका मिलना सम्भव है।

यह गायत्री-मन्त्र, सावित्री, गुरुमन्त्र आदि नामों से प्रसिद्ध है। गायत्री-छन्दवाला होने से यह 'गायत्री' नाम से प्रसिद्ध है। यद्यपि ११ स० ध० गायत्री-छन्द वाले मन्त्र अन्य भी बहुत से हैं; तथापि '**प्रधानेन हि व्यपदेशा भवन्ति**' इस न्याय से प्रधान इसी मन्त्र का उक्त नाम प्रसिद्ध है। अथवा 'गायत्री गायतेः स्तुतिकर्मणः' (निरुक्त ७/१२/६) 'गायतो (ब्रह्मणो) मुखादुदपतत्-इति ब्राह्मणाम्' (नि० ७/१२/५), तथा 'गायन्तं त्रायते' इत्यादि निर्वचन से योगिक-रूप से भी उक्त नाम से प्रसिद्ध है। 'सा हैषा गयान् (प्राणान्) तत्रे, तस्य प्राणान् त्रायते (शत० १४/८/१५/७) इस प्रकार गायत्री प्राण-रक्षणी विद्या भी है। 'सवितुरियम् ऋक्' इस विग्रह से यह मन्त्र 'सावित्री' नाम से भी प्रसिद्ध है। इसी कारण ही इसकी स्त्रीलिङ्ग से प्रसिद्धि है। अथवा गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती इन तीन छन्दों के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों के सावित्र मन्त्र हैं, तब इन छन्दों के स्त्रीलिङ्गान्त होने से गायत्री-सावित्री, त्रिष्टुप्-सावित्री, जगती सावित्री इस प्रकार भी 'सावित्री' मे स्त्रीत्व है। इस प्रकार 'वेदमाता' (अथर्व० १९/७१/१) इस नाम से प्रसिद्ध होने से भी इसमें स्त्रीलिङ्ग-रूप से प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त सविता वाले मन्त्र में सविता की शक्ति भी सन्निहित है, क्योंकि-शक्ति तथा शक्तिमान का अभेद हुआ करता है; कभी इस शक्तिमान् को शक्ति रूप से भी वर्णित किया जाता है। शक्ति स्त्रीलिङ्ग होने से उस 'देवी' रूप में वर्णित किया जाता है। सविता की शक्ति ही गायत्री देवी के नाम से विख्यात है। इसी कारण सनातन धर्म की सन्ध्या में उक्त मन्त्र के विसर्जन के अवसर पर

'उत्तमे शिखरे देवि!' (तैत्तिरीयारण्यक १०/३०) इस प्रकार स्त्रीत्व का प्रयोग है। सविता को शक्तिरूप होने से उसका 'श्वेतवर्णा समुद्दिष्टा' इस प्रकार देवी रूप से वर्णन आया है। इसी गायत्री का उपस्थान 'गायत्र्यस्येकपदी.....असावदो मा प्रापत्' (१४/८/१५/१०) शतपथ-प्रोक्त इस मन्त्र में आया है, जो सन्ध्या में पढ़ा जाता है। उपनयन हो जाने पर वेदारम्भ में आचार्य-पदवी को धारण करने वाला गुरु इसी मन्त्र का उपदेश करता है। इस कारण यह 'गुरु-मन्त्र' नाम से प्रसिद्ध भी है। यद्यपि वेदारम्भ-संस्कार में वेद का ही आरम्भ अपेक्षित है; तथापि उस समय विद्यार्थी वेदाङ्ग पढ़े हुए न होने से वेद में चल नहीं सकता; तब वेद का सारभूत यही मन्त्र गुरुद्वारा उपदिष्ट किया जाता है। 'उक्त मन्त्र वेद का साररूप है'- यह आगे बताया जायगा।

इस मन्त्र में 'सविता' देवता से प्रार्थना है। 'सविता' सूर्य को कहते हैं। इससे 'अभिमानिव्यपदेशात्' (२/१/५) इस 'वेदान्त-दर्शन' के सूत्र के आधार से सूर्यमण्डलान्तर्गत सूर्याभिमानी देवविशेष लिया जाता है, जो चेतन है। जैसे जड़ जलों का चेतन देव वरुण, वेद में 'यासां (अपां) राजा वरुणो यति मध्ये सत्यानृते अवपश्यन् जनानाम्' (ऋ० ७/४९/३) (यहाँ पर 'आपो देवता:' है, अप्-शब्द नित्यस्त्रीलिङ्ग है) इस मन्त्र से संकेतित किया गया है; वैसे ही जड़ सूर्यमण्डल का भी चेतन-देव 'योऽसावादित्ये पुरुषः सोसावहम्' (४०/१७) इस यजुर्वेद (वा० सं०) के मन्त्र में संकेतित किया गया है।

सूर्यादि का अभिमानी देवता भी उसी-उसी नाम से प्रसिद्ध होता है। जो कि वेद हमें सूर्य आदि की उपासना सिखलाता है, उसे वहाँ उनकी चेतनता इष्ट है। चाहे सूर्य आदि पदार्थ लौकिक-व्यवहार में जड़ प्रसिद्ध हों; पर वास्तव में ये चेतन हैं; क्योंकि- इनके अन्दर इनका अभिमानी (अधिष्ठाता) देवता विराजमान है। इसी कारण 'अभिमानिव्यपदेशस्तु' (२/१/५) इस 'ब्रह्मसूत्र' के शाङ्करभाष्य में कहा है- 'मृदाद्यभिमानिन्यो वागाद्यभिमानिन्यश्च चेतना देवता वदनसंवदनादिषु चेतनोचितेषु व्यवहारेषु व्यपदिश्यन्ते, न भूतेन्द्रियमात्रम्।....अनुगताश्च सर्वत्र अभिमानिन्यः चेतना देवता मन्त्रार्थवादेतिहास-पुराणादिभयो-ऽवगम्यन्ते-" इति। यहाँ पर आचार्य ने भूत तथा इन्द्रियों के अधिष्ठाता के चेतन में होने में वेद के मन्त्रभाग तथा ब्राह्मणभाग की भी साक्षी बताई है। तभी वेद में- 'वरुणोऽपामधिपतिः' (अथर्व० ५/२४/४) 'इन्द्रो वै यज्ञस्य देवता' (शतपथ० ३/५/२/९) जल, यज्ञ आदि के अधिष्ठाता देवता वरुण, इन्द्र आदि माने गये हैं।

इसी को स्वा० श्रीशंकराचार्य ने 'वेदान्त-दर्शन' के १/३/३३ सूत्र के भाष्य में भी स्पष्ट किया है। जैसे कि- 'ज्योतिरादिविषया अपि आदित्यादयो देवतावचनाः शब्दाः, चेतनावन्तम् ऐश्वर्याद्युपेतं तं तं देवतात्मानं समर्पयन्ति, मन्त्रार्थवादादिषु तथा व्यवहारात्। अस्ति हि ऐश्वर्ययोगाद् देवतानां ज्योतिराद्यात्मभिश्च अवस्थातुम्, यथेष्टं च तं तं विग्रहं ग्रहीतुं सामर्थ्यम्। तथाहि श्रूयते- 'मेधातिथि ह काण्वा-यनमिन्द्रो मेषो भूत्वा जहार' (षड्विंशब्रह्मण १/१) स्मर्यते च- 'आदित्यः पुरुषो भूत्वा कुन्तीमुपजगाम ह' इति। मृदादिष्वपि चेतना अधिष्ठातारोऽभ्युपगम्यन्ते- 'मृदब्रवीद्, आपोऽब्रुवन्-इत्यादि-दर्शनात्। ज्योतिरादेस्तु

भूतधातोरादित्यादिषु अचेतनत्वमभ्युप-गम्यते। चेतनास्तु अधिष्ठातारो देवतात्मानो मन्त्रार्थवादादिव्यवहाराद्-इत्युक्तम्'। (देवताधि-करणेऽष्टमे)।

इस सिद्धान्त का विशदीकरण आर्यसमाजी विद्वान् श्रीराजारामजी शास्त्री ने अपनी 'अथर्ववेदभाष्य' की भूमिका में इस प्रकार किया है- 'परमेश्वर की सृष्टि में देहधारी जीवों की सृष्टि नाना-प्रकार की है। इस भूलोक में ही शैवाल, तृण, घास आदि नाना-प्रकार के स्थावर और पशु-पक्षी आदि नाना प्रकार के जङ्गम हैं, ये सारे जीव-विशेष हैं। मनुष्य इन सबसे ऊँची श्रेणी का जीव है, पर परमात्मा की सृष्टि यहीं तक समाप्त नहीं है। मनुष्य से कई दर्जों में ऊँचा पद चेतना है। वे अपनी शक्ति और ज्ञान उनके सामने तुच्छ हैं। इस अनेक प्रकार की ऊँची सृष्टि में सबसे ऊँचा स्थान देवताओं का है। देवता चेतन हैं। मनुष्यों से ऊपर और परमेश्वर से नीचे हैं। परमेश्वर की ओर से उनको भिन्न-भिन्न अधिकार मिल हुए हैं जिनका कि वे पालन करते हैं। देवता अजर और अमर हैं, पर उनका अजर-अमर होना मनुष्यों की अपेक्षा से है, वस्तुतः उनकी भी अपनी-अपनी आयु नियत है। ब्रह्माण्ड की दिव्य शक्तियों में से एक-एक शक्ति पर एक-एक देवता का अधिकार है। जिस शक्ति पर जिसका अधिकार है, वही उसका देह है जो उसके वश में है।

जैसे हमारे देह में एक जीवात्मा है, जो इस देह का अधिपति है, इसी प्रकार उस शक्ति के अन्दर भी एक जीवात्मा है, जो उसका अधिपति है। जैसे हमारे अधीन यह देह है, वैसे ही एक देवता के अधीन सूर्यरूपी देह है। हम एक थोड़ी सी शक्ति वाले देह के स्वामी हैं, वह एक बड़ी शक्ति वाले देह का स्वामी है, वह अध्यात्म शक्तियों में इतना बढ़ा हुआ है कि- अपनी इच्छा के अनुसार जैसा चाहे, वैसा रूप धारकर, जहाँ चाहे वहाँ जा सकता है। वही देव सूर्य का अधिष्ठाता कहलाता है और सूर्य के नाम से ही बुलाया जाता है। इसी प्रकार अग्नि और वायु आदि के अधिष्ठाता देवता हैं। देवताओं का ऐश्वर्य बहुत बड़ा है; पर वह सारा परमेश्वर के अधीन है। एक-एक देवता एक-एक दिव्यशक्ति का नियन्ता है। पर उन सबके ऊपर उन सबका नियन्ता परमेश्वर है। इसलिए भी सभी देवता मिलकर जगत् का प्रबन्ध इस प्रकार कर रहे हैं- जिस प्रकार राजा के अधीन उसके भृत्य उसके राज्य का प्रबन्ध करते हैं।

देवताओं की उपासनाओं से उन कामनाओं की सिद्धि होती है, जिसके कि वे मालिक होते हैं।.... वे तब तक दिव्य-शरीर को धारण किये रहते हैं, जब तक उनका वह अधिकार समाप्त नहीं हो लेता, जिस अधिकार पर उनको परमेश्वर ने लगाया है। अधिकार की समाप्ति पर वे मुक्त हो जाते हैं और उनकी जगह दूसरे आ ग्रहण करते हैं; जो मनुष्यों में से ही उपासना द्वारा उस पद के योग्य बन गये हैं। देवताओं के ऐश्वर्य के दर्जे हैं, सबसे ऊँचा दर्जा ब्रह्मा का है, (अथर्ववेद भाष्य-भूमिका पृ० ११)

इससे स्पष्ट है कि सूर्य आदि देवता चेतना हैं। बल्कि शास्त्रों में तो यहाँ तक कहा है कि सभी वस्तुएँ चेतन हैं। इसी अभिप्राय से महाभाष्यकार श्रीपतञ्जलि ने भी ३/१/७ सूत्र में 'सर्वस्य वा चेतनावत्त्वात्' इस वार्तिक के विवरण में कहा है- 'अथवा सर्वं चेतनावत्। एवं हि आह- 'कंसकाः सर्पन्ति, शिरीषोऽयं स्वपिति,

सुर्वचला आदित्यमनु पर्येति। 'आस्कन्द कपिलक' इत्युक्ते तृणामास्कन्दति। अयस्कान्तमयः संक्रामति। ऋषिः (वेदः) पठति 'शृणोत ग्रावाणः' यहाँ पर 'शृणोत ग्रावाणः' **यह वेदमन्त्र देकर सिद्ध किया जाता है कि सभी जड़ दीख रही वस्तुएँ भी चेतन हैं।**

उक्त वेदमन्त्र यह है– शृणोत्वग्निः समिधा हवं मे, शृण्वन्तु आपोधिषणाश्च देवीः। शृणोत ग्रावाणो विदुषोऽनु यज्ञ शृणोतु देवः सविता हवं मे' (कृष्णयजुर्वेद–तैत्तिरीय सं० १/३/१३/१) **जब यहाँ जड़ पत्थर को भी वेद ने सुनने के लिए कहा है; तब पत्थर आदि बाह्य व्यवहार में अचेतन कहे जाते हुए भी, वेद की दृष्टि में चेतन हैं, यह वैदिक सिद्धान्त है।** यह महाभाष्यकार आशय है। इसी को 'प्रदीप' में कैयट ने स्पष्ट किया है– 'सर्वस्य वेति' आत्माऽद्वैतदर्शनेनेति भावः। ऋषिरिति–वेदः सर्वभावानां चैतन्यं प्रतिपादयतीत्यर्थः। वैचित्र्येण च पदार्थानामुपलम्भात् सर्वचेतनधर्मः सर्वत्र नोद्भावनीयः'। इसमें इस प्रश्न का कि **यदि पत्थर आदि चेतन हैं तो वे भी हम चेतनों की तरह चलते-बोलते क्यों नहीं– इसका उत्तर दे दिया गया है कि पदार्थों में परस्पर विचित्रता भी हुआ ही करती है, तब सभी चेतनों के धर्म उसी रूप में सभी चेतनों में नहीं मिल सकते, क्योंकि किसी में चेतनता अभिव्यक्त होती है; किसी में अनभिव्यक्त।** श्रीनागेशभट्ट ने भी अपने 'उद्योत' में इसी का इस प्रकार समर्थन किया है– 'वैचित्र्येणेति' चेतनेषु मनुष्येष्वपि नानाजातीय–व्यवहारदर्शनाद् इति भावः। सर्वत्र परिणामदर्शनेन चेतनाधिष्ठानं विना च तदऽसम्भवात् सर्वस्य तदधिष्ठितत्वं ज्ञायते इति तात्पर्यम्'। अर्थात् जब चेतन मनुष्यों में भी नाना प्रकार के व्यवहार दिखलाई पड़ते हैं, तब चेतन पत्थर आदियों में भी सभी चेतनों वाले व्यवहार नहीं हो जाते। चेतन मनुष्यों में भी लकवा आदि के कारण चलना–बोलना आदि चेष्टा नहीं रहती। जब सर्वत्र परिणाम–परिवर्तन आदि विकार दीखता है, तब वह चेतन के अधिष्ठान के बिना नहीं हो सकता। जब ऐसा है तब सभी पदार्थ चेतन हैं– यह स्पष्ट है।

वार्तमानिक विज्ञान भी इस सिद्धान्त की पुष्टि करता है। वैज्ञानिकों ने रेडियम धातु की विद्युत्कणिका–का परीक्षण करके यह ज्ञान प्राप्त किया है कि 'रेडियम' धातु के एक परमाणु से हजारों विद्युत–कणिका प्रतिक्षण में प्रकट होती हैं। परिमाण में वे कण इतने छोटे होते हैं कि एक हजार भी मिले हुए उनका संयुक्त–परिमाण वा गुरुत्व 'हाईड्रोजन' के एक परमाणु के तुल्य भी नहीं होता। इनके निकलने का वेग प्रकाश के वेग का लगभग दो–तिहाई होता है। प्रकाश का वेग एक सेकंड में १,८६,००० मील के लगभग सिद्ध किया गया है। सूर्य से लगभग साढ़े नौ करोड़ मील की दूरी पर स्थित पृथ्वी पर उसका प्रकाश आठ मिनट में पहुँचता है।

इन अपूर्व बातों को देखकर वैज्ञानिकों की यह धारणा हो गई है कि समस्त चराचर जगत् में सारभूत वस्तु कोई भी नहीं है और संसार में कोई भी पदार्थ जड़ नहीं है। जड़ कहे जाने वाले पदार्थों के छोटे से छोटे कण अर्थात् परमाणु को देखने से तथा उसे तोड़कर उसके सहस्रों भाग करने पर विद्युत्कणियों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं मिलता। फिर भी उनकी सत्ता दिखाई पड़ती है और नियम से प्रतिक्षण

उनकी चलन-प्रवृत्ति मिलती है; इससे वर्तमान वैज्ञानिकों के विचार में जड़ वस्तुओं में भी दैवी शक्ति का आभास दीखने से जड़ों में भी चेतन-सत्ता सिद्ध हुई।

वस्तुतः यह सिद्धान्त है भी ठीक ही। शास्त्र का भी यही सिद्धान्त है। शास्त्र परमात्मा को अणु-अणु में व्याप्त मानता है। अद्वैत-सिद्धान्त में तो अणु-अणु भी परमात्मा का ही रूप है, वा परमात्मा ही है। उस (परमात्मा) से भिन्न किसी भी वस्तु की पारमार्थिक सत्ता नहीं है। ईश्वर 'सच्चिदानन्द' इस शब्द से चेतन ही है; तो समस्त सांसारिक वस्तुएँ जड़ दीख रहीं हुई भी वस्तुतः चेतन ही हैं। जो कि उनमें स्थूलता से चेतन्य की अभिव्यक्ति नहीं दीखती; उसमें कारण है उनमें स्थूलता से इन्द्रियों तथा मन की अनभिव्यक्ति। आत्मा को ही देख लीजिये, वह चेतन है। जब उसमें मरण के समय इन्द्रियाँ और मन अभिव्यक्त नहीं होते; तब वह आत्मा भी चेष्टाशाली नहीं मालूम होता। प्रत्युत आत्मा के शरीर में विद्यमान होने पर भी, उसमें होती हुई भी इन्द्रियाँ कारणवश कार्य करने वाली नहीं होतीं, वा निर्बल हो जाती है; तब आत्म युक्त शरीर वाले होने पर भी पुरुष की चेष्टा नहीं दीखती। इस विषय में मूर्छित (बेहोश) पुरुषों का उदाहरण देख लीजिये। अथवा न मूर्च्छित भी निर्बल-इन्द्रिय शक्ति वाले, वा लकवा बीमारी से घिरे पुरुषों का उदाहरण देख लीजिये। परमात्मा चेतना माना जाता है, पर उसमें 'हरकत' क्यों नहीं दीखती? उसमें भी कारण है उसका स्थूल इन्द्रिय-मन आदि से असंयोग। इसीलिए उसके शब्द आदि व्यवहार भी स्थूल नहीं हुआ करते।

इससे सिद्ध हुआ कि-जड़ वस्तु भी वास्तव में चेतन हुआ करती है। भैंस की पुरीष के जड़ परमाणुओं में जब स्थूलता से विशिष्ट शक्ति का संयोग व्यक्त होता है; तब उसके पुरीष में कीड़े हो जाते हैं। यदि जड़ों में चेतन-शक्ति सर्वथा न होती; तो अभाव से भाव की उत्पत्ति कैसे हो गई? जो चैतन्य शक्ति कीड़ों में है, वह भैंस की पुरीष के जड़ कहे जाने वाले परमाणुओं में भी थी। परन्तु इन्द्रियादि की अभिव्यक्ति न होने से वह चैतन्य-शक्ति अपना उपयोग न कर सकी। बल्ब न होने पर बिजली नहीं जला करती। इसी सिद्धान्त को मानकर स्वर्गीय जगदीशचन्द्रवसु ने वृक्षों में चेतनता मानी थी; इसी प्रकार पत्थरों में भी मानी। इसी अभिप्राय से वर्तमान वैज्ञानिक लोग सूर्य में भी प्रसन्नता-अप्रसन्नता के परमाणु मानने लगे हैं। बुद्धि के अधिष्ठाता देव सूर्य हैं।

इसका विवरण इस प्रकार है। कैम्ब्रिज-युनिवर्सिटी लन्दन में सूर्य के विषय में एक लैक्चर हुआ था; जो समाचार पत्रों में प्रकाशित हो चुका है। उसको तो हम फिर अन्य लेखों में पाठकों को उपहृत करेंगे। उसमें प्रकृत अंश यह है। उस व्याख्याता ने कहा- 'उत्तरी अमेरिका के ग्रेनलैण्ड प्रदेश में एक दफीने का खोदना शुरू हुआ। खोदने पर दफीना (माणिक्य) तो मिला नहीं, किन्तु एक देवमन्दिर मिला। उसमें सूर्य की एक मूर्ति है, जो चमकदार पत्थरों से बनाई हुई है। सूर्य के सामने ही अग्नि में धुवाँ उठ रहा है, जिससे मालूम होता है कि- अग्नि में कुछ सुगन्धित द्रव्य डाला गया है। इधर-उधर फूल पड़े हैं। यह सब दृश्य पत्थरों से बनाया गया है।

इस विचित्र सूर्य–मन्दिर मिलने से मालूम हुआ कि– किसी युग में हिन्दुओं का चक्रवर्ती राज्य अमेरिका तक फैला था। इसके अतिरिक्त यह भी मालूम हुआ कि– हिन्दुओं का विश्वास था कि– सूर्य प्रसन्न तथा क्रुद्ध भी हो सकता है। यदि ऐसा विचार न होता; तो एक हिन्दु उस (सूर्य) की पूजा क्यों करता? क्यों उसे नमस्कार करता? इस विषय को लेकर वैज्ञानिक संसार में क्रान्ति उत्पन्न हो गई। मिस्टर जार्ज नामक किसी विज्ञान के प्रोफेसर ने यह परीक्षा की कि सूर्य में कृपाशक्ति है या नहीं? हम सूर्य में समस्त तत्त्वों की सत्ता तो मानते रहे; पर यह कल्पना भी नहीं कर सके कि सूर्य में प्रसन्नता–अप्रसन्नता का तत्त्व भी विद्यमान है। हिन्दुओं की सूर्य–पूजा का वृत्त भारतीय प्राचीन इतिहास से हमें पहले ही पता था। अमेरिका में मिले सूर्य–मन्दिर से हमें हिन्दुओं की सूर्य–पूजा में अन्य भी निश्चय हो गया। मि० जार्ज ने सोचा कि– हिन्दुओं की सूर्योपासना क्या मूर्खतापूर्ण थी वा वास्तविकतापूर्ण?

इसकी रोचक परीक्षा हुई। मई का महीना था। पूरे दोपहर के समय केवल पाजामा पहने मि० जार्ज नंगे शरीर धूप में ठहरे। पाँच मिनट सूर्य के सामने ठहरकर वे कमरे में गये। थर्मामीटर से उन्होंने अपना तापमान देखा। तीन डिग्री तक बुखार चढ़ा था। दूसरे दिन उक्त महाशय ने फूल–फलों का उपहार तैयार किया। अग्नि में धूप जलाया। तब वह पूरे दोपहर में नंगे शरीर धूप में गया। उसने सूर्य के सामने श्रद्धा से फूल चढ़ाये, फल भी। हाथ जोड़कर प्रणाम किया। जब वह अपने कमरे में गया; तो घड़ी में उसने देखा कि– आज वह ग्यारह मिनट तक सूर्य के सामने रहा। थर्मामीटर से मालूम हुआ कि–आज उसका तापमान नार्मल रहा। उसका पारा ठण्डक की ओर रहा।

इससे उसने यह परिणाम निकाला कि वैज्ञानिकों का ''सूर्य केवल अग्नि का गोला और जड़ है'' यह सिद्धान्त गलत है, वस्तुतः उसमें अप्रसन्नता और प्रसन्नता तत्त्व भी विद्यमान है।'' ❑❑❑

# अहंकार पतन का कारण

धन और देहबल के अहंकार में डूबकर जो धर्म तथा मर्यादाओं का उल्लंघन कर मनमाना उच्छृंखल आचरण करते हैं, एक न एक दिन वे दुर्गति को अवश्य प्राप्त होते हैं।

धन का अहंकार मनुष्य को अंधा बनाकर उससे बड़ा–से–बड़ा घोर पाप–कर्म करा देता है। धन से अंध हुआ व्यक्ति कई बार तो छोटे–बड़े का अन्तर भूलकर, अपने कर्त्तव्य को भुलाकर अक्षम्य अपराध तक कर बैठता है। वह यह भूल जाता है कि धन की चकाचौंध ने उसकी आँखों पर पर्दा डाला हुआ है तथा वह जो घोर कुकृत्य, धर्मविरुद्ध आचरण करने में नहीं हिचकिचा रहा, यही उसके वंशनाश तथा घोर पतन का कारण बनने वाले हैं। अतः धन के मद में अन्धे कदापि नहीं बनो।

जीवन का अन्तिम लक्ष्य धन, सत्ता या ऐश्वर्य नहीं, भगवान की कृपा प्राप्ति होना चाहिए। सीमा से अधिक सम्पत्ति विपत्ति का कारण अवश्य बनती है। ('सद्गृहस्थ सन्त भक्तरामशरणदास' से साभार)

❑❑❑

# पूज्यपाद जगद्गुरु जी द्वारा नवनिर्मित शिव मन्दिर में प्राण प्रतिष्ठा समारोह तथा 'प्रेम इण्डस्ट्रीज़' में नई यूनिट का उद्घाटन

❑ श्रीमती कुसुम गोयल

आशुतोष भगवान शंकर की असीम अनुकम्पा एवं श्रीमज्जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज की अहैतुकी कृपा से बुलन्दशहर रोड औद्योगिक क्षेत्र गाजियाबाद में दिनांक १५ फरवरी २००९ रविवार सायं ५ बजे नवनिर्मित शिवमन्दिर, (जिसका परमपूज्य गुरुदेव ने 'धनेश्वर मन्दिर' नामकरण किया) में पूर्ण शास्त्रीय विधि से पूजा अर्चन के साथ प्राण प्रतिष्ठा समारोह सम्पन्न कराया।

इससे पूर्व परमश्रद्धेय गुरु जी ने 'रामेश्वरम्' में आयोजित श्रीमद्भागवत कथा में हमें आज्ञा दी थी कि तुम हरिद्वार जाकर पवित्र नर्मदेश्वर शिवलिंग (१२ अंगुल प्रमाण) लेकर आओ और आचार्य चन्द्रदत्त सुवेदी आदि चार आचार्यों द्वारा प्राण प्रतिष्ठा से पूर्व की सारी वैदिक क्रिया सम्पन्न कराओ। मेरे पतिदेव श्रीराजेन्द्र गोयल ३० जनवरी २००९ को प्रातः हरिद्वार गये और गुरुदेव की आज्ञानुसार पवित्र नर्मदेश्वर शिवलिंग लेकर आये। तदनन्तर हमारे आवास 'प्रेम निवास' में नर्मदेश्वर भगवान को गंगाजल से स्नान कराकर श्वेतवस्त्र में लपेटकर घण्टे मंजीरों आदि वाद्यों के साथ आचार्य चन्द्रदत्त सुवेदी आदि आचार्यों द्वारा वेद मन्त्रों का पाठ तथा कीर्तन करते हुए हमारे परिवार के सभी सदस्यों ने 'प्रेम इण्डस्ट्रीज' को प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर पं० चन्द्रदत्त सुवेदी, पं० कृष्ण कुमार, पं० केशवदेव आदि आचार्यों ने पूजा की तैयारी की। १३ फरवरी को प्रातः वेदमन्त्रों के साथ पूजा आरम्भ हुई। वेदमन्त्रों की ध्वनि से सारा वातावरण गुंजायमान हो उठा। ऐसा प्रतीत हो रहा था मनो हम फैक्ट्री में नहीं मन्दिर में असंख्य भगवद्भक्तों के साथ विराजमान हैं।

सर्वप्रथम परमपवित्र भगवान नर्मदेश्वर को गाय के घी में लपेटा गया। कुछ समय पश्चात् शिवलिंग (नर्मदेश्वर भगवान) का जलाभिषेक सम्पन्न हुआ। तदनन्तर गंगाजल, दूध, दही, रोली, चावल, चन्दन, धूपबत्ती, पुष्प तथा बिल्वपत्रों से विधि विधान से पूजा कराकर नर्मदेश्वर भगवान को पीले वस्त्र में ढककर रखा गया। अगले दिन १४ फरवरी को पवित्र शिवलिंग को चावलों में रखा गया और पूजन के उपरान्त पुष्पों में पूर्ववत् रखा गया और इसके पश्चात् फलावास कराया गया। इसके पश्चात् जो पूजा आरम्भ हुई उसकी तो मुझे कल्पना भी नहीं थी नर्मदेश्वर भगवान (पवित्र शिवलिंग) को शुद्ध पात्र में विराजमान कर १०८ कलशों के जल से अभिषेक कराया गया। पूजन की इस प्रक्रिया को देखकर परिवार का प्रत्येक सदस्य भक्तिभाव में डूबकर रोमांचित हो रहा था। श्रीसुवेदी जी के साथ सभी आचार्य उच्च स्वर से वेदमन्त्रों का उच्चारण कर रहे थे तब ऐसा प्रतीत होता था कि आकाश से देवगण वेदमन्त्रों का सस्वर पाठ कर रहे हों। सभी कलशों में पवित्र गोमूत्र, गोधृत,

गोदुग्ध, गोदधि और गोबर तथाा गंगाजल, पवित्र स्थानों की मिट्टी, जड़ी बूटी और पवित्र सरिताओं का जल भरा था। १४ जनवरी को प्रातः हवन में परिवार के सभी सदस्य सम्मिलित हुए और 'स्वाहा' की दिव्य ध्वनि से फैक्ट्री का परिसर गुंजायमान हो उठा। दोपहर में ही पूज्यपाद गुरुदेव की आज्ञानुसार श्रीरामचरितमानस का अखण्ड पाठ "आशुतोष तुम अवढर दानी। आरति हरहु दीन जन जानी" सम्पुट के साथ प्रारम्भ हुआ जो १५ जनवरी को दोपहर तक पूर्ण हुआ। इसके पश्चात् भगवन्नाम संकीर्तन हुआ। परमपूज्य गुरुदेव के पधारने का समय ज्यों ज्यों आ रहा था हम सबके हृदय की धड़कन बढ़ रही थी और गुरुदेव के दर्शनों की व्याकुलता भी अधीर कर रही थी। सायं ठीक ५ बजे परमपूज्य गुरुदेव और पूज्या बुआ जी का शुभागमन हुआ। आचार्य सुवेदी जी तथा अन्य आचार्यों ने वेदमन्त्रों से प्रातः स्मरणीय गुरुदेव एवं परमपूज्या बुआ जी का स्वागत किया तथा तुलसीमण्डल के सभी सदस्यों ने 'जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी की जय, गुरुदेव भगवान की जय, पूज्या बुआ जी की जय' के नारों से वातावरण को आनन्दमय कर दिया। परिवार के सदस्य श्रीवेद प्रकाश गोयल (अग्रज) श्रीविजेन्द्र गोयल (अनुज) तथा बहुओं एवं बालकों ने पुष्पहार समर्पित कर गुरुदेव का स्वागत किया और गुरुदेव के मार्ग में फूलों की चादर बिछा दी। हमने गुरुदेव के श्रीचरणों को पवित्र जल से धोकर चरणामृत ग्रहण किया मुझे उस समय श्रीकृष्ण सुदामा का स्मरण हो आया मेरी आँखों में श्रद्धा और सौभाग्य के आँसू भर गये मानों नेत्र आँसुओं से गुरुदेव के चरण प्रक्षालन को आतुर हो रहे थे। इसके पश्चात् सभी ने परम पूज्य गुरुदेव एवं पूज्या बुआ जी को पुष्पहार समर्पित कर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। गुरुदेव एवं बुआ जी नवनिर्मित शिव मन्दिर में विराजमान हुए। गुरुदेव ने वेदमन्त्रों के साथ भगवान नर्मदेश्वर का ग्यारह बार अभिषेक किया। विधि विधान से प्राण प्रतिष्ठा सम्पन्न कराई और नर्मदेश्वर भगवान को 'धनेश्वर' भगवान के नाम से अभिहित किया। भगवान का अभिषेक पूर्ण होने पर आरती की गई। इस सम्पूर्ण कार्यक्रम में नित्य रामायण सत्संग सभा के संयोजक श्री पं० चन्द्र प्रकाश कौशिक भी उपस्थित रहे। सभी आगन्तुकों ने भोजन प्रसाद ग्रहण किया और कार्यक्रम पूर्ण हुआ। गुरुदेव प्रेम निवास में पधारे और १६ जनवरी को प्रातः सब बच्चों को आशीर्वाद दिया। हमारे पौत्र विभव और प्रभव के साथ खेलते हुए गुरुदेव स्वयं बालक बन गये अहमदाबाद को प्रस्थान करने से पूर्व सबने गुरुदेव एवं बुआ जी के चरणों में नमो राघवाय निवेदन करके आशीर्वाद प्राप्त किया। हमारे परमपूज्य गुरुदेव हमारे हृदय में सदैव विराजमान रहें इसी भाव के साथ हमने गुरुदेव को सम्मानपूर्वक विदा किया। यह सत्य ही है कि–

**गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु र्गुरुः साक्षान्महेश्वरः।**
**गुरुरेव परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।।**

नमो राघवाय।

❑❑❑

# व्रतोत्सवतिथिनिर्णयपत्रक

## फाल्गुन शुक्ल पक्ष/सूर्य उत्तरायण, वसन्त ऋतु

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | व्रत पर्व आदि विवरण |
|---|---|---|---|---|
| एकादशी | शनिवार | पुनर्वसु | 7 मार्च | **आमलकी एकादशीव्रत (सबका)** |
| द्वादशी | रविवार | पुष्य | 8 मार्च | प्रदोष व्रत |
| त्रयोदशी | सोमवार | श्लेषा | 9 मार्च | – |
| चतुर्दशी | मंगलवार | मघा | 10 मार्च | सत्यनारायणव्रत–**होलिका दहन रात 9 बजे के बाद** होलाष्टक पूर्ण/ श्रीचैतन्य महाप्रभु जयन्ती |
| पूर्णिमा | बुधवार | पू०फा० | 11 मार्च | पूर्णिमा प्रातः 8/10 तक |

## चैत्र कृष्ण पक्ष /सूर्य उत्तरायण, वसन्त ऋतु

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | व्रत पर्व आदि विवरण |
|---|---|---|---|---|
| प्रतिपदा | बुधवार | – | 11 मार्च | प्रतिपदा तिथि का क्षय |
| द्वितीया | गुरुवार | उ०फा० | 12 मार्च | – |
| तृतीया | शुक्रवार | हस्त | 13 मार्च | – |
| चतुर्थी | शनिवार | चित्रा | 14 मार्च | श्रीगणेश चतुर्थी व्रत–संक्रान्ति सूर्य मीन में |
| पंचमी | रविवार | स्वाति | 15 मार्च | – |
| षष्ठी | सोमवार | विशाखा | 16 मार्च | – |
| षष्ठी | मंगलवार | अनुराधा | 17 मार्च | षष्ठी तिथि का क्षय |
| सप्तमी | बुधवार | ज्येष्ठा | 18 मार्च | शीतलाष्टमी बसौड़ा |
| अष्टमी | गुरुवार | मूल | 19 मार्च | – |
| नवमी | शुक्रवार | पू०षा० | 20 मार्च | – |
| दशमी | शनिवार | उ०षा० | 21 मार्च | – |
| एकादशी | रविवार | श्रवण | 22 मार्च | **पापमोचनी एकादशी व्रत (सबका)** |
| द्वादशी | सोमवार | धनिष्ठा | 23 मार्च | पंचक दिन में 3/5 से प्रारम्भ |
| त्रयोदशी | मंगलवार | शतभिषा | 24 मार्च | भौम प्रदोष व्रत |
| चतुर्दशी | बुधवार | पू०भा० | 25 मार्च | – |
| अमावस्या | गुरुवार | उ०भा० | 26 मार्च | अमावस्या चन्द्र सम्वत्सर 2065 पूर्ण |

卐 श्रीमद्राघवो विजयते 卐

धर्मचक्रवर्ती, महामहोपाध्याय, जीवनपर्यन्त कुलाधिपति, वाचस्पति, महाकवि
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य **स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज**
का राष्ट्रीय, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक चेतना का संवाहक

# श्रीतुलसीपीठसौरभ

**( मासिक पत्र )**

सीतारामपदाम्बुजभक्तिं भारतभविष्णु जनतैक्यम्।
वितरतु दिशिदिशि शान्तिं श्रीतुलसीपीठसौरभं भव्यम्।।

वर्ष १३ | मार्च २००९ (४, ५ अप्रैल को प्रेषित) | अंक–७

**संस्थापक-संरक्षक**
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य
**स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज**

**संरक्षक एवं प्रकाशक**
**डॉ० कु० गीता देवी ( पूज्या बुआ जी )**
प्रबन्धन्यासी, श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास, चित्रकूट

**सम्पादक**
**आचार्य दिवाकर शर्मा**
220 के, रामनगर, गाजियाबाद–201001
दूरभाष–0120–2712786, **मो०–** 09971527545

**सहसम्पादक**
**डा० सुरेन्द्र शर्मा 'सुशील'**
डी–255, गोविन्दपुरम्, गाजियाबाद–201001
दूरभाष : 0120–2767255, मो०–09868932755

**प्रबन्ध सम्पादक**
**श्री ललिता प्रसाद बड़थ्वाल**
सी–295, लोहियानगर, गाजियाबाद–201001
0120–2756891, मो०– 09810949921

**सहयोगी मण्डल** (ये सभी पद अवैतनिक हैं)
**डा० श्रीमती वन्दना श्रीवास्तव,** ✆ 09971149779
**श्री दिनेश कुमार गौतम,** ✆ 09868977989
**श्री सत्येन्द्र शर्मा एडवोकेट,** ✆ 09810719379
**श्री अरविन्द गर्ग सी.ए.,** ✆ 09810131338
**श्री सर्वेश कुमार गर्ग,** ✆ 09810025852
**डॉ० देवकराम शर्मा,** ✆ 09811032029

**पूज्यपाद जगद्गुरु जी के सम्पर्क सूत्र :**
**श्रीतुलसीपीठ, आमोदवन,**
पो० नया गाँव श्रीचित्रकूटधाम (सतना) म०प्र०485331
✆–07670–265478, 05198- 224413

**वसिष्ठायनम् -** जगद्गुरु रामानन्दाचार्य मार्ग
रानी गली नं०–1, भूपतवाला, हरिद्वार (उत्तरांचल)
दूरभाष–01334–260323

**श्री गीता ज्ञान मन्दिर**
भक्तिनगर सर्कल, राजकोट (गुजरात)
दूरभाष–0281–2364465

**पंजीकृत सम्पादकीय कार्यालय एवं पत्र व्यवहार का पता**
आचार्य दिवाकर शर्मा,
220 के., रामनगर, गाजियाबाद–201001
दूरभाष–0120–2712786, मो०– 09971527545

# रामानन्दः स्वयं रामः प्रादुर्भूतो महीतले

## विषयानुक्रमणिका



## सुधी पाठकों से विनम्र निवेदन

१. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' का प्रत्येक अंक प्रत्येक दशा और परिस्थिति में प्रत्येक महीने की ४ तथा ५ तारीख को डाक से प्रेषित किया जाता है। पत्रिका में छपे महीने का अंक आगामी महीने में ही आपको प्राप्त होगा।

२. 'श्रीतुलसीपीठ सौरभ' मंगाने हेतु बैंक ड्राफ्ट 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' के नाम से ही बनबाएँ तथा प्रेषित लिफाफे के ऊपर हमारा नाम तथा पूरा पता स्पष्ट अक्षरों में लिखें। मनीआर्डर पर हमारा नाम-पता ही लिखें प्रधान सम्पादक अथवा प्रबन्ध सम्पादक कभी न लिखें।

३. पत्रव्यवहार करते समय अथवा ड्राफ्ट-मनीआर्डर भेजते समय अपनी वह ग्राहक संख्या अवश्य लिखें जो पत्रिका के लिफाफे के ऊपर आपके नाम से पहले लिखी है।

४. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' में **'पूज्यपाद जगद्गुरु जी'** से अभिप्राय **धर्मचक्रवर्ती श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज समझा जाए।**

५. 'श्रीतुलसीपीठ सौरभ' में प्रकाशित लेख/कविता/अथवा अन्य सामग्री के लिए लेखक/कवि अथवा प्रेषक महानुभाव ही उत्तरदायी होंगे, सम्पादक मण्डल नहीं।

६. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' प्राप्त न होने पर हमें पत्र लिखें अथवा फोन करें। हम यद्यपि दूसरी बार पुनः भेजेंगे। किन्तु अपने डाकखाने से भलीप्रकार पूछताछ करके ही हमें सूचित करें।

७. **डाक की घोर अव्यवस्था के चलते हमें दोषी न समझें। हमें और आपको इसी परिस्थिति में 'पूज्यपाद जगद्गुरु जी' का कृपा प्रसाद शिरोधार्य करना है।**

८. सुधी पाठक अपने लेख/कविता आदि स्पष्ट अक्षरों में लिखकर भेजें। यथासमय-यथासम्भव हम प्रकाशित करेंगे। अप्रकाशित लेखों को लौटाने की हमारी व्यवस्था नहीं है।

**–सम्पादकमण्डल**

### सदस्यता सहयोग राशि

| | |
|---|---|
| संरक्षक | ११,०००/– |
| आजीवन | ५,१००/– |
| पन्द्रह वर्षीय | १,०००/– |
| वार्षिक | १००/– |

श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास, चित्रकूट के स्वामित्व में मुद्रक तथा प्रकाशक डॉ० कु० गीतादेवी (प्रबन्धन्यासी) ने श्री राघव प्रिंटर्स, जी-१७ तिरुपति प्लाजा, बेगम पुल रोड, बच्चापार्क, मेरठ, फोन (का०) 4002639, मो०-9319974969, से मुद्रित कराकर कार्यालय २२० के., रामनगर, गाजियाबाद से प्रकाशित किया।

सम्पादकीय-

# सदाचार ही धर्म है

भारत आदिकाल से ही धर्मप्रधान देश रहा है। यह धर्म ही तो है जो मनुष्य और पशु में अन्तर करता है। पशु में धर्म नहीं है मनुष्य में धर्म है कहा गया है–

**आहार निद्राभय मैथुनं च, सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्।**
**धर्मो हि तेषामधिको विशेषो, धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।।**

पर हमारे मन में यह जिज्ञासा हो सकती है कि धर्म क्या है? हम ध्यान रखें कि पूजा विशेष धर्म नहीं है विशेष वस्त्र धारण करना, विशेष प्रकार का आचरण धर्म नहीं है। वेदों में धर्म की परिभाषा इस प्रकार ही गई है कि–

**वेदप्रणहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद् विपर्ययः।**

अर्थात् वेदों में जिस कर्म को करने की आज्ञा दी गई है वह धर्म है और इसके विपरीत जो है वह अधर्म है। दूसरे शब्दों में कहें तो हमारे महर्षियों तथा सन्तों ने जिस आचरण का अनुमोदन किया वह सदाचार ही धर्म है। 'सतां आचारः सदाचारः। मनु ने वेद, स्मृति, सन्तों का आचरण और अपना मन या आत्मा इन चारों को सदाचारण के आधार स्तम्भ माना है। महाभारत में व्यास जी ने भी कहा है–

**श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।**
**आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।।**

धर्म का सर्वस्व सुनो और समझो। वह साररूप में यही है कि जो अपने प्रतिकूल हो अर्थात् जो स्वयं को अच्छा न लगे उस व्यवहार को दूसरों के साथ मत करो। गीता जी में धर्म की व्याख्या इस प्रकार की गई है–

**धारणाद्धर्म इत्याहु धर्मो धारयते प्रजाः।**

अर्थात् आचरण को हम जीवन में धारण करते हैं वही धर्म है। दूसरे शब्दों में अपना कर्तव्य ही धर्म है। प्रात:काल उठकर सायं सोने तक के सम्पूर्ण क्रिया कलाप धर्म के अन्तर्गत हैं। धर्माचरण के बिना हमारा जीवन चल ही नहीं सकता। प्रातः उठना माता–पिता को, भगवान को, धरती माता को प्रणाम करना स्नानादि नित्यकर्म के पश्चात् अपने इष्टदेव का स्मरण अपने सम्प्रदाय के अनुसार पाठ, पूजा, भजन, कीर्तन तथा अपने कार्य को निष्ठापूर्वक ईमानदारी से करना यह सब धर्म के अन्तर्गत है। आज हमारे देश के कर्णधार जो 'धर्म निरपेक्षता' की बात करते हैं वह सर्वथा छलावा मात्र है। हम ध्यान रखें कि सदाचरण ही धर्म है जब सदाचार जीवन में नहीं रहेगा तो क्या जीवन नरक समान नहीं होगा? सदाचरण की उपेक्षा के कारण ही आज देश में अशान्ति, दुराचार और पापाचार का ताण्डव नृत्य हमें दिखाई पड़ रहा है। आज हम पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव में इतने आकण्ठमग्न हैं कि हमें कर्तव्याकर्तव्य का बोध नहीं रहा है और हम येन केन प्रकारेण ऐश्वर्य के साधन जुटाने में ही जीवन की सार्थकता मानने लगे हैं। हम भूल गये हैं कि–

**एतद् देशप्रसूतस्य सकाशादग्र जन्मनः।**
**स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।।**

अर्थात् हम अपने महापुरुषों से अपने चरित्र की, आचरण की शिक्षा ग्रहण करें। जबकि आज हम अपने बड़ों की उपेक्षा करने में गौरव का अनुभव कर रहे हैं। जो व्यक्ति हमसे धर्माचरण की चर्चा करता है उसकी हम रुढिवादी या पुराणपन्थी कहकर निन्दा करते हैं इस दुष्प्रवृत्ति को त्यागकर हम सदाचरण अपनायें तभी हमारा सर्वविध कल्याण होगा। नमो राघवाय।

**आचार्य दिवाकर शर्मा**
प्रधान सम्पादक

# वाल्मीकिरामायण सुधा ( ४७ )

(गतांक से आगे)

❑ धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

गीतावली जी में प्रमाण है– ''तेहि माथ ज्यों रघुनाथ अपने हाथ जल अंजलि दई'' शबरी धन्य हो गई।

**शबर्या पूजितः सम्यक् रामो दशरथात्मजः।**
**पम्पातीरे हनुमता संगतो वानरेण ह।।**

परिपूर्णतम परात्पर परमात्मा मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम आज परमभागवत से मिलने आ रहे हैं। एक व्यक्ति को पत्नी के अतिरिक्त परिवार में न्यूनतम कितने व्यक्ति चाहिए? तीन चाहिए। माता, पिता और पुत्र। गृध्रराज जटायु श्रीराम को पिता मिल गये, शबरी माता मिल गईं। शबरी ने कहा सरकार! आप पम्पासर जाइये। वहाँ आपको सुग्रीव तो मिलेंगे ही। सुग्रीव के साथ साथ आपको एक बड़ा प्यारा प्यारा बेटा मिलेगा। और वास्तव में आज वह दिन आया। महर्षि वाल्मीकि कहते हैं–

**तौ तु दृष्ट्वा महात्मानौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।**
**वरायुधधरौ वीरौ सुग्रीवः शंकितोऽभवत् ।।**

सुग्रीव ने जब धनुष बाण लिए हुए, महात्मा श्रीरामलक्ष्मण दोनों भाइयों को देखा–

**अति सभीत कह सुनु हनुमाना।**
**पुरुष जुगल बलरूप निधाना।।**

तो अत्यन्त भयभीत होकर कहा– हनुमान जी सुनिये। क्या ये हमको मारने आ रहे हैं। तब हनुमान जी ने कहा–

**अहो शाखामृगत्वं ते व्यक्तमेव प्लवंगम।**
**लघुचित्ततयाऽऽत्मानं न स्थापयसि यो मतौ।।**

हे सुग्रीव! आज आपका वानरत्व स्पष्ट हो गया। इतना छोटा चित्त है, कि आप परमात्मा को अपनी बुद्धि में स्थापित नहीं कर रहे हैं। आप ऐसा क्यों सोच रहे हैं कि ये आपको मारने आ रहे हैं। ये आपको मारने नहीं ये तो आपको तारने आ रहे हैं। आप समझ नहीं पा रहे हैं–

**उनकी करुणा में कोई कमी है नहीं**
**पात्रता में हमारी कमी रह गई।**
**उनकी ममता में कोई कमी है नहीं**
**पुत्रता में हमारी कमी रह गई।।**
**देव दुर्लभ दिया देह प्रभु ने हमें**
**जो है आधार शुभ साधनों का विमल।**
**उनकी क्षमता में कोई कमी है नहीं**
**योग्यता में हमारी कमी रह गई।**
**प्रति दिवस आके मिलते हैं हमको प्रभु**
**फिर भी हमने नहीं पहचाना उन्हें।**
**रवि के उगने में कोई कमी है नहीं**
**नेत्रता में हमारी कमी रह गई।**

सुग्रीव ने कहा– हनुमान जी आप मेरे सामने उनसे बात कीजिए। ठीक है। यहाँ आप महर्षि वाल्मीकि जी की शब्दावली देखिए–

**कपिरूपं परित्यज्य हनुमान् मारुतात्मजः।**
**भिक्षुरूपं ततोभेजेऽशठबुद्धितया कपिः।।**

हनुमान जी महाराज ने अपना वानररूप छोड़ा और एक भिक्षुक का रूप बनाया और सोचा कि आज प्रभु से मैं भीख माँगूँगा। मैं राघव जी से कहूँगा–

**तू दयालु दीन हौं तू दानि हौं भिखारी।**
**हौं प्रसिद्ध पातकी तू पापपुंज हारी। तू दयालु....**

रावण ने भिक्षा माँगी थी सीता जी से और हनुमान जी भिक्षा माँगेंगे श्री राघव से। रावण ने छल किया था हनुमान जी छल नहीं करेंगे। हनुमान जी ब्राह्मण का वेश बना रहे हैं–

**कंचन वर्ण विराज सुवेशा।**
**कानन कुण्डल कुंचित केशा।**

यहाँ हनुमान जी को सुवेशा कैसे कह दिया गया। क्योंकि–

**कियेउ कुवेश साधु सनमानू।**
**जिमि जग जामवन्त हनुमानू।।**

हनुमान जी के कान में कुण्डल कब से बना? बाल उनके घुँघराले कहाँ हैं?

**कपिश केश कर्कश लघु.......।**

इस विषय में कहना चाहता हूँ कि एक भ्रान्ति चली हुई है। पढ़े लिखे लोग अधिक भ्रान्ति करते हैं। कुछ लोग कहने लगे हैं कि हनुमान चालीसा गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज की रचना नहीं है। यह सत्य नहीं है, वन्दनपाठक की दी हुई प्रति के अनुसार काशीनागरी प्रचारिणी सभा ने गोस्वामी तुलसीदास जी के रामचरितमानस के अतिरिक्त ११ ग्रन्थ छापे तो सर्वत्र परम्परा चल पड़ी कि १२ ग्रन्थ हैं। यद्यपि ऐसा नहीं है, मैं विश्वासपूर्वक कहता हूँ कि हनुमान चालीसा भी गोस्वामी तुलसीदास जी की ही रचना है। अभी अभी जो नया अनुसन्धान हुआ है उसके अनुसार श्री तुलसीदास जी महाराज के द्वारा रचित ग्रन्थों की संख्या ५२ तक पहुँच चुकी है। हनुमान चालीसा तो गोस्वामी जी की बहुत प्रामाणिक रचना है। कुछ लोग कहते हैं कि दारागंज प्रयाग में एक तुलसीदास नाम के महात्मा रहते थे यह उनकी रचना है। कुछ लोग इसे बीसवीं शताब्दी की रचना बताते हैं। हमने उनका खण्डन करते हुए बताया और कोर्ट में भी मैंने यह बात बताई कि हनुमान चालीसा गोस्वामी तुलसीदास जी की इसलिए रचना है कि यह तो परम्परा से, अभिलेखों से और इतिहास से सिद्ध हो गया है कि जब भारतवर्ष में अंग्रेजों का शासन था उस समय कुछ सामान्य लोगों को पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के कुछ लोगों को अंग्रेज बहलाकर मारीशस ले गये। वहाँ से ये लोग आ नहीं पाए। वहीं उन्होंने अपने सम्बन्ध किये। इनके पूर्वजों के नाम पर इनके सरनेम बने। वहाँ न कोई ब्राह्मण न क्षत्रिय था अंग्रेजों के आदेश पर इन लोगों ने परस्पर सम्बन्ध स्थापित किये। उस समय भी हिन्दुत्व की रक्षा कैसे हुई थी इसके लिए ये मजदूर तीन वस्तुएँ अपने साथ ले गये थे। श्रीतुलसीकृत रामायण, सत्यनारायण कथा की पुस्तक और हनुमान चालीसा। दिन भर अंग्रेजों का डण्डा खाकर काम करते थे, रात में मोर के पंख से रामायण की प्रति उतारते थे (लिखते थे) हनुमान चालीसा उतारते थे और एक दूसरे को दे देते थे। इतना कष्ट सहकर उन्होंने हिन्दू धर्म की रक्षा की। यदि हनुमान चालीसा बीसवीं शताब्दी की होती तो अठारहवीं शताब्दी में मारीशस कैसे पहुँच जाती? इसलिए मैं बहुत विनम्रता से निवेदन कर रहा हूँ कि ऐसा भ्रमपूर्ण कथन हमें नहीं कहना चाहिए। हनुमान चालीसा गोस्वामी जी की सर्वप्रथम रचना है और हनुमान चालीसा का पाठ करके हजारों रामानन्दीय परम्परा के साधु सिद्ध बन बैठे। इतना सुन्दर कोई ग्रन्थ हो ही नहीं सकता। आप यह जानकर बहुत प्रसन्न होंगे कि हनुमान चालीसा का भी वही महत्त्व है जो श्रीरामचरितमानस का है। कोई आपसे सनातन धर्म के सबसे छोटे ग्रन्थ के विषय में पूछे कि ऐसा ग्रन्थ बताइये जिसमें सनातन धर्म के समस्त सिद्धान्त आ गये हैं तो आप विश्वासपूर्वक कह दीजिए कि श्रीहनुमान चालीसा है। चारों वेदों के, अठारहों पुराणों के, अठारहों स्मृतियों के सिद्धान्त अर्थात् सारे सनातन

धर्म के सिद्धान्तों का सारांश यदि किसी छोटे से छोटे ग्रन्थ में है तो वह हनुमान चालीसा है। उसे अपनी जेब में रखे रहिए सारा सिद्धान्त सुरक्षित रहेगा। हमारा तो सिद्धान्त है जो वन्दे मातरम् कहेगा जो श्रीराम जी को श्रीकृष्ण जी को प्रणाम करेगा हमारे सनातन धर्म पर विश्वास करेगा, जिसको विकलांगों के प्रति भगवद् बुद्धि होगी उसी को हमारे यहाँ सम्मान प्राप्त होगा। मेरे इस निवेदन को ध्यान से सुन लीजिए और गाँठ बाँध लीजिए कि प्रतिदिन प्रेम से श्रीहनुमान चालीसा का पाठ किया करो। पाठ शुद्ध और निष्ठापूर्वक होना चाहिए तो आप पूर्ण स्वस्थ रहेंगे। हिन्दू धर्म की सुरक्षा होती रहेगी। आइये इसकी चौथी पंक्ति पर विचार करें। शंका यह की है कि एक ओर तो 'कियेहु कुवेश साधु सनमानू' और उदाहरण में दिया 'जिमि जग जामवन्त हनुमानू' हनुमान जी महाराज को कहा कि इनका वेश कुवेश है। यहाँ लिखा 'कंचन वर्ण विराज सुवेशा' अब आप विचार कीजिए वानर को कौन कुण्डल पहनायेगा? उनके केश तो 'कर्कश लघु' हैं फिर कुंचित केश क्यों कहा? इसका उत्तर यह है कि इस विषय में शंका नहीं करनी चाहिए। यह झाँकी तब की है जब हनुमान जी सुग्रीव के कहने से ब्राह्मण वेश बनाकर भगवान राम के पास आ रहे हैं–

**कंचन वर्ण विराज सुवेशा।**
**कानन कुण्डल कुंचित केशा।।**

शुद्ध ब्राह्मण का वेश बनाकर हनुमान जी गये। हनुमान जी जानते हैं कि राम जी को ब्रह्मचारी ब्राह्मण बहुत प्रिय है। आज के ब्रह्मचारियों का चेहरा देखो हर समय पौने बारह बजे रहते हैं। चेहरे पर कोई तेज नहीं है। हनुमान जी महाराज बहुत सुन्दर लग रहे हैं। ब्राह्मण गोरा बहुत सुन्दर लगता है। हनुमान जी महाराज श्रीरामलक्ष्मण जी के पास जा रहे हैं। श्रीराम ने हनुमान जी को दूर से देखा आँखें तृप्त हो गईं। स्वर्णमृग खोज रहे थे, सीता जी ने कहा था कि स्वर्णमृग ले आना। दो विकल्प कहे थे– यदि जीवित पकड़ लेंगे तो पालेंगे यदि मार डालेंगे तो मृगछाला ले आयेंगे। भगवान ने कहा दोनों काम करूँगा, मारीच को मारकर छाला ले आऊँगा और मारुति को पाऊँगा तो उनको पालूँगा। राम जी के जीवन में दो मृग मिले मारीच है कपटी स्वर्णमृग और मारुति स्वर्णमृग है निष्कपट।

**विप्ररूप धरि कपि तहँ गयऊ।**
**माथ नाइ पूछत अस भयऊ।।**

कितना सुन्दर दृश्य होगा परमात्मा का। भगवान श्रीराम लक्ष्मण सामने खड़े हैं। हनुमान जी ने प्रतीक्षा की। समस्या इस बात की है कि कौन किसको प्रणाम करे। राम जी जानते हैं कि नकली ब्रह्मचारी है और हनुमान जी भी जानते हैं कि नकली क्षत्रिय हैं। दोनों एक दूसरे को जानते हैं, अन्ततोगत्वा हनुमान जी ने सोचा मैं ही प्रणाम कर लेता हूँ। झुककर धीरे से बोले–

**धैर्यवन्तौ सुवर्णाभौ कौ युवां चीरवाससौ।**
**निःश्वसन्तौ वरभुजौ पीडयन्ताविमाः प्रजाः।।**

आप कौन हैं? चीरवस्त्र धारण करने वाले, विशाल भुजाओं वाले आपका क्या परिचय है?

**को तुम श्यामल गौर शरीरा।**
**क्षत्रिय रूप फिरहु बन बीरा।।**

आप लोग कौन हैं? महर्षि वाल्मीकि जी कितना सुन्दर लिखते हैं–

**पम्पातीररुहान् वृक्षान् वीक्षमाणौ समन्ततः।**
**इमां नदीं शुभजलां शोभयन्तौ तपस्विनौ।।**

इस सुन्दर नदी सरीखी पम्पा को सुशोभित करते हुए आप दोनों वीर कौन हैं? पक्षी मृगों को आप भयभीत कर रहे हैं। आपके कोमल चरण हैं आप पैदल चले आये, आपके चरणों को कष्ट नहीं हुआ? हनुमान जी ने भगवान की भुजाओं को देखा और कहने लगे–

**सिंहस्कन्धौ महोत्साहौ समदाविव गोवृषौ।**
**आयताश्च सुवृत्ताश्च बाहवः परिघोपमाः।।**

वाल्मीकि जी का काव्य कौशल अद्‌भुत है कालिदास तो किसी भी जन्म में इनके चरणों की धूलि की पात्रता भी नहीं पा सकते। बाल्मीकि जी का यदि कोई अनुकरण कर सका तो एक ही महापुरुष हुआ। वाल्मीकि जी को यदि कोई छू सकता है तो वाल्मीकि ही छू सकता है और वाल्मीकि जी के अवतार केवल गोस्वामी तुलसीदास जी ही छू सकते हैं और कोई भी वाल्मीकि जी को छू नहीं सकता। वाल्मीकि जी कहते हैं–

**सर्वभूषणभूषार्हाः कथं नैव विभूषिताः।**

आपकी भुजाएँ तो समस्त आभूषणों को धारण करने योग्य हैं तो भी आपने इन्हें विभूषित क्यों नहीं किया है।

**की तुम तीन देव में कोऊ।**
**नर नारायण की तुम दोऊ।।**

क्या आप तीनों देवताओं में से कोई हैं? श्रीराम लक्ष्मण चुप रहे तब हनुमान जी ने कहा– मैं इतना बोल रहा हूँ आप उत्तर क्यों नहीं दे रहे हैं। मैं अपना परिचय बता रहा हूँ। मैं ब्रह्मचारी हूँ, सुग्रीव नामक धर्मात्मा को उनके भाई बालि ने निकाल दिया है, मैं स्वयं उनका मंत्री हनुमान आपके पास आया हूँ। आप भी अपना परिचय दीजिए। एक ब्रह्मचारी के प्रति आदर होना चाहिए लक्ष्मण! ये कितना सुन्दर बोल रहे हैं–

**संस्कारक्रमसम्पन्नामद्‌भुतामविलम्बिताम्।**
**उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदयहर्षिणीम्।।**

सारे व्याकरण के संस्कारों से सम्पन्न, न तो विलम्बित और न विस्तीर्ण, हृदय को हर्षित करने वाली इतनी सुन्दर कल्याणी वाणी में बोल रहे हैं। हम लोग जब पढ़ते लिखते नहीं तब कभी कभी इतना गड़बड़ हो जाता है कि आश्चर्य हो जाता है। 'भई प्रगट कुमारी भूमि विदारी' बहुत सरल रचना है पर यह स्तुति जब किसी मूर्ख के चक्कर में पड़ती है तो 'अस्तुति सिय केरी प्रेम लतेरी' तक तो ठीक कहते हैं। पर आगे 'परन सुचेरी' कहते हैं तो हम पूछते हैं कि 'परन' क्या है? वहाँ 'चरण सुचेरी' शब्द है। इसी प्रकार 'परधन मोद निकाय' यहाँ 'परधन' क्या है? वहाँ वरधन है परधन नहीं। एक पुजारी जी हैं वे बड़ी निष्ठा से भगवान की पूजा करते हैं परन्तु इतने कम पढ़े लिखे हैं कि भगवान का आनन्द है। अपने यहाँ जब हम सन्ध्याकालीन आरती करते हैं तो बहुत से दोहे पढ़े जाते हैं उसमें–

**गुरु मूरति मुख चन्द्रमा सेवक नयन चकोर।**

दोहे के अंश को आज भी वे पुजारी जी यही बोलते हैं–

**गुरु मूरख मुख चन्द्रमा सेवक नयन चकोर।**

मैंने उनको बार बार समझाया कि 'गुरु मूरख मुख चन्द्रमा' नहीं है पर वो कहते हैं कि मुझे जैसा याद है मैं तो वही कहूँगा। हमने कहा कि तुम जैसे को चेला बनाकर गुरु निश्चित मूर्ख हो ही गया। इन लोगों के मुख से जब 'भवाब्धिशेतं भरताग्रजं तं' सुनिये तो ये 'भरतागजेन्द्रं' कहते हैं। इन्हें कैसे समझाया जाय? कभी कभी अशुद्ध सुनकर बहुत कष्ट होता है। निवेदन यह है कि हनुमान जी महाराज इतनी सुन्दर वाणी बोल रहे धाराप्रवाह बोल रहे हैं अशुद्ध नहीं हो रहा है। राघव कहते हैं– लक्ष्मण!

**अनया चित्रया वाचा त्रिस्थान व्यंजनस्थया।**
**कस्य नाराध्यते चित्तमुद्यतासेररेरपि।।**

क्रमशः........

# श्रीमद्भगवद्गीता ( ७८ )

( गतांक से आगे )

**( विशिष्टाद्वैतपरक श्रीराघवकृपाभाष्य )**

**भाष्यकार–धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज**

**संगति–** अब अर्जुन प्रश्न करते हैं कि पूर्व श्लोक में कहा हुआ इदं पदार्थ क्या है? इस पर भगवान कहते हैं।

**आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा।**
**कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च।।** ३।३९

**रा० कृ० भा० सामान्यार्थ–** हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! अग्नि के समान भी पूर्ण न किये जा सकने वाले कामरूपधारी इस ज्ञानी जनों के नित्य शत्रु द्वारा यह ज्ञान आवृत अर्थात् ढक जाता है।

**व्याख्या–** आवृतं शब्द में बाहुलकात् वर्तमान काल में क्त प्रत्यय हुआ है। चकार इव के अर्थ में है। दुष्पूरेण शब्द खल् प्रत्यय से बना है। इस प्रकार भगवान ने काम को ज्ञानी का नित्य शत्रु बताकर अर्जुन को आध्यात्मिक युद्ध करने की भी प्रेरणा दी। ।।श्री।।

**संगति–** यह काम कहाँ रहता है? इस पर भगवान कहते हैं–

**इन्द्रियाणि मनोबुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते।**
**एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम्।।** ३।४०

**रा० कृ० भा० सामान्यार्थ–** इन्द्रियाँ मन और बुद्धि ये बारह काम के निवास स्थान कहे गये हैं। इन्हीं के द्वारा यह ज्ञान को ढक कर जीवात्मा को मोहित कर लेता है।

**व्याख्या–** सामान्य शत्रुओं के तो छः ही दुर्ग होते हैं परन्तु इस कामरूप शत्रु के दस इन्द्रियाँ मन तथा बुद्धि ये बारह दुर्ग हैं। यही आश्चर्य है। इन्हीं बारह दुर्गों को माध्यम बनाकर यह ज्ञान को ढकता है और जीवात्मा को मोहित करके उसके मन में वशी हुई मुझ परमात्मा की स्मृति को समाप्त कर देता है। इसीलिए रासपंचाध्यायी में काम को दण्डित करने के लिए ही भगवान ने ब्रज सुन्दरियों के बाहु १. प्रसार २. परिरम्भ ३. करालभन ४. अलकालभन ५. उरूवालभन ६. नीव्यालभन ७. स्तनालभन ८. नर्म ९. नखाग्रपात १०. छ्वैल्य ११. अवलोक १२. हसित इन बारह शस्त्रों से काम के दस इन्द्रिय तथा मन बुद्धि इन बारह दुर्गों को नष्ट किया।

**बाहुप्रसारपरिरंभकरालकोरुनीवीस्तनालभन नर्म नखाग्रपातैः।**
**क्ष्वैल्यावलोकहसितैर्व्रजसुन्दरीणामुत्तंभयन् रतिपतिं रमयाञ्चकार।।**

मा० १०/२९/४६

यहाँ ब्रजसुन्दरीणाम् का अन्वय प्रथम द्वितीय चरण से होगा और रतिपतिं पद स्वतन्त्र है।

उत्तम्भयन् का अर्थ है ऊपर आकाश में लटकाते हुए अर्थात् ब्रज सुन्दरियों के बाहु प्रसार आदि बारह क्रिया कलापों से कामदेव के बारह किलों को ध्वस्त करके भगवान कृष्ण ने बिना घर-बार वाले काम को ऊपर आकाश में लटका दिया और फिर गोपियों को अपने चरण में रमण कराया।।श्री।।

**संगति–** अब मुझे क्या करना चाहिए? अर्जुन के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए मधुसूदन कहते हैं–

**तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।**
**पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञान नाशनम्।।**३।४१

**रा० कृ० भा० सामान्यार्थ–** संस्कृत में ऋषभ शब्द के सिंह और श्रेष्ठ ये दो अर्थ होते हैं। यहाँ दोनों ही अभिप्रेत हैं। हे भरतवंश में सिंह के समान श्रेष्ठ अर्जुन सर्वप्रथम तुम इन्द्रियों का नियन्त्रण करके ज्ञान और विज्ञान के नाशक इस पापी काम को पशुओं की भाँति मार डालो।

**व्याख्या–** आदौ शब्द का तात्पर्य है भीष्मादि के साथ युद्ध करने से पूर्व काम के दस रूप इन्द्रियों को नियन्त्रित करो। स्वस्वरूप के जानने को यहाँ ज्ञान कहा गया है और परस्वरूप के जानने को विज्ञान। काम इन दोनों को नष्ट कर देता है। इसलिए इस पापी को मारो। यदि अर्जुन को ज्ञानमय अधिकार न होता तो ज्ञानियों के नित्य शत्रु काम को मारने के लिए न कहते।

**संगति–** भगवान अर्जुन को धैर्य धारण कराते हैं कि तुम चिन्ता मत करो क्योंकि तुम आत्मा हो। अतः कह रहे हैं–

**इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।**
**मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः।।** ३।४०

**रा० कृ० भा० सामान्यार्थ–** इस श्लोक में पूर्व श्लोक से त्वं पद की अनुवृति होगी। हे अर्जुन स्थूल शरीर से सूक्ष्म इन्द्रियाँ होती हैं। इन्द्रियों से सूक्ष्म मन, मन से सूक्ष्म बुद्धि, होती है और जो बुद्धि से सूक्ष्म जीवात्मा है वह तुम्हीं हो।

**व्याख्या–** यहाँ 'पर' शब्द सूक्ष्मता का वाचक है। इसी प्रकार कठोपनिषद् में दो श्रुतियाँ पढ़ी गयी हैं।

**इन्द्रेभ्यः पराःह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।**
**मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः।।**

क० उ० १/३/१०

**महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः।**
**पुरुषान्न परं किञ्चित्सा काष्ठा सा परा गतिः।।**

**संगति–** अब भगवान प्रकरण का उपसंहार करते हैं।

**एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।**
**जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्।।**३।४३

**रा० कृ० भा० सामान्यार्थ–** हे महान भुजा वाले अर्जुन! इस प्रकार आत्मा को बुद्धि से सूक्ष्म जानकर और उसे मुझ परमात्मा द्वारा स्वस्थ कराकर जटिलता से वश में आने वाले इस कामरूप शत्रु को मार डालो।

**व्याख्या–** यहाँ तृतीयान्त आत्मा शब्द परमात्मा परक है। इस प्रकार मेरी सहायता से पहले कामरूप शत्रु को मारो फिर अन्य शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लोगे। ।।श्री।।

**गीता अध्याय तृतीय पर रामभद्र आचार्य।**
**राघव कृपा भाष्य करि प्रभु पुरवैं सब काज।।**

इति श्री तुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुरामानन्दाचार्य–स्वामीरामभद्राचार्यप्रणीत श्रीराघवकृपाभाष्ये श्रीमद्भगवदगीता कर्मयोग नाम तृतीयोऽध्यायः

**।।श्री राघवः शंतनोतु।।**

क्रमशः........

(गतांक से आगे)

# सकल अमानुष करम तुम्हारे

❑ धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

कहा– क्यों? क्या पृथ्वी वीरविहीन हो गयी है? उन्होंने कहा– बिल्कुल। अरे, भाई, अगर वो रघुबीर विहीन कहते तब मेरा अपमान होता! मैं तो रघुबीर हूँ, वीर तो हूँ नहीं मैं। उन्होंने थोड़े ही कहा कि रघुबीर बिहीन मही मैं जानी! तब लक्ष्मण शांत हुए। तब राघवेन्द्र जी को विश्वामित्र जी ने कहा– 'उठहु राम भंजहु भव चापा। मेटहु तात जनक परितापा।।' अब सूर्योदय हो रहा है– 'उदित उदयगिरि मंच पर, रघुबर बाल पतंग। बिकसे संत सरोज सब हरषे लोचन भृंग।।' अहाहा! सुमित्रा जी यही कहती हैं– 'कमठ पीठ पबि कूट कठोरा। नृप समाज महँ शिवधनु तोरा।।' अब सारे राज समाज के पस्त होने पर प्रभु आ रहे हैं। देखिए, उनकी बाल्यावस्था सबको कष्ट दे रही है। ये धनुष नहीं तोड़ सकते। सभी लोग चकित हैं। जनक जी ने भी जानकी मंगल में कह दिया और गीतावली में भी कहा कि महाराज मुझे कोई चिन्ता नहीं है चाहे मेरा प्रण रहे या जाये पर 'रहे रघुनाथ की निकाइ नीकी नीकी नाथ, राम जी के मुखारविन्द पर उदासी नहीं आनी चाहिए नाथ। जनक जी कह रहे हैं कि धनुष नहीं टूटेगा तो राघव जी उदास हो जाएँगे। राघव जी उदास न हों, मेरी प्रतिज्ञा पूरी हो चाहे भाड़ में चली जाय। जनक जी भी जानते हैं कि बालक धनुष नहीं तोड़ सकता। सुनयना जी भी कह ही रहीं है कि सारे लोग मूर्ख हैं, अरे कोई महाराज से कह देता, ये बालक इतना बड़ा हठ करता? रावण वाणासुर जिस धनुष को नहीं उठा पाये उसको राजकुमार उठाएगा? बालहंस कहीं मंदरा चल को ले सकता है? सब कह रहे हैं। अंततोगत्वा सखी ने समाधान किया कि नहीं, तेजवान जो होते हैं उनमें बड़े छोटे का विचार नहीं होता है। उसने जो विभूतियों के नाम गिनाये वो तो विचित्र है। कहा कि नहीं देख रहे हो कुंभज को? कुंभज ने सागर को सोखा कि नहीं सोखा, छोटे से कुंभज ने? इसी प्रकार सूख जाएगा ये सागर। रविमंडल छोटा सा होता है। पर अन्धकार दूर करता है कि नहीं? छोटा सा मंत्र क्या हाथी को वश में नहीं कर लेता? क्या कामदेव ने फूल के वाण से सारे संसार को वश में नहीं किया? चार विभूतियों के नाम तो गिनाए। उन्हें विश्वास हो गया। पर सीता जी को कौन समझाये? अहाहा! सीता जी ने यही कहा– पिताजी, क्या कर रहे हो? स्वयं कह रही हैं– क्या बताऊँ। कहाँ ये कछुए के पृष्ठ जैसा कठोर धनुष मानो ये संकेत हुआ कि आप कछुए की पीठ से चिन्ता करती हैं, क्या राम जी ने कमठावतार (कच्छपावतार) नहीं ले लिया था? ये तो कमठ के भी अवतारी हैं, चिन्ता क्यों? सीता जी चकित हो रही है। बार-बार कहती हैं– भगवान क्या करुँ! 'अहह तात दारुन हठ ठानी।' सभी भयभीत हैं। कोई पिताजी को कुछ भी नहीं कह रहा है। 'कहँ धनु कुलिसहु चाहु कठोरा।' वज्र से भी यह कठोर है। मानो राम जी ने कहा– वज्र से भी कठोर है तो क्यों चिन्ता करती हो? मेरे चरण में वज्र की रेखा है, कुचल दूँगा इसको। 'ध्वज कुलिस अंकुश कंजयुत वन फिरत कंटक किन लहे।' क्या करुँ। अरे, 'सिरिस सुमन कत बेधिय हीरा।।' सिरिस के फूल क्या हीरा बेध सकेगा? नहीं टूट सकता यह धनुष। इसलिए, हे धनुष, सारी सभा की बुद्धि भ्रष्ट है। मैं क्या करुँ? बोले– 'निज जड़ता लोगन पर डारी। होहु हरुअ रघुपतिहिं निहारी।।' सीता जी ने कह दिया कि अपनी जड़ता को लोगों पर डाल दो। ये, इनकी चेतनता से क्या लाभ हमारा? इन्हें जड़ बनाओ। और 'होहु हरुअ रघुपतिहिं निहारी', कितना हल्का हो जाउँ? बोले– 'रघुपतिहिं निहारी' राम जी को देखकर हल्के हो जाओ। जितना ये उठा सकें उतने हल्के हो

जाओ। क्या बात है! एक मिलीग्राम यदि उठा सके तो उतने हल्का बन जाना। जितना ये उठा सके हल्का बन जाओ। और वही हो रहा है, मित्रों। आप प्रकरण तो जानते ही हैं। अंततोगत्वा वही हुआ। भगवान राम ने इसको तोड़ा। 'कमठ पीठ पबि कूट कठोरा। नृप समाज महँ शिवधनु तोरा।।' एक क्षण में उस शिव धनु को मध्य से तोड़ डाला। ' यो लोकवीर समितौ धनुरैशमुग्रं, सीतास्वयंवर गृहे त्रिशतोपनीतम्। आदाय बालगजलील इवेक्षुयष्टिं, सञ्जीकृतं नृप विकृष्य बभञ्ज मध्ये।।' और, हनुमान जी ने तो कहा– नहीं। हनुमान जी ने कहा– राम जी ने तो तोड़ा ही नहीं वो अपने आप टूट गया (ससुरा)। अपने आप टूट गया? कहा– हाँ। क्यों? हनुमान जी ने कहा– इसलिए टूटा– उसने सोचा कि मुझे पुरश्चरण करना चाहिए। प्रायश्चित्त करना चाहिए। क्यों? उसने कहा कि दो पापियों के हाथ में मैं पड़ गया हूँ। कौन दो पापी? धनुष ने कहा कि शिव जी ने ब्रह्मा जी के पाँचवे सिर को काट दिया था और कामदेव को मारा तो उनका भी पाप लगा। उनके हाथ में मुझे स्पर्श कराया गया। और एक बार परशुराम ने भी मुझे छुआ था जिनको माता के वध का पाप लगा है और क्षत्रान्तक का पाप लगा है। अब ये दो पापी हाथों में रहने से पापी बन गया हूँ। तो मेरा शरीर अब कैसे पावन होगा? तो शंकर भगवान का धनुष, राम जी के कर कमल को देखा प्रयाग के समान। अरे कहा, बड़ा अच्छा लग गया। तो राम जी के कर–कमल रूप प्रयाग को देखकर उसने अपने आप ही अपने शरीर को छोड़ दिया, राम जी ने नहीं तोड़ा। 'तद्ब्रह्ममातृ वधपातकिमन्मथारिक्ष–त्रान्तकारिकरसंगम पापभीत्या। ऐशं धनुर्निजपुरश्चरणाय नूनं देहं मुमोच रघुनन्दन पाणितीर्थे।।' रामचरितमानस में जनक के दूतों ने कहा कि राम जी ने इतने मस्ती में तोड़ा जैसे हाथी का बच्चा कमलदंड को तोड़ देता है। 'तहाँ राम रघुवंशमनि सुनहु महामहिपाल। भंजेउ चाप प्रयास बिनु जिमि गंज पंकज नाल।।' कवितावली रामायण में कहा– नहीं। ऐसा है, शंकर भगवान ने इसको लड़कपन से शिक्षा दी थी, ट्रेनिंग दी थी, बताया था। प्रतिदिन शंकर भगवान इसके पढ़ाते थे। किसको? धनुष को हे धनुष, अभी तो ठीक है; सब काम कर लो, पर जब राम जी के कर–कमल का स्पर्श हो अपने आप टूट जाना, शरारत मत करना।

**'मयनमहनपुर दहन गहन जानि,**
**आनिके सबैको सार धनुष गढ़ायो है।**
**जनक सदसि जेते भले भले भूमिपाल,**
**कियो बलहीन बल आपनो बढ़ायो है।**
**कुलिश कठोर कूर्म पीठ ते कठिनं अति,**
**काहूँ ना पिनाक नेकु चपरि चढ़ायो है।**
**तुलसी सों राम के सरोज पानि परसत,**
**टूट्यो मानों बारे ते पुरारि हूँ पढ़ायो है।।'**

मयन महन माने कामदेव के शत्रु भगवान शंकर ने त्रिपुरासुर के दहन को कठिन जानकर सबके सार को लेकर धनुष बनवाया था। जनक सभा के सभी राजाओं की नाक काट दी थी इसने। यही धनुष राम जी के कर–कमलों के स्पर्श करते खट से टूट गया बिचारा! इस प्रकार– 'कमठ पीठ पबि कूट कठोरा। नृप समाज महँ शिव धनु तोरा।।' धनुष टूटा। 'शंकर चाप जहाज, सागर रघुबर बाहुबल। बूड़े सकल समाज, चढ़े जे प्रथमहिं मोह वश।।' देवताओं ने फूलों की वर्षा की। बोल राजा रामचन्द्र भगवान की जय। यह अमानुष कर्म था। 'सकल अमानुष करम तुम्हारे।' और इसी प्रकार परशुराम का पराजय। परशुराम जी ने भगवान आनन्दकन्द को अपना तेज सौंपा, सीता जी का विवाह और चतुर्दश वर्ष वनवास यात्रा के बाद फिर रामचन्द्र जी एकमात्र भारत के नहीं अब विश्व के राजा बने। प्रभु को प्रणाम करके अब यहीं विश्राम।

सियावर रामचन्द्र भगवान की जय। सनातन धर्म की जय। पवनसुत हनुमान जी महाराज की जय।

❑❑❑

# रक्षार्थं वेदानां चाध्येयं व्याकरणम्

❑ **पूज्यपाद जगद्गुरु जी**

महर्षि पतञ्जलि ने पाणिनीय सूत्रों के भाष्य के प्रारम्भ में एक प्रतिज्ञा वाक्य पढ़ा 'रक्षार्थं वेदानां चाध्येयं व्याकरणम्' अर्थात् वेदों की रक्षा के लिए व्याकरण का पढ़ना आवश्यक है। इसके पोषण में उन्होंने एक पक्ष प्रस्तुत किया जिसमें यह कहा कि सम्पूर्ण वैदिक मन्त्र सभी विभक्तियों में निर्दिष्ट नहीं किये जाते। एक संकेत से व्याकरण के आधार पर अन्य मन्त्रों में भी वाक्य अभिहित होते हैं। वह ऊहन व्याकरणाध्ययन के बिना सम्भव नहीं हो पाता। कभी कभी स्वरों के आधार पर भी मंत्रों के अर्थों का निर्धारण होता है। इस प्रकार उनका कथन उन्हीं के द्वारा पूर्णरूप से परिपोषित हो जाता है कि व्याकरणा- ध्ययन के बिना वेद की रक्षा सम्भव नहीं है। परन्तु उक्त वाक्य में प्रयुक्त चकार की क्या उपयोगिता है इस रहस्य का महर्षि ने उद्घाटन नहीं किया। आइये आज इस पक्ष पर भी एक विचार करें। 'रक्षार्थं वेदानां चाध्येयं व्याकरणम्' इसमें चकार का यह अर्थ है कि वेदों की एवं वेदसम्मत सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय की रक्षा के लिए व्याकरण का अध्ययन आवश्यक है। उदाहरणार्थ आज हम गीता जी के एक विशिष्ट श्लोक की ओर सुधी पाठकों का ध्यान आकृष्ट करना चाहेंगे। यह तथ्य सर्वविदित है कि श्रीमद्-भगवद्गीता विश्व के समस्त प्राच्य और प्रतीच्य विद्वानों के लिए आदणीय हैं। ऐसा इसलिए नहीं है कि गीता जी भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा कही गईं प्रत्युत ऐसा इसलिए है कि श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान ने जो कुछ कहा वह अक्षरशः वेदसम्मत और वेदानुमोदित है। कदाचित् भगवान् वहाँ वेद के विरुद्ध कहते तो गीता जी भी धम्मपद आदि ग्रन्थों की भाँति अनादरणीय और उपेक्षित हो जातीं। इस प्रकार की अवधारणा के रहने पर भी गीता जी के द्वितीय अध्याय का पैंतालीसवाँ श्लोक सामान्य रूप से पढ़ने पर हमारी सर्वमान्य अवधारणा को ठेस पहुँचाता हुआ प्रतीत होता है-

**त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।**

गीता २/४५

अर्थात् हे अर्जुन! वेद त्रैगुण्य विषयक हैं इनमें सत्व, रज, तम का विवेचन हुआ है अतः तुम निस्त्रैगुण्य हो जाओ अर्थात् तीनों गुणों को छोड़ दो। इससे तो यही लगता है कि भगवान का मन्तव्य है कि चूँकि वेद तीनों गुणों का वर्णन करते हैं अतः तीनों गुणों के साथ वेदों को भी छोड़ दो। इसी प्रकार का अर्थ आद्य शंकराचार्य से लेकर अद्यावधि लिखे गये सभी भाष्यग्रन्थों एवं टीकाग्रन्थों में उपलब्ध है। यहाँ पर यह विषय विचारणीय है कि जो वेद भगवान के निश्वासभूत हैं, जिनकी रक्षा के लिए भगवान स्वयं अनेक अवतार धारण करते हैं, यहाँ तक कि शंखासुर द्वारा वेदों का हरण कर लिए जाने पर शंखासुर का वध करने के लिए भगवान हयग्रीव अवतार लेते हैं। क्या वही भगवान अर्जुन को वेद छोड़ने की आज्ञा देंगे? क्या भगवान निस्त्रैगुण्यता की आज्ञा देकर अर्जुन को वेद के परित्याग की अनुमति देंगे? यदि नहीं, तो फिर यहाँ 'त्रैगुण्यविषया वेदाः' शब्दखण्ड का क्या अर्थ होगा? गीता जी के इस महत्त्वपूर्ण श्लोक की कैसे रक्षा होगी? हाँ, गीता जी के इस स्थल की रक्षा करने के लिए व्याकरण का अध्ययन आवश्यक है। भाष्यटीकाकारों ने इस पर ध्यान क्यों नहीं दिया? कदाचित् मैंने भी अपने भाष्य में इस पर ध्यान नहीं

दिया होगा। यदि ऐसा हो गया होगा तो आइये गीता जी के इस स्थल की रक्षा का प्रकार देखिए 'त्रैगुण्यविषया वेदा:' इस वाक्यखण्ड में दो शब्द हैं– 'त्रैगुण्यविषया अवेदा:' यहाँ बहुब्रीहि नञ्गर्भ कर्मधारय है। अर्थात् न वेदा: अवेदा:, त्रैगुण्यं विषय: येषां ते त्रैगुण्यविषया: त्रैगुण्यविषया एव अवेदा: वेदविरुद्धा: इति त्रैगुण्यविषयावेदा: अर्थात् जिनमें तीनों गुणों का वर्णन किया गया है वे वाक्य वेदों के विरुद्ध हैं। उन्हें छोड़कर तुम निस्त्रैगुण्य हो जाओ अर्थात् वेदानुमोदित सत्वरजस्तमस् से रहित मुझ परमात्मा श्रीकृष्ण के श्रीचरणकमल का चिन्तन करो। इस प्रकार व्याकरण में निर्दिष्ट बहुब्रीहि नञ् समास गर्भित कर्मधारय से सर्ववेदमयी गीता जी की रक्षा हो गई। इस प्रकार वेद के तथाकथित कट्टरवादी आर्यसमाजी का भी मुँह बन्द हो गया। यहाँ पर और भी पक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है कि यदि कोई कहे कि बहुब्रीहि गर्भ कर्मधारय समास करने पर 'अविमृष्ट विधेयांश' नामक साहित्यिक दोष उपस्थित होगा, क्योंकि त्रैगुण्य विषयत्व को यहाँ समास से ढक दिया गया। जैसा कि चन्द्रालोककार भी कहते हैं।

**अविमृष्ट विधेयांश समासपिहिते विधौ।**

तो इसके उत्तर में मेरा दूसरा विनम्र निवेदन सुनिये– यहाँ कर्मधारय समास करने की आवश्यकता नहीं है। त्रैगुण्यविषया अवेदा: इस प्रकार दो स्वतन्त्र पद होंगे। अर्थात् वेद के विरुद्ध वाक्यांश ही सत्व रजस्तमस् का वर्णन करके त्रैगुण्य को अपने वर्णन का विषय बनाते हैं। त्रैगुण्यविषया अवेदा: इस प्रकार दो शब्द होने पर भी विषय शब्द की उत्तरवर्ती जस् विभक्ति के सकार को रु करके 'भो भगो' इत्यादि सूत्र से रु को य करके पुन: 'लोप: शाकल्यस्य' सूत्र से यकार का लोप करके 'त्रैगुण्य विषया:' शब्द को 'अवेदा:' शब्द से समास के बिना भी दीर्घ के द्वारा सन्धियुक्त कर दिया जायगा। यहाँ 'पूर्वत्रासिद्धम्' ८/२/१ के द्वारा य लोप असिद्ध नहीं होगा क्योंकि 'अमुना' शब्द की निष्पत्ति के लिए ना भाव की कर्तव्यता में मु भाव को असिद्धि से बचाने के लिए 'पूर्वत्रासिद्धम्' की प्रवृत्ति के वारणार्थ भगवान पाणिनि ने 'न मु ने' ८/२/३ सूत्र का प्रणयन किया अर्थात् ना भाव की कर्तव्यता में मु भाव असिद्ध नहीं होता 'पूर्वत्रासिद्धम्' रुक जाता है। इस परिस्थिति में यह विचार उठता है कि अमुना शब्द की सिद्धि के लिए पाणिनी को यह सूत्र क्यों बनाना पड़ा? जैसे अद्युना शब्द बनाने के लिए महर्षि ने 'अधुना' सूत्र की ही रचना कर दी उसी प्रकार यहाँ भी 'अमुना' सूत्र की रचना कर देने पर ऐसा न करके उन्होंने तीन पदों वाला 'न मु ने' सूत्र ही बना डाला। ऐसा करके उन्होंने यह संकेत भी किया कि मु भाव के अतिरिक्त भी कहीं कहीं 'पूर्वत्रासिद्धम्' प्रवृत्त नहीं होता। अत: न का अतिरिक्त योग विभाग भी किया जाता है और उसका अर्थ होता है क्वचित् पूर्वत्रासिद्धम् न। उसी योग विभाग के सामर्थ्य से दीर्घ के प्रकरण में भी यह अर्थ करना पड़ेगा कि दीर्घे कर्तव्ये पूर्वत्रासिद्धम् न अर्थात् य लोप न असिद्ध:। अब यहाँ य लोप सिद्ध नहीं हुआ और दीर्घ हो गया। इस दृष्टि से अब यह अर्थ निर्विघ्न सिद्ध हो गया कि 'अवेदा: त्रैगुण्यविषया' अर्थात् जो भी त्रैगुण्य के विषय हैं, वे वेद विरुद्ध हैं। इस प्रक्रिया से गीता जी के दो और स्थलों की रक्षा हो गई–

**हे कृष्ण हे यादव हे सखेति** गीता ११/४१

हे सखे इति इस प्रकार विच्छेद करके सन्धि करने पर अयादेश यकार का लोप और पुन: गुण नहीं सम्भव हो सकेगा। क्योंकि यहाँ भी षष्ठाध्याय के गुण की कर्तव्यता में त्रिपादी य लोप सिद्ध होने

लगेगा फिर हे सखे इति हे सखेति यह शब्द कैसे सिद्ध हो सकेगा। यहाँ भी 'न मु ने' 'पूर्वत्रासिद्धम्' सूत्र नहीं प्रवृत्त होगा और यकार लोप की असिद्धि रुक जायगी और हे सखेति शुद्ध रूप से सिद्ध होगा। इसी प्रकार 'प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्' (गीता ११/४४) श्लोक की समस्या का भी समाधान हो जायगा। जो पूर्व के आचार्यों के संशय का विषय बनता आ रहा है। यद्यपि आद्यशंकराचार्य जी ने 'प्रियायार्हसि' में षष्ठी को माना प्रियाया अर्हसि कहकर विच्छेद भी किया परन्तु यहाँ भी उन्होंने यकार लोप की असिद्धि रोकने का कोई उपाय नहीं सुझाया। कदाचित् उनके मन में 'आर्षत्वात्' समाधान रहा होगा। जबकि यह अगतिक गति ही है। श्रीरामानुजाचार्य ने तो 'प्रियायार्हसि' में चतुर्थी मान ली 'प्रियाय अर्हसि'। मैं यहाँ निष्पक्ष रूप से प्रार्थना कर रहा हूँ कि श्रीरामानुजाचार्य जी का चतुर्थी पक्ष यहाँ उचित नहीं है। क्योंकि इसके पूर्व इसी श्लोक में दो बार षष्ठयन्त का प्रयोग हुआ है– 'पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः' (गीता ११/४४) यदि तीसरे चरण में दो बार षष्ठयन्त का प्रयोग हुआ है तो चतुर्थ चरण में भी षष्ठयन्त ही उचित है। अर्जुन श्रीकृष्ण भगवान से कहते हैं कि 'प्रभो! पुत्रस्य पिता इव सख्युः सखा इव प्रियायाः प्रिय इव मे सोढुमर्हसि' जैसे पिता पुत्र के अपराध को, मित्र मित्र के अपराध को क्षमा करता है तथा पति पत्नी के अपराध को क्षमा करता है उसी प्रकार आप मेरे अपराधों को क्षमा कीजिए! यहाँ चतुर्थी का कोई औचित्य ही नहीं है। यहाँ अर्जुन ने भगवान को स्वयं का पुत्र, मित्र और मधुर भाव में प्रिया भी मान लिया। कदाचित् भगवान ने भी सोचा होगा कि देखो तो नब्बे वर्ष की अवस्था में एक वृद्ध पत्नी भी प्राप्त हो गई। इसी दृष्टि से तीनों सम्बन्धों का निर्वहण करते हुए भगवान ने अर्जुन को गीता जी के तीन सिद्धान्त सुनाए। पुत्र की दृष्टि से गुह्य 'य इमं परमं गुह्यम्' (गीता १८/६८) मित्र की दृष्टि से गुह्यतर 'इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्यात् गुह्यतरं मया' (गीता १८/६३) और पत्नी की दृष्टि से 'सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः' (गीता १८/६४)। हाँ यहाँ षष्ठ्ययन्त पक्ष ठीक तो है परन्तु 'आर्षत्वात्' कहना ठीक नहीं हैं। यहाँ भी मेरे पूर्वोक्त प्रकार से 'न मु ने' सूत्र के योग विभाग से ही 'प्रियाया अर्हसि' शब्द में दीर्घ करते समय यकार लोप की असिद्धि रुक जायगी। अर्थात् 'पूर्वत्रासिद्धम्' प्रवृत्त नहीं होगा। इसी प्रकार आदि काव्य वाल्मीकि रामायण के अयोध्याकाण्ड में कैकेयी द्वारा सीता जी के लिए वल्कल वस्त्र दिये जाने पर उसका निवारण करते हुए गुरुदेव वसिष्ठ जी कहते हैं कि सीता जी के लिए वल्कलविधान सम्मत नहीं है क्योंकि चक्रवर्ती जी ने इन्हें वनवास नहीं दिया है–

**न चीरमस्याः प्रविधीयतेति**
**न्यवारयत् तद्वसनं वसिष्ठः** (बा०रा० २/३३/३८)

'चीरम् अस्था न प्रविधीयते इति' यहाँ भी प्रविधीयते इति शब्द में सन्धि करते समय अयादेश और यकार का लोप करने पर षष्ठाध्यायी गुण की कर्तव्यता में 'न मु ने' सूत्र के योग विभाग से ही 'पूर्वत्रासिद्धम्' सूत्र के द्वारा की जा रही यकार लोप की असिद्धि रुक जायगी।

इस प्रकार पाणिनीय व्याकरण का अध्ययन भारतीय वाङ्मय में उठने वाली सभी समस्याओं का समाधान करते हुए भारत राष्ट्र की अखण्डता, एकता, सौहार्द और सार्वभौमता की प्रेरणा का सन्देश संवाहक भी बन जाता है और गीता जी का प्रत्येक शब्द भगवद् वाक्य होने के साथ-साथ वेदसम्मत सिद्ध होता हुआ सम्पूर्ण विश्व के विचारक बहनों और भाइयों की आस्था का केन्द्र बन जाता है।

**।।श्री राघवः शन्तनोतु।।**

❑❑❑

# कलियुग में राम-राज्य सम्भव है

❑ श्री जगदीशप्रसाद गुप्त ( जयपुर )

जी हाँ, आप दोनों बातें कह सकते हैं- ''कलियुग में राम-राज्य सम्भव है; सम्भव नहीं है- कल्पना है, सपना है। राम-राज्य की स्थापना त्रेतायुग में हुई थी। त्रेतायुग में, भगवान श्रीराम ने अवतार लेकर पहिले दुष्टों का, राक्षसों का संहार किया, फिर ग्यारह हजार वर्ष तक अयोध्या में राज्य किया। अयोध्या नरेश, श्री चक्रवर्ती महाराज दशरथ के ज्येष्ठ-पुत्र, श्रीराम का राज्यकाल एक ''राम-राज्य'' के नाम से प्रसिद्ध हुआ और वह त्रेतायुग एक सतयुग बनकर ''राम-राज्य'' का पर्याय कहलाने लगा। गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी ने अपने रामचरितमानस में कहा है- ''त्रेताँ भई कृतजुग कै करनी''

यद्यपि, कहने के लिए रघुवंश काल में राजतन्त्र स्थापित था और वंशानुगत शासन का क्रम चलता था, तथापि, वास्तव में शासन लोकतन्त्रीय भावनाओं से ओतप्रोत होता था। श्री चक्रवर्ती महाराज दशरथ दीर्घकाल तक श्वेत-छत्र के नीचे बैठकर कर्त्तव्य-पालन करते हुए वृद्ध हो गये और उनका शरीर विश्राम चाहने लगा। उन्होंने सभी मन्त्रियों तथा प्रजा-प्रतिनिधियों को राजसभा की विशेष बैठक में बुलाया और उनके सामने श्रीराम को युवराजपद पर अभिषेक करने का एक प्रस्ताव उनकी स्वीकृति हेतु रखा। सबने हर्षातिरेक में आसनों से एक साथ उठकर जय-ध्वनि की- ''श्रीचक्रवर्ती महराज की जय''! कुमार श्रीरामभद्र की जय! और कहा- ''महाराज! सचमुच आप वृद्ध हो चुके हैं। अब श्रीराम को अवश्य युवराज बना दें। हम सब कमललोचन श्रीराम को गज के ऊपर छत्र चामर सहित बैठे देखकर कृतकृत्य होना चाहते हैं। आपके ज्येष्ठ कुमार की सद्गुणों में कहीं समता नहीं है। अपने महान सद्गुणों के कारण वे प्रजा के प्राणप्रिय हो गए हैं। इस इक्ष्वाकुवंश में अब तक हुए सभी नरेशों से वे अपने दिव्य गुणों के कारण श्रेष्ठ हैं। श्रीराम को धर्मात्मा नहीं कहते बनता, धर्म श्रीराम को पाकर सनाथ हुआ है। प्रजा के सब लोग, स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध सायं-प्रातः अपनी उपासना के अनन्तर आराध्य से प्रार्थना करते हैं कि हम श्रीराम को अपना पालक देखें। आपके सम्मुख हम निःसंकोच कहते हैं कि हम वृद्ध जनों की एकमात्र अभिलाषा है कि श्रीराम को सिंहासनारूढ़ देखने तक हम अवश्य जीवित रहें। तत्पश्चात् कुलगुरु महर्षि वशिष्ठ जी की अनुमति ली और राज्याभिषेक की तैयारी होने लगी।

प्रभु-इच्छा से श्रीराम का राज्याभिषेक कैकेयी के वरदान के कारण नहीं हुआ और उन्हें चौदह वर्ष के वनवास पर जाना पड़ा। वे चौदह वर्ष बाद अयोध्या लौटे और उनका राज्याभिषेक हुआ। प्रभु श्रीराम के अभिषिक्त होते ही पृथ्वी शस्यवती हो गयी, भरपूर अन्न उत्पन्न होने लगा, सर्वत्र जल सुलभ हो गया, नदियाँ सब ऋतुओं में बहने लगी और वृक्ष-वनस्पतियों फल-फूलों से लद गई। स्त्रियों को वैधव्य का कष्ट नहीं उठाना पड़ता था। बूढ़े लोग जवानों का श्राद्ध नहीं करते थे किसी को कोई रोग नहीं होता था। खाने पीने की कमी नहीं होती थी। वृद्धावस्था नहीं आती थी। सभी सुखी रहते थे। श्रीराम का राज्य इतना सुखद शान्तिपूर्ण एवं सम्पन्न सिद्ध हुआ कि आज भी उसकी चर्चा होती रहती है और लोग चाहते हैं कि इस भारतभूमि में पुनः रामराज्य की स्थापना हो।

श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास जी ने श्रीरामचरित-मानस में रामराज्य का अद्भुत वर्णन किया है-

**राम राज बैठे त्रैलोका।**
**हरषित भए गए सब सोका।।**
**बयरु न कर काहू सन कोई।**
**राम प्रताप विषमता खोई।।**
**दैहिक दैविक भौतिक तापा।**
**राम राज नहिं काहुहि ब्यापा।।**
**नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना।**
**नहिं कोउ अबुध न लच्छनहीना।।**

'राम-राज्य' का साधक तत्त्व है- राजा का आचरण। भगवान श्रीराम ने अपने आचरण के द्वारा ही उन आदर्शों के बीज बोये जिससे रामराज्य का विशाल वृक्ष उत्पन्न हुआ। उन्होंने अपने आचरण द्वारा प्रजा तथा समाज को आदर्श रूप में ढाला था। प्रजा के सुख-दुख का दायित्व राजा पर होता है। गोस्वामी तुलसीदास जी का तो यह निर्भ्रान्त मत है-

**''जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।**
**सो नृप अवसि नरक अधिकारी।।''**

प्रजा के दुख का अर्थ है कि राजा अपने कर्त्तव्य से च्युत हो गया है- वह पालक नहीं, घातक बन गया है, वह रक्षक नहीं, भक्षक हो गया है।

इतिहास साक्षी है। राम-राज्य के बाद अनेक नामों से राजा हुए। उनमें कुछ अंश तक समानता रही, पूर्ण-रूपेण ''राम-राज्य'' नहीं हो पाये और राम-राज्य की कल्पना अभी तक अपूर्ण बनी हुई है। प्राचीन समय में, राजा-भोज हुए थे। उन्होंने बहुत चाहा कि उनका राज्य ''राम-राज्य'' से भी अधिक अच्छा राज्य ''भोज-राज्य'' कहलाए और रामकथा के समान भोज-कथा का ही प्रचार-प्रसार हो जाए। वे स्वयं विद्वान थे, काव्य मर्मज्ञ थे। राजसभा में पंडितों, कविजनों और गुणज्ञों का अधिकाधिक सम्मान होता था। राजा का सुयश चारों ओर फैला हुआ था। वे प्रशंसकों से घिरे रहते और अपनी प्रशंसा सुनने के आदी थे। दान-दक्षिणा के लोभी व चाटुकार प्रवृत्ति के कविजनों ने उन्हें मिथ्या उपमा दे देकर उनकी निर्णयात्मक शक्ति नष्ट कर दीं उनका यह मिथ्या आत्म-सन्तोष था कि उनकी प्रजा एवं कर्मचारी वर्ग राम-राज्य की प्रजा एवं कर्मचारियों से किसी तरह कम नहीं और उनका राज्य पूर्ण-रूपेण राम-राज्य है। प्रभु कृपा से, एक दिन उनका राम-राज्य का भ्रम एक घटित घटना से भंग हो गया और स्वयं सच्चे राम-भक्त बनकर राम-राज्य की ओर प्रयत्नशील हुए।

घटना है, एक चारण कवि ने राज भोज की आज्ञा पाकर राज-सभा में उन्हें प्रशस्ति काव्य सुनाना प्रारम्भ किया-

उदित भये द्वै सूर्य सम, जग तम नाशन हेतु। एक भोज हैं भूपति, दूजे रघुकुल केतु।। कविराज अपना मुख खोल, गा ही रहे थे कि उसी समय एक कौवा उड़ता हुआ सभा-भवन में आया और कवि के मुँह में विष्ठा (बीट) कर दी, फिर पास के एक वृक्ष पर बैठ गया। प्रशस्ति काव्य पूरा नहीं हुआ। कविराज थू थू कर जल लेकर कुल्ला करने लगे। श्रोताओं में से कुछ हँसने लगे और कुछ सभ्य लोग मौन रहे लेकिन प्रशंसा सुनते सुनते स्वयं को महान समझने वाले राजा भोज को क्रोध हुआ और कौआ को जिन्दा पकड़ने का आदेश दिया। चिड़ीमारों ने जाल बिछाकर कौआ को पकड़ा और एक पिंजड़ में बन्द कर राजा भोज के समक्ष उपस्थित किया। राजाज्ञा हुई कि कवि का अपमान करने वाले कौवा की गर्दन उड़ा दी जाये। कौवा राजाज्ञा को सुनकर बोलने लगा- राजन्! न्याय के नाम पर आप अन्याय कर रहे हैं। आपने अपने अपराधी को निर्दोष सिद्ध करने का अवसर भी नहीं दिया। राजा भोज कहने लगे- ''काक महाशय! मेरे अतिथि का अपमान कर निर्दोषता सिद्ध करना चाहते हो? कहिए।'' निर्भीक कौवा बोला- राजन्! आपके कवि महोदय ने प्रलोभन एवं स्वार्थवश

आपको सूर्य और भगवान की उपमा देकर आपकी मिथ्या प्रशंसा की है। रघुकुल-भूषण सूर्यसम श्रीराम से आपकी क्या समानता है, आप प्रशंसा-प्रिय एक सामान्य राजा हैं। मिथ्या प्रशंसक का मुँह अपवित्र होता है और अपवित्र स्थान पर विष्ठा करना कोई अपराध नहीं बनता। राजन्! यही नहीं, अपनी प्रशंसा स्वयं करना या सुनना भी महापाप है। आपको तो प्रशंसा सुनने का व्यसन है और इस कारण से आप अभिमानी भी हो गए हैं। सूर्य समान प्रतापी व शक्तिमान राजा निरभिमानी, विनम्र एवं आत्मनिष्ठ होते हैं, जैसे भगवान श्रीराम थे और आप में इन गुणों का अंशांश भी नहीं है, नितान्त अभाव है। राजन्! आप स्वयं चिन्तन करें, विचार करें।

जीवन में प्रथम बार, राजा भोज को न्यायोचित सत्य एवं स्पष्ट-वाणी सुनने को मिली; वे अत्यधिक प्रभावित हुए। कौवे को निरपराध घोषित कर, राजा भोज ने सविनय प्रार्थना की-"पक्षिराज! कौवे के वेष में आप संत-मुनि हैं, मेरा उद्धार करने आये हो। मेरी आँखें खोल दी हैं। कृपया, मुझे बताइये कि मेरा राज्य "राम-राज्य" कैसे बने? राम-राज्य का नमूना आज भी देखने को मिल सके तो कृपया, दिखाइये।" कौवे ने कहा- "राजन्!" रामराज्य के लिए भगवान राम के आदर्श गुणों एवं चरित्र को हृदयंगम करने की आवश्यकता है- 'रामस्य चरितं ग्राह्यम्" रामराज्य में प्रजाजन कैसे सुखी और सन्तुष्ट थे, इसका नमूना त्रेतायुग की प्राचीन अयोध्या में देखने को मिलेगा। उस अयोध्या को यवनों ने नष्ट कर दिया और वह स्थान बीहड़ जंगल के रूप में है। फिर भी उस स्थान पर राम-राज्य की एक आदर्श झलक देख सकते हैं।" इतना कहकर, वह कौवा राजा भोज को, उनके विश्वासपात्र मंत्रिमंडल और सेवकों सहित, साथ लेकर निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचा। वहाँ पर खुदाई कराई गई, कुछ गहराई पर एक गुफा का प्रवेश द्वार दिखा। चार विश्वासपात्र मन्त्रियों के साथ, राजा भोज को कौवा ने उस गुफा में प्रवेश कराया और गुफा के मध्य चौक में एक स्वर्णथाल में भरे हुए दिव्य रत्नों से रंगीन प्रकाश जगमगा रहा था। कौवे की सलाह से, राजा भोज ने अपने चार विश्वासपात्र मन्त्रियों से उस थाल को उठवाकर सभी गुफा के बाहर आ गए और थाल को एक उच्चासन पर रखवा दिया। तत्पश्चात्, कौवे ने कहा- "राजन्! अब आप भगवान राम के चरित्र और उनके प्रजाजनों की आर्थिक, नैतिक एवं धार्मिक परिस्थिति का यथार्थ दिग्दर्शन करें। रत्नों से भरा यह स्वर्णथाल राम-राज्य के समय का है। उनके नगर सेठ को पूर्वजन्म के दोष के कारण देर से पुत्र-प्राप्ति हुई थी। जन्मोत्सव पर स्वयं प्रभु श्रीराम और जगज्जननी माँ सीता ने नगर सेठ के घर जाकर पुत्र को आशीर्वाद दिया। नगर सेठ ने विदाई के समय भगवान श्रीराम के श्रीचरणों में यह थाल समर्पित किया था। भगवान श्रीराम ने उपहार स्वीकर कर, उन्हें अयोध्या के गरीबों को प्रसादरूप में बाँटने को कहा; उनका राजकोष भरा हुआ था। नगर सेठ को अयोध्या में रत्नों का लेने वाला कोई भी गरीब नहीं मिला। राम-राज्य में सभी सुखी और सन्तुष्ट थे। प्रभु श्रीराम को, यह जानकर कि उनके राज्य में एक भी दरिद्र मनुष्य नहीं है, अति प्रसन्नता हुई और उस थाल को अयोध्या के प्रवेश-द्वार के चौक में रखवा दिया, जिस किसी को आवश्यकता होगी, ले जायेगा; सम्भव है, शर्म के कारण किसी ने लेने का साहस न किया हो। यह थाल वहीं का वहीं रखा रहा, किसी ने एक रत्न भी नहीं उठाया। राजन्! यह था श्रीराम का चरित्र और प्रजाजनों की प्रतिष्ठा और रामराज्य की छोटी सी झलक। प्रजा का असन्तोष ही चोरी, लूट, छलकपट,

भ्रष्टाचार रिश्वत को जन्म देता है। राजन्! आपका यह मानना कि आपकी प्रजा और कर्मचारी लोग राम-राज्य की प्रजा और कर्मचारियों से किसी तरह कम नहीं हैं और मंत्रीगण विश्वासपात्र हैं, मिथ्या आत्मसन्तोष है। विश्वास न हो तो अपने इन चार विश्वासपात्र मन्त्रियों की तलाशी लेकर स्वयं देख लें; इन्होंने अपने साथ चलते चलते ही इस थाल में से एक-एक बहुमूल्य मुक्ताफल की चोरी की है। ''राजा कालस्य कारणम्'' राजाही काल का कारण होता है।''

चारों विश्वासपात्र, मंत्री थर थर काँपने लगे। उन्होंने अपने कपड़ों में छिपाया हुआ एक-एक रत्न निकाल कर राजा के श्रीचरणों में रख दिया और क्षमा-याचना करने लगे। राजा भोज का अहंकार चूर चूर हो गया। राम राज्य के समय का रत्नों से भरा वह स्वर्ण-थाल पुनः वहीं भूगर्भ में रखवा दिया गया। सन्देह है, वह स्वर्ण-थाल इस कलियुग में सुरक्षित होगा?

इतने वर्षों के अन्तराल में, देश की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक स्थिति बिगड़ती ही गई। देश के रक्षक भक्षक बन गये, राष्ट्रीयता कोसों दूर चली गई, चरित्र और नैतिकता का नाम ही रह गया, और अब चारों ओर भ्रष्टाचार ही आच्छादित है- अपवाद नगण्य हैं। आज, राष्ट्रीयता से अनभिज्ञ ये राजनेता देश-द्रोही व भ्रष्टाचारी होकर लोकनायक बने हुए हैं। ये अपने हाथों से राजकोष से भारी वेतन-पेंशन, भत्ते, परिलाभ और अनेक प्रकार की सुख सुविधाएं उठाकर भी भ्रष्ट होते गये और अपनी अगली पीढ़ियों के लिए असीमित-संचय किया और कर रहे हैं। कोई कहने सुनने वाला नहीं हैं। देश के अधिकांश आचार्य, शिक्षाविद्, सन्त और समाज सुधारक भी इन्हीं नेताओं के माध्यम से सुख-सुविधाएं लेकर मौन हो गए हैं, इन्हीं में लिप्त हो गए हैं। हार्दिक पीड़ा होती है, इनके आचरण देख देखकर। क्या हो गया है इन्हें? किन शब्दों में इन्हें उच्चारित किया जाये, भूषित किया जाये, शब्द-कोष भी साथ नहीं देते। एक क्रान्तिकारी सन्त ने यही कहा था- ''सौ करोड़ से अधिक जन-संख्या वाले इस समस्त भारत-देश को सुधारने की आवश्यकता नहीं है; देश-प्रदेश की राजधानियों में बैठे ये कुछ राजनेता ही सुधर जायें, देश का सौभाग्य होगा।''

राम-राज्य के लिए चरित्र-निर्माण और राष्ट्रीयता की आवश्यकता है। राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त ने अपने महाकाव्य 'साकेत' में वर्णन किया है कि प्रभु- श्रीराम ने इस भूतल पर अवतार लेकर समाज के सामने आर्यों का आदर्श रखा धन के स्थान पर मानव-सम्बन्ध को विशेष महत्व दिया। उन्होंने समाज में सुख और शान्ति की स्थापना के लिए क्रान्ति का सन्देश दिया और भक्तजनों के विश्वास की रक्षा की। वे विश्व में नया वैभव व्याप्त कराने और मानव में ही ईश्वरत्व की प्रतिष्ठा कराने के लिए ही आये थे। उन्होंने इस भूतल को स्वर्ग का सन्देश नहीं दिया, वरन उसे ही सुख, शान्ति, सौहार्द, प्रेम, दया आदि मानवोचित गुणों से परिपूर्ण करके स्वर्ग बनाया-

**मैं आर्यों का आदर्श बताने आया,**
**जन सम्मुख धन को तुच्छ जताने आया।**
**सुख-शान्ति-हेतु मैं क्रान्ति मचाने आया,**
**विश्वासी का विश्वास बचाने आया।।**
**भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया,**
**नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया।**
**सन्देश यहाँ पर नहीं स्वर्ग का लाया,**
**इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।।**

'साकेत' के राम-राज्य में सभी मनुष्य इस प्रकार प्रेम से मिलकर रहते हैं, जैसे किसी वृक्ष के अनेक खिले हुए पुष्प-

**एक तरु के विविध सुमनों से खिले,**
**पौरजन रहते परस्पर हैं मिले।**

❑❑❑

# नवयुवकों से

❑ डा० रामदेवप्रसाद सिंह 'देव'

अरविन्द हो विवेक हो
मानवता का अभिषेक हो
रमण हो रवीन्द्र हो
तेग गुरु गोविन्द हो
लाल, बाल, पाल हो
भगत सिंह औ लाल हो
खुदीराम बोस हो
प्रचण्ड जनाक्रोश हो
पटेल हो नरेन्द्र हो
मोती हो महेन्द्र हो
जवाहर हो राजेन्द्र हो
सत् प्रेरणा के केन्द्र हो
साक्षात् मूर्त शक्ति हो
युग परिवर्तन की तुम
अदम्य अभिव्यक्ति हो
तुम 'चरैवेति चरैवेति'
'उतिष्ठत जाग्रत......'
'सहनाववतु सहनौ भुनक्तु'
'संगच्छध्वं संवदध्वं......'
'माता भूमिः पुत्रोऽहम् प्रथिव्याः'
'श्रृण्वन्तु सर्वे अमृतस्य पुत्राः'
आदि आर्ष मंत्रों का
अनुरक्षण-स्मरण कर
अनुशक्ति कर मनन कर
एतद्देश प्रसूतस्य.........
शिक्षेरन् प्रथिव्याः सर्वमानवाः
महोद्घोष का प्रमाण कर
मर्यादा पुरुषोत्तम के महान्
मानवादर्शों का सर्वत्र
सत्वर संविधान कर
म्रियमाण मानवता को
संजीवनी दान कर
सबका कल्याण कर
तूम भूल कर भी
इस अध्यात्म योग भूमि पर
भोग भ्रष्ट न बनो
यह संतों की धरती है
इस यथार्थ से आँखें न मुनो!

❑❑❑

# ब्रेल लिपि के आविष्कारक-श्रीलुई ब्रेल

❑ संकलनकर्ता-श्री ललिताप्रसाद बडथ्वाल

अँधेरी दुनिया में ज्ञान का दीपक जलाने वाले व्यक्ति थे बोलोतें होए जिनका जन्म फ्रान्स में हुआ था। उन्होंने ही विश्व में प्रथम अन्ध विद्यालय की स्थापना की थी, दृष्टिहीनों की अँधेरी दुनिया में शिक्षा का प्रकाश फैलाने को जन्म लिया।

होए के इस विचार को और मजबूत आधार दिया दृष्टिहीन लुई ब्रेल ने। बचपन में ही किसी दुर्घटना में उनकी आँखों की ज्योति नष्ट हो गई थी और स्पर्श और ध्वनियों के माध्यम से उन्होंने प्राणियों की आवाजें पहिचानना सीखा कुछ बड़े होने पर लुई को होए के अन्ध विद्यालय में भर्ती करा दिया गया जहाँ छात्रों को अक्षरों की सामान्य आकृतियाँ कागज पर उभार कर उन्हें उंगली के स्पर्श से पहिचानना सिखाया जाता था। कालान्तर में लुई ब्रेल इसी स्कूल में अध्यापक बने। शिक्षक बनकर भी छात्र बने रहने का बोध ही उन्हें दृष्टिहीनों के लिए एक उन्नत विकल्प ढूँढने के लिए प्रेरित करता रहा। क्योंकि अपने छात्र जीवन में ही उन्होंने अनुभव कर लिया था कि दृष्टिहीनों के लिए होए की विधि बहुत उपयोगी नहीं है।

एक नई लिपि के आविष्कार का सपना उनके मन में छात्र जीवन में ही जन्म ले चुका था। वे अपने स्कूल में हॉस्टल में रात में मोटे कागज पर बिन्दुओं के अक्षर बनाते और दिन में अपने मित्रों से उनकी पहचान करवाते। इस प्रकार पारस्परिक विचार मंथन में जो त्रुटियाँ सामने आतीं उन्हें रात में सुधारने का प्रयास करते और इस प्रकार लुई ने बहुत शीघ्र फ्रान्सीसी भाषा की वर्णमाला, विराम चिह्न गणित आदि की व्यवस्था को पढ़ने लिखने वाली लिपि विकसित कर डाली और संगीत की स्वर लिपियों पर भी वर्षों तक योजनाबद्ध ढंग से कार्य करते हुए सन् १८२५ तक पूरा कर लिया। ब्रेल लिपि की प्रथम पुस्तक विस्तृत विवरण के साथ सन् १८२९ में प्रकाशित हुई थी। इस प्रकार श्रीलुई ब्रेल सामान्य दृष्टिहीन व्यक्ति एक ऐतिहासिक पुरुष बन गये।

❑❑❑

# नारी उत्पीड़न

हमारे धर्मशास्त्रों में नारी को साक्षात देवी दुर्गा का स्वरूप मानकर उनका सम्मान करने की प्रेरणा दी गई है। कहा गया है कि जिस घर में नारी की पूजा होती है वहीं देवता निवास करते हैं। अति भौतिकवाद के अंधानुकरण का यह दुष्परिणाम है कि धर्म-प्राण भारत में नारी को 'भोग्या-वस्तु' मानकर पग-पग पर उसका अपमान, उत्पीड़न किया जाने लगा है।

दूरदर्शन (टी०वी०) पर नारी को अर्द्धनग्न अवस्था में प्रदर्शित किया जाना, विज्ञापनों में नारी देह का प्रदर्शन हमारे घोर पतन का परिचायक है। नारी को मर्यादाविहीन बनाकर हम स्वयं उसकी गरिमा से खिलवाड़ कर रहे हैं। शालीनता और मर्यादा ही भारतीय नारी के आभूषण कहे गए हैं। अब 'नारी मुक्ति' के नाम पर, नर नारी समानता के नाम पर, जो कुकृत्य किए जा रहे हैं, उन्होंने नारी के सम्मान को तार-तार कर डाला है।

सभ्य व शिक्षित कहे जाने वाले समाज में भी अब दहेज के लिए बहुओं के उत्पीड़न की घटनाएँ होने लगी हैं इस घोर शर्मनाक व पापयुक्त प्रवृत्ति को रोका जाना नितांत आवश्यक है।

कुछ परिवारों में भ्रूण-परीक्षण करवाकर अजन्मी मासूम बालिकाओं की नृशंस हत्या की जाने लगी है। यह भ्रूण-हत्याएँ घोर नरक का कारण बनेंगी, यह अच्छी तरह सोच लेना चाहिए। भ्रूण हत्या से बढ़कर दूसरा कोई पाप-कर्म नहीं हो सकता। ❑❑❑

# श्री राघव कृपा

❑ दासानुदास श्रीरघुनन्दनदास 'मौनी' वसिष्ठायनम् (हरिद्वार)

**एक बार चले आओ मेरे राम प्राण प्यारे।**
**अब और न सताओ मेरे लोचनों के तारे।।**
**सब कुछ मैं छोड़ बैठा हूँ आपके सहारे।**
**''रघुनन्दन'' जरातो सोचो तुम्हीं एक अब हमारे।।**
**कृपा बनाए रखना मेरे राम प्राण प्यारे।**
**''रघुनन्दन'' जी रहा है बस आपके सहारे।।**
**नहीं देर अब लगाना हे कौसिला के बारे।**
**यह दास आ पड़ा है अब आपके ही द्वारे।।**
**मतवाली मीरा की तरह झूमते रहो श्याम के प्यार में।**
**प्रभु से प्रेम ही है सार इस असार संसार में।।**
**चले आते हैं श्याम भक्तों की एक ही पुकार में।**
**''रघुनन्दन'' लुटा दो सर्वस उस प्यारे के प्यार में।**

भगवान् कब, कहाँ, कैसे और किस पर अपनी अकारण करुणा से उसे कृतार्थ कर दें यह केवल वही अकारण करुणावरुणालय, वांछाकल्पतरु, भक्तवत्सल, दीनबन्धु, दीनानाथ, कृपानिधान, दयासिन्धु, राजीवलोचन परमपिता परमेश्वर ही जानते हैं। भगवान् केवल भाव के भूखे हैं। भगवान कहते हैं कि ''तुम अपना तन और धन संसार को दे दो मुझे केवल अपना मन अर्पण करो मुझे तुम्हारा तन और धन नहीं चाहिए क्योंकि वह तो मैंने ही तुम्हें दिया है।'' प्रभु गुणग्राही हैं अर्थात् अपने भक्तों एवं शरणागतों के दोषों पर उनकी दृष्टि जाती ही नहीं है श्रीवैष्णव कुलभूषण, श्रीहुलसीहर्षवर्धन, पूज्यपाद् गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी महाराज श्रीरामचरितमानस में लिखते हैं।

**व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन विगत विनोद।**
**सो अज प्रेम भक्ति बस कौशल्याकी गोद।।**

ठीक यही दृश्य एक अर्धरात्रि स्वप्न में इस दास को प्रभु की अकारण करुणा के परिणाम स्वरूप दृष्टिगोचर हुआ। पूज्या बुआ जी जैसा कि सर्वविदित है जिनके कुशल प्रबंधन एवं निर्देशन में बड़े-बड़े कार्यक्रम सानंद सम्पन्न हो रहे हैं। जिनकी सेवा एवं त्याग इतिहास के स्वर्ण अक्षरों में लिखा जाएगा ऐसा मेरा विश्वास है।'' उन्ही हम सबकी पूज्या बुआ जी की गोद में श्रीबालरूप राघव जी विराजमान हैं। राघव जू की बहुत छोटी उम्र है (लगभग दो, तीन वर्ष) शिर पर काले-काले घुंघराले बाल, नीलमणि के समान कांति, मस्तक पर सुन्दर तिलक, कानों में सुन्दर कुण्डल, मन्द-मन्द मुस्कान आदि। उस दिव्य झांकी का भला कैसे बखान किया जा सकता है वह झाँकी आज भी मेरे नेत्रों का विषय बनी हुई है। जिन प्रभु का स्वप्न में भी योगियों को दर्शन प्राप्त नहीं होता यह केवल उनका अकारण करुणा प्रसाद ही तो है। प्रभु के प्रेमी यही तो चाहते हैं कि जीवन में एक बार भी उस प्यारे का दर्शन लाभ प्राप्त हो जाए। भक्तों की यही कामना रहती है कि भगवान् एक बार तो इन नेत्रों के अतिथि बनें लेकिन ऐसा सौभाग्य जिस पर श्री गुरु और गोविन्द दोनों प्रसन्न हो कम लोगों को ही प्राप्त होता है। वह नर परम बड़भागी है जिन्हें श्रीगुरु और श्रीगोविन्द की एक साथ कृपादृष्टि प्राप्त हो।

एक दिन जब यह शुभ और मंगलकारी स्वप्न इस दास ने पूज्या बुआ जी को दूरभाष पर सुनाया तो उन्होंने गद्गद् कंठ से बार-बार यही वाक्य कहा ''राघव मेरी गोद में विराजमान होंगे ऐसा मेरा सौभाग्य है।'' सच है यही तो जीवन का परम लाभ है। ज्ञात हो एक दिन श्रीवसिष्ठायनम् हरिद्वार में हमारे परमाराध्य प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद् जगद्गुरु रामानन्दाचार्य श्रीगुरुदेव भगवान् ने प्रसाद ग्रहण करते समय पूज्या बुआ जी को शुभ आशीष दिया कि ''आज मैं बहुत प्रसन्न हूँ आपको श्रीराघव जू का दर्शन अवश्य प्राप्त होगा'' यद्यपि इस प्रकार के प्रसंगों को सार्वजनिक नहीं किया जाता यहाँ मेरा लिखने का केवल इतना ही तात्पर्य है कि जो भी प्रभु के प्रेमी इसे पढ़ें उनका भगवान् में और अधिक प्रेम, भक्ति, अनुराग और विश्वास दृढ़ हो इसी आशा और मंगलकामना के साथ। सादर सप्रेम नमो राघवाय।

❑❑❑

# शिखा की वैज्ञानिक-रहस्यपूर्णता

❑ **पूज्य पं० दीनानाथ शास्त्री सारस्वत विद्यावागीश**

**'सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च।**
**विशिखो व्युपवीतश्च यत् करोति न तत्कृतम्'।।**

(कात्यायन स्मृति १/४)

श्रीगणेश के मङ्गलाचरण तथा उनका वैदिक देव होना वेदादि से सिद्ध करके हम हिन्दू धर्म के प्रसिद्ध आचार 'शिखा' पर पहले लिखना उचित समझते हैं, क्योंकि- हिन्दूजाति का बाह्य मुख्य चिह्न शिखा है। आजकल के हिन्दु नवयुवक शिखा के रखने से बहुत घबराते हैं, और उसके रखने के वैज्ञानिक प्रयोजन पूछा करते हैं।

## लार्ड मैकाले के अनुयायी

(१) सन् १८३५ में लार्ड मैकाले हिन्दुस्थान में अंग्रेजी शिक्षा की योजना बना रहा था। उस समय उसके ये शब्द थे-

"हमें अपनी सब शक्ति लगाकर अवश्य ही ऐसा उद्योग करना चाहिये-जिससे इस देश में एक ऐसी जनश्रेणी पैदा हो जाय, जो हमारे और उन करोड़ों व्यक्तियों के बीच मध्यस्थ का काम करे, जिनपर हम शासन कर रहे हैं। अंग्रेजी शिक्षा-द्वारा एक ऐसा मनुष्यदल तैयार होगा, जो हाड़, मांस और लहू में भले ही हिन्दुस्तानी रहे, किन्तु आचार-विचार, खान-पान, रुचियों, रहन-सहन तथा दिल-दिमाग और बुद्धि में बिल्कुल अंग्रेज होगा"।

(Quoted in C.H.I. Vol VIP, 111)

यह सोचकर मैकाले ने भारतवर्ष्ज में अंग्रेजी शिक्षा प्रारम्भ की। उसका फल उसने अपने पिता को लिखा था कि- वह शिक्षापद्धति जिसका आरम्भ भारतीयों को दोगले अंग्रेज बनाने के लिए किया गया था, कितनी सफल हो रही है। मैकाले ने लिखा- 'जो भी हिन्दु अंग्रेजी-शिक्षा ग्रहण कर लेता है, वह अपने धर्म में सच्ची श्रद्धा खो बैठता है। कुछ लोग केवल दिखावे के लिए उसे मानते हैं, अधिकतर एकेश्वरवादी और कुछ ईसाई हो जाते हैं। यह मेरा दृढ़ विश्वास है कि- यदि हमारी शिक्षा की योजना का पूरी तरह अनुसरण किया गया; तो अबसे तीस वर्ष बाद हिन्दुस्तान में अच्छे-अच्छे घरानों में एक भी हिन्दु मूर्तिपूजक नहीं रहेगा।'

'भारतवर्ष का बृहद् इतिहास' (प्रथम भाग) पृष्ठ ६३ में आर्य समाज के अनुसन्धाता श्रीभगवद्दत्तजी ने लिखा है- 'लार्ड वेण्टिङ्क उन दिनों भारत का गवर्नर जनरल था। उसने मैकाले के प्रस्ताव के साथ पूर्ण सहानुभूति प्रकट की। अन्ततः मैकाले की नीति के अनुसार भारत में शिक्षा का प्रकार चलने लगा। अंग्रेज और जर्मन अध्यापक और महोपाध्याय भारत में आने लगे। उन्हीं की सिखाई विद्या वास्त्विक विद्या मानी जाने लगी। जो कोई सज्जन, भारतीय ढंग की बात करता था; उसे तर्क-विरुद्ध, विद्या-विरुद्ध, इतिहास-विरुद्ध, बुद्धिविरुद्ध, प्रमाणशून्य कहानी, अथवा मिथ्या कथा कहा जाने लगा। ये शब्द विदेशीय लेखकों और अध्यापकों ने अधिकाधिक प्रयुक्त किये। .... इसमें सन्देह नहीं-मैकाले ने भारतीयता को नष्ट करने की जो कूटनीति बनी थी; वह प्रभावशालिनी सिद्ध हुई। आज भारत में अंग्रेजी शिक्षा-प्राप्त लोगों की एक श्रेणी है, जो विचार और

रुचि आदि में पूरी तरह अंग्रेज हैं। उस श्रेणी में भारत के अनेक गण्यमान्य नेताओं की गणना हो सकती है।'

इसी पाश्चात्य शिक्षा में दीक्षित लोग यूरोप की सभ्यता के दास बन चुके हैं। इन्हें सिर पर चोटी रखने से लज्जा आती है। गले में यज्ञोपवीत पहनने से भार दीखता है। देवदर्शनार्थ देवमन्दिर में जाना इनके मत में मूर्खता की पराकाष्ठा है। चन्दन आदि अन्य हिन्दु चिह्न रखते घबराते हैं। नाम भी अपने जे०पी० चौधरी आदि अंग्रेजी शैली के रखते हैं। शिखा-यज्ञोपवीत आदि धार्मिक चिन्हों के लिए जो श्रद्धा एक गँवार भारतीय में है; वह बी० ए० ग्रेजुएट में नहीं।

यह लोग पवित्र संस्कृत भाषा को मृतभाषा कहते हैं। अपने आपको इस देश के आदिम निवासी न मानकर वैदेशिक मानते हैं। भारतीय होते हुए भी भारत से उनका प्रेम नहीं रहा। इस सारे अनर्थ का मूल पाश्चात्य शिक्षा है। जिस काम को औरङ्गजेब की तलवार की धार न कर पाई, वही इस पाश्चात्य शिक्षा से अनायास हो रहा है। लोगों का अपने धर्म से विश्वास, अपनी भाषा एवं प्राचीन वेषभूषा में आस्था दिनों-दिन घटती जा रही है। अंग्रेज चले गये पर अंग्रेजियत सुव्यवस्थित है। इसीलिए आज शिखा तथा यज्ञोपवीत आदि के प्रयोजनों को पूछने के लिए तरह तरह के प्रश्नों की झड़ी लगा दी जाती है। उस जिज्ञासा की पूर्त्यर्थ हमारी यह पुस्तक है। इसमें हम प्रचीन अर्वाचीन सब प्रकार के विचारों का सङ्कलन करेंगे।

(२) हमारे प्राचीन लोग पहले समय में धार्मिक चिन्हों के प्रयोजनों को न बताकर उनका अवलम्बन 'धर्म' कह दिया करते थे। उनका आशय यह था कि-प्रयोजन बता देने पर नवीनता-प्रिय लोगों के दृष्टिकोण में उस नियम में कोई नवीनता नहीं रह जाती। उन लाभों को मानकर भी उन नियमों के अवलम्बन में उपेक्षा हो जाया करती है। इसका उदाहरण भी देख लीजिये। धार्मिक नियम यह था कि- रजस्वला स्त्री का स्पर्श नहीं करना चाहिये। धार्मिक दृष्टि स्थापित करने वालों ने इस नियम का यथावत् पालन किया; परन्तु नवशिक्षितों ने जब इस अस्पृश्यता के प्रयोजन पूछे और उनको उन्हें बतलाया गया; तब वे कहने लगे ये तो ठीक हैं; परन्तु हम उस स्त्री का स्पर्श क्यों न करें? उसके द्वारा रोटी क्यों न पकवावें? हम उसका अन्य उपयोग न लेंगे; परन्तु यह बात भी कुछ समय चली। फिर उसका विपरीत उपयोग होने लगा। फिर यथापूर्व उपयोग करके हानियों का विचार हटा दिया गया।

इस प्रकार सनातनधर्मानुसार हिन्दुजाति के सिर पर शिखा रखना वास्तव में अदृष्टमूलक ही है, उसमें दृष्ट प्रयोजनों की आवश्यकता सर्वथा नहीं; पर आजकल के अविश्वासी लोग बिना प्रयोजन जाने शिखा रखना छोड़कर सनातनधर्म को हानि पहुँचाने वाले न सिद्ध हो जावें, यह विचारकर उनकी जिज्ञासा पूर्त्यर्थ यथाशक्ति प्रयत्न किया जाता है।

## शिखा बाह्य चिन्ह

(३) शिखा हिन्दु जातिका उपयोगी बाह्य चिह्न है। यद्यपि 'न लिङ्गं धर्मकारणम्' (मनु० ६/६६) चिह्न धर्म का कारण नहीं होता; तथापि यदि चिह्नमात्र भी न हो, तब लोकलज्जा आदि के न होने से पुरुष सर्वथा कर्तव्यहीन हो जावे। इस चिह्न के होने से ही हिन्दुओं में आज भी सन्ध्यातर्पण आदि कर्म सुरक्षित हैं। इस कारण उक्तवचन पर कुल्लूक भट्ट ने कहा

है– 'एतच्च धर्मप्राधान्यबोधनाय उक्तम्, न तु लिङ्ग–परित्यागार्थम्' अर्थात् धर्म को प्रधानता देने के लिये उक्त वचन है; धार्मिक चिह्न को छोड़ देने के लिए यह नहीं। आजकल हिन्दु लोग अपने चिह्न भी छोड़ रहे हैं, साथ ही धर्म भी छोड़ रहे हैं। कैसे जाना जाय कि ये हिन्दु हैं? मस्तक से तिलक मिटा दिया गया है, यज्ञोपवीत हटा दिया जा रहा है, धोती से लांग हटाई जा रही है; अब शेष बचा हुआ शिखा (चोटी) का चिह्न भी हटाया जा रहा है। शोक!!! क्या दशा होगी हिन्दु जाति की?

परन्तु लार्ड मैकाले की दूरदर्शिता उसके अपने विचार से भी बढ़ गई। अब तो यह हिन्दु जनश्रेणी अपने चिन्हों को छोड़ती हुई रूप–रंग में भी 'भारतीय' नहीं दीखती। अंग्रेज–मुस्लिम रमणियों को स्वीकार करती हुई रुधिर से भी वैदेशिक हो रही हुई दीख रही है। अंग्रेजों के चले जाने पर भी अंग्रेजियत नहीं गई। खेद!!! इन्हीं लार्ड मैकाले के मानसिक शिष्यों को अपने शिखा आदि चिह्न छोड़ता हुआ देखकर अन्य लोगों ने भी उनका अनुसरण किया। आज भी पूरा–पूरा तो उनका प्रभाव नहीं हुआ; अतः चोटी सर्वथा तो नहीं हटी; आज भी बहुत से शिखा–सूत्रधारी हैं ही। थोड़े लोगों ने शिखा छोड़ी है; उससे उनकी कहीं–कहीं हानि भी दिखाई पड़ जाती है। बम्बई में हिन्दु–मुसलमानों की लड़ाई में अनेक हिन्दु हिन्दुओं के द्वारा ही मार दिये गये जो चोटी ने होने से हिन्दुओं से मुसलमान समझ लिये गये थे।

(४) परन्तु कई लोग यह कहते हैं कि– 'शिखा के न होने से हम साम्प्रदायिक कलहों में मुसलमानों के समूह में निश्चिन्त होकर विचरेंगे; और उनसे हानि न प्राप्त करेंगे।' पर इस प्रकार के पुरुष दूर से ही प्रणाम–योग्य हैं। बहुत खेद की बात है कि– इसी शिखा के बचाव के लिए महाराणा प्रताप ने तथा महाराष्ट्र–राष्ट्रपति शिवाजी ने, इस प्रकार दूसरे राजपूतों ने प्राणों को दाँव पर लगा दिया था, गुरु गोविन्द सिंह के लड़कों ने और बालक हकीकत राय ने अपने प्राणों की आहुति देने में भी देरी नहीं लगाई; उसी शिखा को यह लोग बिना ही किसी अत्याचार के स्वयं ही काट रहे हैं!

ऐ अंग्रेजी राज्य! हम तेरी मुक्तकंठ से प्रशंसा करेंगे। यदि आज मुसलमान सम्राट् औरङ्गजेब होता, तो वह हिन्दुओं की शिखा के काटने के लिए किये गये अपने अत्याचारों की स्वयं ही निन्दा करता और कहता कि–मैंने अत्याचार करने पर भी हिन्दुओं की शिखा कटवाने में सफलता प्राप्त नहीं की; और तू (अंग्रेजी–राज्य) ने बिना ही आत्याचार एवं बिना ही उसके रुकवाने के प्रचार के, हिन्दुओं से चोटी छुड़वा दी, बल्कि भारत–वर्ष से तेरे निकल जाने पर भी हिन्दु तथा उनके नेता भी आज भी उस चोटी का सिर पर रखना हास्यास्पद एवं 'जंगलीपन' समझते हैं।

आजकल के शिखा की उपेक्षा करने वाले जानते हैं कि– इसी शिखा के ही कारण हिन्दु जाति आज भी जीती है, धार्मिक परतन्त्रता को प्राप्त किये हुए भी सांस ले रही है। शिखा–विहीन जातियाँ क्रम से नाम भी विलुप्त करवा बैठी, और करवा लेंगी। यदि आप अपनी शिखा कटवाते हैं; तो शिखा कटवाने वाली अन्य जातियों की तरह आप भी कट जावेंगे। 'धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः' (मनु० ८/१५)। इस शिखा के महत्त्व को आप कभी न भुलावें। जो

लोग फैशन के दास बनकर या उन जैसों से ठगे जाकर शिखा काट देते हैं; वे अवश्य भारी भूल करते हैं; पीछे उन्हें पछताना पड़ेगा। शिखा के ही एकछत्र राज्य की छाया में समस्त हिन्दु जाति की एकता हो सकती है।

## शिखा सर्वव्यापक

(५) वैसे तो शिखा से कोई किसी भी रूप में छूटा हुआ नहीं है। मुसलमान लोग अपनी तुर्की टोपी पर काले धागे की बनाई चोटी को प्रकारान्तर से रखते ही हैं। यूरोपियन फौजियों के टोपी के ऊपर भी रुपहली वा पीतल की चमकदार शिखा हुआ ही करती है। इस प्रकार हैट पर भी शिखासदृशता दीखती है। राजाओं वा सेनानायकों के सिरों पर सुन्दर पक्षियों के पंख की बनाई 'कलगी' शिखा का ही तो दूसरा प्रकार है। थानेदार आदियों के पटके पर रुपहला वा सुनहरा गुच्छा शिखा ही तो है। किन्हीं के पटके (साफे) पर दीख रहा हुआ तुर्रा अथवा पटके के बीच में पड़ा पठानी कुल्ला ऊँची शिखा का ही तो बोध कराते हैं। किन्हीं की शिखा तो स्वराज्यान्दोलन से आन्दोलित होकर साफे की जेल में बन्द होना न सहती हुई सी, माथे के अग्रिम केशों के रूप में परिणत हो जाती है परन्तु वैध शिखा न होने से वैसे लोग उससे होने वाले लाभों को प्राप्त नहीं कर सकते। आजकल के अंग्रेजी बाल भी जिसमें पिछले बाल कान तक काटे जाते हैं, शेष रखे जाते हैं–शिखा का ही तो प्रकार है। दाक्षिणात्य लोग इससे उल्टी शिखा रखते हैं, सिर के अग्रिम बालों को काट देते हैं; शेष सब बालों की उनकी चोटी होती है।

न केवल मनुष्यों में ही, अपितु पक्षियों में भी शिखा दीखती है। मोर 'शिखी' नाम से और कुक्कुट (मुर्गा) 'ताम्रचूड' नाम से प्रसिद्ध हैं ही। काष्ठकूट पक्षी की शिखा कैसी सुन्दर होती है। राज–सर्पों के सिर पर भी प्रकृति से दी हुई शिखा सुनी जाती है। पशुओं के सिर पर उभरे हुए सींग उनकी शिखा का बोध कराते हैं। शिखा के कारण ही ये पशु–पक्षी सौन्दर्य एवं कई प्रकार के गुणों को धारण करते हैं। अग्निदेवता भी शिखा धारण करने से 'शिखी' कहलाते हैं, जिनका उपासक सारा संसार है। इस विषय में आगे स्पष्टता की जायेगी।

इस प्रकार वृक्षों में प्रत्येक फल के, प्रत्येक शाखा एवं पुष्प के सिर पर भी शिखा दीखती है। शिखरी (पहाड़) का शिखर भी शिखा होने से ही होता है। **'शिखाया ह्रस्वश्च' (५/२/१०७) इस पाणिनिसूत्र से शिखा शब्द को ह्रस्व और 'र' प्रत्यय करने पर 'शिखर' बनता है, जिसका अर्थ है 'शिखा वाला'।** शिखा सबसे ऊँची होती है, यह उसकी श्रेष्ठता का प्रमाण है। 'चोटी के विद्वान्' यह हिन्दी में 'मुहावरा' रूप से प्रयुक्त वाक्य भी शिखा को मुख्य बता रहा है। इस तरह स्थावर जङ्गमात्मक जगत् में जहाँ–तहाँ शिखा का साम्राज्य जिस–किसी रूप से दीखता ही है। परन्तु हिन्दु लोग नियमपूर्वक शिखा को रखते हैं और उसे धार्मिक चिह्न मानते हैं और उससे लाभ उठाते हैं। अन्य जातियाँ नियमपूर्वक शिखा को नहीं रखतीं, या अनियमित स्थान पर रखती हैं, इसलिए विशिष्ट लाभ को प्राप्त नहीं करती। परन्तु हिन्दु–जाति की शिखा धार्मिक चिह्न के साथ ही साथ जातीय संघटन एवं एकता प्रदर्शित करती हुई विशेष लाभ भी पहुँचाती है। क्रमशः........

# प्रेरणा का स्त्रोत है भगवान् श्रीराम का जीवन

चैत्र शुक्ल नवमी को ही रामनवमी कहा जाता है। इस दिन कौशल्या ने भगवान राम को जन्म दिया था। भारतीय जीवन में यह दिन पुण्य का पर्व माना जाता है। इस दिन व्रत भी रखा जाता है। इस व्रत की चारों जयंतियो में गणना है। भगवान रामचंद्र का जब जन्म हुआ, उस समय चैत्र शुक्ल नवमी, गुरुवार, पुष्य (या दूसरे मत से पुनर्वसु), मध्यान्ह और कर्क लग्न था। उत्सव के दिन ये सब तो सदैव आ नहीं सकते, परंतु जन्माक्षर कई बार आ जाता है, अतः वह हो तो उसे अवश्य लेना चाहिए। महाकवि तुलसीदास जी ने भी इसी दिन से श्रीरामचरित मानस की रचना आरंभ की थी।

## jeceveJeceer xelekewâesskeâjW

व्रती को चाहिए कि व्रत के पहले दिन (चैत्र शुक्ल अष्टमी को) प्रातः स्नानादि से निवृत्त होकर भगवान रामचंद्र का स्मरण करे। दूसरे दिन (चैत्र शुक्ल नवमी को) ब्रह्म मुहूर्त में उठकर घर की साफ-सफाई कर नित्यकृत्य से निवृत्त होना चाहिए।

इसके पश्चात् गोमूत्र, गंगाजल या शुद्ध जल का घर में छिड़काव कर उसको पवित्र करना चाहिए। इसके बाद '**उपोष्य नवमी त्वद्य यामेष्वष्टसु राघव। तेन प्रीतो भव त्वं भो संसारात् त्राहि मां हरे।**' मंत्र से भगवान के प्रति व्रत करने की भावना प्रकट करे। पश्चात् '**भगवत्प्रीतिकामनया (वामुकफल-प्राप्तिकामनया) श्रीरामजयन्तीव्रतमहं करिष्ये**' यह संकल्प करके काम-क्रोध-मोहादि से वर्जित होकर व्रत करें। तत्पश्चात् मंदिर अथवा अपने मकान को ध्वजा-पताका, तोरण और बंदनवार आदि से सुशोभित करें। घर के उत्तर भाग में रंगीन कपड़े का मंडप बनाएं और उसके अंदर सर्वतोभद्रमंडल की रचना करके उसके मध्य भाग में यथाविधि कलश स्थापना करें। कलश के ऊपर रामपंचायतन (जिसके मध्य में राम-सीता, दोनों पार्श्वों में भरत और शत्रुघ्न, पृष्ठ-प्रदेश में लक्ष्मण और पादतल में हनुमान जी) की सुवर्ण निर्मित मूर्ति अथवा चित्र की स्थापना करके उसका आवाहनादि षोडशोपचार पूजन करें। इसके पश्चात् विधि-विधान से संपूर्ण पूजन करें।

## jeceveJeceer keâesskeâèUeekeâjW

इस दिन पूरे आठ पहर का व्रत रखना चाहिए। दिन भर भगवान का भजन-स्मरण, स्तोत्र-पाठ, हवन और उत्सव करें। इस दिन किसी पवित्र जगह स्नान करना चाहिए। इस दिन हमें संकल्प लेना चाहिए कि हम मर्यादा पुरुषोत्तम के चरित्र के आदर्शों को अपनाएंगे। प्रभु श्रीराम का चरित्र-श्रवणादि करते हुए जागरण करें।

दूसरे दिन (दशमी को) पारणा करके व्रत का विसर्जन करें। गरीबों और ब्राह्मणों को यथायोग्य दान देकर उन्हें भोजन कराएँ। इस दिन से हमें भगवान राम की गुरुसेवा, शरणागत की रक्षा, भ्रातृ प्रेम, मातृ-पितृ भक्ति, एक पत्नीव्रत, पवनसुत हनुमान व अंगद की स्वामिभक्ति, गिद्धराज की कर्तव्य-निष्ठा तथा गुह केवट आदि के चरित्रों की महानता को अपनाना चाहिए।

## jeceveJeceer xelekeâeheâue

यह व्रत नित्य नैमित्तिक और काम्य- तीन प्रकार का है। नित्य होने से इसे निष्काम भावना रखकर आजीवन किया जाए तो उसका अनंत और अमिट फल होता है। किसी निमित्त या कामना से यह व्रत

किया जाए तो उसका यथेष्छ फल मिलता है। भक्ति और विश्वास के साथ यह व्रत करने से उसका महान फल मिलता है।

### jeceveJeceer heg®<eesÒeece jece

राम और कृष्ण भारतीय संस्कृति के आधारस्तंभ और भारतीय जनता के निष्ठा का केन्द्र हैं। राम और कृष्ण के रंग से भारत जितना रंगा हुआ नहीं है, उतना दूसरे किसी रंग से रंगा हुआ नहीं है। प्रत्येक भारतीय के हृदय पर उनका प्रेम शासन अभी भी चल रहा है। दूर-दूर से आती 'श्रीराम जय राम जय जय राम' और 'गोपालकृष्ण राधेकृष्ण' की धुन का उद्घोष इस बात का साक्षी है। राम हमारे जीवन में ओत-प्रोत होकर एकरूप हो गए हैं। भारत के देहातों में दो व्यक्ति रास्ते में आमने-सामने मिलते हैं तो परस्पर हाथ जोड़कर 'राम-नाम' या 'जय राम जी की' कहते हैं। **'राम राखे उसे कौन चाखे'** इन शब्दों में भगवान की रक्षा शक्ति में मानव का दृढ़ विश्वास प्रतिबिम्बित होता है। **'राम राखे ऐसे रहो'** इन शब्दों में सच्चे भक्त की समर्पण वृत्ति झलक दिखाई देती है। प्रभु विश्वास पर चलने वाला मानव, कार्य या संस्था के लिए 'राम भरोसे' शब्द प्रयोग हमारे यहाँ प्रचलित हैं। **'घट-घट में राम बसते हैं'** यह शब्द समूह ईश्वर की सर्वव्यापकता का दर्शन कराता है। किसी भी सुव्यवस्थित और संपन्न राज्य व्यवस्था के लिए 'राम-राज्य' शब्द पर्याय हो गया है। इस तरह हमारे समग्र जीवन व्यवहार में श्रीराम ओतप्रोत हो गए हैं।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का जन्म चैत्र सुदी नवमी के दिन दोपहर और चिलचिलाती धूप में हुआ। जीव और जगत् जब आधि, व्याधि और उपाधि से तप्त हो जाते हैं, तब उन्हें शांति और सुख देने के लिए प्रेम, पावित्र्य और प्रसन्नता के पुंज प्रभु राम जन्म लेते हैं। राम का जन्मोत्सव भारत में स्थान-स्थान में धूमधाम से मनाया जाता है, क्योंकि उनके जन्म और जीवन से सारे राष्ट्र को महनीय मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है। कौटुंबिक, सामाजिक, नैतिक और राजकीय 'मर्यादा' में रहकर भी 'पुरुष', 'उत्तम' किसी तरह हो सकता है, यह मर्यादा पुरुषोत्तम राम का जीवन हमें समझाता है। राम में देवत्व स्वयं राम ने निर्माण किया है। मानव उच्च ध्येय और आदर्श रखकर उन्नति प्राप्त कर सकता है, यह राम ने अपने जीवन के द्वारा बताया है और वैसा ही व्यक्ति भी देवत्व प्राप्त कर सकता है, इसकी प्रतीति महर्षि वाल्मीकि ने हमें कराई है। विकारों, विचारों और व्यवहारिक कार्यों में उन्होंने मानव की मर्यादा को नहीं छोड़ा इसलिए वे 'मर्यादा पुरुषोत्तम' कहलाए है। मानवमात्र राम बनने का ध्येय और आदर्श रखे इसलिए महर्षि वाल्मीकि ने श्रीराम का चरित्र-चित्रण किया है। सद्गुणों की परमोच्च सीमा और उसका समुच्चय यानी राम! 'ये गुण स्वयं में लाकर मैं राम बनूँगा- ऐसी महत्वाकांक्षा प्रत्येक मानव के मन में निर्माण करने के लिए ऋषि वाल्मीकि ने लेखनी हाथ में उठाई थी। धर्मपरायण श्रीराम की पालकी कंधे पर उठाकर आज सभी धन्यता का अनुभव करते हैं, क्योंकि राम दैवी संस्कृति के संरक्षक थे और देवी संपत्ति के गुणों से युक्त थे। आसुरी संस्कृति का नाश करने वालों को ही भारत देश सिर पर उठाकर नाचा है और उन्हें ही आम जनता ने अपने हृदय में चिरंतन स्थान दिया है, यह बात आज सभी को समझ लेने की आवश्यकता है। श्रीराम के जीवन में होने वाली देवी तेजस्विता और सांस्कृतिक अस्मिता राम को दिव्य शिक्षा के कारण मिली है। विश्वामित्र श्रीराम को ले गए थे यज्ञ के रक्षण के लिए, परन्तु वहाँ वे राम को अलग ही शिक्षा देते थे। राम के साथ बातें करते-करते उन्होंने राम को जीवन की शिक्षा दी। श्रीराम को मालूम भी नहीं पड़ कि वे कुछ पढ़ रहे हैं। विश्वामित्र को भी कभी नहीं लगा कि वे पढ़ा रहे हैं। इस तरह विश्वामित्र

प्रतिदिन राम के जीवनदीप में सांस्कृतिक प्रेमरूपी घी भरते रहे। एक अंत:करण दूसरे अंत:करण के पास बोले, इस प्रकार विश्वामित्र हृदय खोलकर राम के पास बोलते हैं। राम के जो सद्‌गुण थे, उनको भी आज के दिन समझ लेना चाहिए। जिसे राम बनने की इच्छा हो, जिसे नर से नारायण बनना हो, उसे राम का एक-एक गुण लेना चाहिए और उसे आत्मसात् करना चाहिए, तभी वह सचमुच एक दिन **'रामो भूत्वा रामं यजेत्'** राम बनकर राम की पूजा करेगा। राम हम सबके सामने एक कौटुंबिक आदर्श रख गए हैं। राम के और तीन भाई थे, फिर भी उनके बीच झगड़ा हुआ ऐसा कहीं पढ़ने में नहीं आया है, क्योंकि त्याग में आगे और भोग में पीछे' उनका जीवन का मंत्र था। स्वार्थ त्याग की पराकाष्ठा अर्थात् राम। जहाँ हमेशा दूसरे का विचार किया जाता है, त्याग करने की तत्परता होती है, वहाँ से क्लेश-कलह सैकड़ों योजन दूर रहते हैं। राम की मातृ-पितृ भक्ति तो सचमुच अनुकरणीय है। वन में जाने की पिता की आज्ञा का लेशमात्र दु:ख या हिचकिचाहट के बिना पालन करते हैं। राज्याभिषेक की बात सुनने पर या वन में जाने का आदेश मिलने पर भी राम के चेहरे के भाव एक समान ही थे। कहाँ वसुंधरा का राज्य और कहाँ वनवास! वाल्मीकि कहते हैं **'श्रुत्वा न विव्यथे राम:'** वनवास की आज्ञा सुनकर राम जरा भी व्यथित नहीं हुए। उनके संबंध में कहा जाता है कि-

**'आहूतस्याभिषेकाय विसृष्टस्य वनाय च।**
**न मया लक्षितस्तस्य स्वल्पोऽप्याकारविभ्रम:।।'**

वे पिता का शब्द तत्काल मान्य करते हैं। राम प्रहर' इसलिए भी कहा जाता है। अधिकतर लोग इस समय प्रसन्न होते हैं। जिस कैकयी माता के कारण यह प्रसंग उपस्थित हुआ, उसी माता को, उसके प्रति जरा भी द्वेष, मत्सर न रखकर राम नमस्कार करने जाते हैं और पहले जैसा ही प्रेम रखकर बोलते हैं। यह घटना राम के चरित्र की भव्यता का दर्शन कराती है। राम-सुग्रीव की मैत्री भी आदर्श थी। **'आप जैसे मित्र कचित् ही हों- 'सुहृदो वा भवद्विधा:'** ऐसा राम सुग्रीव को कहते हैं। एक दूसरे की शक्ति का ज्ञान पूर्ण रीति से जानने वाले राम और सुग्रीव एक दूसरे का काम उमंग से करते हैं। बालि को मारने में राम सुग्रीव की सहायता करते हैं और रावण को मारकर सीता वापस लाने के काम में सुग्रीव सहायता करता है। सुग्रीव पर राम का बहुत प्रेम था। सुग्रीव से भी उन्होंने अभेद भावना साधी थी। सुग्रीव को जरा भी दु:ख हुआ तो राम की आंखों में आँसू आते थे। राम ने अपने में और सुग्रीव में तनिक भी अन्तर नहीं रखा, मारीच उदात्तता और भव्यता का वर्णन करते हुए कहा है, 'मित्र हो तो भी राम जैसा और शत्रु हो तो भी राम जैसा ही।' रावण की मृत्यु के बाद विभीषण रावण का अग्नि संस्कार करने से इंकार करता है, तब राम उसे कहते हैं, 'मृत्यु के साथ वैर खत्म होता है, इसलिए भाई को शोभा दे ऐसा उनका अग्नि संस्कार करो। तुम नहीं करोगे तो मैं करूँगा।

राम को अपनी जन्मभूमि बहुत प्रिय थी। बालि को मारने के बाद किष्किंधा का राज्य वे सुग्रीव को दे देते हैं और रावण को मारने के बाद लंका का राज्य विभीषण को दे देते हैं। यह देश सुन्दर थे, लेकिन राम को उनका न लाभ हुआ न मोह। **'दुर्लभं भारते जन्म।'** जिस भूमि में जन्म दुर्लभ है, उस भूमि में जन्म मिलने पर उसकी महत्ता कौन समझाएगा? राम के उपासकों का यही काम है। रामनवमी के दिन इस कार्य के लिए कटिबद्ध हों।

मानव मात्र को प्रेरणा और प्रोत्साहन देने वाले, सागर जैसे गंभीर, आकाश जैसे विशाल और हिमालय जैसे उदात्त श्रीराम के जीवन का विचार करके उनके गुणों को जीवन में लाने के लिए उनके विचारों तथा संस्कृति को समाज में टिकाए रखने के लिए कृतनिश्चयी बनें, तभी रामनवमी सच्चे अर्थ में मनाई गई कह सकते हैं।

**('स्वतंत्र वार्ता' समाचार पत्र से साभार)**

# ताली बजाइये, स्वस्थ रहिये

❑ डॉ० श्री एच्० एस्० गुगालिया

ज्यों-ज्यों भौतिक सुख-सुविधाओं का बाहुल्य होता जा रहा है, त्यों-त्यों हमारी कंचन-काया नाना प्रकार के रोगों से ग्रस्त होती जा रही है। नये-नये अन्वेषण हो रहे हैं। और नयी-नयी बीमारियों के काय चिकित्सक एवं वैज्ञानिक हमारे सामने प्रकट करते जा रहे हैं तथा उनकी चिकित्सा के लिये औषधियाँ भी प्रस्तुत करते जा रहे हैं। चिकित्साक्षेत्र में इतनी तथाकथित प्रगति के होते हुए भी हम प्रतिदिन ऐसे रोगों से ग्रस्त होते जा रहे हैं जो असाध्य से हो गये हैं। लगता यही है कि इस भोगवादी प्रवृत्ति का हमारी काया को रोगग्रस्त करने से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

यह एक विचारणीय प्रश्न है कि इतनी अधिक चिकित्सकीय सुविधाओं, चिकित्सालयों एवं चिकित्सकों के होने के बावजूद भी हम सही अर्थों में स्वस्थ क्यों नहीं रह पा रहे हैं? क्या हमने शारीरिक श्रम करना त्याग दिया है? इसका भी क्या इन बढ़ती बीमारियों से कुछ अन्तरङ्ग सम्बन्ध है? क्या चिकित्सक सही रूप से रोग की पहचान एवं निदान नहीं कर रहे हैं? क्या औषधियाँ रोगों का समूल नाश करने में प्रभावहीन हो गयी हैं? कहीं ऐसा तो नहीं है कि आधुनिक इलाज एक रोग को ठीक करते हैं और दूसरे रोगों की उत्पत्ति का कारण बनते हैं?

उपर्युक्त प्रश्नों का उत्तर यह समझ में आता है कि ये सभी कारण रोगों के स्थायी उपचार न कर पाने के लिये उत्तरदायी हैं। शरीर को अधिक आराम देना, कोई भी शारीरिक श्रम न करना, बिना विचार किये अधिक मात्रा में खाद्य-अखाद्य का सेवन करना, जानवर के समान दिनभर खाते रहना उचित आराम न करना, खाने के लिए जीना; शराब, अफीम, तम्बाकू, गाँजा, हशीश आदि हानिकर चीजों का सेवन करना- इत्यादि बातों का हमने जो नियमित क्रम बना लिया है वह हमारे रोगों के उपचारित न होने, बढ़ने, एक रोग समाप्त न होने के पूर्व कई रोगों के उभर आने का मूल कारण है। कुछ दवाइयों की प्रतिक्रिया भी बहुत अंशों में इसके लिए जिम्मेदार है। हम अपनी धात्री-प्रकृति से दूर होते जा रहे हैं और हमारा अप्राकृतिक रहन-सहन हमारे शरीर को अंदर से जर्जर करता जा रहा है। अतः सावधान एवं जागरूक रहने की विशेष आवश्यकता है।

यदि हम स्वयं को पञ्चतत्त्वों से उपचारित करने की नैसर्गिक कला सीख लें तो पञ्चतत्त्वों से निर्मित इस काया को शायद ही किसी औषधि की आवश्यकता पड़े। प्राकृतिक आहार-विहार एवं व्यवहार रोगों को दूर करने का एक अनुभूत उपाय है। हमें तो मात्र इतना ही जाँचना है कि कौन सी वस्तु का उपयोग करने अथवा उसके सम्पर्क में आने से हम रोगाक्रान्त होते हैं और यह ज्ञात कर उससे स्वयं को दूर रक्षना रोग को दूर भगाने का सर्वश्रेष्ठ उपाय है।

इसी के साथ ही कुछ शारीरिक परिचालन-क्रियाओं को अपनाकर भी हम रोगों को दूर रख सकते हैं। इन्हीं क्रियाओं में ताली-बजाना भी एक स्वास्थ्यवर्धक सहज प्रक्रिया है। प्राचीन काल से मन्दिरों में आरती, भजन-कीर्तन, पूजा आदि में हमारे पूर्वज लोग समवेतरूप से ताली बजाया करते थे। आज भले ही हम इसे महत्त्व न दें, किंतु शरीर को स्वस्थ रखने का यह एक अत्यन्त उत्कृष्ट साधन है। भारतीय साधना-पद्धति में ताली बजाना, एक मूलभूत जीवन-धारण की आवश्यक सामग्री य उपस्कर रहा है। इतना वैज्ञानिक, इतना सुसाध्य, इतना ससुगम और इतना प्रभावी न तो कोई व्यायाम है न योग साधना ही। सर्वश्रेष्ठ सहज योग-साधना का यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रयोग है।

'ताली बजाइये और रोगों को दूर भगाइये।' यह

एक पुरानी कहावत है। अपने इष्ट या भगवान् का नाम-स्मरण करते हुए, नाम-जप करते हुए कीर्तन करते हुए, तालबद्ध ढंग से खूब ताली बजायें, जोरों से ताली बजायें और रोगों को दूर भगाते हुए इसका प्रभाव भी देखें। यह तन्मय होने एवं ध्यान लगाने का भी अत्युत्तम साधन है। ताली अपनी पूरी शक्ति से बजायें तो अत्युत्तम, अन्यथा जितनी जोर से आप बजा सकते हैं, जितनी तेजी से बजा सकते हैं, बजायें। इससे कोई हानि पहुँचने की सम्भावना नहीं है, लाभ-ही-लाभ है। अधिक ताकत से ताली बजाना आपको श्रान्त अवश्य कर देगा, किंतु उस स्थिति पर पहुँचने के पूर्व ही ताली बजाना बंद कर दें।

ताली बजाने से एक उत्कृष्ट प्रकार का व्यायाम हो जाता है, जिससे शरीर की निष्क्रियता समाप्त होकर उसमें क्रियाशीलता की वृद्धि होती है। शरीर के किसी भाग में रक्त-संचार में रुकावट या बाधा पड़ रही हो तो वह बाधा तुरंत समाप्त हो जाती है। इससे शरीर के अङ्ग सम्यक् रूप से कार्य करने लगते हैं। रक्त-वाहिकाएँ ठीक रीति से तत्परता के साथ शुद्धिकरण हेतु रक्त को हृदय की ओर ले जाने लगती हैं और उसको शुद्ध करने के अनन्तर सारे शरीर में शुद्ध रक्त पहुँचाती है। इससे हृदय-रोग, रक्त-नलिकाओं में रक्त का थक्का बनना समाप्त हो जाता है और भविष्य में हृदय या धमनियों की शल्य-क्रिया कराने की नौबत नहीं आने पाती। फेफड़ों में शुद्ध ओषजन की पर्याप्त मात्रा होने के कारण तथा अशुद्ध हवा का फेफड़ों की बीमारियों की भी समाप्ति हो जाती है। रक्त में लाल रक्त कणों की वृद्धि होती है, जिससे कई रोगों से मुक्ति मिल जाती है। हृदय ही नहीं सारी काया में शुद्ध रक्त का संचार सुव्यवस्थित रूप से होते रहने से रोगों का प्रभाव समाप्तप्राय हो जाता है और शरीर में चुस्ती, फुर्ती तथा ताजगी आ जाती है।

ताली बजाने से श्वेतरक्तकण सक्षम तथा सशक्त बन जाते हैं, जिससे शरीर की रोग-प्रतिरोधक क्षमता बहुत बढ़ जाती है। हम नीरोग होने लगते हैं। शरीर के अधिकतम एक्यूप्रेशर प्वाइन्ट पैरों एवं हाथों में ही होते हैं। विशेषरूप से पैरों के तलवे एवं हाथों की हथेली में। ताली बजाने से हाथों के एक्यूप्रेशर केन्द्रों पर अच्छा दबाव पड़ता है और शरीर नीरोग होने लगता है। शुद्ध रक्त हृदय से पैरों तक पूरी क्षमता से दौड़ता है और पैरों के एक्यूप्रेशर केन्द्रों को भी शक्तिमय बना देता है, जिससे शरीर नीरोग बना रहता है।

पूरे शरीर में शक्ति-संचार करने, शरीर के संचालन को व्यवस्थित रखने तथा शरीर को रोग-मुक्त रखने का एक विशिष्ट साधन है-ताली बजाना।

किस रोग में कैसे ताली बजायी जाए और कितनी देर तक ताली बजायी जाए, इसका निर्धारण आपकी शारीरिक शक्ति एवं रोग जिसका उपचार किया जाना है, उसका आकलन करके ही हो सकता है। यदि आप सामान्य रूप से स्वस्थ हैं, तो खूब जोर से ताली बजायें और डॉक्टरों तथा दवाइयों के चंगुल से मुक्त रहें एवं दवाओं के साइड इफेक्ट्स से भी बचें।

ताली बजाने के कई भेद-विभेद हैं। अपने शरीर की शक्ति का अनुमान लगाकर उन तालियों को जो आपके लिए उपयुक्त हों, अपनाये। इस सहज-स्वाभाविक योग से मात्र कुछ दिनों में आप रोग को दूर करके, शरीर को अधिक न थकाते हुए बिना कुछ खर्च किये स्वयं को चुस्त, दुरुस्त एवं तन्दुरुस्त बनाये रख सकते हैं।

एक बार सही परामर्श ले लें कि आपको किस प्रकार इस ताली-योग-क्रिया को करना है, कैसे करना है, कब करना है एवं कितने समय तक करना है। फिर आप इसका बिना किसी व्यवधान के प्रयोग करते रहें। मात्र एक बार इसकी सही तकनीक समझनी है, फिर तो आप तनाव से मुक्त हो, रोग से दूर रहकर उत्तम स्वास्थ्यद्वारा अपने जीवन का सदुपयोग कर सकेंगे। मरण भी सहज-स्वाभाविक होगा, बिना किसी कष्ट के। चाहेंगे तो धन, भजन-पूजन, प्रभु-स्मरण भी आप बड़ी आसानी से इसके साथ कर सकेंगे। तो आइये, ताली बजाइये और सुख पाइये।

**(कल्याण से साभार)**

## सुगम साधन : भगवद्भक्ति

मानव कल्याण के लिए सर्वसुगम साधन है– भगवान् की भक्ति करना। आज के घोर कलिकाल में योग–यज्ञ–तप आदि करना संभव नहीं है। इस युग में तो बस एकमात्र भगवद्भक्ति करने से ही हमारा कल्याण हो सकता है।

गोमाता की हत्या और निरीह पशुओं के रक्त से रंजित इस अपवित्र युग में योग–यज्ञ–तप आदि विधि–विधान से होना कठिन है। ब्रह्मवर्चस्व का अभाव, वर्णाश्रम–व्यवस्था का ह्रास, आचार–विचार की उपेक्षा, शिखा–सूत्र से उदासीनता, खान–पान में असंयम, भाषा एवं वेश–भूषा में परानुकरण आदि बातों से दूषित आज के वातावरण में योग–यज्ञ, तप–त्याग आदि की साधना साधारण मानव के लिये सम्भव नहीं है। इसीलिये इस युग में एकमात्र श्री भगवन्नाम संकीर्तन, भगवन्नाम जप आदि सरल साधनों के माध्यम से भगवद्भक्ति श्रेयस्कर है यही हमारे कल्याण का सुगम और श्रेष्ठ साधन है।

भगवद्भक्ति का सुगम रूप है– भगवन्नाम का आश्रय! हम अहर्निश 'श्रीराम जय राम जय जय राम' का जप करें। कलिपावनावतार श्री तुलसीदास जी महाराज ने भी श्रीरामचरितमानस में भगवन्नाम का आश्रय ग्रहण करने की बात कही है–

**नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलम्बन एकू।।**
**कलिजुग जोग न जग्य, न ज्ञाना। एक आधार राम गुन गाना।।**
**कलियुग केवल नाम अधारा। सुमरि सुमरि नर उतरहिं पारा।।**
**भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।**

चलते-फिरते, उठते–बैठते, खाते–पीते, सोते–जागते, हर समय श्रीराम–नाम या श्रीकृष्ण–नाम या श्री शिव–नाम का स्मरण, कीर्तन और चिंतन करना ही कल्याण का सर्वोत्तम सहज साधन है।

●●●●●

परलोक सुधारने के लिए परम आवश्यक है कि शुद्ध चित्त से श्रद्धापूर्वक श्रीहरि का जहाँ तक बन पड़े ध्यान, जप, कीर्तन करना चाहिए। धर्मशास्त्रों तथा धार्मिक साहित्य का अध्ययनमनन करके, सच्चे विद्वान, सदाचारी, विरक्त संत–महात्माओं के सत्संग में अधिक से अधिक समय बिताना चाहिए। सत्साहित्य का अवलोकन एवं प्रचार कर जनता–जनार्दन में भगवद्भक्ति की प्रेरणा जाग्रत करनी चाहिए। दुखियों व अभावग्रस्तों की सेवा–सहायता के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए, तभी हम अपना लोक–परलोक सुधार सकेंगे।

❑❑❑

## सत्संग तथा भगवन्नाम ही कल्याण का आधार है

सत्संग में, कथा–कीर्तन में, अवश्य भाग लेना चाहिए क्योंकि सत्संग करने और कथाएँ सुनने से ही परलोक का ज्ञान हो पाएगा, जीव पापों से बचेगा तथा पुनीत कर्म करके परलोक बनाने के कार्य में अग्रसर होगा। इसलिए सत्संग अवश्य करना चाहिए।

मानसकार गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज की उद्घोषणा है–

**बिनु सत्संग बिबेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।।**

अतः हर क्षण सत्संग में बीते, कुसंग का कभी अवसर ही न मिले ऐसी भावना रखनी चाहिए।

हमारे धर्म–शास्त्रों के वचन अक्षरशः सत्य तथा कल्याणकारी हैं। धर्म की मर्यादानुसार जीवन जी कर ही हम लोक–परलोक दोनों का कल्याण करके अपना मानव–जीवन सार्थक कर सकते हैं। ❑❑❑

# व्रतोत्सवतिथिनिर्णयपत्रक

## चैत्र शुक्लपक्ष/सूर्य उत्तरायण वसन्त ऋतु

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | व्रत पर्व आदि विवरण |
|---|---|---|---|---|
| एकादशी | रविवार | श्लेषा | 5 अप्रैल | **कामदा एकादशी व्रत (सबका)** |
| द्वादशी | सोमवार | मघा | 6 अप्रैल | – |
| त्रयोदशी | मंगलवार | पू०फा० | 7 अप्रैल | अनंग त्रयोदशी, भौम प्रदोष व्रत |
| चतुर्दशी | बुधवार | उ०फा० | 8 अप्रैल | – |
| पूर्णिमा | गुरुवार | हस्त | 9 अप्रैल | चैत्री पूर्णिमा सत्यनारायण पूजनम् |

## वैशाख कृष्णपक्ष/सूर्य उत्तरायण, वसन्त ऋतु

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | व्रत पर्व आदि विवरण |
|---|---|---|---|---|
| प्रतिपदा | शुक्रवार | चित्रा | 10 अप्रैल | – |
| द्वितीया | शनिवार | स्वाति | 11 अप्रैल | – |
| तृतीया | रविवार | विशाखा | 12 अप्रैल | – |
| चतुर्थी | सोमवार | अनुराधा | 13 अप्रैल | श्रीगणेश चतुर्थी व्रत मेष संक्रान्ति पुण्य अगले दिन प्रातः तक |
| पंचमी | मंगलवार | ज्येष्ठा | 14 अप्रैल | वैशाखी |
| षष्ठी | बुधवार | मूल | 15 अप्रैल | ग्रीष्म ऋतु प्रारम्भ |
| सप्तमी | गुरुवार | पूर्वाषाढा | 16 अप्रैल | – |
| अष्टमी | शुक्रवार | उ०षाढा | 17 अप्रैल | कालाष्टमी व्रत |
| अष्टमी | शनिवार | उ०षाढा | 18 अप्रैल | अष्टमी तिथि की वृद्धि |
| नवमी | रविवार | श्रवण | 19 अप्रैल | पंचक प्रारम्भ रात 11/44 से |
| दशमी | सोमवार | धनिष्ठा | 20 अप्रैल | – |
| एकादशी | मंगलवार | शत्भिषा | 21 अप्रैल | **वरूथिनी एकादशी व्रत (सबका)** वल्लभाचार्य जयन्ती |
| द्वादशी | बुधवार | पू०भाद्रपद | 22 अप्रैल | प्रदोष व्रत |
| त्रयोदशी | गुरुवार | उ०भाद्रपद | 23 अप्रैल | – |
| चतुर्दशी | शुक्रवार | रेवती | 24 अप्रैल | पंचक समाप्त 2 बजे दिन में श्राद्ध की अमावस्या |
| अमावस्या | शनिवार | अश्विनी | 25 अप्रैल | शनैश्चरी अमावस्या, श्रीशुकदेव जयन्ती |

## वैशाख शुक्लपक्ष/सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म ऋतु

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | व्रत पर्व आदि विवरण |
|---|---|---|---|---|
| प्रतिपदा | रविवार | भरणी | 26 अप्रैल | चन्द्र दर्शनम् श्रीशिवाजी जयन्ती |
| द्वितीया | रविवार | भरणी | 26 अप्रैल | द्वितीया तिथि का क्षय |
| तृतीया | सोमवार | कृतिका | 27 अप्रैल | श्रीपरशुराम जयन्ती अक्षय तृतीया |
| चतुर्थी | मंगलवार | रोहिणी/मृग० | 28 अप्रैल | श्रीगणेश चतुर्थी व्रत |
| पंचमी | बुधवार | आर्द्रा | 29 अप्रैल | आद्य जगद्गुरु शंकराचार्य जयन्ती |
| षष्ठी | गुरुवार | पुनर्वसु | 30 अप्रैल | श्री रामानुजाचार्य जयन्ती |
| सप्तमी | शुक्रवार | पुष्य | 1 मई | श्री गंगा जन्म– गंगा सप्तमी |
| अष्टमी | शनिवार | श्लेषा | 2 मई | श्री दुर्गाष्टमी |
| नवमी | रविवार | मघा | 3 मई | **श्रीजानकी जयन्ती महोत्सव** |
| दशमी | सोमवार | पू०फा० | 4 मई | – |
| एकादशी | मंगलवार | उ०फा० | 5 मई | **मोहिनी एकादशी व्रत (सबका)** |

卐 श्रीमद्राघवो विजयते 卐

धर्मचक्रवर्ती, महामहोपाध्याय, जीवनपर्यन्त कुलाधिपति, वाचस्पति, महाकवि
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य **स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज**
का राष्ट्रीय, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक चेतना का संवाहक

# श्रीतुलसीपीठसौरभ

**( मासिक पत्र )**

सीतारामपदाम्बुजभक्तिं भारतभविष्णु जनतैक्यम्।
वितरतु दिशिदिशि शान्तिं श्रीतुलसीपीठसौरभं भव्यम्।।

वर्ष १३ — अप्रैल २००९ (४, ५ मई को प्रेषित) — अंक-८



**पूज्यपाद जगद्गुरु जी के सम्पर्क सूत्र :**
**श्रीतुलसीपीठ, आमोदवन,**
पो० नया गाँव श्रीचित्रकूटधाम (सतना) म०प्र०485331
✆-07670-265478, 05198- 224413

**वसिष्ठायनम् -** जगद्गुरु रामानन्दाचार्य मार्ग
रानी गली नं०-1, भूपतवाला, हरिद्वार (उत्तरांचल)
दूरभाष-01334-260323

**श्री गीता ज्ञान मन्दिर**
भक्तिनगर सर्कल, राजकोट (गुजरात)
दूरभाष-0281-2364465

**पंजीकृत सम्पादकीय कार्यालय एवं पत्र व्यवहार का पता**
आचार्य दिवाकर शर्मा,
220 के., रामनगर, गाजियाबाद-201001
दूरभाष-0120-2712786, मो०- 09971527545

# रामानन्दः स्वयं रामः प्रादुर्भूतो महीतले

## विषयानुक्रमणिका



## सुधी पाठकों से विनम्र निवेदन

१. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' का प्रत्येक अंक प्रत्येक दशा और परिस्थिति में प्रत्येक महीने की ४ तथा ५ तारीख को डाक से प्रेषित किया जाता है। पत्रिका में छपे महीने का अंक आगामी महीने में ही आपको प्राप्त होगा।

२. 'श्रीतुलसीपीठ सौरभ' मंगाने हेतु बैंक ड्राफ्ट 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' के नाम से ही बनबाएँ तथा प्रेषित लिफाफे के ऊपर हमारा नाम तथा पूरा पता स्पष्ट अक्षरों में लिखें। मनीआर्डर पर हमारा नाम-पता ही लिखें प्रधान सम्पादक अथवा प्रबन्ध सम्पादक कभी न लिखें।

३. पत्रव्यवहार करते समय अथवा ड्राफ्ट-मनीआर्डर भेजते समय अपनी वह ग्राहक संख्या अवश्य लिखें जो पत्रिका के लिफाफे के ऊपर आपके नाम से पहले लिखी है।

४. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' में **'पूज्यपाद जगद्गुरु जी'** से अभिप्राय **धर्मचक्रवर्ती श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज समझा जाए।**

५. 'श्रीतुलसीपीठ सौरभ' में प्रकाशित लेख/कविता/अथवा अन्य सामग्री के लिए लेखक/कवि अथवा प्रेषक महानुभाव ही उत्तरदायी होंगे, सम्पादक मण्डल नहीं।

६. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' प्राप्त न होने पर हमें पत्र लिखें अथवा फोन करें। हम यद्यपि दूसरी बार पुनः भेजेंगे। किन्तु अपने डाकखाने से भलीप्रकार पूछताछ करके ही हमें सूचित करें।

७. **डाक की घोर अव्यवस्था के चलते हमें दोषी न समझें। हमें और आपको इसी परिस्थिति में 'पूज्यपाद जगद्गुरु जी' का कृपा प्रसाद शिरोधार्य करना है।**

८. सुधी पाठक अपने लेख/कविता आदि स्पष्ट अक्षरों में लिखकर भेजें। यथासमय-यथासम्भव हम प्रकाशित करेंगे। अप्रकाशित लेखों को लौटाने की हमारी व्यवस्था नहीं है।

**–सम्पादकमण्डल**

**सदस्यता सहयोग राशि**

| | |
|---|---|
| संरक्षक | ११,०००/– |
| आजीवन | ५,१००/– |
| पन्द्रह वर्षीय | १,०००/– |
| वार्षिक | १००/– |

श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास, चित्रकूट के स्वामित्व में मुद्रक तथा प्रकाशक डॉ० कु० गीतादेवी (प्रबन्धन्यासी) ने श्री राघव प्रिंटर्स, जी-१७ तिरुपति प्लाजा, बेगम पुल रोड, बच्चापार्क, मेरठ, फोन (का०) 4002639, मो०-9319974969, से मुद्रित कराकर कार्यालय २२० के., रामनगर, गाजियाबाद से प्रकाशित किया।

सम्पादकीय-

# जनकसुता जग जननि जानकी

अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायक, जनसुखदायक, राजिवनयन धरे धनुसायक, परिपूर्णतम परात्पर परब्रह्म परमेश्वर भगवान् श्रीमद्राघवेन्द्र सरकार के वामभाग में सुशोभित जनकनन्दिनी, रघुकुलचन्दिनी, भावते भैया भक्तभरतवन्दिनी सकल अघगञ्जिनी भगवती श्रीसीता जी प्राणिमात्र पर नित्य अकारणकरुणा करती ही रहती हैं। उनकी ही कृपा कादम्बिनी से जीवात्मा अपने परमात्मा को प्राप्त करता है। जिस प्रकार करुणामयी माता अपने शिशु को स्वच्छ करके उसके पिता की गोद में बैठाकर उसकी मनोहारी चेष्टाओं को देखकर आनन्दित होती है उसी प्रकार जनकसुता जगजननी जानकी जी अपने लाड़ले भक्तों एवं सन्तों के जन्म जन्मान्तर के कलिमलों को धोकर स्वच्छ करके अपने स्वामी एवं परमपिता परमेश्वर श्री राघवेन्द्र सरकार की गोद में बैठाकर प्रमुदित होती रहती हैं। भगवती और भगवान् की इसी करुणागङ्गा में अनन्तानन्त प्राणी अपना अभ्युदय प्राप्त करते हैं। माता की ममता में आकण्ठनिमग्न प्रेमी भक्त जब जब भगवती जनकनन्दिनी जी की लीलाओं का स्मरण तथा दर्शन करते हैं तब तब अश्रुपूर्ण होकर अपना जीवन सार्थक एवं धन्य करते हैं। वेदादिधर्म शास्त्रों से लेकर लोकप्रसिद्ध सत्साहित्य तक सभी ने शक्तितत्व का चिन्तन मनन करते समय भगवती श्रीसीताजी का इस तथ्य के साथ स्मरण अवश्य किया है कि भारतीय किंवा वैदिक धर्म की मर्यादा के पोषण के लिए जो जानकी माता बन बन  डोलीं तथा आदर्श धर्मपत्नी का उदाहरण प्रस्तुत करते समय जिनका पावन नाम सर्वोपरि गिना जाता है उनका भक्तजनमानस सदैव कृतज्ञ है। उनके पावनचरित का स्मरण करते हुए आदिकवि महर्षि वाल्मीकि जी ने सत्य ही कहा है- ''सीतायाश्चरितं महत्''। भगवती सीता जी के पावन चरित के उत्कर्ष की गाथा अनेक ऋषि मुनियों, आचार्यों-कवियों सन्तों एवं प्रेमरसरसिक महानुभावों ने अपने ग्रन्थों एवं पन्थों में गाई हैं।

सौभाग्य से वैशाखमास के शुक्लपक्ष में नवमी तिथि को धराधाम पर अवतरित भगवती श्रीसीता जी की जयन्ती धार्मिक क्षेत्रों में मनाई जाती है। जिस व्यक्ति या समाज को जितनी जानकीकृपा प्राप्त है उसके द्वारा उतनी ही तन्मयता से इस शुभदिन पर आनन्द सुख एवं सन्तोष प्राप्त होता है ऐसा तथ्य प्रेमानुरागी भक्तजन अनुभव करते हैं।

हम सब श्रीराघव परिवार के सदस्य एवं अपने सद्गुरुदेव पूज्यपाद जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज के कृपाभाजन लाखों-करोड़ों की संख्या में अपने-अपने नित्य-नैमित्तिक सत्कर्मों में अपने ज्येष्ठगुरु भ्राता श्रीमद्राघवेन्द्र सरकार के वामभाग में विराजमान (हमारी भाभी माँ) भगवती श्रीसीताजी के श्रीचरणों में सादर सश्रद्ध नमन करते हुए यही प्रार्थना करते हैं- हे भगवती भाभी माँ! भवाटवी में भटके हुए हम सब प्राणियों पर अपनी कृपा वर्षा कीजिए। हे क्षमापुत्रि! इनके अनन्तानन्त अपराधों को क्षमा करते हुए आप इनका हाथ अनाथों के नाथ जगन्नाथ रघुनाथ जी के हाथ में थमा दीजिए। हम सब आपको अपनी ममतामयी माँ जानकर ही ऐसी प्रार्थना कर रहे हैं। हमें आशा और विश्वास है कि आप कृपा करेंगी ही।

**आचार्य दिवाकर शर्मा**
प्रधान सम्पादक

## वाल्मीकिरामायण सुधा ( ४८ )

(गतांक से आगे)

❑ धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्‌गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

श्रीराघव कहते हैं– लक्ष्मण!

**अनया चित्रया वाचा त्रिस्थान व्यंजनस्थया।**
**कस्य नाराध्यते चित्तमुद्यतासेररेरपि।।**

हनुमान जी महाराज इतना मधुर बोलते हैं कि तीनों स्थानों पर इनका व्यंजन स्पष्ट होता है हृदय, कण्ठ और मूर्धा। तीनों सकारों के उच्चारण में लोग प्राय: अशुद्धि करते हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश में तो भगवान और भी कृपा करें। स और श का अन्तर ही बहुत से लोग समझ नहीं पाते। इसी प्रकार व और ब का अन्तर लोग नहीं समझ पाते। हनुमानजी की बात सुनकर भगवान बहुत प्रसन्न हो रहे हैं। हनुमान जी इतना सुन्दर बोल रहे हैं कि कोई तलवार लेकर इनको मारने को उद्यत हो पर इनकी भाषा सुनते ही तलवार नीचे गिर जायेगी और शत्रु का हृदय भी बदल जायेगा। हमारे छावनी के महाराज जी भी बहुत सुन्दर बोलते हैं। आज मधुर वचन बोलने वाले साधु नहीं दीख रहे हैं। कभी कभी तो ऐसा प्रतीत होता है कि सारी कटुता इन्हीं की जीभ पर आ गई है। गोस्वामी जी महाराज उत्तरकाण्ड में लिखते हैं–

**शम दम नियम नीति नहिं डोलहिं।**
**परुष वचन कबहूँ नहिं बोलहिं।।**

साधु को तो मधुर बोलना चाहिए, प्रेम से कार्य करना चाहिए। मधुर बनो–

**साधु भया तो क्या भया जो नहिं बोल बिचार।**
**हतै पराई आतमा लिए जीभ तलवार।।**

ऐसा नहीं होना चाहिए। वाणी बहुत मधुर होनी चाहिए–

**केयूराणि न भूषयन्ति पुष्पं हारा न चन्द्रोज्ज्वला।**
**न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालंकृता मूर्धजा:।**
**वाण्येका समलंकरोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते।**
**क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग् भूषणं भूषणम्।**

केयूर (बाजूबन्द) पुरुष की शोभा नहीं बढ़ाते न चन्द्रमा के समान उज्ज्वल हार, न स्नान, न चन्दनादि लेपन, न पुष्प, न सजे हुए केश। केवल सुसंस्कृत वाणी ही पुरुष को अलंकृत करती है। आभूषण तो नष्ट हो जाते हैं किन्तु वाणी का भूषण ही सच्चा आभूषण है। गले में तो तुलसीमाला धारण करनी चाहिए–

**यज्ञोपवीतवद्धार्या गले तुलसिमालिका।**
**क्षणार्धं तद् विहीनोऽपि रामद्रोहीति कथ्यते।।**

जैसे यज्ञोपवीत अनिवार्य है उसी प्रकार गले में कण्ठी अनिवार्य है। एक क्षण के लिए भी यदि कण्ठी गले से गई तो व्यक्ति राम का द्रोही माना जाता है। जो रामजी का द्रोही होगा वह–

**शंकर सहस विष्णु अज तोही।**
**राखि न सकई राम कर द्रोही।।**

हनुमान जी महाराज का परिचय जानकर श्रीराम लक्ष्मण ने सीताजी के हरण का समाचार हनुमान जी को सुनाया। तब हनुमानजी ने कहा कि यहाँ ऋष्यमूक पर्वत पर वानरराज सुग्रीव रहते हैं आप उनसे मैत्री करें वे आपकी सहायता करेंगे। तब हनुमान जी–

**भिक्षुरूपं परित्यज्य वानरं रूपमाश्रित:।**
**पृष्ठमारोप्य तौ वीरौ जगाम कपिकुंजर:।।**

यहाँ 'जगाम' क्रिया का प्रयोग महर्षि ने किया है। जगाम का अर्थ है 'परोक्षे लिट्' अर्थात् परोक्ष में लिट् लकार हुआ है। यह ठीक है क्योंकि जब हनुमान जी ने रामजी और लक्ष्मणजी को पीठ पर बिठाया और लेकर चले तो उनके शरीर से इतना तेज निकला कि मेरी आँखें बन्द हो गईं तब मेरे लिए परोक्ष हो

गया। पढ़ते दोनों लोग हैं भगवद्भक्त भी पढ़ते हैं और साधारण लोग भी पढ़ते हैं और लोग विद्या का प्रयोग करते हैं दूसरों को अपमानित करने के लिए और हम लोग विद्या का प्रयोग भगवत्प्रेम के लिए करते हैं। हमने जो सूत्र कण्ठस्थ किये हैं वे इसलिए किये हैं कि ये सूत्र रामप्रेम के साधक बनेंगे। अतः इतना अधिक प्रकाश एक तो भगवान श्रीराम का प्रकाश श्री लक्ष्मण जी का प्रकाश और करोड़ों सूर्यों के समान हनुमान जी का प्रकाश जो 'स्वर्णशैल संकाश' है और श्रीराम–

**मरुत कोटि शत विपुल बल रविशत कोटि प्रकाश।**
**शशि शत कोटि सुशीतल शमन सकल भव त्रास।।**

कितना सुन्दर दृश्य है। हनुमान जी महाराज श्रीराम लक्ष्मण को पीठ पर बिठाकर ले जा रहे हैं देवता आकाश से फूल बरसा रहे हैं। जय जयकार हो रहा है बोलो वीर बजरंग बली की जय। यह सौभाग्य किसी को नहीं मिला।

**बीर हनुमाना अति बलवाना राम नाम रसिया हो।**
**प्रभु मन बसिया हो**
**अंजनि के बारे सिया के दुलारे राम नाम रसिया हो।**
**प्रभु मन बसिया हो**
**झूम झूम आये प्रभु मन भाये सन्त मन भाये**
**चित्त को चुराये वो तो सन्तन दुराये**
**पीठ पै बिठाके, अति छवि छाके**
**लखन के भैया हो राम रघुरैया हो। वीर हनुमाना...**
**बार बार निरखैं अति मन हरषैं**
**सुमन सुर बरसैं सब अति हरषैं**
**राम रघुवीरा अति रणधीरा भरतजी के भैया हो**
**सीताजी के सैंया हो। वीर हनुमाना...**
**प्रभु जी को लाये कपि मन भाये**
**राम को बिठाए हृदय चुराये**
**अंजनि के छैया कपि मन भैया**
**सन्त सुख दैया हो सब सुख दैया हो।**
**वीर हनुमाना अति बलवाना.......**

सन्तो! मुझे यह दृश्य पूर्ण प्रत्यक्ष हो रहा है। केवल छूना शेष है। धीरे धीरे जिस प्रकार वायुयान उड़ता है उसी प्रकार हमार हनुमनउ आकाश मार्ग से जा रहे हैं। हे बजरंगबली! हे वीराग्रगण्य। हे राजाधिराज महाराज भूपाल चक्रवर्ती चक्रचूड़ामणे! हे अयोध्याधिपति सम्राट् आपकी जय हो। पूरा वातावरण रसमय हो गया। गोस्वामिपाद वर्णन करते हैं–

**एहि विधि सकल कथा समुझाई।**
**लिए दुऔ जन पीठ चढ़ाई।।**
**जब सुग्रीव राम कहँ देखा।**
**अतिशय जन्म धन्य करि लेखा।।**

आज सूर्य के पुत्र ने सूर्य के सूर्य को देखा, धन्य हो गया। ये कौन हैं–

**सूर्यस्यापि भवेत्सूर्यो ह्यग्नेरग्निः प्रभोः प्रभुः।**
**श्रियः श्रीश्च भवेदग्र्या कीर्त्याः कीर्तिः क्षमा क्षमा।।**
**दैवतं दैवतानां च भूतानां भूतसत्तमः।**

सुग्रीव ने आठ विशेषयुक्त आठ व्यक्तित्व देखे राघवेन्द्र जी के। सूर्य के सूर्य को देखा, अग्नि के अग्नि को देखा, प्रभु के श्री प्रभु को देखा, विष्णु के भी विष्णु को श्री की भी श्री देखी, कीर्ति की कीर्ति देखी, क्षमा की क्षमा देखी, देवताओं का भी देवता देखा, भूतों का भूतसत्तम देखा अपहत पाप्मत्व देखा। भगवान के आठ गुण हैं। अपहतपाप्मा, विजरो, विमृत्यु र्विशोको अतिजिधित्सः अविपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः। भगवान सारे पापों के नाशक, वृद्धावस्था से रहित, मरणधर्म से रहित, किसी प्रकार के शोक से रहित, भूख प्यास से रहित, उनकी कामनाएँ सत्य हैं उनके संकल्प सत्य हैं। हनुमान जी ने सुग्रीव को पूरी बात बताई। तब सुग्रीव ने कहा–

**रोचते यदि मे सख्यं बाहुरेषः प्रसारितः।**
**गृह्यतां पाणिना पाणि र्मर्यादा बध्यतां ध्रुवा।।**

सरकार! मैं आपकी मित्रता के योग्य नहीं हूँ। आपमें और मुझमें बहुत अन्तर है–

**तू दयालु दीन हौं तू दानि हौं भिखारी।**
**हौं प्रसिद्ध पातकी तू पाप पुंज हारी।।**
**नाथ तू अनाथ को अनाथ कौन मो सो।**
**मो समान आरत नहिं आरतिहर तो सो।।**
**ब्रह्म तू हौं जीव तू है ठाकुर हौं चेरो।**
**तात मात गुरु सखा तू सब विधि हितु मेरो।**
**तोहि मोहि नाते अनेक मानियै जो भावै।**
**ज्यों त्यों तुलसी कृपालु! चरन सरन पावै।**

सरकार! आप वही नाता मानें जिससे मैं आपके चरणों से दूर न हो सकूँ। यदि आपको मेरे साथ मित्रता अच्छी लग रही है तो मैंने हाथ फैला दिया है इस अनाथ का हाथ पकड़ लीजिए। तब हनुमान जी महाराज ने अग्नि को प्रकट किया। मित्रता हो रही है आनन्द हो रहा है। दोनों परिक्रमा कर रहे हैं। हनुमान जी मन्त्र पढ़ रहे हैं– हरि ओं द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषष्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकषीति। यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै तँ हु देवमात्म बुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये। चारों ओर से पुष्पवर्षा हो रही है। सुग्रीव और भगवान राम दोनों अग्नि की परिक्रमा कर रहे हैं जयजय कार हो रही है देवता चकित हैं क्योंकि ऐसी मित्रता कहीं नहीं देखी।

**पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाइ।**
**चकार सख्यं रामेण प्रीतश्चैवाग्निसाक्षिकम्।।**

जैसे विवाह में विधि होती है। पति पत्नी का भारतीय संस्कृति के अनुसार विवाह होता है आज उसी प्रकार भगवान श्रीराम और सुग्रीव में मित्रता हो रही है। हनुमान जी पुरोहित बने हैं। बोले हमको क्या दक्षिणा मिल रही है। भगवान ने कहा हनुमान जी जो आप कहेंगे वही दक्षिणा मिलेगी। दोनों से पूछा दक्षिणा दोगे। सुग्रीव से कहा जब मैं राम जी की सेवा की छुट्टी माँगूँ तब विरोध मत करना। राम जी से कहा सरकार! आपसे मैं यही दक्षिणा लूँगा कि आपको मैं अपने हृदय में बिठा लेता हूँ।

**पवन तनय सन्तन हितकारी।**
**हृदय विराजत अवध बिहारी।।**

दोनों ने मित्रता कर ली। एक साथ टी० वी० का तीन लोगों पर फोकस चल रहा है सीता जी पर, बालि पर और रावण पर तीनों पर ही टी० वी० का फोकस गया एक साथ। तीनों चित्र एक साथ आये। महर्षि वाल्मीकि जी के शब्दों में सुनिये–

**सीता कपीन्द्र क्षणदाचराणां**
**राजीव हेम ज्वलतोपमानि।**
**सुग्रीव राम प्रणय प्रसंगे**
**वामानि नेत्राणि समं स्फुरन्ति।।**

यह इन्द्रवज्रा छन्द है। सीता जी, रावण और बालि तीनों के बायें नेत्र उसी समय फड़क रहे हैं जब श्रीराम और सुग्रीव की मित्रता हो रही है। तीनों नेत्रों में अन्तर क्या है? सीताजी का नेत्र राजीव (लाल कमल) के समान है। बालि का नेत्र सोने के समान है और रावण का नेत्र अंगार के समान है। देवता जय जयकार कर रहे हैं। वीर हनुमान जी महाराज की जय। आगे चलकर हनुमान जी को लक्ष्मण जी को जिलाने का विरुद प्राप्त होगा–

**लाय सजीवन लखन जियाए।**
**श्रीरघुवीर हरषि उर लाये।।**

संजीवनी लाकर मैं लक्ष्मण जी को जिलाऊँगा सरकार। जो जिलाता है वह किसी को मारता नहीं है। हनुमान जी के बारह नाम हैं–

**हनूमानंजना सूनुर्वायुपुत्रो महाबलः।**
**रामेष्टः फाल्गुनिसखः पिंगाक्षो ऽमितविक्रमः।।**
**उदधिक्रमणश्चैव सीताशोकविनाशनः।**
**लक्ष्मणप्राणदाता च दशग्रीवस्य दर्पहा।।**

इनमें ग्यारहवाँ नाम लक्ष्मण प्राणदाता है। यह ग्यारहवाँ क्यों है? क्योंकि हनुमान जी ग्यारह रुद्रमय हैं और हनुमान जी की कृपा से लक्ष्मण जी के प्राण बचे थे। वहाँ ११वीं चौपाई है–

**लाय सजीवन लखन जियाए..........**

वाल्मीकि रामायण में भी लक्ष्मण जी को जिलाने का वर्णन है। तुलसीकृत में तो दो बार जिलाया है और यहाँ एक बार जिलाया है। रावण के द्वारा शक्ति फैंके जाने पर लक्ष्मण जी को मूर्च्छा हुई, प्राणान्त होने की स्थिति आई फिर हनुमान जी संजीवनी ले आये। आइये हनुमान जी का नामस्मरण करें–

**जय हनुमान जय जय हनुमान।**
**संकटमोचन कृपा निधान।**
**राम के दुलरुवा जय हनुमान।**
**सीताजी के बबुआ जय हनुमान।**
**लाज के रखैया जय हनुमान।**
**संकट हरैया जय हनुमान।**
**हाथ में लड्डू मुख में राम।**
**हृदय विराजे सीताराम।**
**जय सियाराम जै जै हनुमान।**
**श्रीगुरु रामानन्द भगवान।**

कल हमने निवेदन किया था कि–

**ज्यों केले के पात पात में पात।**
**त्यों वाल्मीकि की बात बात में बात।।**

पीठ पर बिठाने का औचित्य यह था कि श्रीराम और लक्ष्मण जी सोच रहे थे कि दोनों को अलग अलग कन्धे पर बैठाने पर हम दूर हो जायेंगे और बानर है न जाने क्या हो जाय। इसीलिए राम लक्ष्मण जी बैठने से पूर्व चिन्तित थे। हनुमान जी उनकी चिन्ता को समझ गये और दोनों एक साथ रहें इसीलिए उनको पीठ पर बिठाया। हनुमान जी श्रीराम से निवेदन करते हैं कि सरकार! कलियुगी मापदण्ड के अनुसार यह जगत एक प्रकार का सिनेमा है। जगत का स्थान पिक्चर हाल है। एक बार हमने भी सिनेमा देखा। जब हम बाल्यकाल में थे तब पहली बार फार्म भरने के लिए हम जौनपुर आये। उस समय एक फिल्म लगी थी सम्पूर्ण रामायण। हमने अपने पिता जी से कहा हम भी सम्पूर्ण रामायण देखेंगे। पिता जी ने कहा चलो चलते हैं यह १९६६ की बात है। हमको बड़ा उत्साह था। थियेटर हाल में सबके साथ हम भी बैठे थे। हमारे सामने ही एक गँवार हाथ में लाठी लेकर बैठा था। उसने भी टिकिट खरीदा था उसे कौन रोकता। कथा प्रसंग में जब रावण सीता का हरण करके ले जाने लगा। सीता जी रो रही थीं बचाओ बचाओ कहकर पुकार रहीं थीं। हा राम, हा लक्ष्मण, हा जटायु कहकर विलाप कर रहीं थीं। इसी समय उस वृद्ध को तरंग आ गई। पहले तो उसने रावण को गरियाना आरम्भ किया। कहने लगा हमारी माँ का हरण कर रहा है। दौड़ा और चिल्लाकर बोला दुष्ट! अभी तुझे बताता हूँ। यह कहते हुए सिनेमा के पर्दे में लट्ठ मार दिया और पर्दा फट गया सिनेमा समाप्त हो गया। थियेटर के मालिक ने कहा हम इस व्यक्ति पर मुकदमा करेंगे। हमने कहा– क्या मुकदमा करोगे? वह वृद्ध बोला करले मुकदमा। मेरी मां का हरण हो और मैं चुप बैठा रहूँ यह नहीं हो सकता। उस समय मेरे मन में जो विचार आये उन विचारों को मैं आपके सामने प्रस्तुत कर रहा हूँ। इसका अर्थ है कि मैंने गलत सिनेमा नहीं देखा था। आप एक कल्पना करो कि संसार एक सिनेमा है। सिनेमा का चार प्रकार का टिकिट होता है– एक थर्ड क्लास, एक सैकिण्ड, एक फर्स्ट और एक बालकनी का होता है। जो जितना कम पैसा देता है वह पर्दे के अधिक निकट बैठता है।

क्रमशः........

# श्रीमद्भगवद्गीता ( ७९ )

( गतांक से आगे )

## ( विशिष्टाद्वैतपरक श्रीराघवकृपाभाष्य )

**भाष्यकार–धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज**

### अथ चतुर्थोऽध्यायः

### मंगलाचरण

**सुमत्यखिलवन्दितप्रणतपादपाथोरुहः**
**पुरन्दरपुराङ्गणाभणितभूतिभौम्यंगनः।**
**नवीनधनसुन्दरो भुजगसहोदरो भूधरो**
**दयागुणगणाकरो विजयते रघूणां पतिः।।**

**व्याख्या–** सुन्दर बुद्धि वाले अनेक देवताओं द्वारा वन्दित ब्रह्मादि भी जिनके श्रीचरण पर प्रणत होते तथा इन्द्रलोक की अप्सरायें भी जिनके ऐश्वर्य का गान करती हैं। ऐसी पृथ्वीपुत्री सीता जिनकी धर्मपत्नी हैं जो नवीन बादल के समान सुन्दर हैं ऐसे शेषावतार श्रीलक्ष्मण के बड़े भ्राता पृथ्वी को धारण करने वाले दया प्रमुख दिव्य कल्याण गुण–गणों की खान के स्वरूप रघुपति भगवान् श्रीराम की जय हो।

**सुहृच्चतुर्थस्य हरंश्चतुर्थम्**
**धरंश्चतुर्थीद्युतिमच्चतुर्थः।**
**चतुर्थचिन्त्यः सुतभूश्चतुर्थः**
**श्रुतश्चतुर्थो जयताच्चतुर्थः।।**

**सामान्यार्थ–** अपने चतुर्थ मित्र अर्जुन के 'चतुर्थ' अर्थात् मोह का हरण करते हुए 'चतुर्थी' अर्थात् कालिन्दी की शोभा को धारण करते हुए तथा चतुर्थ मोक्ष को भी जिनके चरणों में भक्त निछावर कर देते हैं, ऐसे चित्त में चिन्तनीय अनिरुद्ध के पितामह गीताजी के चतुर्थ अध्याय में चर्चित तुरीय चैतन्य भगवान श्रीकृष्ण की जय हो।

**व्याख्या–** यह छन्द कूट है। भगवान् श्रीकृष्ण के मुख्य–चार सखा प्रसिद्ध हैं श्रीदामा, सुदामा, उद्धव और अर्जुन। उनमें से अर्जुन चौथे हैं। मोह को विकारों में चौथा स्थान प्राप्त है। काम, क्रोध, लोभ, मोह। भगवान की पत्नियों में यमुनाजी का स्थान चौथा है। और उन्हीं की नीली शोभा को भगवान् अपने श्री विग्रह में धारण करते हैं। भावुकजन प्रभु के चरणों में पुरुषार्थों में चतुर्थ अर्थात् मोक्ष को भी न्यौछावर कर देते हैं। भगवान् का मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त इनमें अन्तःकरणों में से चतुर्थ अर्थात् चित्त में चिन्तन किया जाता है। भगवान् के वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरूद्ध इन चार व्यूहों में चतुर्थ श्री और अनिरुद्ध ही जिनके सुतभू अर्थात् पौत्र हैं। ऐसे इस चतुर्थ अध्याय में चर्चित चतुर्थ अर्थात् विश्वतेजस् प्राग् परमेश्वर इनमें से चतुर्थ अर्थात् परब्रह्म परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण की जय हो।

### प्रतिज्ञा भाष्यम्

**श्री गीतायाश्चतुर्थोऽयमध्यायः कृपया हरेः**
**श्रीराघव कृपाभाष्यललाम्ना मण्ड्यते मया।।**

**व्याख्या–** अब श्रीगीता जी का चतुर्थ अध्याय अर्थात् मेरे यानी जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य के द्वारा श्रीराघवकृपाभाष्यम् नामक रत्न से समलंकृत किया जा रहा है।

**संगति–** अब प्रपन्नचिन्तामणि भगवान् श्रीकृष्ण के साक्षात् मुख कमल से प्रकट हुई भगवत् स्वरूप श्रीमद्भगवद्गीता के चतुर्थ अध्याय के व्याख्यान का चतुर न होते हुए भी कुशल मुझ रामभद्राचार्य द्वारा उपक्रम किया जा रहा है। पूर्व के दो अध्यायों में

भगवान ने ज्ञानमार्गियों के लिए ज्ञानयोग एवं भक्ति युक्त मन वाले मृदु चित्त महानुभावों के लिए कर्मयोग गीता–२/३९ के विभाग के अनुसार पृथक्–२ कहे गये। वास्तव में तो कर्मयोग और ज्ञानयोग ये दोनों साधन कोटि में हैं। इन दोनों की साध्य भगवती भक्ति का भगवान् ने प्रथमा विभक्ति में निष्ठा के नाम से संकीर्तन किया है। द्विविधा निष्ठा। ज्ञानयोग और कर्मयोग की भगवान् ने ज्ञानयोगेन, करणयोगेन कहकर करणतृतीयान्त से चर्चा की है। किन्तु साध्य की पर्यालोचना में इन दोनों के साध्यरूप में एक मात्र भगवान् ही साध्य हैं ऐसा निश्चय होने पर इन दोनों को पृथक् कहने वाले बालक कहकर भगवान् के द्वारा ही निन्दित किये गये। इन दोनों की यही विशेषता है कि इनमें से एक की भी साधना करता हुआ साधक दोनों का फल पा लेता है। अर्थात् गीता ५/४ के अनुसार कर्मयोग से ज्ञानयोग की ओर ज्ञानयोग से कर्मयोग की निष्ठा प्राप्त हो जाती है। इसीलिए इन दोनों को इस एक अध्याय में कहने की इच्छा करते हुए भगवान् पूर्वोक्त योग की परम्परा और उसके सम्प्रदाय वंश की स्तुति करते हैं–

**श्रीभगवानुवाच**

**ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन।**
**तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव।।४।१**

**रा०कृ०भा० सामान्यार्थ–** भगवान श्रीकृष्ण बोले–

**व्याख्या–** हे अर्जुन! मैं अर्थात् भगवान् कृष्ण ने इस अविनाशी योग को विवस्वान भगवान् सूर्य से कहा था और विवस्वान सूर्य ने अपने पुत्र मनु से कहा और मनु ने अयोध्याके आदि महाराज इक्ष्वाकु से कहा अब योग की परम्परा कहते हैं। विशिष्टं वसु यस्मिन्: स विवस्वान् अर्थात् जिनके मण्डल में श्रीसीताराम जी निवास करते हैं ऐसे सूर्यनारायण को विवस्वान् कहा जाता है।

**संगति–** इसप्रकार मुझसे प्रारम्भ होकर इक्ष्वाकु राजा पर्यन्त यह गुरु परम्परा अविच्छिन्न क्रम से चली फिर अस्पष्ट हो गयी यही बात अग्रिम श्लोक में कहते हैं।

**व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे।**
**तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमप्नुयाम्।।४।२**

**रा० कृ० भा० सामान्यार्थ–** हे शत्रुनाशक अर्जुन! इस प्रकार परम्परा से प्राप्त इस योग को राजर्षि अर्थात् मनुवंश, ऐलवंश, इक्ष्वाकुवंश, तथा नाभागदेश के राजाओं ने जाना इसके अनन्तर विशाल कालखण्ड बीत जाने से यह योग लुप्त हो गया अर्थात् इसकी परम्परा विच्छिन्न हो गयी।

**व्याख्या–** परम्परा प्राप्त का अर्थ है कि अब इसकी गुरु परम्परा कहना कठिन होगा। यहाँ राजर्षि शब्द पारिभाषिक है। जैसे ब्रह्माण्ड पुराण में कहा गया है–

**मानवे चैव ये वंशे ऐलवंशे च ये नृपाः।**
**ये च ऐक्ष्वाकनाभागा ज्ञेया राजर्षयस्तु ते।।**

'योगो नष्टः' इसके पश्चात् ही गुरु परम्परा नहीं मिलती क्योंकि अट्ठाईस चतुर्युगियों का अन्तराल हो गया अतः यह नष्ट हो गया। अब यहाँ शंका होती है कि भगवान् श्री कृष्ण ने इसको अभी–अभी अव्यय बताया था। प्रोक्तवान् अव्ययं तो फिर अभी नष्टः कैसे कह रहे हैं। अविनाशी का विनाश कैसा? इसका उत्तर है कि यहाँ 'णस्' धातु अदर्शनार्थक है विनाशार्थक नहीं। अर्थात् यह अब दिखाई नहीं पड़ रहा है। इसीलिए ८/१४ में भगवान् कहते हैं अनन्य चित्त से स्मरण करने के लिए मैं अदृश्य नहीं होता।।श्री।।

क्रमशः........

(श्री जानकी जयन्ती पर विशेष)

# भई प्रगट किशोरी

❑ पूज्यपाद जगद्गुरु जी

**नाम तिरीहुति धाम सुहावन**
**पावन देशन में सिर मौरा।**
**भारत भाग बिभाग मनोहर**
**कल्प लता कर मानहुँ बौरा।।**
**'गिरिधर' स्वामिनि लागि बिरंचि**
**रची रुचि राखत है जन कौरा।**
**जानकी जन्म मही जग जानत**
**सीतामढ़ी शुभ गाँव पुनौरा।।**

**कुमुदिनी टीका-** तिरहुत नाम का यह प्रदेश सुन्दर और पवित्र धाम है। यह सभी देशों का मुकुटमणि है। भारत भूमि का सौभाग्यपूर्ण यह भूखण्ड मानो कल्पवृक्ष की आम लता का बौर ही है। इसको ब्रह्मा जी ने गिरिधर कवि की स्वामिनी भगवती सीता जी के प्राकट्य के लिए विशेष रूप से बनाया। सभी जनकपुर निवासी इसकी सम्हाल करते रहते हैं और इसकी शोभा का रक्षण करते रहते हैं। सारा संसार जानता है कि आज के परिप्रेक्ष्य में भारत के बिहार प्रदेश में सीतामढ़ी जनपद का यह पुनौरा गाँव ही श्रीसीता जी का जन्म स्थल है। इसे पहले पुण्यारण्य भी कहते थे।

**नन्दन कानन पादप पूगनि**
**घेरि रहे करि शीतल ठौरा।**
**जाकर भाग सराहत चाहत**
**शेष-महेश भए मति बौरा।।**
**जीवन मूरि ज्यौं पालत लालत**
**प्रानहुँ ते जोगवैं जन कौरा।**
**'गिरिधर' स्वामिनि जन्मथली बन्यो**
**भूतल पुण्य को पुंज पुनौरा।।**

**कुमुदिनी टीका-** जिस पुनौरा ग्राम को नन्दन वन के वृक्षों के समूह चारों ओर से घेरकर शीतल स्थान बनाते रहते हैं और जिसके भाग्य की सराहना करते हुए उसे चाहते हुए शेष और शिव बुद्धि के बावले हो चुके हैं, उसे जनकनगर निवासी प्राण से भी प्रिय मानकर संजीवनी बूटी की भाँति सम्हालते, दुलारते और पालते हैं। पृथ्वी के पुण्य पुंज के समान यही पुनौरा गिरिधर कवि की स्वामिनी भगवती सीता जी की प्राकट्य स्थली का सौभाग्य पा गया और सीता जन्मस्थली बन गया।

**मास बैसाख अजोरोइ पाख**
**सुमंगल बार मनोहरताई।**
**पुण्य अभीजित औ नवमी तिथि**
**मध्य दिनेश सबै सुखदाई।।**
**उच्च परे ग्रह पाँच सुसाँच**
**अनूपम जोग दशा छबि छाई।**
**जन्म घरी जग मंगल मूल सो**
**'गिरिधर' स्वामिनि की चलि आई।।**

**कुमुदिनी टीका-** बैसाख मास, शुक्ल पक्ष सुन्दर मंगलवार की मनोहरता, अभिजित मूहूर्त, नवमी तिथि, सबको सुख देने वाले मध्याह्न के सूर्य सुन्दर लग रहे हैं। इसी प्रकार श्रीराम जन्म के ही समान सीता जी के भी जन्मकाल में पाँचों ग्रह अपने-अपने उच्च स्थान पर विराज रहे हैं और सुन्दर योग

तथा अनुपम दशा सुहावनी छवि छहरा रही है। गिरिधर कवि की स्वामिनी सीता जी की प्राकट्य की बेला संसार के मंगलों का मूल बनकर स्वयं चली आई है।

**बानी पयोधिजा पारबती**
**सुरराज प्रिया मिलि मंगल गाईं।**
**साजि सुमंगल कंचन थारन**
**कुंजर मुक्तन चौक पुराईं।।**
**बन्दनवार सँवारि भली बिधि**
**भूरि उमंग ते गाँव सजाईं।**
**'गिरिधर' स्वामिनि जन्म बिलोकन**
**साज बिमान पुनौरहिं आईं।।**

**कुमुदिनी टीका-** सरस्वती, लक्ष्मी, पार्वती, शची मिलकर जन्म कालीन मंगल गीत गानें लगीं। स्वर्ण के थालों में मंगल सजाकर गजमुक्ता के सुन्दर चौक पुराए। भली प्रकार से बन्दनवार बनाकर अत्यन्त प्रसन्नता से पुनौरा गाँव सजाया और गिरिधर कवि की स्वामिनी सीताजी का जन्मोत्सव देखने के लिये विमानों को सजाकर पुनौरा गाँव पधार आईं।

**अनपति अनपति कुपति बिमलमति**
**सोम जाग जजन करन मन दए हैं।**
**पतिनी सहित हित सोमलता बोइवे के**
**पुण्य पुंज पुरुष पुनौरा गाँव गए हैं।।**
**याज्ञवल्क्य शतानन्द आदि महिसुर वान**
**निगदित जनक कनक हर लए हैं।**
**'गिरिधर' प्रभु प्रिया अवनि सो धन काज**
**सीरकेतु मनहुँ द्वितीय ब्यूह भए हैं।।**

**कुमुदिनी टीका-** अनपति अर्थात् निःसंतान, अन्नों के पति पृथ्वी के वास्तविक पति निर्मल मति वाले श्रीजनक जी ने सोम यज्ञ का यजन करने के लिये मन बनाया और पुण्यवान पुरुषों को साथ लेकर सोमलता बोने के लिये अपनी पत्नी के साथ पुनौरा गाँव गए। याज्ञवल्क्य, शतानन्द आदि ब्राह्मण गुरुजनों की सम्मति से क्षेत्र शोधन करने के लिये जनक जी ने सोने का हल हाथ में ले लिया। गिरिधर कवि के प्रभु श्रीराम की प्राण प्रिया सीता जी जो खजाने के रूप में पृथ्वी में छिपी हुई हैं, के लिये सीरध्वज राजा मानो द्वितीय व्यूह अर्थात् संकर्षण ही हो गये हैं।

**सजल नयन गदगदित बयन तन**
**पुलकित जनक कनक हर करषत।**
**अनदत अवनि रवनि भव भवनि**
**निरखि नरपति सुख सहपति तरसत।।**
**निरभय जय जय कहत लहत रय**
**सुरगन कमन सुमन बहु बरसत।**
**निरतत बिबुध रमनि नभतल महँ**
**लखि लखि कवि गिरिधर हँसि हरषत।।**

**कुमुदिनी टीका-** अब जनक जी के हल चलाने की झाँकी का वर्णन करते हुये महाकवि चित्रशैली में कहते हैं कि राजा जनक नेत्रों में आँसू भरकर गद्गदित वाणी और पुलकित शरीर होकर सोमलता का बीज बोने के लिये पुनौरा की पावन भूमि में सोने का हल चलाते हुए खींच रहे हैं, उनके इस कार्य से प्रसन्न होकर जनक जी की पृथ्वीरूपिणी पत्नी आनंदित हो रही हैं और महाराज जनक का सुख देखकर भगवान शंकर की धर्मपत्नी पार्वती जी अपने प्राणपति शिव जी के साथ हर्षित हो रही हैं। देवतागण भक्ति रस प्राप्त करते हुए निर्भीक

होकर जय-जयकार कर रहे हैं। और अत्यन्त सुन्दर पुष्पों की वृष्टि कर रहे हैं। इसी प्रकार देवताओं की पत्नियाँ आकाश मंडल में नाच रहीं हैं। यह दृश्य देख-देखकर गिरिधर कवि भी हँस-हँस कर प्रसन्न हो रहे हैं।

**विशेष-** इस घनाक्षरी में एक भी दीर्घ मात्रा नहीं है इसी प्रकार दूसरी किरण की चौथी घनाक्षरी में भी महाकवि ने अदीर्घ मात्रिक प्रयोग किया है।

**ब्योम बिमान निसान बजावत**
**गावत नाचत हैं सुरराया।**
**राजा चलावत आनँद ते हर**
**हेरि करें नभ नीरद छाया।।**
**शीतल तीनि बयारि बहे**
**लहि बारिद बूँद मनोकरि दाया।**
**जोहत बाट कबै प्रगटैं**
**कवि 'गिरिधर' स्वामिनि श्रीमहामाया।।**

**कुमुदिनी टीका-** आकाश ही जिनका विमान है अथवा जिनके विमान आकाश गामी हैं ऐसे देवगण नगारे बजा और गा रहे हैं। देवताओं के राजा इन्द्र नाच रहे हैं। महाराज जनक आनन्द से हल चला रहे हैं यह दृश्य देखकर आकाश में बादल छाया कर रहे हैं मानो महाराज जनक पर दया करके बादलों की बूँद से युक्त शीतल मन्द सुगन्ध बयार चल रही है। सब लोग बाट जोह रहे हैं कि गिरिधर कवि की स्वामिनी महामाया श्रीसीताजी कब प्रगट होंगी? सीता जी के प्रकट होने में अभी कितना समय है?

**ज्यौं धरनी बर काँध धरे हर**
**हेरि मही पर सीर चलाई।**
**आगे बढ़ाइके कंचन फार ते**
**नेकु मनागहिं कीन्हीं हराई।।**
**त्यौं हल के फल नोंक ते झोंकते**
**भूमि सिंहासन में टकराई।**
**'गिरिधर' स्वामिनि भामिनि रूप में**
**सीता ते सीता तबै प्रगटाई।।**

**कुमुदिनी टीका-** पृथ्वी के वास्तविक पति जनक जी ने हल को अपने कन्धे पर रखकर ज्यों ही पृथ्वी पर अपना हल चलाया और थोड़ा सा आगे बढ़ाकर स्वर्ण के फाल से धीरे से थोड़ी सी हराई अर्थात् हल की रेखा बनाई, उसी समय हल के फाल की नोंक से शीघ्रता पूर्वक पृथ्वी सीता जी के अलौकिक सिंहासन से टकरायी और तत्क्षण सीता अर्थात् हल द्वारा कुरेद कर बनायी हुई रेखा से गिरिधर कवि की स्वामिनी सीता जी भामिनी अर्थात् श्रेष्ठ लक्षणों वाली षोडषवर्षीया युवती रूप में पृथ्वी को फाड़कर स्वर्ण सिंहासन पर बैठी हुई ही प्रकट हो गईं।

**भइ प्रगट किशोरी, धरनि निहोरी,**
**जनक नृपति सुखकारी।**
**अनुपम बपुधारी, रूप सँवारी,**
**आदि शक्ति सुकुमारी।।**
**मनि कनक सिंघासन, कृतवर आसन,**
**शशि शत शत उजियारी।**
**शिर मुकुट बिराजे, भूषन साजे,**
**नृप लखि भये सुखारी।।**
**सखि आठ सयानी, मन हुलसानी,**
**सेवहिं शील सुहाई।**
**नरपति बड़भागी, अति अनुरागी,**
**अस्तुति कर मन लाई।।**

**जय जय जय सीते, श्रुतिगन गीते,**
**जेहिं शिव शारद गाई।**
**सो मम हित करनी, भवभय हरनी,**
**प्रगट भईं श्री आई।।**
**नित रघुवर माया, भुवन निकाया,**
**रचइ जासु रुख पाई।**
**सोइ अगजग माता, निज जनत्राता,**
**प्रगटी मम ढिग आई।।**
**कन्या तनु लीजै, अतिसुख दीजै,**
**रुचिर रूप सुखदाई।**
**शिशु लीला करिये, रुचि अनुसरिये,**
**मोरि सुता हरषाई।।**
**सुनि भूपति बानी, मन मुसुकानी,**
**बनी सुता शिशु सीता।**
**तब रोदन ठानी, सुनि हरषानी,**
**रानी परम बिनीता।।**
**लिये गोद सुनैना, जल भरि नैना,**
**नाचत गावत गीता।**
**यह सुजस जे गावहिं, श्रीपद पावहिं,**
**ते न होहिं भव भीता।।**

दोहा–

**रामचन्द्र सुख करन हित**
**प्रगटी मख महि सीय।**
**'गिरिधर' स्वामिनि जग जननि**
**चरित करत कमनीय।।**

**जनकपुर जनक लली जी की जय**
**अयोध्या राम जी लला की जय**

**कुमुदिनी टीका–** अब महाकवि चार चौपाया छन्दों और एक दोहे में भगवती सीता जी की प्राकट्य स्तुति गा रहे हैं। अहो! पृथ्वी को निमित्त मानकर योगिराज जनक जी को सुख देने के लिये भगवती सीताजी किशोरी महिला रूप में प्रकट हो गईं। उन्होंने उपमा रहित मनोहर शरीर धारण कर रखा था और वे निरुपम रूप से सँवार सँवार कर सजाई गई थीं अर्थात् पृथ्वी फोड़कर प्रकट श्रीविग्रह पर माटी की एक किनकी भी नहीं लगी थी, उनके श्रीवस्त्रों और आभूषणों पर तनिक भी धूल की मलिनता नहीं दिख रही थी। वे अत्यन्त सुकुमारी दिखती हुई भी आदि शक्ति थीं। भगवती सीता मणियों से जुड़े हुए स्वर्ण के सिंहासन पर श्रेष्ठासन बनाकर अर्थात् सुखासन से विराजमान थीं। उनके गौर शरीर पर करोड़ों-करोड़ों चन्द्रमाओं का प्रकाश था। भगवती जी के सिर पर स्वर्ण मुकुट विराज रहा था। सीता जी के श्रीअंगों में अनेक आभूषण सजे थे जगन्माता को प्रकट हुई देखकर सीरध्वज राजाजनक सुखी हो गए। सीता जी के ही साथ प्रकट हुईं चरित्र और स्वभाव से सुन्दरी, चतुर चारुशीला आदि आठ सखियाँ उनकी सेवा कर रही थीं। परम भाग्यशाली महाराज जनक अतिशय अनुराग से पूर्ण होकर मन लगाकर भगवती सीता जी की स्तुति करने लगे। अपने दिव्य विवेक से पृथ्वी फाड़कर आठ सखियों, स्वर्णसिंहासन, पीतकौशेय वस्त्र तथा मुकुट आदि अलंकारों से सुसज्जित होकर स्वयं प्रकट हुईं इन षोडश वर्षीया परम रूपवती किशोरी जी को साकेताधिपति परब्रह्म परमात्मा भगवान श्रीराम की नित्य सहचरी साकेत विहारिणी शाश्वत सीता जानकर जनक जी बोले– वैदिक मन्त्र समूहों द्वारा गायी हुई हे शाश्वती भगवती सीता जी! आपकी जय हो, जय

हो, जय हो। जिन श्रीजी को शिव जी एवं शारदा जी ने गाया वे ही संसार के भय को हरने वाली नित्य साकेत विहारिणी श्रीजी मेरा हित करने के लिये इस मिथिला भूमि में आकर स्वयं प्रकट हुईं हैं। जिनका संकेत पाकर रघुवर अर्थात् जीवमात्र के नित वरणीय भगवान श्रीराम की योगमाया निरन्तर अनेक ब्रह्माण्डों की रचना करती रहती है वे ही समस्त जड़ चेतनों की माता एवं अपने भक्तों की रक्षा करने वाली आप श्रीसीता जी मेरे समीप, मेरे हल के फाल से टकरायी हुई भूमि से प्रकट हुई हैं इसीलिये मैं आपका नाम सीता घोषित करता हूँ। हे भगवती यह किशोरी रूप छिपाकर सबको सुख देने वाला सुन्दर बाल रूप स्वीकार करके नवजात कन्या का शरीर धारण कर लीजिये। हम (जनक-सुनयना) दम्पती को अत्यंत सुख दीजिए। प्रसन्न होकर मेरी पुत्री बनकर आप शिशु लीला कीजिये। हम दोनों सुनयना-जनक को माता-पिता बनने का सौभाग्य देकर हमारी रुचि का अनुसरण कीजिये। योगिराज जनक की यह वाणी सुनकर साकेत विहारिणी सीता जी मन में मुस्कुराईं और तत्क्षण नवजात कन्या बनकर जनकराज की कन्या बन गईं अर्थात् सिंहासन आदि उपकरणों को छिपा दिया। कुछ दिनों के लिये आठों सखियों को भी अन्तर्धान किया और हल रेखा की धूलि और फटी हुई भूमि के गड्ढे से निकलते हुये जल से भीनी हुई नवजात नन्हीं कन्या बनकर जनक जी को दृष्टिगोचर हुईं और राजा जनक ने उन्हें गोद में उठा लिया और नन्हीं बेटी का शरीर अपने उत्तरीय से प्रेम के साथ पोंछा। तब सीता जी कहां-कहां करके रोने लगीं। कन्या का रोदन सुनकर परम विनम्र रानी सुनयना प्रसन्न हो उठीं उनकी आँखों में आँसू भर आए। महारानी नन्हीं बेटी को गोद में लेकर नाचती हुई जन्म के गीत गाने लगीं। भविष्य में भी जो श्रीसीताराम भक्त नर नारी भगवती सीता जी का यह जन्म सुयश गाएँगे वे श्रीसीता जी के श्रीचरणकमल की सेवा प्राप्त कर लेंगे। वे संसार में रहकर भी भवसागर की भयंकर विपत्तियों से भयभीत नहीं होंगे। भगवान श्रीरामचन्द्र का सुख साधन बढ़ाने के लिये ही अर्थात् प्रभु श्रीराम को सुखी करने के लिये भगवती श्रीसीता जी, महाराज जनक की यज्ञभूमि में स्वयं प्रकट हुईं। गिरिधर कवि की स्वामिनी प्रभु श्रीराम की सहचरी बनकर लोकोत्तर चमत्कार पूर्ण चरित्र करती आ रही हैं।

**रोवत देखि उठाइ हहाई के**
**गोद लिये सुता रानी सुनैना।**
**पाई मनोनिधि जन्म दरिद्र ने**
**मोद भरी पुलकानि सुनैना।।**
**आनन चूमि दुलारत बारत**
**कंचन मानिक खानि सुनैना।**
**'गिरिधर' स्वामिनि की जननी बनि**
**आनन्द में हरषानी सुनैना।।**

**कुमुदिनी टीका-** पुत्री सीता जी को रोती देखकर रानी सुनयना ने आनंदित होकर उन्हें गोद में उठा लिया, मानों जन्म के दरिद्र ने अलौकिक निधि पा ली हो। इस अपूर्व लाभ से भरकर सुनयना जी रोमांच संयुक्त हो गई हैं और नवजात पुत्री का मुख चूमकर दुलारती हुई स्वर्ण और मणियों की खानि की निछावर करने लगीं। गिरिधर कवि की स्वामिनी की माँ बनकर सुनयना जी आनन्द से परिपूर्ण हो गईं। **(श्रीसीतारामकेलिकौमुदी से साभार)**

# भगवती श्रीसीता जी की आरती

❑ प्रणेता-पूज्यपाद जगद्गुरु जी

भइ प्रगट किशोरी, धरनि निहोरी, जनक नृपति सुखकारी।
अनुपम बपुधारी, रूप सँवारी, आदि शक्ति सुकुमारी।।
मनि कनक सिंघासन, कृतवर आसन, शशि शत शत उजियारी।
शिर मुकुट बिराजे, भूषन साजे, नृप लखि भये सुखारी।।
सखि आठ सयानी, मन हुलसानी, सेवहिं शील सुहाई।
नरपति बड़भागी, अति अनुरागी, अस्तुति कर मन लाई।।
जय जय जय सीते, श्रुतिगन गीते, जेहिं शिव शारद गाई।
सो मम हित करनी, भवभय हरनी, प्रगट भईं श्री आई।।
नित रघुवर माया, भुवन निकाया, रचइ जासु रुख पाई।
सोइ अगजग माता, निज जनत्राता, प्रगटी मम ढिग आई।।
कन्या तनु लीजै, अतिसुख दीजै, रुचिर रूप सुखदाई।
शिशु लीला करिये, रुचि अनुसरिये, मोरि सुता हरषाई।।
सुनि भूपति बानी, मन मुसुकानी, बनी सुता शिशु सीता।
तब रोदन ठानी, सुनि हरषानी, रानी परम बिनीता।।
लिये गोद सुनैना, जल भरि नैना, नाचत गावत गीता।
यह सुजस जे गावहिं, श्रीपद पावहिं, ते न होहिं भव भीता।।

दोहा–

रामचन्द्र सुख करन हित
प्रगटी मख महि सीय।
'गिरिधर' स्वामिनि जग जननि
चरित करत कमनीय।।

जनकपुर जनक लली जी की जय
अयोध्या राम जी लला की जय

(सभी को यह दिव्य आरती दैनिक पूजा में गानी चाहिए तथा इसका अधिक से अधिक प्रचार करना चाहिए)

❑❑❑

# उठ पड़ो हे! राम वंशज

❑ विष्णु गुप्त 'विजिगीषु'

राम सा संकल्प लेकर, अरि असुर अवसान कर।
धर्म रथ आरुढ़ होकर, जय विजय अभियान कर।।
हो चुकी शिव साधना, शूल लेकर कर उठें।
राक्षसी आतंक के सिर, काटने को कर उठें।।
शौर्य का पर्याय बनना, अब समय की मांग है।
शक्ति का करना प्रदर्शन, अब समय की मांग है।।
दैन्यता को तज बढ़ो, ललकार कर भारत सपूतो।
शिंजिनी खींचो, करो प्रतिकार माँ के ओ सपूतो।।
संगठित कर देव शक्ति, किरन सा अभियान कर।
धर्म रथ आरुढ़ होकर, जय विजय अभियान कर।।
युद्ध के ज्वालामुखी को आग बनकर सींचना है।
आतंक के हर वक्ष पर, सिंह बनकर कूदना है।।
दुर्बलों की शान्ति ने, कब कहाँ है विजय पाई।
शस्त्र सज्जित शूर ने ही, जगत में है कीर्ति पाई।।
दुष्ट-दानव दमन हित, वीर शर सन्धान कर।
शब्दभेदी वाण से अब, रिपु पुनः म्रियमाण कर।।
आ रहा है स्वर समर का, उठ मयद टंकार कर।
अरि शून्य कर दो मेदिनी, बढ़ प्रखर प्रतिकार कर।।
आस्था के, धर्म के, श्रद्धा सदन को रौंदते अरि।
इस सनातन संस्कृति के सत्य-शिव को मेटते अरि।।
उठ पड़ो हे! राम वंशज, धमनियों का रक्त पिघला।
तुम्हें करना अरि दमन है, शौर्य का विस्तार दिखला।।
शान्ति की तेरी पताका, तभी फहरायेगी जगत में।
विश्व गुरु की दिव्य वाणी, तभी गूंजेगी विभव में।।
बढ़ चले स्यन्दन समर को, विजय का दिनमान धर।
राम सा संकल्प लेकर, अरि असुर अवसान कर।।
शान्ति वचनों से कभी, ज्वाला समर बुझती नहीं।
शास्त्र पढ़ने से कभी, अरि सैन्य भी रुकती नहीं।।
देख तेरी आँख के अंगार को अरि दहल जाये।
और असि की धार से तू शत्रु के मस्तक झुकाये।।
विश्व की अघ शक्तियों के पंख काटो आज फिर।
विश्व गुरु का मान देकर, जग पिन्हाये ताज फिर।।
विजय का यह पर्व पावन, जय विजय का गान कर।
राम सा संकल्प लेकर, अरि असुर अवसान कर।।

❑❑❑

# सिया स्वामिनी हैं.......

❑ सन्तशिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज

सिया स्वामिनी हैं मलकिन हमारी
फिकर मोहै काहे की।
सिया स्वामिनि....।
जिनके ससुर चक्रवर्ती दशरथ
सासू कौसल्या महतारी।
फिकर मोहै....।
देवर भरत लखन रिपुसूदन
जिनके स्वामी हैं राम धनुर्धारी।
फिकर मोहै....।
ऋद्धि सिद्धि चरणन की दासी
जिनके हनुमत हैं प्रेम के भण्डारी।
फिकर मोहै....।
तुलसिदास कलजुग का करिहै
हमें राखि लेहैं जनक दुलारी।
फिकर मोहै....।

❑❑❑

# श्री राधागोविन्द विवाह महोत्सव

## ( पूज्यपाद जगद्गुरुजी के संरक्षण में हरिद्वार से ज्वालापुर वरयात्रा पहुँचेगी )

भगवद्भक्त महानुभाव,

आप जानकर अन्यन्त प्रसन्न होंगे कि श्री राघवपरिवार के परमाराध्य पूज्यपाद जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज के संरक्षण में तथा पूज्या बुआ जी डा० कुमारी गीतादेवी मिश्रा जी के निर्देशन में ऐतिहासिक ईश्वरीय प्रेरणा से हरिद्वार में गुरुवार 7 जून 2009 को भगवान् श्री राधागोविन्द विवाह महोत्सव सम्पन्न होने जा रहा है। जैसाकि प्रसिद्ध है कि ''भक्त और भगवान् के अन्तरंगतम मधुर सम्बन्धों की चर्चा–अर्चा करने वाले भावुक भक्त अपनी हस्ती को भगवत् स्मरण की मस्ती में लुटाकर अपना जीवन धन्य कर लेते हैं''– ऐसे ही भगवच्चरणानुरागी एवं पूज्यपाद जगद्गुरु चरणचञ्चरीक ज्वालापुर हरिद्वार के दो वैष्णव परिवारों ने भगवान् राधागोविन्द का शुभ विवाहोत्सव सम्पन्न कराने का निर्णय लिया है।

उल्लेखनीय है कि भगवती राधा जू के पक्ष (कन्यापक्ष) का प्रतिनिधित्व करेंगे श्रीमती सुमन मंगल एवं श्री प्रवीण मंगल (ज्वालापुर) तथा भगवान् गोविन्द जू के पक्ष (वरपक्ष) का प्रतिनिधित्व करेंगे– श्रीमती सारिका मित्तल एवं श्री राकेश मित्तल (ज्वालापुर)।

5 जून 2009 को कन्यापक्ष वाले (बरसानेवाले) वरपक्ष के स्थान 'वसिष्ठायनम्' रानी गली नं० 1 हरिद्वार में सगाई लेकर आयेंगे। **7 जून 2009 को प्रातः 10 बजे वरपक्ष के अनेक महानुभाव भगवान् श्रीकृष्ण के परममित्र एवं अपने सद्गुरुदेव पूज्यपाद जगद्गुरु जी के संरक्षण में शोभायात्रा के साथ 'बन्धनपैलेस' रेलवे रोड ज्वालापुर ( हरिद्वार ) पहुँचेंगे।**

सभी भगवत्प्रेमियों से साग्रह अनुरोध है कि भक्त और भगवान् की इस लीला के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त करें। आपको अखण्ड पुण्य तो प्राप्त होगा ही गुरुदेव के दर्शन, गोविन्द के कृपाभाजन, गंगाजी के स्नानध्यान श्री गीताजी के इस वाक्य का अर्थानुसन्धान करने का भी सौभाग्य प्राप्त होगा– ''ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्''।

आशा है आप इस महोत्सव में अवश्य उपस्थित होंगे।

**निवेदकः-**

**श्री राघव परिवार**

**गुरुगोविन्दकृपाभाजन**

श्रीमती सुमन मंगल एवं श्री प्रवीण मंगल, ज्वालापुर
(मो०– 09259101699) (कन्यापक्ष)

श्रीमती सारिका मित्तल एवं श्री राकेश मित्तल, ज्वालापुर
फोन– 01334- 253548 मो०– 09897404706 (वरपक्ष)

# संस्कार महिमा
## ( शिखा की वैज्ञानिकता का रहस्य )

❑ पूज्यपाद पं० दीनानाथ शास्त्री सारस्वत

(७) संस्कार का लाभ जगत्प्रसिद्ध है। जब सुवर्ण खान से निकलता है, तो मलिन होता है। खान से निकले हुए सोने का जब तक संस्कार न किया जावे तब तक सुवर्ण सु-वर्ण (अच्छे रंग का) नहीं होता। तब वर्तमान संस्कृत अवस्था के समान उसकी दीप्ति आकृति एवं मूल्य नहीं होते। इसीलिए ही सुवर्ण का संस्कार करके उसे सु-वर्ण किया जाता है। संस्कार के बिना कृत्रिम और अकृत्रिम सोने का परीक्षण भी नहीं हो सकता। संस्कार-द्वारा ही सभी पदार्थ व्यवहारोपयोगी होते हैं। किसी भी वस्तु में दोषनिराकरणपूर्वक गुणों का उत्पन्न करना ही उसका संस्कार कहा जाता है। जब तक किसी भी वस्तु का संस्कार नहीं होता, तब तक वह सदोष और गुणहीन रहती है। संस्कार होने पर ही उसके दोष दूर होकर गुणों का अविर्भाव हो जाता है। हीरे को जब तक शान में नहीं खरादा जाता, तब तक हीरे का न तो मिट्टी का आवरण दूर होता है न ही उसमें चमक आती है। इस प्रकार शाणसंस्कार के बिना तलवार की न धार तेज होती है, न ही उसमें काटने की शक्ति आती है। जब ये वस्तुएँ शान पर चढ़ाई जाती हैं, और इनका संस्कार किया जाता है तभी उनके उक्त दोष दूर होकर उक्त गुण प्रकट होते हैं। जड़ वस्तु की तरह घोड़ा आदि चेतन पदार्थों के भी दोष दूर करने और गुणों के उत्पन्न करने के लिए संस्कार अपेक्षित होता है।

फलतः सांसारिक सब पदार्थों को यदि उपयोगी करना इष्ट हो तो उस समय संस्कार की अपेक्षा होती है। इस प्रकार की कोई वस्तु जगत् में नहीं मिलती, जिसका कार्योपयोग के लिए संस्कार न किया जाता हो। इस प्रकार संस्कार से ही मनुष्य का भी दृष्ट अदृष्ट मल धुलता है। संस्कार से ही मनुष्य के स्वरूप का यथार्थ प्रकाश होता है। संस्कार से ही मनुष्यता आती है। संस्कारों से ही मनुष्य के पाप दूर होते हैं। 'मनुस्मृति' में कहा है- 'गार्भैर्होमैर्जातकर्म-चौडमौञ्जीनिबन्धनैः। वैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते' (२/२७) 'वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम् च कार्यः शरीर-संस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च (२/२६) वहां पर चूडाकर्म आदि संस्कारों से बीज वा गर्भ-सम्बन्धी पाप का दूर होना तथा शरीर का पवित्र होना कहा है। यह संस्कार की महिमा है।

## शिखा में प्रमाण

(८) शास्त्रों में संस्कार सोलह कहे गये हैं। इस विषय में 'षोडश-संस्काररहस्य' आगे देखिये। उनमें आठवां संस्कार ''चूडाकर्म'' है। इस संस्कार में बालक का सिर भद्र कर अर्थात् उसके गर्भ से आये बालों का मुण्डन करके चूडा (शिखा) रखनी पड़ती है। यह संस्कार भी महत्वपूर्ण माना जाता है। यह संस्कार हिन्दुत्व का प्रथम सोपान है। श्री मनु ने कहा है- 'चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः। प्रथमेब्दे तृतीये वा कर्त्तव्यं श्रुतिनोदनात्' (२-३५) यहाँ पर 'श्रुतिनोदना'

से चूडाकरण-शिखास्थापन कहा है। श्रुति मन्त्र ब्राह्मणात्मक वेद को कहते हैं। इस विषय में अन्य पुष्प में कहा जायगा। कुछ चतुर्थ पुष्प में देखिये। उसमें मन्त्रभाग का लिङ्ग है- 'यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव' (यजुर्वेद वा० सं० १७/४८) यहां 'विशिखाः' का अर्थ है- 'विशिष्टा दीर्घा, गोखुर परिमाण, शिखा-चूडा येषां तादृशाः कुमारा इव'। इस मन्त्र में 'शिखा' का मूल दीख रहा है।

अब इस विषय में दूसरा मन्त्र भी द्रष्टव्य है- 'आत्मन्नुपस्थे न वृकस्व लोभ, मुखे दमश्रूणि न व्याघ्रलोम। केशा न शीर्षन् यशसे, श्रियै शिखा सिंहस्य लोम त्विषिरिन्द्रियाणि' (यजु० १९/९२) यहाँ पर श्री-प्राप्त्यर्थ शिखा का धारण कहा है, और शिखा के बालों को सिंह के लोम के स्थानापन्न कहा है। अब शिखा के विषय में ब्राह्मण-भाग का प्रमाण देखिये- 'अथापि ब्राह्मणम्-रिक्तो वा एषोनपिहितो वन्मुण्डः, तस्य एतद् अपिधानंयत्शिखा-इति' (आपस्तम्बधर्मसूत्र १/१०/८) यहां शिखारहित को रिक्त-श्री-हीन दिखाया गया है। तब शिखा का स्थापन आयु, बल, तेज तथा वृद्धि का सहायक सिद्ध हुआ।

इस प्रकार अन्य शास्त्रों ने भी शिखा की आवश्यकता तथा शिखा-छेदन में प्रायश्चित्तार्हता कही है। जैसे कि- ' कात्यायनस्मृति' में कहा है- 'सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च। विशिखो व्युपवीतिश्च यत् करोति न तत् कृतम्' (१/४) यहाँ पर शिखा ही इनके कृत्य को अकृत्य बतलाया है। 'लघुहारीतस्मृति' में कहा है- 'शिखां छिन्दन्ति ये केचिद् वैराग्याद् वैरतोपि वा। पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः (१८) मोहाच्छिन्दन्ति ये केचिद् द्विजातिनां शिखां नराः। चरेयुस्ते दुरात्मानः प्राजापत्यं विशुद्धये।। (१९) इस प्रकार 'स्त्री-शूद्रौ तु शिखां छित्वा क्रोधाद् वैराग्यतोपि वा। प्राजापत्यं प्रकुर्यातां निष्कृतिर्नान्यथा भवेत्' (लघुहारीतस्मृति २०) 'खल्वाटत्वादिदोषेण विशिखश्चेन्नरो भवेत्। कौशीं तदा धारयीत ब्रह्म-ग्रन्थियुतां शिखाम्' (संस्कार-भास्कर) इन प्रमाणों से शिखा का रखना आवश्यक सिद्ध होता है। न होने पर कुशा की शिखा रखना कहा गया है। अन्य शास्त्रों में भी शिखा का वर्णन आता है। इस प्रकार शिखा न केवल हिन्दुत्व का चिन्ह है, बल्कि कर्म का अङ्ग भी है। शिखा के बिना मनुष्य वैदिक कर्म में अधिकार प्राप्त नहीं कर सकता। इसी कारण वैदिक यज्ञों में खल्वाट पुरुष को कर्माधिकारी नहीं माना जाता, अथवा वहाँ पर उस पुरुष की विवशता विचार कर कुश की शिखा बनानी पड़ती है। इस प्रकार शिखा केवल हिन्दुत्व का चिन्ह नहीं, अन्यथा ज्ञानकाण्ड के अधिकारी संन्यासी हिन्दुओं में न गिने जाते, अतः शिखा हिन्दु-कर्मकाण्ड का अङ्ग भी है।

## शिखारहस्य

(९) यजुर्वेदीय 'तैत्तिरीय उपनिषद् की शिक्षावल्ली में कहा गया है- 'अन्तरेण तालुके य एष स्तन इव अवलम्बते, सा इन्द्रयोनिः, यत्र केशान्ते विवर्तते व्यपोह्य शीर्षकपाले' (१/६/१) तालु के मध्य में स्तन की तरह जो केशराजि दीखती है- इसमें केशों का मूल है। वहाँ सिरके दोनों कपालों का भेदन करके इन्द्रयोनि है, इन्द्र अर्थात् परमात्मा की प्राप्ति का भाग सुषुम्णा नाड़ी है।

आशय यह है कि– जैसे घट दो कपालों के संयोग से बनता है, वैसे सिर भी दो कपालों से बना है। दोनों कपालों के मूल को भेदकर सुषुम्णा नाम नाड़ी रहती है। दोनों कपालों का मूलस्थान सुषुम्णा नाड़ी का घर है। योगी लोग इडा एवं पिङ्गला नाड़ी की गति को पार करके सुषुम्णा को जगाया करते हैं; उसी से आत्मा का साक्षात्कार करते हैं। यह नाडी अपने मूलस्थान से होती हुई मस्तक के मध्य में विचरती है। योगी लोग जिस स्थान को सुषुम्णा का मूलस्थान मानते हैं; वैद्य लोग उसी स्थान को 'मस्तुलिङ्ग' नाम से बुलाते हैं। मस्तुलिङ्ग के निम्न भाग को योगी लोग 'ब्रह्मरन्ध्र कहते हैं, और वैद्यगण उसके साथ के भाग को 'मस्तिष्क' कहते हैं।

वैद्य लोगों का यह अभिप्राय है कि– सम्पूर्ण शरीर में प्रधान अङ्ग है सिर, अथवा यह कहना चाहिये कि– व्यष्टि ब्रह्माण्डरूप शरीर की शक्तियों का भाण्डार सिर है। सब शरीर में व्याप्त नस–नाड़ियों का सिर से सम्बन्ध है। मनुष्य जीवन का केन्द्र वा आधार भी सिर ही है। सिर में दो शक्तियाँ रहती हैं; एक ज्ञान–शक्ति, दूसरी कर्म–शक्ति। इन दोनों शक्तियों की परम्परा नाड़ी–द्वारा शरीर में व्याप्त हो जाती है; और कार्यरूप में परिणत हो जाया करती है। इसी कारण शरीर में ज्ञान और कर्म दो विभाग हैं। इन दोनों विभागों का मूलस्थान वही सुषुम्णा का मूलस्थान और ब्रह्मरन्ध्र है अर्थात् मस्तुलिङ्ग तथा मस्तिष्क है। मस्तुलिङ्ग कर्मशक्ति का भण्डार है और मस्तिष्क ज्ञान शक्ति का। मस्तिष्क के साथ आंख, कान, नासिका, रसना, त्वचा इन ज्ञानेन्द्रियों का सम्बन्ध है, और मस्तुलिङ्ग के साथ वाणी, हाथ, पैर, गुद, उपस्थ इन कर्मेन्द्रियों का सम्बन्ध है। मस्तिष्क एवं मस्तुलिङ्ग का सामर्थ्य वा स्वास्थ्य जितनी अधिकता से होगा, ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रियों में भी उतनी प्रबलता सम्पन्न होगी। उन दोनों स्थलों के अस्वास्थ्य से इन इन्द्रियों में भी विकृति होती है। इसमें उदाहरणों की कमी नहीं है।

प्रकृति की विलक्षण महिमा से इन दोनों स्थलों की प्रकृति भी भिन्न–भिन्न हुआ करती है। मस्तिष्क शैत्य को चाहता है, मस्तुलिङ्ग उष्णता को। मस्तिष्क की ठंडक के लिए तालु–प्रदेश में और (हजामत) करवानी पड़ती है। उसमें शैत्यार्थ छुरे से वहां के केश, पान के आकार से कटवाये जाते हैं; उस पर तेल, साबुन, दही, मलाई आदि का उपयोग किया जाता है, तालु को जल–वायु आदि से ठण्डा रखना पड़ता है। सिरदर्द होने पर तालु के बाल कटवाने वा मुंडवाने से वेदना शान्त हो जाती है। फलतः तालु–प्रदेशस्थ मस्तिष्क तो ठण्डक चाहता है; उससे भिन्न धर्मवाला मस्तुलिङ्ग गर्मी चाहता है।

अब प्रश्न यह है कि– मस्तुलिङ्ग में कितनी वा कैसी ऊष्मा (गर्मी) अपेक्षित है। ऊष्मा की न्यूनाधिकता से नाड़ियों में प्रकोप हो सकता है, और उससे कई हानियाँ हो सकती हैं; इस कारण उसमें मध्यम ऊष्मा चाहिये। ऊष्मा से ही यह हमारा शरीर है, ऊष्मा गई तो शरीर भी शान्त हुआ। मर जाने पर कहते हैं कि ठण्डा हो गया। एक अमेरिकन वैज्ञानिक विद्वान ने वक्तव्य दिया है कि यदि हमारी ऊष्मा सुरक्षित रहे; तो हमारी ४०० वर्ष की आयु भी हो सकती है। सो उस ऊष्मा के संरक्षण में शिखा भी एक उपाय है। वह ऊष्मा कपड़े आदि से नहीं हो सकती; क्योंकि कपड़े आदि के गुण अनेक प्रकार के होते हैं। अतः उनसे पूर्ण लाभ की सम्भावना नहीं हो सकती।

यह भी निश्चित बात है कि जो वस्तु जिससे उत्पन्न होती है, वही उसकी वास्तविक सहायक हुआ करती है। जैसे– घड़ा मिट्टी से बनता है, उसके प्रत्येक अवयव की पूर्ति भी मिट्टी से ही होती है, जल अग्नि आदि से नहीं। मस्तुलिङ्ग सिर का एक भाग है, उसकी रक्षा भी सिर से उत्पन्न पदार्थ द्वारा ही हो सकती है, टोपी–हैट आदि से नहीं। शिर से उत्पन्न पदार्थ बाल है; अतः वहाँ घनीभूत गोरखपरिमाण के बाल ही मध्यम परिमाण की गर्मी कर सकते हैं; अन्य वस्तु नहीं। गंजापन जितने अंश में होता है; उतना ही अंश चोटी का होती है। इस स्थान पर लम्बे बाल रखना ही गंजेपन का इलाज है।

यह पहले कहा जा चुका है कि मस्तिष्क में ठण्डक अपेक्षित है और मस्तुलिङ्ग में गर्मी। इसलिए मस्तिष्क की ठण्डक के लिए वहां तालु–प्रदेश में केश थोड़े अपेक्षित होते हैं; अतः लोग वहां पर अपने बाल कम करा देते हैं; या वहाँ छुरे से क्षौर करवा लेते हैं, पर स्त्रियों में सौभाग्य के कारण न तो उनका क्षौर होता है; न वहां के बाल कटाये जाते हैं; तब उनके मस्तिष्क को वायु कैसे लगे; इसके लिए हमारे पूर्वजों ने उनके लिए माँग (सीमंत) रखना नियत किया है। दो भागों में बाल हो जाने से मध्य में माँग की रेखा होती है; वह मस्तिष्क का स्थान होने से उस रेखा के द्वारा उनके तालु को वायु लगती रहने से मस्तिष्क में ठण्डक रहती है; पर मस्तुलिङ्ग गर्मी के लिए उस पर घनीभूत के केशों की आवश्यकता होती है। मुनियों ने वहाँ उपयुक्त गर्मी के लिए गोखुर के परिमाण के केश माने  हैं। इसलिए मस्तुलिङ्ग में गहरे केश सदा रहें; वे अन्य बालों से अधिक रहें, भिन्न रहें, ऊंचे रहे, इसलिए उनका नाम भी विशेष रखा गया है ''शिखा''; और उसका सम्बन्ध कर्म–प्रवर्त्तक धर्म के साथ स्वीकृत किया गया है। इसके अतिरिक्त सन्ध्या आदि के अवसर पर परमात्मा की कृपा भी शिखा के ही द्वारा भीतर प्राप्त होती है; इसी कारण 'तैत्तिरीयोपनिषत्' ने उस स्थान का नाम 'इन्द्रयोनि' कहा है यह पहले कहा ही जा चुका है। 'ब्रह्मरन्ध्र' भी इसे इसलिए कहते हैं। जैसे ब्राडकास्ट किया हुआ शब्द सारे आकाश में व्याप्त हो जाता है– पर उसका आकर्षण करता है रेडियो–यन्त्र। और रेडियो का तरीका यह है कि मकान की चोटी पर एक बाँस तार के साथ खड़ी की जाती है; वही चोटी की तार शब्द को खैंच लेती है; जिसे हमारा रेडियो–यन्त्र खैंचकर हमारे आगे उपस्थित कर देता है, इसी प्रकार चोटी के बाल भी परमात्मा की व्यापक कृपा को अपने में आकृष्ट कर लेते हैं।

यह विषय कृत्रिम भी नहीं है, किन्तु वास्तविक और प्राकृतिक है। आप मस्तुलिङ्ग परके केशों को कटवाने वाले पुरुषों को देखें– वहाँ पर गोलाकार मण्डल दीख रहा होता है। एक भाग में बालों की ऐसी रचना दीखती है, जिससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह कपाल की ग्रन्थि है। ग्रन्थिस्थल को मर्मस्थल भी कहा जाता है। प्रत्येक मर्मस्थल की रक्षा भी आवश्यक हुआ करती है। अन्य मर्मस्थलों की अपेक्षा यह मर्मस्थल सम्राट्–स्थानीय है, **क्योंकि यही सब नस–नाड़ियों का केन्द्र है।** इसकी रक्षा अधिकता से हो; अतः यहाँ शिखा अवश्य रखनी चाहिये। इसी घनीभूत शिखा से ही सनस्ट्रोक आदि की आशङ्का भी नहीं रह जाती। ❑❑❑

# श्रीचित्रकूट धाम में अनुपम रामकथा

❑ प्रस्तुति-आचार्य दिवाकर शर्मा

**आज समाज में ऐसी भ्रान्ति फैली हुई है कि महाराज दशरथ कामी थे। कुछ कथावाचक भी समाज में ऐसा दुष्प्रचार कर रहे हैं। पूज्यपाद जगद्गुरु जी ने इन चैत्र के नवरात्रों में इस मिथ्या प्रचार का मुँहतोड उत्तर दिया है।** –सम्पादक

मंगलाचरण के पश्चात् कथा प्रारम्भ करते हुए पूज्यपाद जगद्गुरु जी ने कहा कि आज श्रीचित्रकूट बिहारी बिहारिणी जू हनुमान जी, कामदगिरि भगवान तथा शुभकृत् मुझे एक पावन चरित्र सुनाने का संकेत किया है। वे अपने ससुर महाराज श्रीदशरथ जी का चरित्र सुनने को उत्कण्ठित हैं। पुरुष वर्ग में दशरथ जी ही ऐसे महापुरुष हैं जिन्होंने सीता जी को दो बार गोद में बैठाया। गोस्वामी जी महाराज ने श्रीमानस जी में लिखा है–

**लिए गोद करि मोद समेता।**
**को कहि सकइ भयउ सुख जेता।।**
**बधू सप्रेम गोद बैठारी।**
**बार बार हिय हरषि दुलारी।।**

इसी प्रकार श्रीराम लक्ष्मण सीता जी के वनवास में जाने से पूर्व महाराज दशरथ ने–

**तब नृप सीय लाइ उर लीनी।**
**अति हित बहुत भाँति सुख दीन्ही।।**

जिस पुत्रवधू को चक्रवर्ती महाराज का इतना दुलार प्राप्त हो ऐसे पुण्यश्लोक ससुर का चरित्र हम हृदयंगम करने का प्रयास करें। अवधी में एक दोहा प्रसिद्ध है–

**राम राम सब कोउ कहैं दशरथ कहै न कोय।**
**एक बार दशरथ कहे जन्म कोटि फल होय।।**

साधारण जन के लिए इस दोहे का अर्थ कठिन है। यहाँ दशरथ शब्द के दो अर्थ हैं। एक तो दशरथ पुत्र राम और दूसरे निर्गुण निराकार राम जिनके विषय में कहा गया है–

**रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि।**
**इति राम पदेनासौ परब्रह्माभिधीयते।।**

जो महात्मा कबीर या सन्त मलूकदास के राम हैं वे निर्गुण ब्रह्म राम हमारा कल्याण नहीं कर सकते। हमारी आँखों में तो श्रीराम का यह स्वरूप होना चाहिए–

**पुनि मन वचन कर्म रघुनायक।**
**चरण कमल बन्दउँ सब लायक।।**
**राजिव नयन धरे धनु सायक।**
**भगत बिपति भंजन सुखदायक।।**

हमें तो मन वचन कर्म से सम्पूर्ण जीवों के स्वामी रघूणां नायकः रघुनायकः के चरण कमलों की वन्दना करनी चाहिए। महर्षि वाल्मीकि ने भी श्रीमद्वाल्मीकि रामायण में वर्णन किया है–

**प्रविश्य तु महारण्यं रामो राजीवलोचनः।**
**विराधं राक्षसं हत्वा शरभंगं ददर्श ह।।**

हमें ऐसे दशरथपुत्र राम चाहिए जो दुष्टों का दमन कर सकें भारत को आतंकवाद से मुक्त कर सकें। मुनि नारद जी ने महर्षि वाल्मीकि जी से जब पूछा कि श्रीराम का कौन सा अंग सबसे सुन्दर है तब महर्षि के शब्दों में महाराज दशरथ ने कहा–

**ऊनषोडशवर्षोऽयं रामो राजीवलोचनः।**

अर्थात् राजीव नयन (रक्तनयन) राम ही सबसे सुन्दर लगते हैं।

गोस्वामी जी महाराज भी कवितावली में वर्णन करते हैं–

**कीर के कागर ज्यों नृपचीर विभूषन उप्पम अंगनि पाई।**
**राजिव लोचन राम चले तजि बापु को राज बटाउ की नाईं।।**

ऐसा दशरथ पुत्र राम चाहिए। भगवान राम ने निर्णय ले लिया है कि अब दुष्टों को दण्ड देना है।

अतः–

**राजिव नयन धरे धनुसायक।**
**भगत बिपति भंजन सुखदायक।।**

हम जब तक दशरथ पुत्र राम की अवधारणा नहीं करेंगे तब तक हमारी रक्षा नहीं होगी। ऐसे सारे संसार के पिता भगवान राम जिस जीवात्मा (महाराज दशरथ) को पिता कह रहे हैं क्या वे कामी होंगे? गीतावली में श्रीभरत से भगवान राम ने कहा है कि भरत! तुम जानते हो कि मेरा यह शरीर चिन्मय है फिर भी इस शरीर की जूती बना लूँ तब भी मैं पिता जी से उऋण नहीं हो सकता। ऐसे श्रीराम जहाँ होंगे क्या वहाँ काम सम्भव है?

**जहाँ राम तहँ काम नहिं जहाँ काम तहँ राम।**
**तुलसी नहिं दोऊ रहैं रवि रजनी इक ठाम।।**

भगवान शंकर को भी जब ह्रदय में राम को लाना पड़ा तभी उन्होंने तीसरा नेत्र खोला–

**तब शिव तीसर नयन उघारा।**
**चितवत काम भयो जरि खारा।।**

महाराज दशरथ एक क्षण भी श्रीराम को देखे बिना नहीं रह सकते। जन्म से ही २४ मिनट सन्ध्यावन्दन के लिए श्रीराम से अलग होते हैं शेष समय श्रीराम के अपने पास ही रखते हैं। तभी तो गोस्वामी जी ने कहा–

**मंगल भवन अमंगल हारी।**
**द्रवउ सो दशरथ अजिर बिहारी।।**

महाराज दशरथ ऐसे जीवात्मा हैं जिनके पास दश लक्षणों वाला रथ है। मनु महाराज के धर्म के दस लक्षण कहे हैं–

**धृति क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।**
**धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।**

जहाँ काम होगा वहाँ ये दश लक्षण नहीं होंगे। महाराज दशरथ में धर्म के दसों लक्षण हैं अतः वहाँ काम की सम्भावना नहीं की जा सकती। वैसे हम साधारण साधु भी कभी काम की चर्चा नहीं करते तो महाराज दशरथ की तो बात ही क्या है। तभी तो गोस्वामी जी महाराज कहते हैं–

**दशरथ गुन गन बरनि न जाहीं।**
**अधिक कहा जेहि सम जग नाहीं।।**

मुनि भरद्वाज जी भी महाराज दशरथ की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं–

**जासु सनेह सकोच बस राम प्रगट भए आइ।**
**जे हर हिय नयननि कबहुँ निरखे नाहिं अघाइ।।**

अर्थात् जिनके प्रेम और संकोच (शील) के वश में होकर वे सच्चिदानंद घन भगवान श्रीराम आकर प्रकट हुए जिन्हें महादेव जी अपने ह्रदय के नेत्रों से देखते हुए कभी नहीं अघाते अर्थात् कभी तृप्त नहीं होते ऐसे श्रीराम के पिता महाराज दशरथ कदापि कामी नहीं हैं। महाराज दशरथ के जीवन के विषय में गोस्वामी जी महाराज दोहावली में कितना सुन्दर कहते हैं–

**जीवन मरन सुनाम जैसे दशरथ राय को।**
**जियत खिलाये राम राम बिरह तनु परिहरेउ।।**

अर्थात् महाराज दशरथ का जीवन और मरण दोनों प्रशंसनीय हैं। महाराज दशरथ जब तक जीवित

रहे श्रीराम को खिलाया और रामजी के वियोग में शरीर को त्याग दिया। भरद्वाज जी कहते हैं कि राम दशरथ जी से संकोच क्यों करते हैं? कौन सी ऐसी घटना या समस्या है जिसका समाधान राम जी नहीं कर पाये। पूर्वजन्म में मनु शतरूपा के रूप में मनु जी महाराज ने जब भगवान ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी से वरदान नहीं लिया छः बार ब्रह्माजी सात बार विष्णु भगवान और दस बार शिव जी वरदान देने आये तो मनुशतरूपा ने उन्हें लौटा दिया। वरदान माँगा तो परब्रह्म परमात्मा श्रीराम से। इतने प्रेम से प्रभु ने किसी को वरदान भी नहीं दिया होगा। जब भगवान श्रीराम ने कहा जो आप चाहेंगे वही वरदान मैं दूँगा। तब मनु महाराज ने कहा–

**दानि सिरोमनि कृपानिधि नाथ कहउँ सतिभाव।**
**चाहउँ तुमहिं समान सुत प्रभु सन कवन दुराव।।**

संसार में भगवान के समान कोई हो ही नहीं सकता। तब भगवान ने कहा–

**आप सरिस खोजौं कहँ जाई।**
**नृप तव तनय होब मैं आई।।**

व्यक्ति संकोच उससे करता है जिससे दबता है। ज्ञानी के भगवान स्वतंत्र होते हैं परन्तु भक्त के भगवान परतन्त्र होते हैं। मनु के समक्ष भगवान कृतज्ञ हैं तभी तो–

**बोले कृपा निधान पुनि अति प्रसन्न मोहि जानि।**
**माँगहु वर जोइ भाव मन महादानि अनुमानि।।**

मनु टाल रहे हैं कहते हैं–

**नाथ देखि पदकमल तुम्हारे।**
**अब पूरे सब काम हमारे।।**

फिर भी भगवान माँगने को कहते हैं। मनु फिर टाल रहे हैं–

**सो तुम जानहु अन्तरजामी।**
**पुरवहु मोर मनोरथ स्वामी।।**

मनु जी कहते हैं आप सब कुछ जानते हैं फिर मुझसे क्यों जानना चाह रहे हैं। यदि सुनना ही चाहते हैं तो 'चाहउँ तुमहिं समान सुत' मैं तो आपके समान पुत्र चाहता हूँ। भगवान ने कहा मैं अपने समान कहाँ खोजने जाऊँगा मैं ही आपका पुत्र बनकर आऊँगा। ऐसे मनु जिन्होंने सहस्रों वर्ष तप कर भगवान को पुत्ररूप में प्राप्त करने का वरदान प्राप्त किया अगले जन्म में महाराज दशरथ बने। ऐसे महापुरुष क्या कामी होंगे? परमपूज्य गुरुदेव ने इस प्रसंग में आगे कहा कि प्रेम दो प्रकार का होता है सत्य प्रेम और असत्य प्रेम। असत्य प्रेम वह है जहाँ प्रेम करने वाला व्यक्ति प्रिय के न रहने पर भी जी सके। परन्तु सत्य प्रेम के मूर्तरूप महाराज दशरथ हैं। उन जैसा विश्व में कोई सच्चा प्रेमी नहीं हुआ जो प्रेमास्पद के बिना जी न सका हो। वे तो विनम्रता से कह रहे हैं कि मैंने मछली को अपने जीवन का आदर्श माना है–

**जियइ मीन बरु बरि बिहीना।**
**फनि बिनु फनिक जियइ दुःख दीना।।**
**कहउँ स्वभाव न छल मन माहीं।**
**जीवन मोर राम बिनु नाहीं।।**

आगे माँ कौशल्या जी ने भी भरत से कहा था–

**मोहि न लाज निज नेह निहारी।**
**राम सरिस सुत मैं महतारी।।**

लोग कहा करते थे– 'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति' अर्थात् पुत्र भले ही कुपुत्र हो जाये

पर माता कुमाता नहीं होती' पिता के सम्बन्ध में किसी ने कुछ नहीं कहा। बेटा भरत! तुम्हारे पिता ने सृष्टि के इस नियम को बदल डाला। मेरे समक्ष श्रीराम, सीता और लक्ष्मण तापस वेश में वन जाने को उद्यत हुए परन्तु मैं तो जीती रही किन्तु तुम्हारे पिता न जी सके–

**जियइ मरइ भल भूपति जाना।**
**मोर हृदय शत कुलिश समाना।।**

मेरा प्रेम तो झूठा है सच्चा प्रेम तो तुम्हारे पिता का है। इसी प्रकार महाराज जनक जब वनवास में मिलने गये तब जनकजी ने चित्रकूट में कहा था–

**शिथिल सनेह गुनत मन माहीं।**
**आए इहाँ कीन्ह भल नाहीं।।**
**रामहि राय कहेउ बन जाना।**
**कीन्ह आपु प्रिय प्रेम प्रमाना।।**
**हम अब वन ते बनहिं पठाई।**
**प्रमुदित फिरब बिबेक बढ़ाई।।**

एक प्रेमी महाराज वे दशरथ और एक प्रेमी अविवेकी मैं हूँ। चक्रवर्ती महाराज पुत्र वियोग में नहीं रह सके। मैं भी तो पिता समान हूँ मैं प्रभु को इस बन में छोड़कर जा रहा हूँ। सत्य प्रेम तो चक्रवर्ती जी का था। मैं समधी नहीं विषमधी हूँ। जनक जी कहते हैं समधी बनकर मैं स्वयं को चक्रवर्ती जी की कोटि में अनुभव कर रहा था। परन्तु जब मिथिलापुरी से सीता विदा हुई तब भी मैं जीवित रहा। मुझे मंत्रियों ने समझाया मैं मान गया। परन्तु क्या चक्रवर्ती जी को महारानी कौसल्या और सुमन्त्र जी ने नहीं समझाया था? क्या वे माने? उनका प्रेम सच्चा था और मेरा प्रेम झूठा है। ऐसा कहकर जनकजी स्वयं को धिक्कार रहे हैं। वे कहते हैं मेरी तुलना चक्रवर्ती महाराज से नहीं हो सकती। जितना राम प्रेम उनमें था उतना क्या मुझमें है? सभी पिता दशरथ नहीं हो सकते और सभी पुत्र राम नहीं हो सकते तभी तो कहा है–

**राम राम सब कोउ कहैं दशरथ कहे न कोय।**
**एक बार दशरथ कहे जन्म कोटि फल होय।।**

महाराज दशरथ की महिमा का वर्णन तो ब्रह्मा जी ने भी मानस की इन पंक्तियों में किया है–

**जिनहिं विरचि बड़ भयउ विधाता।**
**महिमा अवधि राम पितु माता।।**

अर्थात् जिनको रचकर ब्रह्मा जी ने भी बड़ाई पाई तथा जो श्रीराम के माता पिता होने के कारण महिमा की सीमा हैं ऐसे महाराज दशरथ सत्कर्म और सुमंगलों की मूर्ति हैं। राम शिरोमणिकार ने सत्य ही कहा है कि जिनकी गोद में भगवान राम खेले वहाँ काम की कल्पना करना भी महापाप है। जिन दशरथ जी की भुजाओं के प्रताप से इन्द्र प्रसन्न रहते हैं वे चक्रवर्ती क्या काम के प्रताप से डरेंगे? एक बार जब महाराज दशरथ ने शनि पर आक्रमण किया तो शिवजी ने महाराज पर त्रिशूल फेंका वह त्रिशूल भी उनका कुछ न बिगाड़ सका, इन्द्र का वज्र और काली की तलवार भी जिनका कुछ न कर सकी ऐसे महाराज दशरथ क्या पत्नी के क्रोध से सूख जायेंगे? कदापि नहीं। श्रीराम जी के प्राकट्य में दशरथ जी का स्नेह काम कर रहा है। तभी तो मनुशतरूपा प्रसंग में भगवान ने कहा मैं अंशों सहित आपके यहाँ अवतार लूँगा। ऐसे महाराज दशरथ का चरित्र हम सबके लिए आदर्श है। उनमें काम की कल्पना करना महापाप है।

❑❑❑

# भगवान् के श्री चरणों में अनुरक्ति ही भक्ति है

❑ श्री ललिताप्रसाद बड़थ्वाल

भगवन्नाम में नामी को प्रकट करने की शक्ति होती है। अत: उठते बैठते सोते जागते जहाँ तक बन पड़े प्रभु नाम जप करते ही रहना चाहिए, यह मानव शरीर इसीलिए कृपा करके प्रभु ने हमें दिया है। सुर दुर्लभ यह मानव शरीर विषय भोगों में नष्ट करने के लिए नहीं है। इस बात का ज्ञान सत्संग के माध्यम से अथवा सद्गुरुदेव की कृपा से ही सम्भव हो पाता है। प्रभु नाम जप अथवा संकीर्तन से जीव को निश्चय ही लाभ मिलता है। चाहे अनचाहे अथवा बिना अर्थ समझे ही वह मुख से उसके नाम का उच्चारण करता रहे तो जैसे अबोध बालक यदि आग में हाथ डालेगा तो जलेगा ही क्योंकि दहन करना अग्नि का स्वभाव है। इसी प्रकार भगवान का स्वभाव भी जीव पर कृपा करना है। जो भी भक्त प्रभु का नाम जाने अनजाने लेते रहते हैं, प्रभु की उन पर असीम कृपा दृष्टि रहती है। अस्तु बुद्धिमान लोग दिन रात मन वचन और कर्म से भगवान का भजन करते रहते हैं और बिना प्रयास के ही संसार सागर को सरलता से पार कर लेते हैं।

यदि हम विचार कर देखें तो संसार में सभी जड़ अथवा चेतन चराचर जीव अमर होना चाहते हैं। पूर्ण ज्ञान, पूर्ण आनन्द, पूर्ण अस्तित्व, पूर्ण शान्ति और पूर्ण स्वतंत्रता का जीवन जीना चाहते हैं। शाश्वत सत्ता प्राप्त करना चाहते हैं। और ये सभी गुण भगवान में ही निहित हैं। अत: कहना न होगा कि सभी चराचर जीव प्रभु को ही चाहते हैं। वास्तव में जीव का लक्ष्य तो परमानन्द को प्राप्त करना ही है। लेकिन चंचल मन उसे निरर्थक और नश्वर सांसारिक वस्तुओं में उलझा देता है। फलस्वरूप जीव अपने वास्तविक लक्ष्य से भटक जाता है।

अत: यह बात निर्विवाद सत्य है कि शरणागति ही एक मात्र प्रभु को पाने का सशक्त माध्यम है। हमारे गुरुदेव भगवान भी कहते हैं कि सन्त जीव का सुधार करते हैं और भगवान उसका उद्धार करते हैं। उनके शब्दों के बिना सुधार के उद्धार सम्भव ही नहीं है। उनका मानना है कि जब संसार से राग मिटेगा तभी परमात्मा से अनुराग बढ़ेगा। भगवत् प्राप्ति के बाद भी यदि कुछ शेष रह जाता है तो वह है ''सन्त दर्शन'' इसकी पुष्टि भी मानस की इस चौपाई से सन्त शिरोमणि श्री तुलसीदास जी ने कर दी है– ''मोरे मन प्रभु अस विश्वासा। राम से अधिक राम कर दासा।।'' इस प्रकार स्पष्ट हुआ कि नित्य निरन्तर सन्त का संग करने से ही ईश्वर के प्रति अनुराग बढ़ता है और संसार से विरक्ति भी, केवल मन की वृत्तियों को बदलने की आवश्यकता है।

सत्संग अथवा यों कहें कि भगवान का भजन जीव के लिए उसी प्रकार सहायक होता है जैसे अन्धे व्यक्ति को लाठी का सहारा। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि सांसारिक रोग की औषधि ही प्रभु का नाम है। उस अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक परमपिता परमात्मा की अलौकिकता को हमारे ऋषि–मुनियों ने अपने गहन मनन और तप के प्रभाव से देखा है और उन्होंने जैसा देखा है, अनुभव किया है उसको अनेक ग्रन्थों के माध्यम से हमारे लिए धरोहर के रूप में मार्ग दर्शन के लिए छोड़ गए हैं।

श्रीमद्भागवत महापुराण, श्रीगीताजी, श्री रामचरितमानस आदि अनेक ऐसे ग्रन्थ हैं जिनका अध्ययन कर तदनुसार आचरण करने से हमारा मानव शरीर धारण करने का सुफल हमें निश्चय ही प्राप्त हो सकता है। आवश्यकता इन ग्रन्थों में उल्लिखित ज्ञान को अपने जीवन में क्रियान्वित करने की है। केवल कहने सुनने मात्र से बात बनने वाली नहीं है।

❑❑❑

# सीताचरित्रम्

❑ आचार्य पं० रमेशचन्द्र शुक्ल

दयामयीं शीलवतीं महोज्ज्वलां।
कृपालुरामस्य शुभाम्बुवर्षिणीम्।
उदारचित्तां दयितां महीयसीं
नमामि सीतां मृदुलां क्षमात्मजाम्।।१।।

क्षेत्रं महीपजनको लभते स्म सीतां
कन्यां कृषन् परमसुन्दररूपलक्ष्मीम्।
क्षोण्युत्थितां नरपतिः सदयो जुगोप
सातः सुता सुविदिता प्रथते स्म तस्य।।२।।

सीता बभूव जनकस्य मनोज्ञरम्ये
श्रेष्ठप्रकृष्टललिते सुषमाभिरामे।
सद्दीप्तभूपभवने परिवर्धमाना
शास्त्रेषु सद्‌गुण-कलासु रता भवन्ती।।३।।

श्रेष्ठस्वभावमधुरप्रियशीलहेतोः
वात्सल्यपात्रमभवन्नितरां समेषाम्।
स्नेहं विदेहभवनं स्वजनाः सदा सा
तस्यां भृशञ्च निदधुर्जनता समस्ता।।४।।

ज्ञानार्जने निदधतीं हृदयं नितान्तं
सीतामवेक्ष्य निशितप्रतिभासुदीप्ताम्।
दिव्यस्वरूपगुणमञ्जुलभूषितां तां
सर्वेऽपि मोदममितं प्रययुः पुमांसः।।५।।

❑❑❑

# प्रकट भईं सीता

❑ श्रीविशेषनारायण मिश्र ( संगीत विभाग )

तिरहुत की भूमि फोर प्रकट भईं सीता।
जलधर बन बरस रहीं प्रेम की प्रणीता।।
श्रवणन सुनाय आजु दिशि-दिशि बधाई
झूमें आनन्द भरे लोग औ लुगाई।
अब तो चित-चेत-चरण सीता पुनीता
तिरहुत की भूमि फोर प्रकट भईं सीता।।१।।

जनक जी किशोरी को अपलक निहारें
गोद में उठाय रानी चूमि चुचुकारें।
निरखि लोग निसरि गये प्रेम के अतीता
तिरहुत की भूमि फोर प्रकट भईं सीता।।२।।

ऐसा आनन्द छाया मिथिला के कण-कण
श्रुति-शास्त्र-वेद आदि कर ना सकें वर्णन।
लेहु लोचननि को लाहु अवसर सुभीता
तिरहुत की भूमि फोर प्रकट भईं सीता।।३।।

सुन्दरी किशोरी को दर्शन शुभकारी
मृतक जियावनि लागे मृदुतम किलकारी।
हृदय विराजे 'विशेष' भावते भनीता
तिरहुत की भूमि फोर प्रकट भईं सीता।।४।।

❑❑❑

# मुस्कनियाँ पै बलिहारी जाऊँ मैं

❑डॉ० श्रीमती वन्दना श्रीवास्तव

भावजगत में ही जीवात्मा अपने मन की बात परमात्मा से कह सकता है और यही अन्तरंगता जीवात्मा के जीवन की उपलब्धि बन जाती है– ऐसी ही उपलब्धियों की धनी डा० श्रीमती वन्दना श्रीवास्तव अपनी भाभी माँ भगवती जानकी जी की जयन्ती के उपलक्ष्य में एक भावगीत प्रस्तुत कर रही हैं। निश्चित रूप से श्री सीतारामोपासक भक्तों को दिव्यानन्द की अनुभूति होगी। –सम्पादक

**अपनी भाभी ( सीता माँ ) की मुस्कनियाँ पै बलिहारी जाऊँ मैं**
**बलिहारी जाऊँ मैं, वारी वारी जाऊँ मैं, अपनी....**
**भाभी माँ की केश-राशि में सुन्दर सुमन गुँथे हैं।**
**जैसे मावस की रजनी में तारक वृन्द सजे हैं।।**
**कारी घुँघरारी अलकनियाँ पै बलिहारी जाऊँ मैं**
**वारी वारी .... अपनी ....**

**भाभी माँ के भाल पै शोभित सुन्दर सेन्दुर बिन्दिया।**
**जैसे स्वच्छ निरभ्र गगन में सूरज बना टिकुलिया।।**
**ऐसी चमचम सेन्दुर बिन्दिया पै बलिहारी जाऊँ मैं**
**वारी वारी .... अपनी ....**

**बड़ी बड़ी कजरारी अँखियों में कजरे की रेखा।**
**जैसे चकित मृगी ने छककर रूपराशि को देखा।।**
**ऐसी अमृतमयी चितवनियाँ पै बलिहारी जाऊँ मैं**
**वारी वारी .... अपनी ....**

**सुगढ़ नासिका में हीरे की जगमग करे नथनियाँ।**
**जैसे घन के बीच मनोहर दमके नवल दमनियाँ।।**
**ऐसी जगमग जोत नथनियाँ पै बलिहारी जाऊँ मैं**
**वारी वारी .... अपनी ....**

**अरुण अधर कोमल कलिका से मञ्जुल और गुलाबी।**
**नजर उतारे ननद 'वन्दना' तब भाभी मुस्का दीं।।**
**ऐसी दिव्य मधुर मुस्कनियाँ पै बलिहारी जाऊँ मैं**
**वारी वारी .... अपनी ....**

❑❑❑

# सिख-गुरुओं की श्रीराम-श्रीकृष्ण भक्ति

❑ श्री जगदीश प्रसाद गुप्त ( जयपुर )

सिख समाज के सभी पूज्य गुरु भगवान श्री राम, श्री कृष्ण के अनन्य उपासक रहे हैं। उनके धर्म में और ''साहिब श्री गुरु ग्रन्थ साहिब'' जी में सनातन धर्म की सभी बातों की मान्यता दी गई है। श्रीगुरु ग्रन्थ साहिब जी में तो वेद-पुराण-रामायण की बातों की चर्चा श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीहरि, श्रीगोविन्द, श्रीनारायण आदि भगवन्नामों के साथ की गई है। सिख धर्म और श्री गुरुग्रन्थ साहिब जी को मानने वाले सच्चे सिख कभी नहीं कहेंगे कि वे हिन्दू नहीं हैं और श्री दशरथ-नन्दन श्रीराम को, श्री नन्दनन्दन श्रीकृष्ण को नहीं मानते, उनके श्रीराम, श्रीकृष्ण निराकार राम-कृष्ण हैं। हिन्दू धर्म को मानने वाले, दसवें एवं अन्तिम सिख-गुरु, प्रातः स्मरणीय पूज्य श्री गुरु गोविन्द सिंह महाराज ने श्रीभगवती नैना देवी से गौ और हिन्दू धर्म की रक्षा करने की याचना की थी-

**यही देहु आज्ञा तुरक को खपाऊँ।**
**गो घात का दुख जगत् से मिटाऊँ।।**
**सकल जगत महि खालसा पंथ गाजे।**
**जगै धर्म हिन्दू सकल भंडभाजे।।**

पूज्य श्री गुरु गोविन्द सिंह जी ने रघुवंशी श्रीराम को परम पवित्र अवतारी, दुष्ट-दैत्यों के संहारक और सन्त पुरुषों के प्राणाधार के रूप में देखा है-

**राम परम पवित्र हैं रघुवंश के अवतार।**
**दुष्ट दैतन के संहारक, संत प्राण-अधार।।**

पूज्य श्री गुरुनानक देव जी रघुवंशी श्री दशरथ नन्दन श्रीराम के अनन्य भक्त रहे हैं-

**१. सूरजवंशी रघु भया रघुकुल वंशी राम।**
**रामचन्द्र के दोए सुत, लऊ कुश ताहि नाम।।**
**संग सखा सब तजि गये कोऊ न निबहो साथ।**
**कहि नानक इस विपत्ति में टेक एक रघुनाथ।।**
**२. सबसे ऊँच राम प्रकाशा।**
**निज बासर जप नानकदास।।**
**३. न ओ भरे न दागे जाहिं।**
**जिनके राम बसे मन माहिं।।**

पूज्य श्री गुरु नानक देव जी के लिए कहा जाता है कि वे बचपन से ही श्रीराम भक्त थे। उनके राम भक्ति के अनेक प्रसंग कहे जाते हैं, सुने जाते हैं-

१. घर वालों ने ऐसे राम भक्ति में लीन रहने वाले बालक (नानक) जो घर का कोई काम नहीं करता था, उसको खेत पर खड़ी फसल पर चिड़ियाँ उड़ाने का काम दिया। सब जीवों में अपने इष्ट देव श्रीराम को देखने वाले उन चिड़ियों में भी अपने प्रभु को देखकर उन्हें उड़ाते नहीं और उन्हें खड़ी फसल पर अनाज के दाने खाने देते थे-

**रामजी की चिड़िया, रामजी का खेत।**
**खाओ चिड़िया भर भर पेट।।**

२. घर वालों ने खेत पर से हटाकर अनाज तौलने का काम सौंपा। वहाँ पर भी, वे परम्परागत एक बार तौलने पर राम ही राम कहकर भाव-विभोर हो गए, मुख से राम ही राम कहते रहे और आँखें बन्द हो गई।

३. श्रीराम-भक्ति का प्रचार करते हुए एक बार श्रीगुरुनानकदेव जी मक्का-मदीना पहुँचे और रात को एक मस्जिद की ओर पैर करके सो गए। सुबह

होने पर मस्जिद का मुल्ला आया और इन्हें मस्जिद की ओर पैर करके सोते देखकर बड़बड़ाया और क्रोध में बोला– "अबे, खुदा की तरफ पैर करके सो रहा, तमीज नहीं है?" यह पूछने पर "तू है कौन?" श्री गुरुनानकदेव जी ने विचार किया कि वे हिन्दू हैं, हिन्दू कहने पर ये मुल्ला–मौलवी मारेंगे, मुसलमान कहें तो वे मुसलमान हैं नहीं। इसलिए, उन्होंने अपने को पंच–तत्व का पुतला बताकर नानक नाम बताया–

**हिन्दू कहूँ तो मारिये मुसलमान हूँ नाहीं।**
**पंचतत्व का पूतला नानक मेरा नांव।।**

मस्जिद के खुदा की ओर पैर करके सोने के उत्तर में, श्रीगुरुनानकदेव जी ने कहा– "खुदा तो सब जगह है, जिधर खुदा नहीं है, उस ओर मुझे कर दे।" क्रोधी मुल्ला ने उनके पैर पकड़ कर दूसरी तरफ किये तो मस्जिद भी उस ओर ही घूम गई, अब जिधर पैर करें, उधर ही मस्जिद हो जाती। श्रीराम भक्त के चमत्कार देखकर सभी मौलवी–मुल्ला घबड़ा गए और उनके श्रीचरणों में गिर गिर कर क्षमा माँगने लगे।

४. काबुल देश में, वहाँ के बाबर बादशाह ने भी गुरुनानकदेवजी का स्वागत किया और एक सोने के कटोरे में भरकर भाँग पीने को दी। वे तो श्रीराम नाम का ही नशा करते थे, अन्य सांसारिक नशों से दूर रहते थे। वे बादशाह को समझाने लगे कि भांग आदि का नशा, क्या कोई नशा है, ये नशे तो सुबह तक उतर जाते हैं, क्या फायदा है, ऐसे नशा करने से। नशा तो राम नाम का है जो दिन रात चढ़ा रहता है–

**भांग तंबाकू छोतरा उतर जाय प्रभात।**
**नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन रात।।**

उन्होंने सदैव ही रामनामामृत का पान किया और इसे ही सुख का आधार मानते थे।

**नानक दुखिया सब संसारा।**
**सुखिया वही जो नाम अधारा।।**

श्रीगुरुनानकदेव जी ने "जन्म–सारवी" में गौ–माता की अलौकिक महिमा का वर्णन किया है–

**गऊ चौदवाँ रतन है, कामधेनु तेह नाम।**
**पूजन सब अवतार तिसें करके मात समान।।**
**शीर जिन्हा दा पीजिये तिस मारियाँ बहुत गुनाह।**
**नानक आरवे रूकन दीन बहु भुखियाँ होय निबाह।।**

श्रीगुरु ग्रन्थ साहिब में कबीर, रविदास, नामदेव, धन्ना पीपा, शेख फरीद आदि सन्तों की वाणियाँ हैं और ये सभी सन्त साकार श्रीदशरथ नन्दन श्रीराम और श्री नन्दनन्दन श्री कृष्ण के भक्त थे और उन्होंने उन्हीं के भरपूर गुणगान किये हैं। श्रीगुरु ग्रन्थ साहिब में श्रीराम–कृष्ण की स्तुति व गुणगान का भक्तिमय वर्णन हमें यही बताता है कि सिख गुरु साकार भगवान राम–कृष्ण के उपासक थे–

**१.धन धन मेघा रोमावली।**
**जहँ कृष्ण ओढ़े कामली।।**
**धन धन वृन्दावना।**
**जहँ खेले श्री नारायण।।**

**२. एक कृष्ण सर्व देवा देव देवात आत्मः आत्मं श्री वासुदेवस्य जेको जानत भेव।**
**नानक ताका दास है सोई निरंजन देव।।**
**आये गोपी, आये कान्हा, आये गऊ चरावे दाना।**
**आप उपावे आप खवावे। तुप लेय नहीं हक तिहा रंगा।।**

**३. हरि हरि करत पूतना तरी।**
**बाल घातनि कपटहिं भरी।**
**केसी कंस मथन जिन कीया।**
**जीव दान काली को दीया।।**
**प्रणव नामा ऐसो हरि।**
**जास जपत भय अपदा टरी।।**

इसी प्रकार गुरु ग्रन्थ साहिब में माँ गंगे और श्राद्ध-तर्पण की भी महिमा कही गई है कि कुछ लोग अपने पितरों के लिए चुल्लू भर पानी भी नहीं देते और उस भागीरथ की, जो साक्षात माँ गंगा को, अपने पूर्वजों का उद्धार करने के लिए, स्वर्ग से पृथ्वी पर लाया था, निन्दा करते हैं-

**आप न देय चुल्लू भर पानी।**
**ते निन्दें जिन गंगा आनी।।**

हमारे सभी सिख गुरु श्रीराम, श्रीकृष्ण नाम की माला जपते थे, गौ-ब्राह्मण के रक्षक और कट्टर सनातन धर्मी हिन्दू थे। वे देव मन्दिरों को मानते और कथा कीर्तन करते थे। पंजाब केसरी महाराजा श्री रणजीत सिंह जी ने अनेक स्थानों में मन्दिर बनवाए और वे बड़े प्रेम से ''श्रीरामचरितमानस'' सुनते थे। सभी सिख सन्तों ने ईश्वर प्राप्ति का साधन श्रीराम, श्रीकृष्ण नाम का जपना और इनकी भक्ति करना बताया है- ईश्वर, श्रीराम, श्रीकृष्ण एक ही हैं, इनमें कोई अन्तर नहीं है।

इस लेख को विराम देते हुए, यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि हम और हमारा सिख समाज चारों युगों (सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग) के इष्ट देवों को एक ही इष्ट भावना से ''वाहे गुरु,'' ''वाहे गुरु,'' ''वाहे गुरु,'' का निरन्तर जप करते हैं, स्मरण करते हैं, ध्यान करते हैं। यह बीज मंत्र है- चार शब्दों से बना है- व, ह, ग, र (वा + हे + गु + रु)। सतयुग के विष्णु भगवान से व, त्रेतायुग के हरि से ह, द्वापर युग के गोविन्द से ग, और कलियुग के मुख्य नाम राम से र। इस प्रकार चारों युगों के प्रभु के नाम- श्रीविष्णु, श्रीहरि, श्रीगोविन्द और श्रीराम, के एक एक अक्षर लेकर बीज मंत्र ''वाहे गुरु'' की रचना हुई है। इससे साकार प्रभु के नामों का सतत जप-स्मरण-ध्यान बनता है- वाहे गुरु, वाहे गुरु, वाहे गुरु। वाहे गुरु जी का खालसा, वाहे गुरु जी की फतह, सत श्री अकाल।

❑❑❑

## पूज्यपाद जगद्गुरु जी के आगामी कार्यक्रम

❑ प्रस्तुति-पूज्या बुआ जी

| दिनाङ्क | विषय | आयोजक तथा स्थान |
|---|---|---|
| ०१ मई २००९ से ०७ मई २००९ तक | श्रीरामकथा | कैलाशनगर तह०- बगहा, पश्चिम चम्पारण (बिहार)। |
| १० मई २००९ से १६ मई २००९ तक | श्रीमद्भागवतकथा | श्रीनरसिंह मन्दिर, जिला- बालाँगीर (उड़ीसा)। |
| २४ मई २००९ से १ जून २००९ तक | श्रीरामकथा | झिलमिल कालोनी श्रीरामरामेश्वर मन्दिर दिल्ली। |
| १८ जून २००९ से २६ जून २००९ तक | नवदिवसीय श्रीमद्भागवतकथा | श्रीलक्ष्मीनारायण मन्दिर, सिंगापुर। |

# व्रतोत्सवतिथिनिर्णयपत्रक

## वैशाख शुक्लपक्ष/सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म ऋतु

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | व्रत पर्व आदि विवरण |
|---|---|---|---|---|
| द्वादशी | बुधवार | हस्त | 6 मई | प्रदोष व्रत |
| त्रयोदशी | गुरुवार | चित्रा | 7 मई | श्रीनृसिंह जयन्ती |
| चतुर्दशी | शुक्रवार | स्वाति | 8 मई | श्रीसत्यनारायण व्रत कथा |
| पूर्णिमा | शनिवार | विशाखा | 9 मई | श्री बुद्ध पूर्णिमा |

## ज्येष्ठ कृष्णपक्ष/सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म ऋतु

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | व्रत पर्व आदि विवरण |
|---|---|---|---|---|
| प्रतिपदा | रविवार | अनुराधा | 10 मई 2009 | – |
| द्वितीया | सोमवार | ज्येष्ठा | 11 मई | श्रीनारद जयन्ती |
| तृतीया | मंगलवार | ज्येष्ठा | 12 मई | श्रीगणेश चतुर्थी व्रत |
| चतुर्थी | बुधवार | मूल | 13 मई | – |
| पंचमी | गुरुवार | पू0षा0 | 14 मई | वृष राशि में सूर्य संक्रान्ति दिवस |
| षष्ठी | शुक्रवार | उ0षा0 | 15 मई | – |
| सप्तमी | शनिवार | श्रवण | 16 मई | – |
| अष्टमी | रविवार | घनिष्टा | 17 मई | पंचक प्रारम्भ 7/56 से श्रीदुर्गाष्टमी |
| नवमी | सोमवार | शतभिषा | 18 मई | – |
| दशमी | मंगलवार | पू० भाद्र० | 19 मई | – |
| एकादशी | बुधवार | उ0 भाद्र0 | 20 मई | **अपरा–एकादशी व्रत (सबका)** |
| द्वादशी | गुरुवार | रेवती | 21 मई | पंचक समाप्त 11/52 रात को |
| त्रयोदशी | शुक्रवार | अश्विनी | 22 मई | प्रदोष व्रत |
| चतुर्दशी | शनिवार | भरणी | 23 मई | – |
| अमावस्या | रविवार | कृतिका | 24 मई | वटसावित्री व्रत |

## ज्येष्ठ शुक्लपक्ष/सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म ऋतु

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | व्रत पर्व आदि विवरण |
|---|---|---|---|---|
| प्रतिपदा | सोमवार | रोहिणी | 25 मई | चन्द्र दर्शन |
| द्वितीया | मंगलवार | मृगशिरा | 26 मई | – |
| तृतीया | बुधवार | आर्द्रा | 27 मई | महाराणाप्रताप जयन्ती, श्रीगणेश चतुर्थी |
| चतुर्थी | बुधवार | आर्द्रा | 27 मई | चतुर्थी तिथि का क्षय |
| पंचमी | गुरुवार | पुनर्वसु | 28 मई | – |
| षष्ठी | शुक्रवार | षुष्य | 29 मई | – |
| सप्तमी | शनिवार | श्लेषा/मघा | 30 मई | – |
| अष्टमी | रविवार | पू०फा० | 31 मई | श्रीदुर्गाष्टमी |
| नवमी | सोमवार | उ0फा0 | 1 जून | – |
| दशमी | मंगलवार | हस्त | 2 जून | श्रीगंगादशहरा |
| एकादशी | बुधवार | चित्रा | 3 जून | **निर्जला एकादशी व्रत (सबका)** |

卐 श्रीमद्राघवो विजयते 卐

धर्मचक्रवर्ती, महामहोपाध्याय, जीवनपर्यन्त कुलाधिपति, वाचस्पति, महाकवि

श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य **स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज**

का राष्ट्रीय, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक चेतना का संवाहक

# श्रीतुलसीपीठसौरभ

**( मासिक पत्र )**

सीतारामपदाम्बुजभक्तिं भारतभविष्णु जनतैक्यम्।
वितरतु दिशिदिशि शान्तिं श्रीतुलसीपीठसौरभं भव्यम्।।

वर्ष १३ | मई २००९ (४, ५ जून को प्रेषित) | अंक–९



**पूज्यपाद जगद्गुरु जी के सम्पर्क सूत्र :**
**श्रीतुलसीपीठ, आमोदवन,**
पो० नया गाँव श्रीचित्रकूटधाम (सतना) म०प्र०485331
✆–07670–265478, 05198- 224413

**वसिष्ठायनम् -** जगद्गुरु रामानन्दाचार्य मार्ग
रानी गली नं०–1, भूपतवाला, हरिद्वार (उत्तरांचल)
दूरभाष–01334–260323

**श्री गीता ज्ञान मन्दिर**
भक्तिनगर सर्कल, राजकोट (गुजरात)
दूरभाष–0281–2364465

**पंजीकृत सम्पादकीय कार्यालय एवं पत्र व्यवहार का पता**
आचार्य दिवाकर शर्मा,
220 के., रामनगर, गाजियाबाद–201001
दूरभाष–0120–2712786, मो०– 09971527545

# रामानन्दः स्वयं रामः प्रादुर्भूतो महीतले

## विषयानुक्रमणिका



## सुधी पाठकों से विनम्र निवेदन

१. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' का प्रत्येक अंक प्रत्येक दशा और परिस्थिति में प्रत्येक महीने की ४ तथा ५ तारीख को डाक से प्रेषित किया जाता है। पत्रिका में छपे महीने का अंक आगामी महीने में ही आपको प्राप्त होगा।

२. 'श्रीतुलसीपीठ सौरभ' मंगाने हेतु बैंक ड्राफ्ट 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' के नाम से ही बनबाएँ तथा प्रेषित लिफाफे के ऊपर हमारा नाम तथा पूरा पता स्पष्ट अक्षरों में लिखें। मनीआर्डर पर हमारा नाम-पता ही लिखें प्रधान सम्पादक अथवा प्रबन्ध सम्पादक कभी न लिखें।

३. पत्रव्यवहार करते समय अथवा ड्राफ्ट-मनीआर्डर भेजते समय अपनी वह ग्राहक संख्या अवश्य लिखें जो पत्रिका के लिफाफे के ऊपर आपके नाम से पहले लिखी है।

४. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' में **'पूज्यपाद जगद्गुरु जी'** से अभिप्राय **धर्मचक्रवर्ती श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज समझा जाए।**

५. 'श्रीतुलसीपीठ सौरभ' में प्रकाशित लेख/कविता/अथवा अन्य सामग्री के लिए लेखक/कवि अथवा प्रेषक महानुभाव ही उत्तरदायी होंगे, सम्पादक मण्डल नहीं।

६. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' प्राप्त न होने पर हमें पत्र लिखें अथवा फोन करें। हम यद्यपि दूसरी बार पुनः भेजेंगे। किन्तु अपने डाकखाने से भलीप्रकार पूछताछ करके ही हमें सूचित करें।

७. **डाक की घोर अव्यवस्था के चलते हमें दोषी न समझें। हमें और आपको इसी परिस्थिति में 'पूज्यपाद जगद्गुरु जी' का कृपा प्रसाद शिरोधार्य करना है।**

८. सुधी पाठक अपने लेख/कविता आदि स्पष्ट अक्षरों में लिखकर भेजें। यथासमय-यथासम्भव हम प्रकाशित करेंगे। अप्रकाशित लेखों को लौटाने की हमारी व्यवस्था नहीं है।

**–सम्पादकमण्डल**

**सदस्यता सहयोग राशि**

| | |
|---|---|
| संरक्षक | ११,०००/– |
| आजीवन | ५,१००/– |
| पन्द्रह वर्षीय | १,०००/– |
| वार्षिक | १००/– |

श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास, चित्रकूट के स्वामित्व में मुद्रक तथा प्रकाशक डॉ० कु० गीतादेवी (प्रबन्धन्यासी) ने श्री राघव प्रिंटर्स, जी-१७ तिरुपति प्लाजा, बेगम पुल रोड, बच्चापार्क, मेरठ, फोन (का०) 4002639, मो०-9319974969, से मुद्रित कराकर कार्यालय २२० के., रामनगर, गाजियाबाद से प्रकाशित किया।

**सम्पादकीय-**

# गंगा प्रदूषित करना महापाप है

अनन्तकोटिब्रह्माण्ड नायक परिपूर्णतम परमपिता परमेश्वर करुणा ही पृथ्वी पर भगवती रिङ्गत्तुङ्गतरङ्गा गंगा बनकर प्रवाहित हो रही है। आसेतु हिमाचल अहार्निश प्रवहमान पतितपावनी कलिमलहारिणी भगवती भागीरथी गंगा अनन्तानन्तप्राणियों के पाप ताप परिताप को धोकर निर्मल बनाने का अद्वितीय कार्य करती हैं। इस गंगा मैया की जीवमात्र पर कितनी अनुकम्पा है कि भगवान् के श्रीचरणों का निरन्तर सान्निध्य प्राप्त करने वाली होने पर भी इसने जीवमात्र के कल्याण के लिए भगवान् के श्रीचरणों को छोड़ा, हिमाद्रि प्रदेश की गहन गुफाओं को तोड़ा तथा जीवात्मा को परमात्मा के प्रेमानन्द से जोड़ा। स्वयं अत्यन्त दुरूह स्थानों में कष्ट का अनुभव करती हुई भी यह गंगा जनमानस का उद्धार करने के लिए भूलोक पर प्रवाहित है। इसका जल जल नहीं अमृत है, ब्रह्मद्रव है, परमौषध है। इसी गंगा के किनारे अनन्तानन्त ऋषि-मुनियों तथा साधकों ने घनघोर तपस्या-नमस्या और परिवस्या करके अक्षयपुण्य प्राप्त किए हैं। विविध प्रकार का साहित्य-सृजन तथा वैदिक संस्कृति का लालन पालन इसी गंगा की गोद में पुष्पित पल्लवित हुआ है।

किन्तु आज खेद के साथ लिखना पड़ता है कि मानवता की चादर ओढे इस समाज ने इस गंगा का भयंकर अनादर किया है। इस गंगा को प्रदूषित करने का गर्हणीय कार्य वे सब लोग कर रहे हैं जो पुण्य प्राप्ति के लिए गंगा में स्नान भी करते हैं और इसकी रक्षा करने का संकल्प भी दोहराते हैं। दूषित पानी फेंकने वाली असंख्य फैक्ट्रियों के मालिक जहाँ ऐसा जघन्य कार्य कर रहे हैं वहीं अर्द्धदग्ध (आधा जला हुआ) देह को गंगा में धकेल देने वाले असंख्य लोग इसी गंगा में अपने सम्बन्धी के गतात्मा की और अपने कल्याण की कामना करते देखे जाते हैं। सन्तोष की बात है कि विगत दिनों सरकार द्वारा इस ओर ध्यान देने के लिए आयोग/समिति गठित किये गये हैं। योग ऋषि स्वामी रामदेव जी महाराज ने भी इस गंगा का स्वच्छ करने के लिए ऐतिहासिक और उद्धरणीय प्रयास किए हैं।

अस्तु! अपनी कर्तव्य बुद्धि से गंगाशुद्धि के लिए सभी को प्रयास करने चाहिए। साथ ही जो गंगाजल को अपनी जीवनचर्या से जोड़ चुके हैं ऐसे आचार्यों-सन्तों तथा साधकों को गंगा जी का सेवन अर्चन तथा स्तवन निरन्तर करना चाहिए-यही सार्वकालिक आचरण भी है और अनिवार्य कार्य भी।

इसी शृङ्खला में पूज्यपाद प्रातः स्मरणीय जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज द्वारा प्रणीत 'श्रीगंगामहिम्न स्तोत्र' का एक श्लोक गंगा-भक्तों के आनन्दवर्धन के लिए हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं-

**निराकारं केचिद्प्रणिदधतआषर्जितधियो**
**नराकारं चान्ये प्रणतिरतिधन्ये स्वमनसि।**
**त्रिभिस्तापैस्तप्ताः पुनरथ परं केचन वयं**
**सदानीराकारं सुरनदि भजामस्तव पदम्।।**

**आचार्य दिवाकर शर्मा**
प्रधान सम्पादक

# वाल्मीकिरामायण सुधा ( ४९ )

(गतांक से आगे)

❑ धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

यह संसार सिनेमा है जो थर्ड क्लास की टिकिट लेते हैं वे बेटे बेटी में चिपककर बैठते हैं परिवार में अधिकाधिक ममता रहती है। यह थर्ड क्लास के टिकिट की फजीहत है। इसके बाद कुछ लोग सैकिण्ड क्लास का टिकिट लेते हैं। थोड़ा सा घर से दूर हो जाते हैं फिर भी घर याद आता रहता है। अवसर मिला तो घर हो आते हैं या पैसा भेज देते हैं। इससे तीसरी श्रेणी का जो टिकिट होता है वह फर्स्ट क्लास का होता है। परिवार और संसार से और दूर हो जाते हैं घर को कभी याद नहीं करते। जो बालकनी में होते हैं वे बच्चे के समान होते हैं वे रहते संसार में हैं पर चिन्तन होता है भगवान का। यह सिनेमा दिखाई पड़ता है जब प्रकाश नहीं होता इसका अर्थ यह है कि जब जीव के मन में अज्ञान आ जाता है तभी वह संसार देखता है यदि ज्ञान हो जाय तो 'सीय राम मय सब जग जानी' तब संसार नहीं दीखता। इण्टरवल में जब प्रकाश हो जाता है तब चित्र न जाने कहाँ चला जाता है अर्थात् दिखाई नहीं पड़ता। इसी प्रकार यदि हृदय में भगवत्तत्व का ज्ञान हो जाय तब संसार न जाने कहाँ चला जाता है। तब न कोई पति, न पुत्र तब तो केवल भगवान और भगवान के भक्त ही दिखाई पड़ते हैं। इसमें जो सबसे रोचक पक्ष है जिसका हनुमान जी से सम्बन्ध है वह यह है कि जितना बड़ा पर्दा होता है उतना ही स्पष्ट चित्र दिखता है। इसीलिए लोग टी०वी० छोड़कर हाल में सिनेमा देखने जाते हैं। इसी प्रकार जिसके मन में जितना बड़ा अज्ञान का पर्दा होगा उसको उतना ही अधिक संसार दिखेगा। एक बात और है इसका जो डाइरैक्टर (संचालक) होता है वह बिल्कुल पीछे होता है दिखता है सबकुछ आगे से पर संचालन होता है पीछे से। तो हनुमान जी कहते है सरकार! यह संसार चलचित्र है इसके निर्देशक आप पीछे बैठे रहते हैं तो जब आप पीछे बैठते हैं तो आज हमारी पीठ पर बैठ जाइये। अथवा, हनुमान जी कहते हैं सरकार! आपको पीठ बहुत प्रिय है। क्यों? क्योंकि वामन अवतार में आपने बलि की पीठ नाप ली थी तो जब आप बालि की पीठ लेकर प्रसन्न हो सकते हैं तो आज बजरंगबली स्वेच्छा से अपनी पीठ दे रहा है। अथवा, सरकार! पीठ उसी को दिखाई जाती है जिससे व्यक्ति हार स्वीकार कर लेता है। यदि मैं आपको पीठ दिखा दूँगा तब मैं संसार में अजेय हो जाऊँगा फिर मुझे कोई जीत नहीं सकेगा। अतः आपसे हार मानकर मैं आपको पीठ दिखा रहा हूँ। अथवा, सुना है मृत्यु का निवास पीछे ही होता है तो मैं जब आपको पीठ पर बिठा लूँगा तो मेरी अपमृत्यु नहीं होगी। अथवा, अधर्म भी पीठ पर होता है और आप 'रामो विग्रहवान् धर्मः' हैं अतः मैं आपको पीठ पर बिठा रहा हूँ अब मेरी पीठ पर अधर्म नहीं रहेगा। अथवा, लोगों की कमर टूटती है तो जब मैं आपको पीठ पर बिठा लूँगा तो मेरी कभी कमर नहीं टूटेगी। अथवा, रामरक्षास्तोत्र में भगवान शिव ने सिद्धमंत्र कहा था– 'सुग्रीवेशः कटिं पातु' तो यह तो पहले से ही निर्देश हो चुका है कि कटि की रक्षा सुग्रीव के ईश्वर करेंगे तो मेरी पीठ पर बैठकर सुग्रीव के ईश्वर बनकर मेरी कटि की रक्षा कीजिए। अथवा, आप

सूर्य कुल के सूर्य हैं और सुग्रीव सूर्यनारायण के पुत्र हैं तो आपको सूर्य की भूमिका निभानी पड़ेगी। सूर्यनारायण सुमेरु पर्वत के शिखर पर उदित होते हैं और योग के अनुसार मेरुदण्ड पीठ के पास होता है तो सुमेरु पर्वत पर चढ़ जाइये। सरकार! सूर्यनारायण उदयाचल पर उदित होते हैं उदयाचल सुमेरु पर्वत का शिखर है सुमेरु पर्वत स्वर्ण का है मैं भी स्वर्णपर्वत के समान हूँ 'ततः कंचनशैलाभः' मैं कांचन पर्वत पीठ उदयाचल हूँ क्योंकि जब आप उदयगिरि पर बैठते हैं तो सूर्यनारायण बनते हैं। एक बार मिथिला में सूर्यनारायण बने थे इस बार भी सूर्यनारायण बन जाइये। श्रीराम ने कहा कि यदि मैं सूर्य बनूँ तो लक्ष्मण? हनुमान जी ने कहा तब ये अरुण बन जायेंगे। अथवा, सरकार! पीठ पर बिठाना आवश्यक है क्योंकि पीठ पीछे से कोई घात करता है तो पता नहीं लगता आप पीठ पर रहेंगे तो मेरा कल्याण होगा। सरकार! गरुड़ भी नारायण को पीठ पर बिठाते हैं मैं भी आपको पीठ पर बिठाऊँगा। सरकार! मेरी पीठ पर अवश्य बैठ जाइये पीठ पर बैठाने का हेतु बड़ा अद्भुत है। कारण बहुत स्पष्ट है क्योंकि जब आप मेरी पीठ पर बैठेंगे तो कभी न कभी आपका हाथ मेरी पीठ पर चला जायगा। मैं चाहता हूँ कि मेरे सिरपर आपका हाथ रहे। मेरा मन है कि बालि और सुग्रीव आपको राजा कहेंगे। आगे चलकर आप सुग्रीव का अभिषेक करेंगे तब राजा का किया हुआ अभिषेक माना जाता है। राजा की प्रामाणिकता क्या है?

**गजेन महता यान्तं रामं छत्रावृताननम्**

अयोध्याकाण्ड में कहा गया कि हम देखना चाहते हैं कि राम जी हाथी पर बैठकर गये हैं और छत्र उनके ऊपर लटका हुआ है। आपको मैं राजा बनकर प्रस्तुत कर रहा हूँ। राजा को हाथी चाहिए और मैं हाथी बनूँगा और छत्र क्या होगा? मेरी पूँछ जो है वही आपका छत्र बनेगा। सरकार! राजा और आचार्य ये दोनों कभी बिना पादुका पीठ के नहीं जाते। आप राजा हैं और लक्ष्मण जी आचार्य हैं, लक्ष्मण जी को भी पादुकापीठ चाहिए और आपको भी। आपकी पादुका तो भरत जी लेकर चले गये। मेरा पीठ एक साथ दोनों का पादुकापीठ बनेगा। आचार्य रूप में लक्ष्मण का और राजा के रूप में आपका। सुग्रीव आपको देखकर प्रसन्न होंगे, आचार्य को देखकर प्रसन्न होंगे। गुरु और गोविन्द को देखकर प्रसन्न होंगे। तो प्रभो! हमारी पीठ पर बैठ जाइये क्योंकि एक नियम है नीतिशास्त्र का–

**पृष्ठेन सेवयेदर्कं जठरेण हुताशनम्।**
**स्वामिनं सर्वभावेन परलोकममायया।।**

सूर्यनारायण की किरणों का सेवन पीठ से करना चाहिए, अग्नि का ताप हृदय से लेना चाहिए, स्वामी की सर्वभाव से सेवा करनी चाहिए और परलोक का सेवन माया रहित भक्ति से करना चाहिए। सरकार! आप सूर्यकुल के सूर्य हैं अतः आपको पीठ पर बिठा लिया–

**भानु पीठ सेइय उर आगी।**
**स्वामिहिं सर्वभाव छल त्यागी।।**
**तजिमाया सेइप पर लोका।**
**मिटहिं सकल भव सम्भव शोका।।**
**चकार सख्यं रामेण प्रतिश्चैवाग्निसाक्षिकम्।**
**ततो वानरराजेम वैरानुकथनं प्रति।।**
**रामाया वेदितं सर्वं प्रणमाद् दुःखितेन च।**
**प्रतिज्ञातं च रुपेण बालिनो हननं प्रति।।**

उपनिषद् में वर्णित 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया' में वर्णन है कि एक वृक्ष पर जिस प्रकार दो पक्षी चिपककर बैठे हैं उनमें से एक फल को खाता है और

दूसरा न खाकर भी प्रसन्न रहता है। ये पूरे लक्षण इस प्रसंग में घट रहे हैं भगवान श्रीराम और सुग्रीव एक ही शाखा पर दोनों बैठे हैं, दोनों मित्र हैं, दोनों आज समान परिस्थिति में हैं। किन्तु अभी सुग्रीव को राज्य मिलेगा। भगवान राम राजभोग को न लेते हुए भी प्रसन्न रहेंगे। पर इस सिद्धान्त को कौन समझाये? हमने अनेक बार कहा है कि कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनका समाधान लोगों को नहीं मिल पाता। यहाँ एक ब्रह्मवाद कैसे सिद्ध होगा? एक बड़े आश्चर्य की बात है कि कभी भी अद्वैत शब्द हमने उपनिषद् में भाववाचक नहीं देखा। यह शब्द जब भी आया है ब्रह्म का विशेषण बनकर आया है 'शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते' 'अद्वैतं तमसः परम्' (रामस्तवसराज) 'रामस्तवराज' पर दो भाष्य लिखे गये। एक तो दो सौ वर्ष पहले श्री हरिदास स्वामी ने लिखा। अयोध्या की परम्परा में इसका अनुवाद अभी हुआ है देखा है। जटिल संस्कृत में बहुत सुन्दर भाष्य है। मैंने भी भाष्य लिखा है प्रयाग कुम्भ में उसका लोकार्पण हुआ था हिन्दी अनुवाद भी हमने किया है। वह भाष्य पूर्ण विशिष्टाद्वैतपरक है। श्रीराम जीव के सखा हैं इस बात का पूर्ण प्रयोग यहीं हुआ। अग्नि को साक्षी दी गई। यहाँ का अग्नि कौन है? व्यावहारिक रूप में तो हनुमान जी ने अग्नि जलाया, परमार्थ में हनुमान जी आचार्य हैं हमारे श्री रामानन्द सम्प्रदाय के। प्रथम आचार्या सीता जी हैं हनुमान जी महाराज दूसरे आचार्य हैं। राम नाम ही अग्नि है– 'जासु नाम पावक अघ तूला' उनको साक्षी देकर सुग्रीव से भगवान राम की मित्रता हनुमान जी ने कराई। सुग्रीव ने कहा ये तुम्हारे मित्र हैं। तुम मित्र के बेटे हो ये तुम्हारे मित्र हैं। भगवान राम की सुग्रीव से मित्रता हो गई। दोनों एक दूसरे से सुख–दुःख कह रहे हैं। सुग्रीव ने कहा–सरकार! मैंने देखा एक महिला को राक्षस लिये जा रहा था। उन्होंने अपने उत्तरीय में कुछ आभूषण बाँधकर हमारे यहाँ गिरा दिये थे। सीता जी प्रथम आचार्या हैं वे जानती हैं कि वानरों को भगवान राम की शरणागति लेनी है और शरणागति तब मिलेगी जब इनके पास कपट नहीं होगा। इनका कपट तब जायगा जब इनको सीता जी का प्रेम पट प्राप्त होगा। हम लोग दीक्षा देते समय प्रेमपट उढ़ा देते हैं तब दीक्षा देते हैं। श्रीराम ने देखा कि सीता जी का पीला उत्तरीय था उसमें सीता जी ने तीन आभूषण बाँधे थे नूपुर, केयूर और कुण्डल। यह लाकर सुग्रीव उपस्थित कर रहे हैं। भगवान राम ने कहा लक्ष्मण! इन्हें तनिक पहचानो। वाल्मीकि रामायण का यह श्लोक बहुत प्रसिद्ध हुआ। लक्ष्मण जी कह रहे हैं–

**नैव जानामि केयूरे नैव जानामि कुण्डले।**
**नूपुरे त्वभि जानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्।।**

यह बहुत मर्मस्पर्शी श्लोक है। कुमार लक्ष्मण कहते हैं प्रभो! मैं भाभी माँ के कुण्डलों को नहीं जानता मैंने उन्हें कभी देखा ही नहीं है। उनके केयूरों (बाजूबन्द) को भी नहीं जानता। किन्तु नुपूर को जानता हूँ पहचानता हूँ क्योंकि निरन्तर उनके चरणों का वन्दन करता हूँ। अतः स्पर्श से मैं पहचान लूँगा कि ये ही भाभी माँ के नुपूर हैं। भगवान श्रीराम सुग्रीव जी से आभूषणों को ले रहे हैं। गोस्वामी जी महाराज लिखते हैं–

**माँगा राम तुरत सोई दीन्हा।**
**पट उर लाइ सोच अति कीन्हा।।**

भगवान पट को हृदय से लगाकर शोक सागर में डूब गये। सुग्रीव ने कहा आप चिन्ता क्यों करते है? मैं सब प्रकार से आपकी सेवा करूँगा। भगवान ने कहा–सुग्रीव! तुम वन में क्यों रह रहे हो? तब सुग्रीव ने–

**रामायावेदितं प्रणयाद् दु:खितेन च।**

भगवान राम को दु:ख के साथ निवदेन किया। सरकार! मय का पुत्र मायावी आक्रमण करने हमारे यहाँ आया था। बालि को उसने ललकारा था, बालि ने उसका पीछा किया। वह भागा और गुफा में जाकर छिप गया। तब बालि ने मुझे कहा कि तुम मेरी प्रतीक्षा करना और यदि मैं न आऊँ तो जान लेना कि मैं मारा गया। गोस्वामी जी महाराज कहते हैं–

**मास दिवस तहँ रहेउँ खरारी।**
**निसरी रुधिर धार तहँ भारी।।**

मास माने बारह अर्थात् बारह मास वाले दिनों तक मैं रहा था। जब भयंकर खून की धारा निकली तब मैंने सोचा कि बालि को राक्षस ने मार डाला तब द्वार पर शिला रखकर मैं भाग आया। मुझे राजा बना दिया गया मैंने भाई का श्राद्ध आदि किया और आनन्द से रहने लगा। इधर बालि ने राक्षस को मारा और किसी प्रकार शिला को हटाकर आया तो देखा कि छोटा भाई सिंहासन पर विराजमान है। उसे बहुत क्रोध आया, सुग्रीव ने क्षमा माँगी परन्तु बालि ने क्षमा नहीं किया। सुग्रीव को पीटा उसकी पत्नी को ले लिया और जहाँ–जहाँ सुग्रीव जाते वहाँ–वहाँ जाता। जब सुग्रीव को कहीं शरण नहीं मिली तब हनुमान जी ने सुग्रीव को बताया कि आपको स्मरण नहीं होगा कि जब इसी मायावी के बेटे दुन्दुभि ने भैंसे का रूप धारण करके बालि पर आक्रमण किया था तब बालि ने घनघोर युद्ध करके उसे मारा और उसके शरीर को उठाकर ऋष्यमूक पर्वत की ओर फैंक दिया। इसके रक्त से मतंग ऋषि का आश्रम दूषित हुआ था तब मतंग ऋषि ने शाप दिया कि अब ऋष्यमूक पर्वत पर बालि आयगा तो इसकी मृत्यु हो जायगी। सुग्रीव से हनुमान जी ने कहा कि अब आप यहीं रहिये यहाँ बालि कदापि नहीं आयेगा। यह शाप वानरों ने बालि को बता दिया था। तब भगवान राम ने प्रतिज्ञा की और सुग्रीव से कहा कि आप चिन्ता मत कीजिए वैसे तो मैं बालि का वध न करता किन्तु आपकी पत्नी का इसने अपहरण किया है यह जघन्यतम पाप उसने किया है अत: मैं बालि का वध अवश्य करूँगा। इस प्रसंग को आप बहुत ध्यान से सुनिये इस विषय पर बहुत चर्चायें है किष्किन्धाकाण्ड का यह प्रसंग श्रोतव्य है। भगवान राम ने बालि वध की प्रतिज्ञा की परन्तु सुग्रीव ने कहा मुझे विश्वास नहीं है कि आप बालि को मार सकेंगे। लक्ष्मण जी ने कहा बताइये आपको किस प्रकार विश्वास होगा। तब सुग्रीव ने कहा सरकार! बालि ने दुन्दुभि राक्षस का अस्थि समूह (हड्डियाँ) एक योजन दूर फैंक दिया था यदि भगवान राम अपने एक चरण से इस अस्थिसमूह को दूर फैंक सकें तो मुझे विश्वास हो जायगा कि ये बालि को मार सकेंगे। तब–

**दुन्दुभि अस्थिताल देखराए।**
**बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाए।**
**देखि अमित बल बाढ़ी प्रीति।**
**बालि बधव इन भई परतीती।**

महर्षि वाल्मीकि जी ने वर्णन किया है–

**एवमुक्त्वा तु सुग्रीवं सान्त्वयन् लक्ष्मणाग्रजः।**
**राघवो दुन्दुभेः कायं पादांगुष्ठेन लीलया।।**
**तोलयित्वा महाबाहुश्चिक्षेप दशयोजनम्।**
**आसुरस्य तनुं शुष्कां पादांगुष्ठेन वीर्यवान्।।**

भगवान् मुस्कुराने लगे और सोचने लगे कि भक्त की क्या विवशता होती है।

क्रमशः........

# श्रीमद्भगवद्गीता ( ८० )

( गतांक से आगे )

**( विशिष्टाद्वैतपरक श्रीराघवकृपाभाष्य )**

**भाष्यकार–धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज**

**संगति-** चूँकि यह योग अनादि है इसलिए मैंने इसकी सम्प्रदाय परम्परा को नवीन कर दिया। अतः तुम इसकी प्रमाणिकता में संदेह न करके श्रद्धापूर्वक इसका अनुष्ठान करना। यही बात भगवान् आगे कहते हैं।

**स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।**
**भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्।।४।३**

**रा० कृ० भा० सामान्यार्थ-** वही यह पुरातन योग आज मुझ भगवान कृष्ण द्वारा विभाग पूर्वक कहा गया क्योंकि तुम मेरे भक्त और सखा भी हो यह रहस्य अत्यन्त उत्तम है।

**व्याख्या-** 'स एवायं' का तात्पर्य है जो वैवस्वत मन्वन्तर के प्रारम्भ में सूर्य नारायण से कहा था वही तुमसे भी कहा। क्योंकि तुम मेरे भक्त, सखा और सम्बन्धी शिष्य हो। और यह रहस्य अत्यन्त उत्तम है जो अभक्त और अशिष्य से नहीं कहा जा सकता।।।श्री।।

**संगति-** श्रीअर्जुन यद्यपि श्रीकृष्ण को परब्रह्म परमात्मा के रूप में जानते हैं, नहीं तो वे गीता १/२४ में, अच्युत गीता १/३१ में, केशव गीता १/३२ में, गोविन्द गीता १/३५ में, मधुसूदन गीता १/३६ में, जनार्दन गीता १/३७ में, माधव आदि भगवत्परक सम्बोधनों में भगवान् को सम्बोधित कैसे करते? फिर भी वे सम्पूर्ण जीवात्माओं का प्रतिनिधित्व करते हुए भगवान् के श्रीमुख से ही सामान्य लोगों तक परमेश्वर के अवतार मीमांसा की प्रामाणिक वैदिक चर्चा प्रेषित करने की दृष्टि से ही प्राकृत अज्ञानी मनुष्य जैसा प्रश्न कर बैठे–

**अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः।**
**कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति।।४।४**

**रा० कृ० भा० सामान्यार्थ-** श्री अर्जुन जिज्ञासा करते हैं– हे भगवन्, आपका जन्म तो अपर अर्थात् आधुनिक है। अर्थात् आपने मेरे समान काल में जन्म लिया और सूर्यनारायण का जन्म पर अर्थात् सूर्यनारायण का जन्म कश्यप और अदिति से कार्तिक शुक्ल षष्ठी को हुआ था। तो मैं कैसे जानूँ अर्थात् कैसे समझूँ कि आपने सृष्टि के आरम्भ में इस योग को सूर्यनारायण से कहा था।

**व्याख्या-** यहाँ अर्जुन की जिज्ञासा यह है कि आप तो मेरे समवयस्क हैं अर्थात् गीतोपदेश काल में अपना नब्बेवाँ वर्ष पूर्ण कर रहे हैं और सूर्यनारायण सृष्टि के प्रारम्भ में ही कश्यप अदिति से अवतार ले चुके हैं। उस समय आपका यह शरीर रहा ही नहीं होगा तो आपने इसी शरीर से सूर्यनारायण को योग का उपदेश कैसे दिया? यदि कहें किसी दूसरे शरीर को धारण करके तो उस समय की घटना का आपको स्मरण कैसे है, यदि कहें कि 'जातस्मरत्वात्' अर्थात् मुझे पूर्व जन्म की सब बातें स्मरण हैं तो प्रभो यह विशेषता तो बहुत लोगों में देखी जाती है। फिर उन जातस्मर सामान्य लोगों में और आपमें अन्तर ही क्या रहा? अर्जुन के इस प्रश्न पर भगवान् श्री कृष्ण ६ श्लोकों में वैदिक और प्रामाणिक मीमांसा प्रस्तुत करते हैं। ।।श्री।।

**संगति-** सर्वप्रथम भगवान् अपने भक्त अर्जुन की अल्पज्ञता और अपनी सर्वज्ञता सिद्ध कर रहे हैं। अर्थात् सामान्य जातस्मर अधिक से अधिक दो जन्मों की बात जान सकते हैं। कुछ लोग अपने एक जन्म की अधिक से अधिक १००-५० घटनाएं जानते होंगे परन्तु मैं अपने पूर्व के सभी जन्मों की सभी घटनाएँ जानता हूँ। तुम एक भी घटना नहीं जानते। केवल कर्ण के विरोध के सम्बन्ध में उसके साथ घटी हुई तुम्हारे पूर्व जन्म की एक ही घटना का तुम्हें कुछ स्मरण है।

**बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।**
**तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप।।४।५।।**

**रा० कृ० भा० सामान्यार्थ-** हे अर्जुन! मेरे और तुम्हारे बहुत से जन्म व्यतीत हो चुके हैं। मैं अपने और तुम्हारे उन सभी जन्मों को जानता हूँ। हे परन्तप! तुम नहीं जानते।

**व्याख्या-** अर्जुन शब्द यहाँ शुभ्रान्तःकरण के लिए कहा गया है। तुम्हारे और मेरे बहुत से जन्म हो चुके परन्तु मेरे जन्म में भक्तों के प्रेम की विवशता होती है और तुम्हारे जन्म में धर्माधर्म की। मेरा जन्म लीला से ही होता है। तुम्हारे समान मैं भी देव, नर, तिर्यक्, शरीर धारण करता हूँ। अन्तर यह है कि मेरे शरीर नित्य होते हैं और तुम्हारे अनित्य, तुम अणु और अल्पज्ञ हो और मैं व्यापक तथा सर्वज्ञ। मुण्डकोपनिषद् में भी कहते हैं 'यः सर्वज्ञः सर्ववित्' 'यस्य ज्ञानमयं तपः', इसलिए मैं तुम्हारे और अपने सभी जन्मों को जानता हूँ। ।।श्री।।

**संगति-** अब भगवान् के अवतार के सम्बन्ध में अर्जुन बहुत सी जिज्ञासाएँ करते हैं। हे प्रभो! आप धर्म और अधर्म इन दोनों से परे हैं। फिर आप में शरीर धर्म कैसे सिद्ध होगा? आप स्वयं हिरण्यगर्भ हैं फिर भी कौसल्या, श्री देवकी आदि माताओं के गर्भ में आपका निवास कैसा? आप अपरिच्छिन्न हैं अर्थात् आप किसी सीमा में नहीं बन्धते। अर्थात् एकदेशवर्ती कैसे? आप ब्रह्म होकर बालक कैसे? आप निरंजन होकर अवतार काल से अंजन कैसे धारण करते हैं? इस प्रकार अर्जुन के अनेक प्रश्नों का एक साथ समाधान करते हुए भगवान जनार्दन बोले-

**अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।**
**प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया।**

**रा० कृ० भा० सामान्यार्थ-** हे अर्जुन! मैं आज अर्थात् जन्म रहित अव्ययात्मा अर्थात् विनाशरहित शरीर वाला और सम्पूर्ण प्राणियों का ईश्वर होता हुआ भी अपने स्वरूप और स्वभाव में स्थित होकर अर्थात् किसी भी परिस्थिति में भगवत्ता को न छोड़ते हुए अपनी योगमाया के साथ उत्पन्न होता हूँ।

क्रमशः........

## सुधी पाठक क्षमा करें

श्रीतुलसीपीठ सौरभ के अप्रैल २००९ के अङ्क में पृष्ठ ९ पर ''ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते०'' और ''व्यामिश्रेणेव वाक्येन०'' श्रीगीता, अध्याय तीन के प्रथम तथ द्वितीय श्लोक छप गए हैं। इनके स्थान पर श्रीगीता, अध्याय चतुर्थ के प्रथम तथा द्वितीय ये श्लोक क्रमशः समझे जाएँ-

**इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।**
**विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्।।**
**एवं परम्परा प्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।**
**स कालेनेह महता योगोनष्टः परंतप।।**

सुधी पाठक इस त्रुटि के लिए क्षमा करें।

**-सम्पादक मण्डल**

# श्रीनैमिषारण्यतीर्थ का महत्व

❑ श्री आशीष शास्त्री

**सतयुगे नैमिषारण्ये त्रेतायां च पुष्करे।**
**द्वापरे कुरुक्षेत्रे कलौ गंगा प्रवर्तते।।**

सतयुग में नैमिषारण्य, त्रेता में पुष्कर, द्वापर में कुरुक्षेत्र, और कलियुग में गंगाजी का विशेष महत्व है।

पुरातन काल में नैमिषारण्य क्षेत्र में गयासुर नामक एक बहुत बलशाली विशाल दैत्य हुआ।

एक बार उसने घोर तपस्या करके अनेक मंत्रों का पाठ करके भगवान को स्वयं अपने सामने उपस्थित होने को विवश कर दिया। प्रभु ने उसे वरदान माँगने को कहा, वरदान माँगने के स्थान पर उसने भगवान से कहा कि मैं आपसे क्या माँगूँ यदि आप ही कुछ माँगना चाहते है तो माँग लीजिए भगवान को यह पता था कि गयासुर बिना अपनी इच्छा के मर नहीं सकता उन्हें अवसर मिल गया और उन्होंने गयासुर से कहा हम चाहते हैं कि आपकी मृत्यु हमारे हाथों हो। वह इतना बड़ा दानी, उसने तथास्तु कह दिया। उसी समय भगवान विष्णु ने अपने सुदर्शन चक्र से उसके टुकड़े कर दिये उसका शरीर तीन टुकड़ों में बट गया। उसके चरणों का हिस्सा बिहार क्षेत्र में 'गया' में जाकर गिरा वह गयाधाम कहलाया। आप वहाँ जाकर पितरों को पिंड दान करते हैं वहाँ पितरों के चरणों की पूजा होती है। वह क्षेत्र 'चरणगया' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। ऊपर का हिस्सा अर्थात् मस्तक बद्रीनाथ में गिरा उस जगह का नाम 'कपालगया' कहा जाता है। वहाँ अगर आप पिंडदान करते है तो पितरों के शीश की पूजा होती है।

बीच का हिस्सा नैमिषारण्य में ही रह गया यहाँ पर यदि आप पिंडदान करते है तो पितरों के पेट की पूजा होती है यानि उनके पेट भरते हैं।

इस तरह उसके शरीर के तीन टुकड़े तीन जगह गिरे फिर भी वह नहीं मरा तब ऋषियों ने ब्रह्मा जी से पूछा अब क्या करें? ब्रह्मा जी ने कहा कि इसकी छाती पर यज्ञशाला बनाकर यज्ञ करें। तब ऋषियों ने एक हजार वर्ष तक उस पर यज्ञ किया फिर भी उसकी मृत्यु नहीं हुई तब भगवान विष्णु ने गयासुर से पूछा कि हे गयासुर! आपने हमें वचन दिया था कि आपकी मृत्यु मेरे हाथों होगी फिर ऐसा क्यों नहीं हो रहा है? तब गयासुर ने कहा भगवन्! मुझे अपने कई जन्मों का स्मरण है, मैं बहुत जन्म ले चुका हूँ मुझे पता है कि मरने के बाद आत्मा की क्या गति होती है? जब प्राणी संसार से जाता है तो पहले वह पितरलोक में पितर बनकर जाता है। पितर लोक भी पृथ्वी मंडल जैसा है। पृथ्वी पर एक सूर्य के तपने से इतनी प्रचन्ड गर्मी होती है कि यहाँ सबको शीतलता की आवश्यकता होती है। सब शीतल जल और ठंडी हवा चाहते हैं।

गयासुर ने कहा भगवन्! पृथ्वी पर तो एक सूर्य तपता है तब यह हाल है पितरलोक में तो ''दस हजार एक सौ'' सूर्य तपते हैं। वहाँ की भीषण उष्णता से त्रस्त जब आत्मा छटपटाता हुआ वहाँ के लोगों से शीतलता प्रदान करने को कहता है तब आपके

पार्षद कहते हैं। पृथ्वी मंडल पर कभी आपने वृक्ष लगाये हैं या दान किये हैं तो आपको उस वृक्ष की छाया आपको शीतलता प्रदान करेगी वरना ये अग्नि की वर्षा करेंगे जिससे आपका जीवन अस्त व्यस्त होकर पीड़ित हो जाएगा। इसलिए तीर्थ में वृक्ष अवश्य लगाने चाहिए। गयासुर ने कहा जब हमें भूख लगती है हम स्वादिष्ठ भोजन की मांग करते हैं तब आपके पार्षद कहते हैं अपना पेट भरने के अलावा कभी किसी का पेट भरा है। कभी किसी भूखे को अन्नदान किया है। आवश्यक नहीं है कि भण्डारा चलवाए सामर्थ्य है तो ठीक है सामर्थ्य नहीं है तो श्रमदान करे अर्थात् किसी भण्डारे में परोसने की सेवा भी कर सकते हैं यह भी एक महापुण्य का काम है। पितरलोक के पार्षद कहते हैं यदि आपने ऐसा किया है तो आपको स्वादिष्ठ भोजन प्रदान करेंगे वरना यों ही भूखे रहना पड़ेगा इस तरह प्राणी अनेक कष्ट भोगता रहता है।

गयासुर ने कहा भगवन् मुझे इन सब का ज्ञान है हे प्रभो! मैं यह भी जानता हूँ कि पितरों के निमित्त जो भी दान धर्म किया जाता है उसका बीस प्रतिशत ही उस प्राणी को मिलता है बाकी आपके पार्षद ले लेते हैं। तो भगवन्, मैं यह चाहता हूँ कि इस नैमिषारण्य की धरती पर अगर कोई भी अपने पितरों के लिए किसी भी प्रकार का दान करें, भागवत पाठ करायें, कथा श्रवण करें तो वह शत प्रतिशत पितरों को ही मिल जाय यह मैं आपसे वरदान के रूप में चाहता हूँ।

भगवन् ने कहा मैं आपसे प्रसन्न हूँ आपको वचन देता हूँ अगर इस नैमिषारण्य तीर्थ में किसी ने किसी प्रकार का कोई भी दान दिया है तो वह पूरा का पूरा उसके पितरों को प्राप्त होगा। इस प्रकार गयासुर का उद्धार हो गया। नैमिषारण्य तीर्थ की पावन भूमि पितरों के तृप्ति के लिए पूजनीय व फलदायिनी है।

❑❑❑

## पूज्यपाद जगद्गुरु जी के आगामी कार्यक्रम

❑ प्रस्तुति-पूज्या बुआ जी

| दिनाङ्क | विषय | आयोजक तथा स्थान |
|---|---|---|
| १८ जून २००९ से<br>२६ जून २००९ तक | नवदिवसीय<br>श्रीमद्भागवतकथा | श्रीलक्ष्मीनारायण मन्दिर,<br>सिंगापुर। |
| ०७ जुलाई २००९ | श्रीगुरु पूर्णिमा | श्रीचित्रकूट में ही मनायी जाएगी |
| १९ सितम्बर २००९ से<br>२७ सितम्बर २००९ तक | श्रीमद्भागवत कथा | नैमिषारण्य जिला–सीतापुर<br>(इस कथा का आमन्त्रण अगले पृष्ठ पर देखें) |

## विश्वविलक्षण विभूति धर्मचक्रवर्ती श्रीवैष्णवचक्रचूड़ामणि, महामहोपाध्याय जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज के श्रीमुख से प्रथम बार

# श्रीनैमिषारण्य तीर्थ में 1008 श्रीमद्भागवत पारायण महायज्ञ

भगवत्प्रेमी महानुभाव,

ज्ञातव्य है कि आगामी 19 सितम्बर से 27 सितम्बर 2009 तक अठासी हजार ऋषियों की तपस्थली नैमिषारण्य तीर्थ में पूज्यपाद जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज के श्रीमुख से श्रीमद्भागवत कथा का विशाल एवं ऐतिहासिक आयोजन किया जा रहा है।

यह महायज्ञ विश्वकल्याणार्थ एवं यजमानों के पितरों को मोक्ष प्रदान कराने हेतु पितरों की मोक्षदायिनी नगरी नैमिषारण्य में हो रहा है जिसमें आप सभी सम्मिलित होकर तथा उसके यजमान बनकर पुण्य लाभ प्राप्त करें इस महायज्ञ में 1008 यजमानों के भाग लेने की सुविधा है। जो भी महानुभाव पितरों के नाम से, सुख-शान्ति-समृद्धि व परिवार कल्याण हेतु भागवत पाठ कराना चाहें वे शीघ्र ही अपना नाम अंकित दें। यजमानों की आवास-भोजन की व्यवस्था आयोजन समिति ही करेगी।

एक यजमान के लिए देय राशि 5,100·00 मात्र है। तथा जो यजमान महानुभाव अपने मातृ पक्ष-पितृपक्ष व श्वसुर पक्ष तीनों के नाम गोत्र से पाठ कराना चाहें वे 15,300·00 रुपये देकर अपना नाम लिखा सकते हैं।

निवेदक

**पं० अमरनाथ शास्त्री**

**आयोजक**

**हरे राम हरे कृष्ण सत्संग सेवासमिति**

**जगद्गुरु रामभद्राचार्य धाम**

**( बस स्टैण्ड के पास ) नैमिषारण्य**

**जि० सीतापुर ( उ०प्र० )**

**फोन नं०- 05865-251272**

**मो०- 09918331369, 09936377207**

ड्राफ्ट बनवाने का पता-

**हरे राम हरे कृष्ण सत्संग सेवा समिति**

**( मिश्रिख कम नीमसार 0210112 ) इलाहाबाद बैंक के नाम बनवाकर समिति के नाम नैमिषारण्य के नाम भेज सकते हैं।** ❑❑❑

# वसिष्ठायनबिहारी श्रीराधागोविन्द

❑ पूज्यपाद जगद्गुरु जी

**भावे हि विद्यते देवो न काष्ठे न च मृण्मये।**

अर्थात् देवता भवन में विद्यमान होते हैं लकड़ी या मिट्टी में नहीं। यदि साधक का शुद्ध भाव हो तो भगवान् कहीं भी प्रकट हो सकते हैं।

कुछ इसी प्रकार का उदाहरण है हमारे वसिष्ठायनम् में विराजमान श्रीराधागोविन्द जी का। देखने में दोनों ही सरकार अष्टधातुमय मूर्ति हैं परन्तु हैं चिन्मय। इन्हें मेरी बड़ी बहिन और आप सबकी बुआ जी डा० कुमारी गीता देवी मिश्रा को सेवा के लिए सौंपा था एक अभिज्ञात किन्तु लगभग दसों शताब्दियों के इतिहास के साक्षी चिरजीवी सिद्धसन्त परमवीतराग १००८ श्रीपरमहंस श्रीरणछोड़दास जी महाराज ने। जब तुम्हारी बुआ जी १८ मई १८६५ को अपनी १९ वर्षीय अल्पवय में विरक्तदीक्षा लेने रणछोड़दास जी महाराज के पास उपस्थित हुई थीं। सेवा सौंपते हुए सद्‌गुरुदेव ने स्पष्ट निर्देश के स्वरों में कहा था– गीता सुशिष्या कर्तव्या किमन्यैशिष्यसंग्रहैः। पुनः आदेश की मुद्रा में कहा– वत्से गीता! श्रीसीताराम जी से अभिन्न मानकर ही श्रीराधागोविन्द जी की सदैव मनसा वाचा कर्मण सेवा करती रहना। ये तुम्हारी सभी इच्छाओं की पूर्ति करेंगे। सुयोग्य शिष्या ने गुरुदेव का आदेश सिरमाथे स्वीकार कर श्रीराधागोविन्द को प्राप्त किया। कुछ दिनों के लिए श्रीपुष्कर में अनन्तर कुछ वर्षों के लिए राजकोट में विराजने के पश्चात् श्रीराधागोविन्द का मन गंगाद्वार आनन्दतट श्री हरिद्वार में स्थायी रूप से निवास करने का हो गया। प्रभु का संकल्प कौन टाल सकता था। १९८७ के दिसम्बर महीने में मेरी अष्टोत्तर सहस्रामायण कथा हरिद्वार जयराम आश्रम में हुई। जिसमें एक हजार रामायण के पाठों के साथ मैं प्रस्तुत हुआ नवाह श्रीरामकथा के लिए। इस कथा को श्रवण करने के लिए मेरे साथ मुकुन्द (तुम्हारी बुआ जी) भी श्री हरिद्वार पधारी थीं। उसी समय हमने हरिद्वार में श्री राधागोविन्द जी के लिए स्थायी निवास बनाने का निर्णय लिया। अब तक किसी प्रकार संग्रह करके हम ७२ हजार रुपये इकट्‌ठा कर पाये थे। उसी से वसिष्ठायनम् का भूमिक्रय किया। उन दिनों किसी के नक्शे नहीं पास हो रहे थे और अधिकारी स्पष्ट कहते थे कि चाँदी के पहिये के बिना फाइल आगे नहीं बढ़ती। परन्तु राधागोविन्द के जादू ने बिना घूस दिये ही भवन का नक्शा पास करा दिया। उस समय हरिद्वार में एकमात्र सत्यमित्रा–नन्द गिरि जी से मेरा परिचय हो सका था। उन्हीं के संकेत से शोभाराम नामक भवन निर्माता से अनुबन्ध करके हमने वसिष्ठायनम् का निर्माण प्रारम्भ किया। राधागोविन्द जी का यह कौतुक ही कहा जाएगा कि जो मैं अपने ११ वर्ष के कथावाचन कार्य खण्ड में मात्र ७२ हजार रुपये जुटा पाया था उसी मुझ व्युत्पन्न किन्तु निष्किञ्चक कथा वाचक को मात्र ८ महीनों में लगभग तीन लाख रुपये प्राप्त हो गए जिनसे मैं वसिष्ठायनम् का निर्माण करा सका और १९८८ की कार्तिक शुक्ला पञ्चमी के दिन तुम्हारी बुआ जी की इच्छा पूर्ण हुई और भगवान राधागोविन्द बन गए वसिष्ठायन बिहारी। उनकी सेवा पूजा के लिए साधु की अपेक्षा थी प्रथम स्वयं तुम्हारी बुआ जी तदनन्तर मेरा विरक्त शिष्य वैष्णवदास पश्चात् रघुनाथदास, पुनः रघुवरदास, वर्तमान में रघुनन्दनदास सेवा पूजा कर रहा है। राधागोविन्द के चमत्कार तुम्हारी बुआ जी ने तो बहुत देखे। उन्हीं की कृपा से राजकोट में गीतामन्दिर, प्राथमिकशाला, बालमन्दिर, जथनाथ हॉस्पिटल आदि प्रकल्पों का निर्माण हुआ जो उस समय की परिस्थिति में सामान्य व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं था इसी प्रकार हरिद्वार में वसिष्ठायनम् का निर्माण। परन्तु मैंने भी दो–तीन बार राधागोविन्द के विचित्र चमत्कारों के अनुभव किए। एक बार १९९९ के नवम्बर में तुलसीपीठ चित्रकूट में चोरी हुई उसमें बहुत सी बहुमूल्य वस्तुएँ रजतपात्र और भगवान् के आभूषण भी चोरों के हाथ लगे। मेरी अग्रजा को यह अशंका हुई कि चोर श्रीराघव सरकार की शृंगार पेटी भी चुरा ले गए

जिसमें लगभग २ लाख के श्रीराघव जी के शृंगार थे। तुलसीपीठ के शृंगारी मिथिलाभाव के रसिक सन्त थे उन्होंने यहाँ तक कह डाला कि राघव जी अपने शृंगार की रक्षा नहीं कर पाए जबकि किशोरी जी ने अपने शृंगार की रक्षा कर ली। हमारे भी मन में कुढ़न होती थी और तुम्हारी बुआ जी भी बार-बार दुखी होती थीं कि राघव जी के शृंगारों की दुष्ट चोर दुर्दशा करते होंगे परन्तु था कुछ इसके विपरीत। तुलसीपीठ की चोरी की घटना से कुछ दिन पूर्ण हमारा हरिद्वार जाना हुआ उसी समय आप सबकी बुआ जी ने राघव जी की शृंगार पेटी राधागोविन्द जी के मन्दिर के निचले भाग में रखकर हल्के कपड़े से ढांक दिया था। ईश्वरीय इच्छा से इनको यह तथ्य भूल गया। इस प्रकार २००२ तक हम यही समझते रहे कि राघव जी की शृंगार पेटी चुरा ली गई। इन तीन वर्षों में राधागोविन्द जी की सेवा का भार रघुबरदास के हाथ था जबकि उस व्यक्ति का हाथ बहुत अच्छा नहीं था। वह तो क्षण भर में बीघे का बिस्से करने वाला जन्तु था। परन्तु सामान्य वस्तु से ढकी बहुमूल्य शृंगारों से भरी इस पेटिका पर उसकी दृष्टि कैसे नहीं गई? जबकि वह निरन्तर मन्दिर परिसर को स्वच्छ करता तथा वस्तुएँ उलट पलट कर स्वच्छ करता था। निश्चित राधागोविन्द जी ने तीन वर्ष पर्यन्त क्षण-क्षण रघुबरदास की आँखों में धूल झोंकते हुए अपनी ही अभिन्न अवतारी श्रीराघवसरकार बालक-राम जी की शृंगारपेटी की रक्षा की। मैं श्री राधा को भाभी माँ और श्री गोविन्द को मित्र मानता हूँ और उन्हीं के मन्दिर वाले कक्ष में मैं अकेले ही शयन करता हूँ। एकदिन हरिद्वार में ही मैं स्वप्न में था या जागृत में कह सकता हूँ स्वप्नाभास में देखा कि रामलीला चल रही है। वातावरण रसमय है निशिथिनी के आनन को अमृतांशुमाली चन्द्रमा किरणकुंकुमों से अभिरञ्जित कर रहे हैं मेरे ही समक्ष अलौकिक शोभामयी षोडश शृंगार सम्पन्न नीलपरिधान धारिणी वृन्दावन बिहारिणी राधारानी कन्हैया जी को गलबहियाँ देकर खड़ी हैं मेरी ओर दृष्टि करके कहा-भद्र! तुम देवर हो ना। एक श्लोक सुनाओ- मैंने विलम्ब किये बिना ही स्वप्नाभास में यह श्लोक पढ़ा-

**नृत्यन्मत्तमयूरिका पतिपतद् बर्राहमौलिलसच्छ्री-**
**वत्सं जनवत्सलम् नव घनश्यामं विरामं द्विषाम्।**
**कन्दर्पामित सुन्दरं नटवरं वृन्दावनीभूषणं,**
**श्रीराधा मुखकञ्जमञ्जुमधुपं तापिच्छनीलं श्रये।।**

अर्थात् नाचते हुए मयूरी बल्लभ मोर के गिरे हुए पंख से निर्मित मुकुट धारण किए हुए श्रीवत्स लाञ्छन भक्तवत्सल नीलमेघ के समान श्यामल, शत्रुओं को नष्ट करने वाले को टिकाम सुन्दर नटों में श्रेष्ठ, वृन्दावन के अलंकार तमालनील श्रीराधा के मुखकमल के भ्रमर श्रीकृष्ण को मैं आश्रय करता हूँ। मुझे पूर्ण स्मरण है कि श्लोक सुनते ही राधा जी ने मातृभाव से पूर्ण होकर मेरे वामकपोल को चूम लिया। आज भी वह दृश्य मेरे रोमांच का कारण बन जाता है। तुरन्त फिर मैं ऊँचे स्वर में चिल्लाया-मुकुन्द, मुकुन्द! स्वर सुनकर तुम्हारी बुआ जी अपने कक्ष से आकर और चन्द्रदत्त सुवेदी बाहर से किवाड़ खटखटाने लगे। सभ्रमा वेग में विह्वल मैं पाँच मिनिट तक बन्द दोनों दरवाजों को नहीं खोल पा रहा था। किसी प्रकार में प्रकृतिस्थ हुआ दोनों दरवाजे खोले। पर बहुत काँप रहा था। राधा जी के समक्ष गाया हुआ यह श्लोक मैंने सभी को लिखवा दिया। यही राधा गोविन्द कभी-कभी मेरे विनोद के केन्द्र बनते रहे हैं और मैं भी कभी-कभी अपनी भाभी माँ और मित्र से रसिक किन्तु मर्यादित विनोद कर रहा हूँ। मेरे सख्यसम्बन्ध की रक्षा करते हुए प्रियाप्रियतम ने अपनी विवाह महोत्सव रचाने की ठान ली है।

आगामी ५ जून २००९ को सगाई वाग्दान और ७ जून तिथि को प्रियाप्रियतम का विवाहउत्सव होगा उसमें मुझे बराती बनने का सौभाग्य मिलेगा। शेष वर्णन अगले अंक में। यहाँ इतना ही कहकर विराम ले रहा हूँ कि-

**जय राधागोविन्द जू गिरिधर प्राणाधार।**
**दुलहिन कीरति लाड़ली दूलह नन्दकुमार।।**
**प्रियाप्रीतम की जय।** ❑❑❑

# जय जगन्नाथ

## रूठे हुए भक्त को भगवान् का मनाना

❑ धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

**अब तक आता है रहा स्वामी के ढिग दास।**
**किन्तु आज स्वामी चले निज सेवक के पास।।**

श्रीजगन्नाथ जी के प्रसाद का सेवन किये हुए दो वर्ष हो रहे थे, मेरे मन पर विकलता का कहर बरस रहा था। मैं भी व्यस्तताओं के कारण जगन्नाथ जी के दर्शनों के लिए अवसर नहीं प्राप्त कर पाया। संयोग से उड़ीसा बालांगिरि में सप्तदिवसीय श्रीमद्-भागवत का कार्यक्रम बना। मुझे विगत १० मई २००९ से १६ मई २००९ तक के लिए वहाँ जाने का सुयोग मिला। उसके पहले एक मई से सात मई तक पश्चिमी चम्पारण बगहा में मेरा कार्यक्रम था। मध्य में दो दिन का अन्तराल मेरी प्रसन्नता का कारण बना। मैंने मन ही मन सोचा कि इस अन्तराल का सदुपयोग करके मैं जगन्नाथ जी के दर्शन करूँ। इसी दृष्टि से विगत आठ मई २००९ को १२.४० अपराह्न में पटना से कोलकाता के लिए जाने वाली जेट फ्लाइट की टिकिट और वहाँ से सायं ७ बजे भुवनेश्वर जाने वाली फ्लाइट से दो लोगों की टिकिट आरक्षित करा ली। उसी योजना के आधार पर अनेक कष्ट सहते हुए मैं अपने 'राघवयान' से बड़े-बड़े जामों को पार करते हुए आठ मई के प्रातः पटना पहुँचकर जल्दी से राघव सेवा सम्पन्न कर चिलचिलाती धूप में अपनी विद्यार्थी सुवेदी के साथ पूर्वाह्न ११ बजे पटना हवाई अड्डे पर पहुँचा। उस समय पटना का तापमान ५० डिग्री सैल्सियस था। बोर्डिंग करवा दी। चिरप्रतीक्षा के पश्चात् जब बस में बैठकर मैं विमान के पास पहुँचने ही वाला था कि तब तक वज्रपात जैसा हो गया।

सूचना मिली कि तापमान की अधिकता के कारण यह उड़ान नहीं भर सकेगा अतः यह विमान निरस्त किया जा रहा है। मुझे अपार कष्ट हुआ और ग्लानि और अवसाद से झुलस गया। चीख पड़ा मैं क्योंकि अब श्रीरघुनाथ के ही अभिन्न स्वरूप प्राणप्रियतम जगन्नाथ जी के दर्शनों का आनन्द व्यवहित हो गया। निकलते हुए आँसू पिये और नैराश्य के वातावरण में प्रवास स्थान पर लौटा। फिर कड़ाके की धूप में अपने ही 'राघवयान' से क्रन्दनव्यस्त मन के साथ उड़ीसा की ओर चल पड़ा। संयोग से इन दिनों मेरे राघवयान का ऐसी भी काम नहीं कर रहा है। मार्ग में कोई भी भोजन न लेने का मेरा दृढ़ नियम जगन्नाथ दर्शनों की अन्तर्पिपासा और ५२ डिग्री० सैल्सियस पहुँचे हुए

तापमान से जनित बाह्य पिपासा इन दोनों ने मुझे झकझोर कर रख दिया। मैं खीझा और जगन्नाथ जी को उलाहनाभरा तत्काल स्वरचित श्लोक सुनाया–

**ऐशाभिमानेन दिदृक्षमाणं स्वं मां जगन्नाथ वृक्षा व्यहंस्त्वम्।**
**कुनास्तिके वै युधि रामभद्राचार्यं सहायं मुहुराजुहोषि।।**

अर्थात्– हे जगन्नाथ! तुमने अपने ईश्वरता के अहंकारता के कारण अपने दर्शनों के लिए इच्छुक मुझ अकिञ्चन शारीरिक दृष्ट्या असमर्थ ब्राह्मण वैष्णव भक्त को व्यर्थ ही विघ्नित कर दिया। अर्थात् जानबूझकर दो दो विमान निरस्त करवा दिए। जबकि भगवन्! जब दुष्टनास्तिक लोग तुम पर हमला बोलते हैं तब अपनी सहायता के लिए मुझ रामभद्राचार्य को ही गुहार लगाकर बार–बार बुलाते हो। निश्चित रूप से मेरे उलाहने से जगन्नाथ जी आहत हुए और उसका परिणाम मैंने स्वयं देखा। बालांगिरि में अपने आध्यात्मिक अनुज सत्य प्रज्ञानन्द सरस्वती जी के आनन्द निकेतन में मैंने प्रवास किया ठीक चौथे दिन जगन्नाथ जी का पण्डा पुरी से प्रसाद लेकर पाँच सौ किलोमीटर दूर से मेरे यहाँ उपस्थित हुआ। मुझे लगा कि यह प्रसाद स्वयं जगन्नाथ जी ही लेकर आए हैं उसमें न तो किसी प्रकार का विकार था और न ही स्वाद में कोई अन्तर। ५०० किलोमीटर दूर से आया प्रसाद यथावत् रहे यही तो जगन्नाथ जी का चमत्कार है। मैंने बड़े प्रेम से प्रसाद पाया और अपने परिकरों एवं आश्रम वासियों को भी पवाया। पुनः दूसरे दिन जगन्नाथ जी ने एक महिला को प्रेरणा दी और वे भी पुरी से बांलागिरि की ५०० किलोमीटर दूरी तय करके प्रसाद लेकर उपस्थित हुईं। इसमें और दिव्यता और मधुरता थी। फिर सातवें दिन जगन्नाथ जी ने कार्यक्रम के आयोजक महन्त ब्रजमोहन शरण जी को प्रेरणा देकर निजी ए०सी० कार से मुझे भुवनेश्वर पहुँचवाया। मेरे मन में क्षौर कराने की इच्छा हुई। वहाँ जो नाई महोदय मिले उनका मैंने नाम पूछा– उन्होंने कहा मेरा नाम मधुसूदन है मैं पुरी का निवासी हूँ। मैं चकित रह गया, वे बाल बना रहे थे और मैं उनके छुरे के स्पर्श में जगन्नाथ जी की कृपा की अनुभूति कर रहा था।

पुनः राघव जी की संक्षिप्त सेवा सम्पन्न करके विगत १७ मई को पूर्वाह्न ९ बजे हम लोग जगन्नाथ जी के दर्शनों के लिए पुरी को प्रस्थान किए। उसी दिन विगत दिन ही निर्वाचित उड़ीसा के मुख्यमन्त्री जगन्नाथ जी के दर्शनों के लिए पुरी आ रहे थे। सभी मार्ग अवरुद्ध थे पर मेरी कार को किसी ने नहीं रोका। मैं निर्बाध रूप से अपने विद्यार्थी सुवेदी तथा आध्यात्मिक भतीजे सत्य वेदानन्द सरस्वती और कतिपय सहयोगियों के साथ मन्दिर पहुँचा। कोई भीड़ नहीं थी। बहुत प्रेम से दर्शन किए और अपने तीखे उलाहने के लिए जगन्नाथ जी से क्षमा माँगी और उनका महाप्रसाद आकण्ठ पाया। रूठे भक्त को भगवान् ने मना लिया। जय जगन्नाथ।

❑❑❑

# सत्सङ्ग की अद्‌भुत महिमा

❑ पूज्यपाद जगद्‌गुरु जी

सनातन धर्म के अनाद्यविच्छिन्न परम्पराप्राचीर में सत्सङ्ग का उसी प्रकार महत्व, उपादान और उपयोग है जैसा उदयाचल के प्राचीर में प्रत्यूषकालीन भगवान् मरीचिमाली सूर्यनारायण का। श्रीमद्‌भाग–वतम् के एकादश स्कन्द में तो श्री उद्धव को समझाते हुए भगवान् श्री कृष्ण ने यहाँ तक कह डाला कि "मुझे योग, ज्ञान, सांख्य, स्वाध्याय, तपस्या, त्याग, इष्टापूर्त, दक्षिणा, व्रत, वेदाध्यय श्रौत, स्मार्त उभय–विधयज्ञ, नियम, यम, चान्द्रायणादि व्रत तीर्थाटन आदि सभी श्रुति स्मृति विहित सभी साधन मुझ परमात्मा को उतना नहीं प्रसन्न कर पाते जितना कि समस्त सांसारिक संगों को नष्ट करने वाला सत्सङ्ग प्रसन्न कर लेता है–

**न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च।**
**न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा।।**
**व्रतानि यज्ञाश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः।**
**यथावरुन्धे सत्सङ्गः सर्वसङ्गापहो हि माम्।।**

(भाग० ११/१२/१–२)

क्योंकि सत्सङ्ग से ही वृत्र, बाण, बलि, विभीषण, हनुमान, व्रजगोपिकाएँ आदि परम भागवत अपनी भगवद्‌भावनाविरुद्ध परिस्थितियों का निरसन करके मुझ परमात्मा को प्राप्त हो गए। सतां सङ्गः सत्सङ्गः, सद्‌भिः सङ्गः सत्सङ्ग सन्तों का सङ्ग और सन्तों के साथ सङ्ग सत्सङ्ग के नाम से जाना जाता है। भवभूति भी उत्तररामचरितम् नाटक में इसी व्युत्पत्ति का समर्थन करते हैं। सतां सद्‌भ सङ्गः कथमपि च पुण्येन भवति।

अर्थात् सन्तों का सन्तों के साथ समागम किसी विशेष पुण्य का परिणाम होता है। श्रीगोस्वामीचरण भी श्रीरामचरितमानस में सत्सङ्ग की उपलब्धि बड़े भाग्य का परिणाम मानते हैं क्योंकि उससे प्रयास के बिना ही संसार भाव का भङ्ग हो जाता है। अर्थात् सन्त के सान्निध्य में बैठने पर संसार का प्रत्येक पदार्थ सीताराममय भासने लगता है। मानस के उत्तरकाण्ड में श्रीसनकादि के आगमन पर प्रसन्न होकर भगवान् श्रीराम कहते हैं–

**आजु धन्य मैं सुनहु मुनीसा।**
**तुम्हरे दरश जाहि अघ खीसा।।**
**बड़े भाग पाइअ सत्संगा।**
**बिनहिं प्रयास होहि भवभंगा।।**

–मानस ७/३३/७–८

अर्थात् हे मुनीश्वरो! आप लोगों के दर्शन से आज मैं बहुत धन्य हूँ क्योंकि सन्तों के दर्शन से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और प्रयास के बिना ही संसार की आसक्ति नष्ट हो जाती है।

इस प्रकार आर्षवाङ्मय में जिसकी महिमा का निरन्तर गान किया गया वह सत्सङ्ग गंगा प्रवाह की भाँति भारतीय जनमानस को पावन करके उसे रामसापेक्ष राष्ट्रवाद की अवधारणा से जोड़ दे यही मेरी भगवान् श्रीसीताराम जी से अभ्यर्थना है।

❑❑❑

# मानसोक्त विप्रनिष्ठा की शास्त्रीयता

❑ मानसमृगेन्द्र डॉ० ब्रजेश दीक्षित ( जबलपुर )

श्रीमद्गोस्वामीतुलसीदास जी महाराज की अमरकृति श्रीरामचरितमानस में आद्योपान्त विप्रनिष्ठा दृष्टिगोचर होती है। यह गोस्वामी जी का व्यक्तिगत आग्रह न होकर निगमागम सम्मत आग्रह है। व्यक्तिगत आग्रह वन्दना प्रकरण में दृष्टव्य है–

''**बन्दऊँ प्रथम महीसुर चरना।**
**मोहजनित संशय सब हरना।।**'' मानस १/२/३

यह व्यक्तिगत आग्रह भी निगमागम सम्मत है, चूँकि उनके इष्ट का अवतार जिन चार प्रमुख धर्म स्तंभो के लिए होता है, उनमें 'विप्र' शीर्ष पर है–

**बिप्र धेनु सुर संत हित, लीन्ह मनुज अवतार।**
मानस २/१८२

शीर्ष धर्मस्तंभ के रूप में विप्र की महत्ता का प्रतिपादन श्रीमद्भागवत भी करती हैं। यथा–

**मूलं हि विष्णुर्देवानां यत्र धर्मः सनातनः।**
**तस्य च ब्रह्म गोविप्रास्तपो यज्ञाः सदक्षिणाः।**
**तस्मात् सर्वात्मना राजन् ब्राह्मणान् ब्रह्मवादिनः।**
**तपस्विनो यज्ञशीलान् गाश्च हन्मो हविर्दुघाः।।**
भाग० १०/४/३९-४०

सृष्टि के आरंम्भिक काल में विप्र को विप्रत्व में प्रविष्ट कराने वाली बुद्धि बड़ी साधना एवं तपस्या से प्राप्त हुई है। अग्रजन्मा ब्राह्मणों ने पर्वतों की कंदराओं तथा नदियों के संगम पर शीतातप वर्षा को झेलते हुए बुद्धि को प्राप्त किया है। इसकी पुष्टि भगवान ऋग्वेद करते हैं–

**उपह्वरे गिरीणां सङ्गमे च नदीनाम्।**
**धिया विप्रो अजायत।।**
ऋ० ८/६/२८

ऐसी तपःपूत, धी (बुद्धि) से सम्पन्न ब्राह्मणों की चरण रज मोहजनित संशय को हरण करने में सक्षम होती है। किन्तु जब ऐसी लोककल्याणकारिणी बुद्धि की प्राप्ति में साधना, तपस्यारत ब्राह्मणों को जब आसुरी शक्तियाँ व्यवधान उत्पन्न करती हैं, तब परमात्मा उस दुर्लभ विप्रत्व की रक्षा हेतु अवतार लेकर साधना पथ को सुगम बनाते हैं।

श्रीमन्मानसजी में प्रभु श्रीराम की 'महि भार हरन लीला' का शुभारंभ ब्रह्मण्यता से ही होता है। तभी तो ब्रह्मर्षि विश्वामित्र मुग्ध होकर 'ब्रह्मण्यदेव' शब्द से समलंकृत करते हैं–

**प्रभु ब्रह्मण्यदेव मैं जाना।**
**मोहि नित पिता तजेउ भगवाना।।**
मानस १/२०८/४

ब्रह्मर्षि का यह वाक्य अत्यन्त शास्त्रसम्मत है। प्रभु के लिए अनेक ग्रन्थों में 'ब्रह्मण्य' शब्द आया है। ब्रह्मण्य का तात्पर्य है– 'ब्राह्मणों का हितैषी या शुभचिंतक'। श्रीमद्भागवत में यह विशेषण सर्वप्रथम सनकादि ऋषि ने तब दिया, जब प्रभु ने कहा कि ''छिन्द्यां स्वबाहुमपि वः प्रतिकूलवृत्तिम्'' अर्थात् जो कोई आपके विरुद्ध आचरण करेगा, वह मेरी भुजा ही क्यों न हो, उसे मैं तत्काल काट लूँगा। संभवतः इसी कारण गोस्वामी जी ने उत्तरकांड में लिखा कि 'वंश कि रहहिं द्विज अनहित कीन्हे'। वस्तुतः द्विज का अहित करने पर भगवद्-इच्छा ही वंश को समूल नष्ट कर देती है। प्रभु के उक्त उदार वाक्य के पश्चात् सनकादि प्रभु 'परं ब्रह्मण्य' का विशेषण देते हैं–

**ब्रह्मण्यस्य परं दैवं, ब्राह्मणाः किल ते प्रभो।**
**विप्राणां देव देवानां, भगवानात्मदैवतम्।।**

भाग० ३/१६/१७

अर्थात् हे प्रभो! आप ब्राह्मण एवं देवों के देव ब्रह्मादि के भी आराध्यदेव हैं, पर आप ब्राह्मणों के कितने हितैषी हैं कि उन्हें लोकशिक्षा के लिए अपना आराध्य मानते हैं। श्रीसनकादि एवं विश्वामित्र जी की भाँति भगवान् श्रीकृष्ण के मित्र सुदामा भी मुग्ध होकर यही विशेषण देते हुए कहते हैं कि ''मैंने उन ब्रह्मण्यदेव की ब्रह्मण्यता के दर्शन'' किए हैं। यथा–

**अहो ब्रह्मण्य देवस्य दृष्टा ब्रह्मण्यता मया।**
**यद् दरिद्रतमो लक्ष्मीमाश्लिष्टो बिभ्रतोरसि।।**

भाग० १०/८१/१५

महाभारत के अनुशासन पर्व में क्षत्रिय शिरोमणि देवव्रत भोष्म ने भी प्रभु को 'ब्रह्मण्य' शब्द से अलकृंत किया है–

''**ब्रह्मण्यं सर्वधर्मज्ञं, लोकानां कीर्तिवर्धनम्।**''

विष्णुसहस्रनाम का एक मंत्र तो प्रभु की ब्रह्मण्यता से भरा हुआ है। यथा–

**ब्रह्मण्यो ब्रह्मकृद्ब्रह्मा, ब्रह्म ब्रह्म विवर्धनः।**
**ब्रह्मविद् ब्राह्मणो ब्रह्मी, ब्रह्मज्ञो ब्राह्मणप्रियः।।**

(वि०स०नाम ८४)

'प्रभु ब्रह्मण्यदेव मैं जाना' की शास्त्रीय पुष्टि के पश्चात् इसका व्यवहारिक दर्शन हमें 'परशुराम संवाद' में होता है। श्रीपरशुराम के परुष वचनों का श्रीराम नतमस्तक होकर जिस विनयशीलता से उत्तर देते हैं, वह अभूतपूर्व है। यथा–

''**हमहिं तुम्हहिं सरबरि कसि नाथा।**
**कहहुँ न कहाँ चरन कहँ माथा।।**
**देव एक गुन धनुष हमारे।**
**नवगुन परम पुनीत तुम्हारे।।**
**सब प्रकार हम तुम सन हारे।**
**छमहुँ बिप्र अपराध हमारे।।**
**बिप्रवंश कै अस प्रभुताई।**
**अभय होय जो तुम्हहिं डेराई।।**''

प्रभु श्रीराम का यह वाग्विलास मात्र नहीं है, वरन् वे प्रत्येक कार्य के आरंभ में विप्रों को प्रणाम कर, उनकी प्रभुता प्रतिपादित करते हैं। चाहे वे धनुर्भंग करें, या दूलहवेष में हों, या वनयात्रा में हों या मातलि के रथ पर आरुढ़ हों, या पुष्पकयान पर चढ़ रहे हों अथवा राज्य सिंहासनासीन हो रहे हों सर्वत्र वे विप्रचरणों में प्रणति निवेदित करते हैं। यही मन, वचन–कर्म–संपृक्त विप्रनिष्ठा कबंधवधो–परांत गंधर्व के समक्ष प्रकट होती है। यथा–

**मन क्रम वचन कपट तजि, जो कर भूसुर सेव।**
**मोहि समेत बिरंचि शिव, बश ताके सब देव।।**

मा० ३/३५

**श्रापत ताड़त परुष कहंता।**
**बिप्र पूज्य अस गावहिं संता।।**
**पूजिअ बिप्र शील गुन हीना।**
**शूद्र न गुन गन ग्यान प्रबीना।।**
**कहि निज धर्म ताहि समुझावा।**
**निज पद प्रीति देखि मन भावा।।**

यद्यपि उक्त पंक्तियों के कारण तथाकथित प्रगतिवादी गोस्वामी जी को ब्राह्मणवादी कहते हैं, किन्तु हमारा निवेदन है कि यह संतकवि का निज वाक्य न होकर, स्पष्टतः उनके इष्ट का नानापुराण–सम्मत अभीष्ट निजधर्म है। प्रथम तीन पंक्तियों का भावार्थ भागवतोक्त इस श्लोक में देखिए–

**ये ब्राह्मणान्मयिधिया क्षिपतोऽर्चयन्त-**
**स्तुष्यद्धृदः स्मितसुधोक्षितपद्मवक्त्राः।**
**वाण्यानुराग कलयाऽऽत्मजवद् गृणन्तः**
**सम्बोधयन्त्यहमिवाहमुपा हृतस्तैः।।**

भाग० ३/१६/११

अर्थात् ब्राह्मण तिरस्कारपूर्वक कटुभाषण भी करे तो भी उसमें मेरी भावना करके प्रसन्नचित्त से तथा अमृतभरी मुसकान से युक्त मुखकमल से उसका आदर करते हैं तथा जैसे रुठे हुए पिता को पुत्र और आप लोगों को मैं मनाता हूँ उसी प्रकार जो प्रेमपूर्ण वचनों से प्रार्थना करते हुए उन्हें शांत करते हैं, वे मुझे अपने वश में कर लेते हैं। यथा–

**'मोहि समेत विरंचि शिब, बस ताके सब देव'।**

वास्तव में भगवान् ने श्रापत में नारद जी, ताड़त में भृगु जी एवं परुष कहंता में परशुरामजी को सम्मान दिया है।

न जाने क्यों तथाकथित प्रगतिवादी गोस्वामीजी के पीछे ही क्यों पड़े? उन्होंने शास्त्र एवं नीति वाक्यों का ही यथास्थान समुचित प्रयोग किया है। उनके नायक तो धर्मरथ के विवेचन में स्पष्ट घोषणा करते हैं कि–

**''कवच अभेद विप्र पद पूजा।**
**एहि सम विजय उपाय न दूजा।।''**

यह तो उनका निजधर्म है, भला उन्हें कौन रोक सकता है? यही निजधर्म निज सिद्धांत के रूप में काकभुशुण्डि के समक्ष पूर्वतः बाललीला में ही प्रकट हो गया था–

**''निज सिद्धांत सुनावऊँ तोही।**
**सुनु मन धरु सब तजि भजु मोही।।**
**सब मम प्रिय सब मम उपजाए।**
**सबसे अधिक मनुज मोहि भाए।।**
**तिन्ह महँ द्विज द्विज महँ श्रुतिधारी।**
**तिन्ह महँ निगम धरम अनुसारी।।**
**तिन्ह महँ प्रिय विरक्त पुनि ग्यानी।**
**ग्यानिहु ते अति प्रिय बिग्यानी।**
**तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा।**
**जेहि गति मोरि न दूसरि आसा।।**

(मा० ७/८५-८६)

प्रभु श्री राम का यह निज सिद्धांत में धर्मशास्त्र सम्मत् है यथा–

**भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धि जीविनः।**
**बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठाः नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः।।**
**ब्राह्मणेषु च विद्वाँसो, विद्वत्सु कृतबुद्धयः।**
**कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवादिनः।।**

मनुस्मृति (१/९६-९७)

मनुस्मृति के अतिरिक्त श्रीमद्भागवतम् के श्रीकपिल-देवहुति संवाद (भाग० ३/२९/२८-३३) में भी पाषाण से ब्राह्मणपर्यन्त उत्तरोत्तर एतादृश श्रेष्ठता वर्णित है–

**जीवाः श्रेष्ठा ह्यजीवानां ततः प्राणभृतः शुभे।**
**तेषां बहुपदाः श्रेष्ठाश्चतुष्पादस्ततो द्विपात्।।**
**ततो वर्णाश्च चत्वारस्तेषां ब्राह्मण उत्तमः।**
**ब्राह्मणेष्वपि वेदज्ञो ह्यर्थज्ञोऽभ्यधिकस्ततः।।**
**अर्थज्ञात्संशयच्छेत्ता ततः श्रेयान् स्वकर्मकृत्।**
**मुक्तसङ्गस्ततो भूयानदोग्धा धर्ममात्मनः।।**
**तस्मान्मय्यर्पिताशेषक्रियार्थात्मा निरन्तरः।**
**मय्यर्पितात्मनः पुंसो मयि संन्यस्त कर्मणः।।**

इसी कारण भगवान 'लक्ष्मणगीता' में भक्ति के

सुगम पंथ का पथिक बनने हेतु विप्र चरणों की प्रीति को प्रथम साधन निरुपित करते हैं। यथा–

**भगति कि साधन कहहुँ बखानी।**
**सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी।।**
**प्रथमहिं विप्र चरन अति प्रीती।**
**निज निज कर्म निरत श्रुति रीती।।**
**एहि फल कर पुनि विषय बिरागा।**
**तब मम धर्म उपज अनुरागा।।**

(मा०३/)

वनवासावधि में श्रीलक्ष्मण के प्रति कथित इस रहस्य को वे अखिल भूमंडल के एक छत्र सम्राट् होते ही प्रथम राष्ट्र संबोधन में प्रजा के समक्ष एतादृश व्यक्त करते हैं–

**भक्ति सुतंत्र सकल गुन खानी।**
**बिनु सत्संग न पावहिं प्रानी।।**
**पुन्य पुंज बिनु मिलति न संता।**
**सतसंगति संसृति कर अंता।।**
**पुन्य एक जग में नहिं दूजा।**
**मन क्रम वचन विप्र पद पूजा।।**
**सानुकूल तेहि पर मुनि देवा।**
**जो तजि कपट करइ द्विज सेवा।।**

'प्रथमहि बिप्र चरन अति प्रीती' का सर्वोत्कृष्ट शास्त्रीय प्रमाण भागवतोक्त भृगु की त्रिदेव परीक्षा में प्राप्त होता है। जब भगवान लक्ष्मी की गोद में चरण रखकर विश्राम कर रहे थे तब महर्षि भृगु पद प्रहार करते हैं। यथा–

**''शयानं श्रिय उत्सङ्गे पदा वक्षस्य ताडयत्।''**

(भाग० १०/८९/८)

किन्तु प्रभु के विप्र चरण प्रेम की पराकाष्ठा देखिए– ऐसा कहकर वे चरण सहलाने लगे–

**''अतीव कोमलौ तात चरणौ ते महामुने।**
**इत्युक्त्वा विप्रचरणौ मर्दयन् स्वेन पाणिना।।''**

(भाग० १०/८९/१०)

प्रभु की इस विप्रनिष्ठा के विपरीत यदि कोई ब्राह्मणेतर संत एवं संन्यासी भी विप्रों से चरण पुजाते है, तो मानस के दीर्घ–अनुभवी मनुष्येतर प्रवक्ता श्रीकाकभुशुण्डि जी के अनुसार वे अपना इहलोक एवं परलोक दोनों नष्ट करते हैं। यथा–

**ते विप्रन्ह सन आपु पुजावहिं।**
**उभयलोक निज हाथ नसावहिं।।**

(मा० ७/१००/७)

यही सिद्धान्त कविकुलचूड़ामणि पूज्यपाद जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज का भी है।

इसका भी शास्त्रीय कारण यह है कि जगत में ब्राह्मण जन्म से ही श्रेष्ठ है। यदि वह तपस्या, विद्या, संतोष एवं भगवत्भक्ति से युक्त हो तब तो कहना ही क्या है। श्रुतदेव–प्रसंग में यह श्रीमद्भगवद्वाक्य है। यथा–

**ब्राह्मणो जन्मना श्रेयान् सर्वेषां प्राणिनामिह।**
**तपसा विद्यया तुष्ट्या किमु मत्कलया युतः।।**

(मा० १०/८६/५३)

एतावता, निगमागम सम्मत मानस जी में श्रीराम की विप्रनिष्ठा का आद्योपान्त वर्णन जहाँ ब्राह्मणों की तपस्या, साधना एवं श्रेष्ठता का स्पष्ट प्रमाण है, वहीं दूसरी ओर ब्राह्मणत्व से च्युत हो रहे। जात्योपजीवी ब्राह्मणों के लिए भी श्रीराम की यह विप्रनिष्ठा प्रेरणास्पद है। निश्चित रूप से वे अपने गरिमापूर्ण ब्रह्मवर्चस् की पुनः प्रतिष्ठा कर श्रीराम की विप्रनिष्ठा के पात्र बन सकते हैं। ❑❑❑

# गोसेवा कीजिए और राष्ट्र को सुरक्षित-सम्पन्न बनाइये

❑ श्रीजगदीश प्रसाद गुप्त ( जयपुर )

गो-सेवा से राष्ट्र की सुरक्षा एवं सुख-सम्पन्नता सम्भव है-इसे आप मानें या न मानें। इतिहास साक्षी है कि जब तक गो सेवा भारत में रही तब तक यह भारत-भूमि सुरक्षित एवं सुख सम्पन्न बनी रही। त्रेता युग में प्रभु श्रीराम ने गो महत्ता को जाना, वे लाखों गाएँ दान में देते थे। वे अयोध्या नरेश थे, स्वयं गो सेवा कर नहीं सके। द्वापर युग में प्रभु गोपाल बने, छोटी अवस्था से गायों की सेवा करने लगे, गायों को जंगल में चराने ले जाते और सायंकाल उनके नाम पुकार-पुकार कर, इकट्ठी कर गोकुल लाते। वेद, पुराण, स्मृति में गो-सेवा पर विस्तृत व्याख्या की गई है। सभी ऋषि-मुनियों, सन्तों और राजा-महाराजाओं ने गो-सेवा की है। आर्थिक दृष्टि से गौ सदैव उपयोगी रही है और इनसे प्राप्त दूध-दही, घी, मूत्र और गोमय (गोबर) स्वास्थ्यवर्धक रहे हैं। गो हत्या निजी स्वार्थ से प्रारम्भ हुई और आज इसने विनाश का प्रचण्ड रूप धारण कर लिया है। गायों का संवर्धन और संरक्षण एक नितान्त आवश्यकता बन चुकी है। यह संकीर्ण धारणा है कि वृद्ध-गायों की हत्या कर देनी चाहिए क्योंकि वे अनुपयोगी हो गई हैं-ऐसा गोहत्या के समर्थकों की ओर से देश में एक हौआ खड़ा किया हुआ है। पूछा जाए, गायों की विविध उपयोगिताओं को देखते हुए देश में कोई अनुपयोगी गाय है ही नहीं-दूध देना ही बन्द होता है, मूत्र, गोबर और मरने के बाद अस्थि व चर्म की उपयोगिता तो बनी ही रहती है। दूध न देने वाली गाय पर होने वाले व्यय से कहीं अधिक प्राप्ति ही रहती है, देख लीजिए, गणना कर लीजिए।

गोसेवा की भावना से (गोसेवा करने से) गोरक्षा होती है, यह शाश्वत सत्य है। गोसेवा से हमारी और हमारे राष्ट्र की सुरक्षा रहती है, यह कोरी कल्पना की बात नहीं है, श्रद्धा और विश्वास की बात भी है, यथार्थ भी है। "सुरक्षा" का तात्पर्य शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति और उपयोगिता से आर्थिक-वृद्धि से नहीं है, वस्तुत आन्तरिक एवं बाह्य आक्रमणों से सुरक्षा से ही है। इस यथार्थ से हम वंचित होते रहे, जब से गोसेवा छोड़कर गो-हत्या प्रमुख बना दी गई। इस कलयुग को क्या कहें-जहाँ चोरी, डकैती और आत्म हत्या ही नहीं, रोजाना जन-हत्याएं हो रही है और आतंकवाद फैल रहा है।

त्रेतायुग में, श्रीचक्रवर्ती महाराज दशरथ हुए हैं, वे अयोध्या में थे। उस अयोध्या से आतंकवादी रावण भी घबड़ाता था। उसका कभी साहस नहीं हुआ कि वह अयोध्या में आतंक फैलाये, गो-ब्राह्मणों की हत्या करे। सूर्यवंश के महाराज मान्धाता के पाशुपतास्त्र से पराजित रावण ने उन्हें वचन दिया था कि वह अयोध्या पर कभी भी आक्रमण नहीं करेगा। उसी रावण ने ब्रह्मलोक जाते समय महाराज अनरण्य

को मार्ग में रोककर युद्ध के लिए विवश किया और आहत होकर देह त्याग करते समय महाराज अनरण्य ने उसे शाप दिया कि रघुवंशी ही उसका वध करेगा, तब से रावण अयोध्या की ओर से सशंक हो गया। महाराज रघु के समय रावण ने अयोध्या पर आक्रमण नहीं किया लेकिन उनसे द्वन्द्व-युद्ध करना चाहा। महाराज उस समय नगर में नहीं थे, महामन्त्री ने किसी दूसरे समय आने को कहा। अभिमानी रावण यह सन्देश देते हुए चला गया कि महाराज रघु उसे शीघ्र ही कर भेज दें अन्यथा युद्ध के लिए तैयार रहे। महाराज रघु ने नारायणास्त्र चलाकर रावण को परास्त किया। महाराज रघु के बाद उनके पुत्र अज अयोध्या-नरेश हुए। इनके समय रावण अयोध्या आया और देखा कि महाराज अज ने सरयू स्नान करते समय पश्चिम दिशा में जल मंत्रित कर फेंका। रावण यह जानकर कि मन्त्रित जल से एक योजन दूर चरती हुई एक गौ की एक व्याघ्र के आक्रमण से रक्षा की गई और व्याघ्र को बाणों से विद्धकर मार दिया। महाराज अज के जीवनकाल में रावण अयोध्या से भयभीत रहा। जब महाराज अज के बाद दशरथ जी अयोध्या नरेश हुए, रावण अयोध्या आकर द्वन्द्व-युद्ध करना चाहा। द्वन्द्व युद्ध से पहिले महाराज दशरथ ने उसका बल परीक्षण किया कि उनके हाथों से रोके गए नगर-द्वार को रावण बाहर से बल लगाकर खोले। रावण नगर द्वार खोल न सका और अयोध्या सदैव अजेय बनी रही। यहाँ के सभी सूर्यवंशी व रघुवंशी महाराज यशस्वी, तेजस्वी, समृद्धशाली, शक्तिशाली एवं सुखी सम्पन्न रहे क्योंकि उन्होंने अपनी श्रद्धा व भक्ति से भरपूर गो सेवा की थी।

महर्षि वसिष्ठ जी की गो सेवा व भक्ति सर्व विदित है। वे स्वयं अपने हाथों नित्य गौ की सेवा करते थे। अपने आश्रम में देवी अरुन्धती और स्वयं वे नित्य गौ की पूजा करते थे। गौ की कितनी अनन्त महिमा है तथा गो-सेवा क्या है, उसकी शक्ति कितनी प्रबल होती है वे भलीभाँति जानते थे। इसलिए वे नित्य गायों का सान्निध्य चाहते थे। सर्वविदित है कि महर्षि वसिष्ठ जी ने अपनी चित कबरी होम धेनु (कामधेनु) शबला गौ के प्रभाव से राजर्षि विश्वामित्र जी का चतुरङ्गिणी सेना सहित विशिष्ट आतिथ्य किया था। श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में वर्णन है कि महर्षि वसिष्ठ जी के आग्रह पर चितकबरे रंग की उस कामधेनु ने जिसकी जैसी इच्छा थी, उसके लिए वैसी ही सामग्री जुटा दी ईख, मधु लावा, श्रेष्ठ आसव, पानक रस आदि नाना प्रकार के बहुमूल्य भक्ष्य पदार्थ प्रस्तुत कर दिए। गरम-गरम भात के पर्वत के सदृश्य ढेर लग गये। मिष्ठान्न (खीर) और दाल भी तैयार हो गयी। दूध, दही और घी की तो नहरें बह चलीं। भाँति-भाँति के सुस्वादु रस, खाण्डव तथा नाना प्रकार के भोजनों से भरी हुई चाँदी की सहस्रों थालियाँ सज गईं। सभी लोग तृप्त हुए। (बालकाण्ड-५३ सर्ग १ से ६ तक) गो के इस दिव्य विलक्षण प्रभाव को देखकर विश्वामित्र जी ने

उस गौ को देने की माँग की और अनेक प्रकार के प्रलोभन गाय के बदले में दिए लेकिन महर्षि वसिष्ठ जी अपनी गाय को देने को तैयार नहीं हुए। विश्वामित्र जी राजबल से उनकी गाय को घसीट कर ले जाने लगे। उस समय वह शबला गाय मेघ के समान गम्भीर स्वर से रोती, चीत्कार करती हुई, महर्षि वसिष्ठ जी के पास भागती हुई, बोली–"आपने मुझे क्यों दे दिया?" महर्षि वशिष्ठ जी कहने लगे– "शबले! मैंने तुम्हें नहीं दिया, यह राजा बलवान है। मेरी बात नहीं मानता और तुम्हें बलपूर्वक घसीटता है। तुम्हारी जो इच्छा हो करो, मैं तुम्हें जाने को नहीं कहता।" इस पर शबला ने अपने शरीर से अनन्त संख्या में यवन, खस, पह्लव, हूण आदि सैनिकों को उत्पन्न किया, जिन्होंने विश्वामित्र की सेना को नष्ट कर दिया। वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड के ५४वें सर्ग के १८ से २३ एवं ५५वें सर्ग के १ से ४ में इसका अलौकिक वर्णन हुआ है।

स्पष्ट है कि गोसेवा से गोरक्षा तो होती ही है, लेकिन वह हमें और हमारे राष्ट्र को भौतिक सम्पदा प्रदान करती है और समय आने पर रक्षा भी करती है। प्रभु श्रीराम चौदह वर्ष के वनवास पर जाते समय अपने कुलगुरु महर्षि वसिष्ठ जी से उनके आश्रम पर आकर मिले और अनुज और श्रीवैदेही सहित गुरुदेव, गुरुपत्नी एवं ब्राह्मणों को प्रणाम कर उनकी प्रदक्षिणा करके चलने ही लगे कि महर्षि वसिष्ठ जी की कामधेनु नन्दिनी अपने बछड़े के साथ हुंकार करती आगे आ गयी। दोनों भाइयों ने भूमि पर पड़कर उस गौ को दंडवत प्रणिपात किया तो नन्दिनी ने हुंकारकर उनका सिर सूंघा। अपने पदों में मस्तक रखती हुई श्रीवैदेही के सिर पर गौ ने धीरे से ग्रीवा रखी। महर्षि वशिष्ठ प्रसन्न होकर बोले– "वत्स रामभद्र! मैं इसके संकेत भली प्रकार समझता हूँ। यह तुम्हें महान विजय प्राप्त करने का और जनकुमारी को सौभाग्यवती रहने का अशीर्वाद दे रही है।" प्रभु श्रीराम ने अंजलि बाँधकर गौ से प्रार्थना की– "अम्ब! राम अयोध्या की रक्षा का दायित्व आप पर छोड़ता है।" नन्दिनी ने अपने दक्षिणपाद के खुर से भूमि कुरेद कर गर्दन हिलाते हुए अपनी स्वीकृति दी। महर्षि ने कहा– "त्रिभुवन के अद्वितीय अस्त्रज्ञ विश्वामित्र की उग्रतम तपस्या से प्राप्त दिव्यास्त्र शक्ति भी नन्दिनी की एक हुंकृति के सम्मुख निष्प्रभ हो गयी थी। नन्दिनी ने तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार कर ली है। सुर–असुरों की सम्मिलित शक्ति भी अब अयोध्या का अनिष्ट करने में असमर्थ हैं। तुम बन में जाते हुए भी राज्य को निष्कण्टक करके जा रहे हो। अब इधर से निश्चिन्त रहो। वत्स! तुम्हारे लौटने तक अब अयोध्या की ओर दृष्टि उठाने वाला अपना विनाश आमन्त्रित करेगा।"

भरतजी ननिहाल से लौटे। राज्याभिषेक स्वीकार नहीं किया, अगले दिन अपने अग्रज श्रीराम को लौटाने वन को चलने लगे। उन्होंने सबको सावधान किया– "अयोध्या की रक्षा की चिन्ता व्यर्थ है। समस्त संसार की रक्षा में समर्थ रघुकुल गुरु के रहते दूसरा कोई क्यों चिन्ता करे?" महर्षि वशिष्ठ जी ने भरत को हृदय से लगाया– "वत्स भरत! अयोध्या की रक्षा के सम्बन्ध में तुम निश्चिन्त रह

सकते हो। जब यजमान असमर्थ हो, संकटापन्न हो, रक्षा का दायित्व पुरोहित पर आ जाता है। अब से राम के लौटने तक अयोध्या की ओर कुदृष्टि उठाने वाले को वसिष्ठ की कामधेनु नन्दिनी क्षमा नहीं करेगी।''

जब भरत-शत्रुघ्न ने कुलगुरु, महर्षि वसिष्ठ जी से रथ पर आसीन होने की प्रार्थना की, महर्षि जी ने रक्त श्वेत कर्बुरा, श्वेत तिलक मस्तका, अपनी नन्दिनी के सम्मुख दण्डवत करके हाथ जोड़कर खड़े हो गये- ''नन्दिनी! तुम सर्व समर्था हो। अयोध्या नगर, राज्य प्रजाकोष एवं गृहों की रक्षा का दायित्व तुम पर है। जब तक श्रीराम वन से लौट नहीं आते, यह रक्षा का भार तुम स्वीकार कर लो।'' नन्दिनी ने हुंकार की और दो पद आगे आकर उसने महर्षि के करों को सूंघ लिया। महर्षि ने गौ को पुनः दंडवत प्रणिपात करके भरत से कहा- ''देवता, दैत्य, दानव राक्षस, यक्षादि सब मिलकर भी नन्दिनी की शक्ति के सम्मुख तुच्छ ही रहते हैं। अब वह मूर्ख होगा और अपना विनाश आमन्त्रित करेगा जो अयोध्या को घर्षित करने का स्वप्न देखेगा। मैंने विश्वामित्र के विरुद्ध नन्दिनी की हुंकार से लक्ष दिव्य सैनिक प्रकट होते देखा है। श्रीराम के लौटने तक अयोध्या अयोध्या हो चुकी है। वत्स भरत! अब तुम निश्चिन्त रह सकते हो।''

भरत जी प्रभु श्रीराम के आग्रह से अयोध्या लौट आए और वे नन्दिग्राम में तपस्वी बन गये। अपने भाई शत्रुघ्न से सस्नेह कहा- ''शत्रुघ्न! किसी नरेश की तो चर्चा ही व्यर्थ है, कोई असुर भी इतना अज्ञ नहीं कि अयोध्या पर आक्रमण करके अपने विनाश को आमन्त्रण दे। कुलगुरु ने साम्राज्य की सुरक्षा का दायित्व चौदह वर्ष के लिए अपनी कामधेनु नन्दिनी को सौंप दिया है, यह बात अब पृथ्वी पर पूर्णतः प्रचारित हो चुकी है, नन्दिनी की असीम शक्ति से कोई अपरिचित नहीं है। कोई धृष्टता करे तो कुलगुरु दो क्षण भी उसे क्षमा नहीं करेंगे। अतः रक्षा की ओर से तो हम दोनों को उन्होंने निश्चिन्त ही कर दिया है।

महर्षि वशिष्ठ जी गो तत्त्ववेत्ताओं के आद्य आचार्य हैं। महाभारत में वर्णित है कि उन्होंने राजा सौदास को गोतत्त्व ओर गोसेवा का उपदेश दिया है। गो महिमा का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा है-

**गावः प्रतिष्ठा भूतानां गावः स्वस्त्ययनं महत्।**
**गावो भूतं च भव्यं च गावः पुष्टि सनातनी।।**

महाभारत, अनु० ७८/५-६

(अर्थात्- गौएँ समस्त प्राणियों की प्रतिष्ठा (आधार) है और गौएँ ही उनके लिए महान मंगल की निधि हैं। गौएँ ही भूत और भविष्य हैं। गौएँ ही सब समय पुष्टि का साधन है।)

इस आलेख को विराम देते हुए यही निवेदन शेष है-

**गोसेवा कीजिए और राष्ट्र को सुरक्षित-सम्पन्न बनाइये।**

❑❑❑

गतांक से आगे

# शिखा की वैज्ञानिकता का रहस्य
## ( विज्ञान और आयुर्वेद )

❑ **पूज्यपाद पं० दीनानाथ शास्त्री सारस्वत**

(१०) वर्तमान वैज्ञानिकों ने अन्वेषण के बाद अब यह जाना है कि सिर के पिछले भाग में उन नस-नाड़ियों का केन्द्र है, जो आंखों में प्राप्त होती हैं। उनकी रक्षा यहाँ ठहरे हुए पर्याप्त-परिमाण के केशों से होती है। वर्तमान वैज्ञानिकों ने अब यह बात जानी है; परन्तु हमारे ऋषि-महर्षियों ने प्राचीन काल से ही शिखा रखने का नियम बना रखा है। शल्य विद्या के सभी अंग्रेजी पुस्तकों में डाक्टरों ने सिर के उस स्थल में जहाँ शिखा रखी जाती है- एक मर्मस्थल माना है, जिसे अंग्रेजी में Pineal Gland (पिनियल ग्लेण्ड) नाम से कहा जाता है। इसके अतिरिक्त जिस स्थल पर शिखा रखी जाती है; उसी स्थल के नीचे एक ग्रन्थि है जिसे 'पिचुइटी' नाम से कहा जाता है; जो शरीर की पुष्टि तथा वृद्धि में बहुत सहायता करती है। प्रकृति ने सिर में जो बाल उत्पन्न किये हैं; उनका तात्पर्य शरीर की भीतरी कोमल वस्तुओं का संरक्षण है। कपालशास्त्र के अनुसार भी उक्त स्थान में आत्मोन्नति का केन्द्र है। एक कपालशास्त्री ने यह सिद्ध किया है कि उस केन्द्र में केशराजि की स्थापना से आत्मोन्नति की रक्षा होती है।

आयुर्वेद के अनुसार मांस, शिरा, स्नायु, अस्थि, सन्धि इन पाँच भेदों के ८८ साधारण मर्म होते हैं; १९ विशेष मर्म होते हैं; इस प्रकार १०७ मर्म कहे गये हैं। इसमें ११ मांस के, ४१ शिराओं (नसों) के, २७ स्नायुओं के, ८ अस्थियों (हड्डियों) के २० सन्धियों के मर्म होते हैं इस प्रकार १०७ मर्म 'सुश्रुत-संहिता' (शरीर-स्थान ६/४) में कहे गये हैं। १९ संख्या के विशेष मर्मों में एक का नाम 'अधिप' होता है, जहाँ केशों का आवर्त होता है। उसके नीचे नाड़ियों की संधि होती है। थोड़े आघात से भी यहां के मर्मस्थलों में हानि की सम्भावना रहती है; बल्कि कभी तो मृत्यु की सम्भावना भी रहती है। इसी कारण 'सुश्रुत-संहिता' के शरीर स्थान में कहा है- 'मस्तकाभ्यन्तरत उपरिष्टात् शिरासन्धिसन्निपातो रोमावर्तोऽधिपतिः; तत्रापि सद्य एव (मरणम्) (६/२०) 'आन्तरो मस्तकस्योर्ध्वं शिरासन्धिसमागमः। रोमावर्तोधिपो नाम मर्म सद्यो हरत्यसून्' (अष्टाङ्गहृदय, शरीरन्थान)।

इस पर श्री अरुणदत्त ने लिखा है- 'मस्तकस्य अभ्यन्तरतो यः स्थितः, तथा ऊर्ध्वं प्रकृतत्वान्मस्त-कस्यैव उपरि शिरासन्धिसमागमः शिरासन्वीनां सन्निपातो रोमावर्तलक्षणः; सोधिपो नाम मर्मविशेषः धर्मगमाधिपो यथार्थनामा। तदायत्तानि हि सर्वाणि मर्मणीत्यर्थः। सोऽधिपो विद्धो सद्योऽसून् हरति, पुरुषं मारयतीत्यर्थः'। आशय यह है कि स्वामी के दुःख में सब नौकर दुःखी होते हैं; जैसे सेनानायक के क्षत-विक्षत होकर गिरने पर सब सेना के पांव उखड़ जाते हैं; इसी प्रकार इस **'अधिपति' नामक मर्म-सम्राट् में थोड़ा भी आघात होने पर सारे मर्मस्थानों में शिथिलता हो जाती है। उस समय उपचार न करने पर मृत्यु तक भी हो सकती है।** जैसे राजा सैनिकों की अपेक्षा सेनानायक के संरक्षणार्थ अधिक अवधान देता है; वैसे ही मनुष्यमात्र को सब मर्मों की अपेक्षा 'अधिप' मर्म की रक्षा तो बहुत सावधानी से करनी चाहिये। उसकी रक्षा होवे इस पर उपाय अपेक्षित है। प्राचीन महर्षियों से उद्भावित वह उपाय ही 'शिखा' है। शिखा के अतिरिक्त कोई भी सरल शास्त्रीय उपाय नहीं है, जिससे दिन-रात एवं प्रतिक्षण अधिप-मर्म की रक्षा हो सके। इस उपाय के आश्रयण से चाहे गरीब हो वा साहूकार-सभी समान लाभ प्राप्त कर सकते हैं। हमारे पूर्वजों ने जो सुगम एवम् अपूर्व

युक्ति बनाई है; वैसी युक्ति कोई भी नहीं बन सकती। इस तात्पर्य को न जानकर आजकी सभ्य (?) मंडली अपनी शिखा को कटवाकर शिखाधारिणी मण्डली का उपहास करती है, यह उसकी अविद्या दयनीय है। जो इस विषय के अन्य उपाय किये जाते हैं, वे खर्चीले एवं अवैध हैं, पर हमारे प्राचीनों से उद्भावित उपायों में खर्च न होना, परतन्त्रता न होनी–यह एक भारी विशेषता होती थी। फिर साथ वह जातीय चिह्न भी बन जाता था। इस प्रकार 'एका क्रिया द्व्यर्थकरी' नहीं नहीं–'अर्थकरी प्रसिद्धा' हो जाती है।

प्राचीन काल में ब्रह्मचर्याश्रम में कुमार यहां पर केशजूटक रखकर सिर पर अधिक विद्युत को उत्पन्न करते थे। शिखा रखने से आयु की वृद्धि होती है; सैनिकों को धूप वा सनस्ट्रोक से बचाने के लिए टोप दिये जाते हैं। वे पूर्ण–केशयुक्त शिखा रखें तो उन्हें टोपियों की आवश्यकता ही न रहे। इस शिखा का परिमाण गोखुर–इतना होता है, जिससे शीतकाल में शीत से, भयानक गर्मी में गर्मी से और वर्षा ऋतु में जलवर्षण के आघात से साधारणतः रक्षा होती है।

## एक विचार

(११) कहा जाता है कि– 'जो शीत–प्रधान देश हो तो कामचार है चाहे जितने केश रखे और जो अतिउष्ण देश हो तो सब शिखासहित छेदन करा देना चाहिये, क्योंकि शिर में बाल रहने से उष्णता अधिक होती है और उससे बुद्धि कम हो जाती है' (स० प्र० १० समु० १६२ पृष्ठ) यह विचार उक्त अनुसन्धान से अपूर्ण सिद्ध होता है; क्योंकि–शिखामुण्डन से ही उस मर्मप्रदेश में धूप जल्दी प्रभाव कर देती है। गोखुरमुण्डन से ही उस मर्मप्रदेश में धूप जल्दी प्रभाव कर देती है। गोखुरपरिमाण वालों के वहां रखना पर तो जैसे बाहरी शीत से रक्षा होती है; वैसे ही बाहरी ताप से भी रक्षा होती है। इसका अनुभव स्वयं भी किया जा सकता है। जो लोग गर्मी में सभी बालों को कटवाते हैं; दो–तीन दिन उन्हें गर्मी अधिक अनुभूत होती है। जो बाल नहीं कटवाते; उनको वैसी ऊष्मा प्रतीत नहीं होती, बल्कि बाहरी गर्मी से रक्षा ही होती है। नहीं तो फिर उनके अनुयायियों को गर्मी में बुद्धिमन्दता के डर से अपनी स्त्रियों या पढ़ रही हुई लड़कियों के बाल भी कटवाने पड़ेंगे। अथवा गर्मी में या गर्म देश में बालों का कटवाना मान भी लिया जाय तो वह मस्तिष्क के तालु–प्रदेश में कुछ लाभकारी हो सकता है, पर शिखा के स्थान में नहीं। इनमें प्राचीन एवं अर्वाचीन विद्वान् प्रमाण हैं। इस बात का आविष्कार करने वाले तो वैद्यक के विद्वान थे; उन्होंने 'सालम–मिश्री' आदि की ओषधियाँ भी जान रखी थीं तो यहाँ भी उन्हें कोई ओषधि लिख देनी चाहिये थी; जिससे गर्मी हट जाती; पर उन्होंने शिखा पर ही आक्रमण कर दिया; खेद!!! प्राचीन ऋषि, मुनि तपस्वी जो जटाधारी थे; क्या उनकी बुद्धि न्यून थी? उन्होंने बड़े–बड़े ग्रन्थ कैसे बनाए? 'दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः' (अथर्व० ११/५/६) इससे वेद ने ब्रह्मचारी के लिए दीर्घकेश की स्थापना कही है; इससे वेद को उससे ब्रह्मचारी की बुद्धि की मन्दता इष्ट नहीं।

उक्त स्थल में शिखा–छेदन मनु जी के 'केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते। राजन्यवन्धोर्द्वाविंशे वैश्यस्य द्व्यधिके ततः' (२/६५) इस पद्य के अनुवाद के अवसर पर ही 'स० प्र०' में कहा है; परन्तु मनु जी को वहाँ ऐसा अभिप्राय विवक्षित नहीं। न वहाँ ग्रीष्म का नाम है, न ही केशान्त संस्कार में शिखा के छेदन का गन्ध ही है। यदि यहाँ गर्मी का कारण है तो ब्राह्मण का १६वें वर्ष में ही मुण्डन कैसे कहा है? क्या पहले वा पीछे क्या गर्मी नहीं लगती? शूद्र के लिए तो वैसा करने की आज्ञा ही नहीं है; तो क्या उसे सारी आयु गर्मी ही नहीं लगती? इससे यह बात ठीक नहीं। न मालूम मनु जी के उक्त पद्य से यह बात कैसे निकाली गई? स्वयं उन्होंने स०प्र० के ११वें समु० २४४ पृष्ठ में लिखा है– 'यज्ञोपवीत और शिखा को छोड़कर मुसलमान–ईसाइयों के सदृश बन बैठना व्यर्थ है'।

क्रमशः........

# धर्मशास्त्रों में आचरणीय सूक्तियाँ

प्रस्तुति-आचार्य चन्द्रदत्त 'सुवेदी'

**पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणामथापि वा।**
**कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति।।**
**लोकहिंसाविहाराणां क्रूराणां पापकर्मणाम्।**
**कुर्वतामपि पापानि नैव कार्यमशोभनम्।।**

(वा०रा०, यु०का० ११५/४३-४४)

आर्य (श्रेष्ठ) पुरुष को चाहिये कि वह पापियोंपर, दुष्टों पर अथवा जो मार डालने योग्य हैं- ऐसे लोगों पर भी दया ही करे; क्योंकि अपराध किससे नहीं बनते? जो लोगों की हिंसा करने में ही प्रसन्नता का अनुभव करते हैं, जो अत्यन्त निर्दय एवं पापाचारी हैं तथा जो अभी-अभी पाप करने में लगे हैं- ऐसे लोगों का भी अनिष्ट न करे।

**यन्मैथुनादि गृहमेधिसुखं हि तुच्छं**
**कण्डूयनेन करयोरिव दुःखदुःखम्।**
**तृप्यन्ति नेह कृपणा बहुदुःखभाजः**
**कण्डूतिवन्मनसिजं विषहेत धीरः।।**

(श्रीमद्भा० ७/९/४५)

स्त्री-सम्भोगादि जो गृहस्थ के सुख हैं, वे अत्यन्त तुच्छ ही नहीं, अपितु हाथों को परस्पर खुजलाने के समान परिणाम में अत्यन्त दुःखरूप हैं; परंतु बहुत दुःख पाने पर भी अज्ञानी जीव इन विषय-सुखों से अघाते नहीं। कोई विवेकी पुरुष ही खुजलाहट की भाँति कामादि के वेग को भी सह लेता है।

**अहर्निशं श्रुतेर्जाप्याच्छौचाचारनिषेवणात्।**
**अद्रोहवत्या बुद्ध्या च पूर्वं जन्म स्मरेद् बुधः।।**

(स्क० पु०, का० ख० ३८/८९)

रात-दिन वेदों का पाठ करने से, बाहर-भीतर की पवित्रता और सदाचार सेवन से और द्रोहशून्य बुद्धि से बुद्धिमान् मनुष्य पूर्वजन्म की बातों को स्मरण कर सकता है।

**दयालुरमदस्पर्शं उपकारी जितेन्द्रियः।**
**एतैश्च पुण्यस्तम्भैश्च चतुर्भिर्धायते मही।।**

(शि०पु०, कोटिरु० सं० २४/२६)

दयालु मनुष्य, अभिमानशून्य व्यक्ति, परोपकारी और जितेन्द्रिय-ये चार ऐसे पवित्र खंभे हैं, जो पृथ्वी को थामे हुए हैं।

**नास्ति विद्यासमं चक्षुर्नास्ति सत्यसमं तपः।**
**नास्ति रागसमं दुःखं नास्ति त्यागसमं सुखम्।।**

(बृहन्ना० पु० ६०/४३)

विद्या के समान दूसरा नेत्र नहीं है, सत्य के समान कोई तप नहीं है, राग के समान कोई दुःख नहीं है और त्याग के समान कोई सुख नहीं है।

**धर्मः कामदुघा धेनुः संतोषो नन्दनं वनम्।**
**विद्या मोक्षकरी प्रोक्ता तृष्णा वैतरणी नदी।।**

(ब्रहन्ना० पु० २७/७२)

धर्म ही कामधेनु के समान सारी अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाला है, संतोष ही स्वर्ग का नन्दन-कानन है, विद्या (ज्ञान) ही मोक्ष की जननी है और तृष्णा वैतरणी नदी के समान नरक में ले जाने वाली है।

**अद्रोहश्चाप्यलोभश्च दमो भूतदया तपः।**
**ब्रह्मचर्यं तथा सत्यमनुक्रोशः क्षमा धृतिः।**
**सनातनस्य धर्मस्य मूलमेतद् दुरासदम्।।**

(वायु पु० ५७/११७)

किसी भी प्राणी के साथ द्रोह न करना, लोभ से दूर रहना, इन्द्रियों को वश में रखना, प्राणिमात्र के प्रति दया का भाव रखना, स्वधर्मपालन के लिये कष्ट सहना, ब्रह्मचर्य का पालन करना, सच बोलना, दुखियों से सहानुभूति रखना, अपराधी को क्षमा कर देना और कष्ट पड़ने पर धैर्य धारण करना– सनातन धर्म की जड़ यही है, जो अन्यत्र दुर्लभ है।

**अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात्।**
**नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्।।**

(अग्नि ४३/२३)

अच्युत, अनन्त एवं गोविन्द– इन नामों का उच्चारण ही एक ऐसी दवा है, जिससे सम्पूर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं। मैं (धन्वन्तरि) सत्य के साथ यह कह रहा हूँ।

**यत् क्रोधनो यजति यच्च ददाति नित्यं**
**यद् वा तपस्तपति यच्च जुहोति तस्य।**
**प्राप्नोति नैव किमपीह फलं हि लोके**
**मोघं फलं भवति तस्य हि कोपनस्य।।**

(वामनपु० ४३/८९)

क्रोधी मनुष्य जो कुछ भी यजन–पूजन करता है, जो कुछ नित्यप्रति दान करता है, जो कुछ तपश्चर्या करता है और जो कुछ भी हवन करता है, उसका इस लोक में उसे कोई फल नहीं मिलता, उस क्रोधी का सब कुछ किया कराया व्यर्थ होता है।

**वरं प्राणस्त्याज्या न बत परहिंसा त्वभिमता**
**वरं मौनं कार्यं न च वचनमुक्तं यदनृतम्।**
**वरं क्लीबैर्भाव्यं न च परकलत्राभिगमनं**
**वरं भिक्षार्थित्वं न च परधनानां हि हरणम्।।**

(वामनपु० ५९/२९)

स्वयं मर जाना अच्छा है, किन्तु किसी दूसरे जीव की हिंसा कदापि मान्य नहीं होनी चाहिये। चुप हो रहना अच्छा है, पर झूठ बोलना किसी भी हालत में ठीक नहीं। नपुंसक होकर रहना अच्छा है, किंतु परस्त्रीगमन कदापि वाञ्छनीय नहीं। इसी प्रकार भीख माँगकर जीवन बिताना दूसरे के धन को हड़पने की अपेक्षा कही उत्तम है।

**नाश्चर्य यन्न पश्यन्ति चत्वारोऽमी सदैव हि।**
**न पश्यतीह जात्यन्धो रागान्धोऽपि न पश्यति।**
**न पश्यति मदोन्मत्तो लोभाक्रान्तो न पश्यति।।**

नीचे लिखे चार व्यक्ति सदा ही अन्धे बने रहते हैं– इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। जैसे जन्म के अन्धे को नहीं सूझता, उसी प्रकार रागान्ध व्यक्ति भी देख नहीं पाता। इसी प्रकार घमंड में चूर व्यक्ति भी अंधा होता है और लोभी मनुष्य को भी आँख नहीं होती।

**भवजलधिगतानां द्वन्द्ववाताहतानां**
**सुतदुहितृकलत्रत्राणभारार्दितानाम्।**
**विषमविषयतोये भज्जतामप्लवानां**
**भवति शरणमेको विष्णुपोतो नराणाम्।।**

(वामनपु० ९४/२९)

जो मनुष्य संसाररूपी समुद्र में पड़कर सुख–दुःख, हर्ष–शोक, गर्मी–सर्दी आदि पवन के झकोरों से पीड़ित रहते हैं, लड़के–लड़की, पत्नी आदि की रक्षा के बोझ से दबे रहकर तथा तैरने का कोई साधन न पाकर विषयरूपी अगाध जल में डूबते–उतरते हैं, ऐसे लोगों की भगवान् विष्णु ही नौका बनकर रक्षा करते हैं।

**न देवा दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपालवत्।**
**यस्य ते हितमिच्छन्ति बुद्धया संयोजयन्ति तम्।।**
(महा० उद्यो० ३५/४४)

देवतालोग चरवाहे की भाँति डंडा लेकर हमारी रक्षा थोड़े करते हैं। वे तो जिसका भला करना चाहते हैं, उसे उत्तम बुद्धि (समझ) दे देते हैं।

**न कालो दण्डमुद्यम्य शिरः कृन्तति कस्यचित्।**
**कालस्य बलमेतावद् विपरीतार्थदर्शनम्।।**
(महा० स० ८१/११)

कालभगवान् डंडा उठाकर किसी का सिर थोड़े ही तोड़ देते हैं। काल का बल तो इसी में है कि वह वस्तु के स्वरूप को विपरीत करके दिखा देता है और यही उसके विनाश का कारण होता है।

**धर्मं यो बाधते धर्मो न स धर्मः कुवर्त्म तत्।**
**अविरोधात्तु यो धर्मः स धर्मः सत्यविक्रमः।।**
(महा० वनपर्व १३१/११)

जो धर्म किसी दूसरे धर्म का विरोधी होता है, वह धर्म नहीं, कुमार्ग है; धर्म वही है, जिसका किसी भी दूसरे धर्म से विरोध नहीं होता।

**नरस्य बन्धनार्थाय शृङ्खला स्त्री प्रकीर्तिता।**
**लोहबद्धोऽपि मुच्येत स्त्रीबद्धो नैव मुच्यते।।**
(दे० भा० १६/४१)

मनुष्य को मोहरूपी बन्धन में डालने के लिये स्त्री को ही साँकल कहा गया है। लोहे की बेड़ी से जकड़ा हुआ मनुष्य तो छूट भी सकता है, पर स्त्री के मोहजाल में फँसे हुए मनुष्य का छुटकारा नहीं है।

**अधीत्य वेदशास्त्राणि संसारे रागिणश्च ये।**
**तेभ्यः परो न मूर्खोऽस्ति सधर्माः श्वाश्वसूकरैः।।**
(१/१४/४)

वेद शास्त्रों का अध्ययन कर लेने पर भी जिनका सांसारिक सुखों में राग (प्रेम) बना हुआ है, उनसे बढ़कर मूर्ख कोई नहीं है। वे तो कुत्ते, घोड़े और सूअर जैसे ही हैं।

**द्रोहार्जितेन द्रव्येण यत् करोति शुभं नरः।**
**विपरीतं भवेत् तत् तु फलकाले नृपोत्तम।।**
**देशकालक्रियाद्रव्यकर्तॄणां शुद्धता यदि।**
**मन्त्राणां च तदा पूर्णं कर्मणां फलमश्नुते।।**

दूसरों से द्रोह करके कमाये हुए धन से मनुष्य जो यज्ञ, दान आदि शुभ कर्म करता है, फल का समय आने पर उसका परिणाम विपरीत अर्थात् अशुद्ध होता है। स्थान, समय, क्रिया, द्रव्य, कर्ता और मन्त्र– इन सबके शुद्ध होने पर ही किसी सकाम अनुष्ठान का पूरा–पूरा फल मिलता है।

**सङ्गः सर्वात्मना त्याज्यः सचेत् त्यक्तुं न शक्यते।**
**स सद्भिः सह कर्तव्यः सतां सङ्गो हि भेषजम्।।**
**कामः सर्वात्मना हेयो हातुं चेच्छक्यते न सः।**
**मुमुक्षां प्रति कर्तव्यः सैव तस्यापि भेषजम्।।**
(मार्क० पु० ३७/२४–२५)

आसक्ति का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए; परंतु यदि वह न छूट सके तो संत–महात्माओं के प्रति आसक्ति करे। सत्पुरुषों के प्रति किया हुआ प्रेम ही संसारासक्ति की एकमात्र औषध है। इसी प्रकार कामना भी सब प्रकार से हेय है; परंतु यदि कामना न छूटे तो मोक्ष की इच्छा जाग्रत् होने की कामना करे; क्योंकि मोक्ष की कामना ही अन्य सारी कामनाओं से छूटने की एकमात्र दवा है।

**धिक् तस्य जीवितं पुंसः शरणार्थिनमागतम्।**
**यो नार्तमनुगृह्णाति वैरिपक्षमपि ध्रुवम्।।**
(मार्क० पु० १३१/२५)

जो मनुष्य शरण चाहने वाले दुखिया को आश्रय नहीं देता, चाहे वह शत्रुपक्ष का ही क्यों न हो, उसके जीवन को धिक्कार है।

**न तथा शीतलसलिलं न चन्दनरसो न शीतला छाया।**
**प्रह्लादयति च पुरुषं यथा मधुरभाषिणी वाणी।।**

(भवि० पु० ब्राह्मपर्व ७३/४८)

ठंडा जल, चन्दन का रस अथवा ठंडी छाया भी मनुष्य को उतनी आह्लादजनक नहीं होती, जितनी मीठी वाणी।

**अन्धं तमो विशेयुस्ते ये चैवात्महनो जनाः।**
**भुक्त्वा निरयसाहस्त्रं ते च स्युर्ग्रामसूकराः।।**
**आत्मघातो न कर्तव्यस्तस्मात् क्वपि विपश्चिता।**
**इहापि च परत्रापि न शुभान्यात्मघातिनाम्।।**

(स्क० पु० काशीख० १२/१३)

आत्महत्यारे लोग घोर नरकों में जाते हैं और हजारों नरकयातनाएँ भोगकर फिर देहाती सूअरों की योनि में जन्म लेते हैं। इसलिए समझदार मनुष्य को कभी भूलकर भी आत्महत्या नहीं करनी चाहिये। आत्मघातियों का न इस लोक में और परलोक में ही कल्याण होता है।

**परस्वानां च हरणं परदाराभिमर्शनम्।**
**सुहृदामतिशङ्का च त्रयो दोषाः क्षयावहाः।।**

(वा० रा० यु० का० ८७/२३)

पराये का अधिकार छीन लेना, परस्त्री-संसर्ग और अपने हित-मित्रों से अत्यधिक सशङ्कित रहना- ये तीना दोष सर्वनाश करने वाले हैं।

**पितुरर्थे हता ये तु मातुरर्थे हतास्तथा।**
**गवार्थे ब्राह्मणार्थे वा प्रमदार्थे महीपते।।**
**भूम्यर्थे पार्थिवार्थे वा देवतार्थे तथैव च।**
**बालार्थे विकलार्थे च यान्ति लोकान् सुभास्वरान्।।**

(बृहन्ना० महापु० उत्तरभा० ३३/६३-६४)

जो लोग पिता के लिये, माता के लिये, गाय के लिये, ब्राह्मण के लिये, युवती स्त्री की रक्षा के लिये, अपनी जन्मभूमि के लिए, राजा के लिये, देवता के लिये, बालक के लिये अथवा अङ्गहीन के लिए प्राण गँवा देते हैं, उन्हें अत्यन्त प्रकाशयुक्त (स्वर्गादि) लोकों की प्राप्ति होती है।

**यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्य-**
**स्तस्मिंस्तथा वर्तितव्यं स धर्मः।**
**मायाचारो मायया बाधितव्यः**
**साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः।।**

(म० भा०, शा० प० १०९/३०)

जो मनुष्य जिसके साथ जैसा बर्ताव करता है, उसके साथ वैसा ही बर्ताव करे-यही धर्मसंगत है। कपटी को कपट के द्वारा परास्त करे और सच्चरित्र के साथ साधुता का व्यवहार करना चाहिये।

❑❑❑

**पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ। सर्ब भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ।।**
**बिगड़ी जनम अनेक की संभलै अब ही आज। होय राम को राम भज तुलसी तज कुसमाज।।**

# व्रतोत्सवतिथिनिर्णयपत्रक

## ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष/सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म ऋतु

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | व्रत पर्व आदि विवरण |
|---|---|---|---|---|
| द्वादशी | गुरुवार | चित्रा | 4 जून | चम्पक द्वादशी |
| त्रयोदशी | शुक्रवार | स्वाति | 5 जून | प्रदोष व्रत |
| चतुर्दशी | शनिवार | विशाखा | 6 जून | — |
| पूर्णिमा | रविवार | अनुराधा | 7 जून | सत्यनारायण व्रत वट सावित्री व्रत पूजन |

## आषाढ़ कृष्ण पक्ष/सूर्य उत्तरायण-दक्षिणायन ग्रीष्म-वर्षा ऋतु

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | व्रत पर्व आदि विवरण |
|---|---|---|---|---|
| प्रतिपदा | सोमवार | ज्येष्ठा | 8 जून | — |
| द्वितीया | मंगलवार | मूल | 9 जून | — |
| तृतीया | बुधवार | पू०षा० | 10 जून | — |
| तृतीया | गुरुवार | उ०षा० | 11 जून | तृतीया तिथि की वृद्धि, श्रीगणेश चतुर्थी |
| चतुर्थी | शुक्रवार | श्रवण | 12 जून | — |
| पंचमी | शनिवार | धनिष्टा | 13 जून | पंचक प्रारम्भ 3/3 दिन से |
| षष्ठी | रविवार | शतभिषा | 14 जून | सूर्य मिथुन में, संक्रान्ति दिवस |
| सप्तमी | सोमवार | शतभिषा | 15 जून | पुण्यकाल 10/43 प्रातः तक |
| अष्टमी | मंगलवार | पू०भाद्र० | 16 जून | कालाष्टमी |
| नवमी | बुधवार | उ०भाद्र० | 17 जून | — |
| दशमी | गुरुवार | रेवती | 18 जून | पंचक प्रातः 9/18 पर समाप्त |
| एकादशी | शुक्रवार | अश्विनी | 19 जून | **योगिनी एकादशी व्रत (सबका)** |
| द्वादशी | शनिवार | भरणी/कृतिका | 20 जून | शनि प्रदोषव्रत |
| त्रयोदशी | रविवार | रोहिणी | 21 जून | — |
| चतुर्दशी | रविवार | रोहिणी | 21 जून | चतुर्दशी तिथि का क्षय |
| अमावस्या | सोमवार | मृगशिरा | 22 जून | सोमवती अमावस्या |

## आषाढ़ शुक्ल पक्ष/सूर्य दक्षिणायन, वर्षा ऋतु

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | व्रत पर्व आदि विवरण |
|---|---|---|---|---|
| प्रतिपदा | मंगलवार | आर्द्रा | 23 जून | चन्द्र दर्शनम् |
| द्वितीया | बुधवार | पुनर्वसु | 24 जून | रथयात्रा जगन्नाथपुरी |
| तृतीया | गुरुवार | पुष्य | 25 जून | — |
| चतुर्थी | शुक्रवार | श्लेषा | 26 जून | श्रीगणेश चतुर्थी व्रत |
| पचमी | शनिवार | मघा | 27 जून | कुमार षष्ठी व्रत |
| षष्ठी | रविवार | पू० फा० | 28 जून | — |
| सप्तमी | रविवार | पू० फा० | 28 जून | सप्तमी तिथि का क्षय |
| अष्टमी | सोमवार | उ० फा० | 29 जून | श्रीदुर्गाष्टमी |
| नवमी | मंगलवार | हस्त | 30 जून | भडली नवमी |
| दशमी | बुधवार | चित्रा | 1 जुलाई | — |
| एकादशी | गुरुवार | स्वाति | 2 जुलाई | **देवशयनी एकादशी व्रत (स्मार्त)** |
| एकादशी | शुक्रवार | विशाखा | 3 जुलाई | **देवशयनी एकादशी व्रत (वैष्णव)** |

卐 श्रीमद्राघवो विजयते 卐

धर्मचक्रवर्ती, महामहोपाध्याय, जीवनपर्यन्त कुलाधिपति, वाचस्पति, महाकवि
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य **स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज**
का राष्ट्रीय, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक चेतना का संवाहक

# श्रीतुलसीपीठसौरभ

**( मासिक पत्र )**

सीतारामपदाम्बुजभक्तिं भारतभविष्णु जनतैक्यम्।
वितरतु दिशिदिशि शान्तिं श्रीतुलसीपीठसौरभं भव्यम्।।

वर्ष १३ | जून २००९ (४,५ जुलाई को प्रेषित) | अंक-१०



**पूज्यपाद जगद्गुरु जी के सम्पर्क सूत्र :**
**श्रीतुलसीपीठ, आमोदवन,**
पो० नया गाँव श्रीचित्रकूटधाम (सतना) म०प्र०485331
✆-07670-265478, 05198- 224413

**वसिष्ठायनम् -** जगद्गुरु रामानन्दाचार्य मार्ग
रानी गली नं०-1, भूपतवाला, हरिद्वार (उत्तरांचल)
दूरभाष-01334-260323

**श्री गीता ज्ञान मन्दिर**
भक्तिनगर सर्कल, राजकोट (गुजरात)
दूरभाष-0281-2364465

**पंजीकृत सम्पादकीय कार्यालय एवं पत्र व्यवहार का पता**
आचार्य दिवाकर शर्मा,
220 के., रामनगर, गाजियाबाद-201001
दूरभाष-0120-2712786, मो०- 09971527545

# रामानन्दः स्वयं रामः प्रादुर्भूतो महीतले

## विषयानुक्रमणिका



## सुधी पाठकों से विनम्र निवेदन

१. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' का प्रत्येक अंक प्रत्येक दशा और परिस्थिति में प्रत्येक महीने की ४ तथा ५ तारीख को डाक से प्रेषित किया जाता है। पत्रिका में छपे महीने का अंक आगामी महीने में ही आपको प्राप्त होगा।
२. 'श्रीतुलसीपीठ सौरभ' मंगाने हेतु बैंक ड्राफ्ट 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' के नाम से ही बनबाएँ तथा प्रेषित लिफाफे के ऊपर हमारा नाम तथा पूरा पता स्पष्ट अक्षरों में लिखें। मनीआर्डर पर हमारा नाम-पता ही लिखें प्रधान सम्पादक अथवा प्रबन्ध सम्पादक कभी न लिखें।
३. पत्रव्यवहार करते समय अथवा ड्राफ्ट-मनीआर्डर भेजते समय अपनी वह ग्राहक संख्या अवश्य लिखें जो पत्रिका के लिफाफे के ऊपर आपके नाम से पहले लिखी है।
४. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' में **'पूज्यपाद जगद्गुरु जी'** से अभिप्राय **धर्मचक्रवर्ती श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज समझा जाए।**
५. 'श्रीतुलसीपीठ सौरभ' में प्रकाशित लेख/कविता/अथवा अन्य सामग्री के लिए लेखक/कवि अथवा प्रेषक महानुभाव ही उत्तरदायी होंगे, सम्पादक मण्डल नहीं।
६. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' प्राप्त न होने पर हमें पत्र लिखें अथवा फोन करें। हम यद्यपि दूसरी बार पुनः भेजेंगे। किन्तु अपने डाकखाने से भलीप्रकार पूछताछ करके ही हमें सूचित करें।
७. **डाक की घोर अव्यवस्था के चलते हमें दोषी न समझें। हमें और आपको इसी परिस्थिति में 'पूज्यपाद जगद्गुरु जी' का कृपा प्रसाद शिरोधार्य करना है।**
८. सुधी पाठक अपने लेख/कविता आदि स्पष्ट अक्षरों में लिखकर भेजें। यथासमय-यथासम्भव हम प्रकाशित करेंगे। अप्रकाशित लेखों को लौटाने की हमारी व्यवस्था नहीं है।

**–सम्पादकमण्डल**

### सदस्यता सहयोग राशि

| | |
|---|---|
| संरक्षक | ११,०००/– |
| आजीवन | ५,१००/– |
| पन्द्रह वर्षीय | १,०००/– |
| वार्षिक | १००/– |

श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास, चित्रकूट के स्वामित्व में मुद्रक तथा प्रकाशक डॉ० कु० गीतादेवी (प्रबन्धन्यासी) ने श्री राघव प्रिंटर्स, जी-१७ तिरुपति प्लाजा, बेगम पुल रोड, बच्चापार्क, मेरठ, फोन (का०) 4002639, मो०-9319974969, से मुद्रित कराकर कार्यालय २२० के., रामनगर, गाजियाबाद से प्रकाशित किया।

सम्पादकीय-

# आदर्श गुरु शिष्य परम्परा स्थापित हो

भारतीय संस्कृति में महर्षि वाल्मीकि और महर्षि वेदव्यास का पावन नाम बहुत सम्मान और कृतज्ञता के साथ लिया जाता है। कारण सर्वविदित है कि भगवान् श्रीराम और भगवान् श्रीकृष्ण के अवतारों की लीलाओं का वर्णन इन श्रीचरणों ने इतनी प्रामाणिकता और व्यापकता के साथ किया है कि कोई भी आस्तिक जन इनको दण्डवत् किये बिना रह नहीं सकता। गुरु परम्परा में जहाँ अनेक आचार्यों-संतों तथा वन्दनीय चरणों को प्रणाम किया जाता है वहीं महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास जी महाराज को उनके प्राकट्य पर्व आषाढ़ी पूर्णिमा के दिन सभी शिष्य प्रणाम निवेदित करते हैं। व्यास पूर्णिमा, व्यास पूजा, गुरु पूर्णिमा आदि नामों से पुकारे जाने वाला यह पुण्यपर्व हिन्दु जनता जनार्दन में बहुत श्रद्धा और विश्वास के साथ मनाया जाता है। मनाया जाना भी चाहिए क्योंकि कृतज्ञता ज्ञापित करना भारतीय परम्परा है। जिन गुरुचरणों की करुणा में स्नान करके शिष्यगण भगवदीय भावों में खो जाते हैं, ज्ञान तत्व का दर्शन करके अपना जीवन सफल करते हैं, भक्तिस्वरूपा भगवती को प्राप्त करके कृतकृत्य हो जाते हैं उन श्रीचरणों के प्रतिवर्ष में केवल एक दिन कुछ पत्र पुष्प अर्पित करना कृतज्ञता ही है। यही कृतज्ञता साधक को सिद्धेश्वर का शुभाशीर्वाद प्राप्त कराती है। यहाँ ध्यान देने योग्य है कि आज शास्त्रविरोधी, संस्कारशून्य, मर्यादाहीन, ज्ञानतत्व से सूदूर और गुरुडम सिखाकर जनता को भ्रमित करने वाले गुरुओं की बाढ़ सी आई हुई है। ये तथाकथित गुरु अपने को ही पुजवाने की शिक्षा देते हैं भगवान् को भूल जाने की इनकी भभूत ने परिवारों समाज तथा राष्ट्र की शान्ति भंग कर रखी है। न कोई मर्यादा और न कोई संस्कार फिर भी पूजने पुजवाने का चला प्रचार पक्ष दोनों ही कमजोर हैं गुरु चाहते हैं हमारे भण्डार भरते रहें और हम अधिक से अधिक शिष्यों पर शासन करें। उधर शिष्य चाहते हैं गुरु से हमें आशीर्वाद मिलते रहें, ये वही करें जो हम कहें इनकी बातें मानना हमारे लिए अनिवार्य नहीं। हमें गुरु से धन दौलत मिलती रहे। राम के नाम की तो चर्चा-अर्चा कोसों दूर रहती है। ऐसे दोनों गुरुशिष्यों से आज वातावरण दूषित हो गया है। धर्माचरण न होने से और दुराचरण अधिक होने से गुरुपूर्णिमा जैसे पर्वों की मूलभावना लुप्तप्राय है। विवेकी महानुभावों को इस आपातकाल से स्वयं बचकर प्रेम से दूसरों को भी बचाना चाहिए। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण की निम्नलिखित आज्ञा का पालन करना सभी नित्य कर्तव्य होना चाहिए-

**यः शास्त्रं विधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।**
**न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न पराङ्गतिम्।।**

अर्थात् जो व्यक्ति शास्त्रों में निर्दिष्ट विधियों को छोड़कर मनमाने आचरण की दलदल में धंसा रहता है वह न तो सिद्धि और सुख प्राप्त करता है और न ही परमगति को प्राप्त करता है। श्रुति स्मृति भगवदीय आज्ञाएँ हैं इनका पालन करना प्रत्येक मानव का प्रथम कर्तव्य है।

आशा है गुरु शिष्यों के इस देश में ऐसे आदर्श पुनः प्रकट होंगे जो मानव इतिहास के पुरुषपुंगव बन सकें। साथ ही गुरुडमों से बचकर सच्चे अर्थों में गुरु शिष्य परम्परा पुनः स्थापित होगी।

नमो राघवाय।

**आचार्य दिवाकर शर्मा**
प्रधान सम्पादक

# वाल्मीकिरामायण सुधा ( ५० )

(गतांक से आगे)

❑ धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

सुग्रीव को सान्त्वना देते हुए महाबाहु बलवान श्रीराम ने खेल-खेल में दुन्दुभी राक्षस के शरीर को अपने चरण के अंगूठे से उठाकर दस योजन दूर फेंक दिया। इसी प्रकार जब सुग्रीव ने एक ही बाण से सात ताल के वृक्षों को भेदने की प्रार्थना की तो श्रीरघुनाथ का बाण-

**सायकस्तु मुहूर्तेन सालान् भीत्वा महाजवः।**
**निष्पत्य च पुनः तूर्णं तमेव प्रविवेश ह।।**

एक ही क्षण में सबका भेदन करके वह वेगशाली बाण पुनः श्रीराम के तरकस में प्रविष्ट हो गया। यह देखकर वानरराज सुग्रीव को बड़ा विस्मय हुआ।

**स मूर्ध्ना न्यपतद् भूमौ प्रलम्बीकृतभूषणः।**
**सुग्रीवः परमप्रीतो राघवाय कृताञ्जलिः।।**

सुग्रीव ने हाथ जोड़कर पृथ्वी पर माथा टेक दिया और श्रीराम को साष्टांग प्रणाम किया और नम्रता पूर्वक श्रीराम से कहा-

**सेन्द्रानपि सुरान् सर्वान् त्वं बाणैः पुरुषर्षभ।**
**समर्थः समरे हन्तुं किं पुनर्बालिनं प्रभो।।**

हे पुरुषश्रेष्ठ! भगवन्! आप तो निजबाणों से समरभूमि में इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओं का वध करने में समर्थ हैं फिर बालि को मारना आपके लिए कौन बड़ी बात है।

**येन सप्त महासाला गिरिभूमिश्च दारिताः।**
**वाणैकेन काकुत्स्थ स्थाता ते को रणाग्रतः।।**

हे काकुत्स्थ! जिन्होंने बड़े-बड़े ताल वृक्ष पर्वत, भूमि को एक बाण से विदीर्ण कर डाला ऐसे आपके सामने युद्धभूमि में कौन ठहर सकता है। ऐसा कहते हुए सुग्रीव ने भगवान श्रीराम से बालि का वध करने की प्रार्थना की।

**ततो रामः परिष्वज्य सुग्रीवं प्रियदर्शनम्।**
**प्रत्युवाच महाप्राज्ञो लक्ष्मणानुगतं वचः।।**

सुग्रीव की बात सुनकर महाप्राज्ञ भगवान श्रीराम ने सुग्रीव को गले से लगा लिया और सुग्रीव से बालि को युद्ध में ललकारने के लिए कहा। सुग्रीव की ललकार सुनकर बालि क्रोध में भरकर बड़े वेग से घर से निकला।

**ततः सुतुमुलं युद्धं बालिसुग्रीवयोरभूत्।**
**गगने ग्रहयोर्घोरं बुधांगरकयोरिव।।**

तब बालि और सुग्रीव में बड़ा भयंकर युद्ध छिड़ गया मानों आकाश में बुध और मंगल इन दोनों ग्रहों में घोर संग्राम हो रहा हो। दोनों एक दूसरे पर वज्र के समान घूसों और तमाचों का प्रहार कर रहे थे। उसी समय भगवान श्रीराम ने दोनों को घोर युद्ध करते हुए देखा। वे दोनों अश्विनीकुमारों की भाँति परस्पर मिलते जुलते दिखाई दिये। इसी कारण उन्होंने अपना प्राणांतक बाण नहीं छोड़ा। बालि ने सुग्रीव को लहूलूहान कर दिया और सुग्रीव जैसे तैसे प्राण बचाकर मतंग मुनि के महावन में घुस गए। बालि श्राप के भय से वहाँ नहीं गया तभी भगवान श्रीराम, लक्ष्मण और हनुमान जी के साथ वहाँ आ गए। सुग्रीव के कहने पर भगवान श्रीराम ने कहा कि मुझे स्वर, दृष्टि, पराक्रम में तुम दोनों में कोई अन्तर नहीं दिखा अतः मैंने शत्रुनाशक बाण नहीं छोड़ा। इस बार तुम अपनी पहचान के लिए कोई चिह्न धारण कर लो जिससे द्वन्द्व युद्ध में प्रवृत्त होने पर मैं तुम्हें पहचान सकूँ। समीप ही गजपुष्पी लता देखकर भगवान श्रीलक्ष्मण जी से बोले लक्ष्मण! यह लता उखाड़कर सुग्रीव के गले में पहना दो। तदनन्तर सुग्रीव पुनः

श्रीरघुनाथ जी के साथ बालि से युद्ध करने किष्किन्धापुरी जा पहुँचे।

**ततः स जीमूत कृतप्रणादो**
**नादं ह्यमुञ्चत् त्वरया प्रतीतः।**
**सूर्यात्मजः शैर्यविवृद्धतेजाः**
**सरित्पतिर्वानिल चंचलोर्मिः।।**

ततपश्चात् सुग्रीव भयंकर गर्जना करने लगे मानो वायु के वेग से चंचल हुई उत्तालतरंग मालाओं से नदियों का स्वामी समुद्र कोलाहल कर रहा हो। सुग्रीव की गर्जना सुनकर बालि को बहुत क्रोध आया और–

**शब्दं दुर्मर्षणं श्रुत्वा निष्पपात ततो हरिः।**
**वेगेन च पदन्यासै र्दारयन्निव मेदिनीम्।।**

दुःसह शब्द सुनकर बालि अपने पैरों की धमक से पृथ्वी को विदीर्ण सा करता हुआ बड़े वेग से बाहर निकला। उस समय बालि की पत्नी तारा भयभीत हो उठी और बालि से कहने लगी–

**त्वया तत्र निरस्तस्य पीड़ितस्य विशेषतः।**
**इहैत्य पुनराह्वानं शंकां जनयतीव मे।।**

आपके द्वारा पराजित और पीड़ित होने पर भी सुग्रीव यहाँ आकर आपको युद्ध के लिए ललकार रहे हैं उनका पुनरागमन मेरे मन में शंका सी उत्पन्न कर रहा है। उनकी गर्जना में जो उत्तेजना है इसका कोई सामान्य कारण नहीं होना चाहिए। मेरे विचार से–

**नासहायमहं मन्ये सुग्रीवं तमिहागतम्।**
**अवष्टब्धसहायश्च यमाश्रित्यैष गर्जति।।**

सुग्रीव किसी प्रबल सहायक के बिना यहाँ नहीं आये हैं। उसी के बल पर वे इस तरह गरज रहे हैं। एक दिन कुमार अंगद वन में गये थे वहाँ गुप्तचरों ने उन्हें बताया कि अयोध्यानरेश के दो शूरवीर पुत्र जो श्रीराम और लक्ष्मण के नाम से प्रसिद्ध हैं यहाँ वन में आये हुए हैं।

**सुग्रीव प्रियकामार्थे प्राप्तौ तत्र दुरासदौ।**
**ते तु भ्रातुर्हि विख्यातः सहायो रण कर्मणि।।**
**रामः परबलामर्दी युगान्ताग्निरिवोत्थितः।**
**निवासवृक्षः साधूनामापन्नानां परा गतिः।।**

वे दोनों दुर्जय वीर सुग्रीव का प्रिय करने के लिए उनके पास पहुँच गये हैं। उन दोनों में से जो आपके भाई के युद्धकर्म में सहायक बताये गये हैं वे श्रीराम शत्रुसेना का संहार करने वाले तथा प्रलयकाल में प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी हैं। वे साधु पुरुषों के आश्रयदाता कल्पवृक्ष हैं और संकट में पड़े हुए प्राणियों के लिए सबसे बड़े सहारे हैं।

**आर्तानां संश्रयश्चैव यशसश्चैकभाजनम्।**
**ज्ञानविज्ञानसम्पन्नो निदेशे निरतः पितुः।।**

वे आर्त पुरुषों के आश्रय, यश के एकमात्र भजन, ज्ञानविज्ञान से सम्पन्न तथा पिता की आज्ञा में स्थित रहने वाले हैं। उन राम के साथ विरोध करना उचित नहीं है।

**शूर वक्ष्यामि ते किंचिन्न चेच्छाम्यभ्यसूयितुम्।**
**श्रूयतां क्रियतां चैव तव वक्ष्यामि यद् हितम्।।**

हे शूरवीर! मैं आपसे वही कह रही हूँ जो आपके लिए हितकर है। आप उसे सुनिये और वैसा ही कीजिए–

**यौवराज्येन सुग्रीवं तूर्णं साध्वभिषेचय।**
**विग्रहं मा कृथा वीर भ्रात्रा राजन् यवीयसा।।**

अच्छा यही होगा कि आप सुग्रीव को युवराज पद पर अभिषिक्त कर दीजिए। सुग्रीव आपके छोटे भाई हैं उनके साथ युद्ध न कीजिए।

**दानमानादि सत्कारैः कुरुष्व प्रत्यनन्तरम्।**
**वैरमेतत्समुत्सृज्य तव पार्श्वे स तिष्ठतु।।**

आप दान मान सत्कामादि के द्वारा सुग्रीव को अपना अन्तरंग बना लीजिए जिससे वे इस बैर भाव को छोड़कर आपके पास रह सकें। इस समय भ्रातृप्रेम का सहारा लिए बिना आपके लिए दूसरी कोई गति नहीं है। उस समय तारा ने बालि से उसके हित की बात कही किन्तु तारा की बात बालि को अच्छी नहीं लगी क्योंकि उसके विनाश का समय निकट था

और वह काल के पाश में बँध चुका था। बालि सुग्रीव के पास आया दोनों का घनघोर युद्ध हुआ और दोनों भयंकर गर्जन करते हुए एक दूसरे को डाँट रहे थे।

**हीयमानमथापश्यत् सुग्रीवं वानरेश्वरम्।**
**प्रेक्षमाणं दिशश्चैव राघवः स मुहुर्मुहुः।।**

भगवान ने देखा सुग्रीव हार रहे हैं। बालि ने सुग्रीव को गिरा दिया और छाती पर चढकर बोला तेरा जो सहायक हो आ जाये। बालि ने राम जी को ललकारा। राम जी सामने खड़े और प्रत्यक्षदर्शी वानरों ने बताया कि राम जी के साथ बालि का घोर युद्ध भी हुआ। बालि ने भगवान राम पर बड़े बड़े वृक्ष फैंके सारे वृक्षों को राम जी ने काट दिया। बड़ी बड़ी शिलाएँ फैंकी श्रीराम ने सारी शिलाएँ काट दीं। तब भगवान श्रीराम ने–

**ततो धनुषि संधाय शरमाशीविषोपमम्।**
**पूरयामास तच्चापं कालचक्रमिवान्तकः।।**

अपने धनुष पर विषधर सर्प के समान भयंकर बाण रखा और उसे जोर से खींचा मानो यमराज ने कालचक्र उठा लिया हो।

**तस्य ज्यातलघोरेण त्रस्ताः पत्ररथेश्वराः।**
**प्रदुद्रुवुर्मृगाश्चैव युगान्त इव मोहिताः।।**

धनुष की प्रत्यंचा की टंकार ध्वनि से भयभीत होकर मृग तथा पक्षी भाग खड़े हुए। वे प्रलयकाल के समय मोहित हुए जीवों के समान किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। फिर बाण का सन्धान करके भगवान राम ने एक बाण खींचकर–

**बहु छल बल सुग्रीव करि हिय हारा भय मानि।**
**मारा बाली राम तब हृदय माझ शर तानि।।**

हृदय में एक बाण के लगते ही बालि मर गया। कौन मूर्ख कहता है कि भगवान राम ने छिपकर बालि को मारा। गोस्वामी जी ने भी कहा है–

विटप ओट देखहिं रघुराई यहाँ ओट का अर्थ टेक अर्थात् सहारा है न कि छिपना। बालि नीचे गिरा हाहाकार मच गया। इन्द्र की दी हुई माला के कारण बालि के प्राण नहीं जा रहे हैं अन्यथा उसी समय प्राणान्त हो जाता। धीरे धीरे बालि श्रीराम जी को देख रहा है–

**परा विकल महि शर के लागे।**
**पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगे।।**
**श्याम गात सिर जटा बनाए।**
**अरुन नयन शर चाप चढाए।।**
**पुनि पुनि चितइ चरन चित दीन्हा।**
**सुफल जन्म माना प्रभु चीन्हा।।**
**हृदय प्रीति मुख वचन कठोरा।**
**बोला चितइ राम की ओरा।।**

सुन्दर श्यामल शरीर, शिर पर जटा, लाल नेत्र, धनुष बाण सँभाले हुए राम जी के चरणों को बालि ने बार बार देखा और जान लिया कि ये भगवान हैं। धीरे धीरे भगवान श्रीराम और लक्ष्मण बालि के पास पहुँचे। उन्हें देखकर बालि धर्म और विनय से युक्त वाणी में बोला। बालि की वाणी में तीन प्रकार के लक्षण दिखाई पड़ रहे हैं। सुनने वाले कह रहे हैं कि कठोर है। बालि कह रहा है कि मेरी वाणी विनयपूर्ण है और सरस्वती जी कह रही हैं कि बालि की वाणी धर्मसम्मत है। हृदय में प्रेम के कारण बालि के वचन विनय से पूर्ण हैं वानर होने के कारण मुख से कठोर वचन हैं और राम जी की ओर देख रहा है तो वचन धार्मिक भी हैं। राघव! मैं आपसे कुछ प्रश्न करूँ?

**धर्म हेतु अवतरेउ गोसाईं।**
**मारेहु मोहि व्याध की नाईं।।**
**मैं बैरी सुग्रीव पियारा।**
**कारण कवन नाथ मोहि मारा।**

आपने मुझे किस कारण मारा क्या प्रभु आप बता सकेंगे?

**पराङ्मुखवधं कृत्वा कोऽत्र प्राप्तस्त्वया गुणः।**
**यदहं युद्धसंरब्धस्त्वत्कृते निधनं गतः।।**

आज बालि की अवधारणा बड़ी निर्मल हो गई है। बालि एक बात बहुत स्पष्ट जानता है श्री रामचन्द्र परमात्मा हैं। यदि वे किसी को मरवाना चाहेंगे तो उन्हें स्वयं आने की कोई आवश्यकता नहीं है। जब उनमें यह सामर्थ्य है कि तिनके को वज्र और वज्र को तिनका बना सकते हैं तो क्या वे सुग्रीव में वह बल नहीं दे सकते थे कि जिससे सुग्रीव बालि को मार डालता बालि को मारने का बल भी भगवान श्रीराम सुग्रीव को दे सकते थे। आप एक कल्पना कीजिए कि जब शेषनारायण को पृथ्वी के धारण का सामर्थ्य भगवान ने दे दिया, जब ब्रह्मा जी को सृष्टि रचना का सामर्थ्य भगवान ने दे दिया, जब नारायण को जगत के पालन का सामर्थ्य दे दिया, जब शिव जी को सारे जगत के संहार का सामर्थ्य दे दिया भगवान राम ने तो क्या सुग्रीव को बालि के मारने का सामर्थ्य नहीं दे सकते थे? इस पर हम क्यों नहीं विचार करते? जब विनयपत्रिका में यह वाक्य कहा जा सकता है कि–

**जेहि विधिहिं विधिता हरिहिं हरिता**
**शिवहिं पुनि शिवता दई।**
**सो जानकीपति मधुर मूरति**
**मोदमय मंगलमयी।**

महाभारत में आपने एक प्रसंग सुना होगा कि जब भीमसेन ने दु:शासन को पटक दिया और दु:शासन की भुजा उखाड़ने का निर्णय कर लिया उस समय भीमसेन ने दोनों सेनाओं से कहा कि जिसको भी दु:शासन की रक्षा करने का मन हो, आज आये मैं दु:शासन के साथ दु:शासन के रक्षक को भी चुनौती दे रहा हूँ। और सब तो चुप रहे परन्तु अर्जुन से चुप नहीं रहा गया। अर्जुन ने गाण्डीव उठा लिया तब भगवान श्रीकृष्ण ने कहा क्या बात है अर्जुन? अर्जुन ने कहा भैया ने दोनों सेनाओं को चुनौती दी है मैं जाऊँगा। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा अर्जुन! इस समय भीमसेन वह भीमसेन नहीं है। इस समय मैंने भीमसेन को वह बल दे रखा है जिस बल से मैंने हिरण्यकशिपु के वक्षस्थल को फाड़कर फैंक दिया था। इस समय भीमसेन में साधारण बल नहीं है। तो क्या वह बल इनको (सुग्रीव को) नहीं मिल सकता था? क्यों भगवान राम बालि को मार रहे हैं? इसका सीधा सा अर्थ है कि **भगवान दूसरों को सब कुछ दे सकते हैं पर एक ऐसा व्यक्तित्व है जो दूसरों को नहीं दिया जा सकता वह भगवान में ही रहेगा। वह है भवबन्धन मुक्तिदान। भवबन्धन से मुक्ति देना केवल भगवान के वश का है और किसी के वश का नहीं है। उसे कोई उधार नहीं ले सकता। मोक्ष केवल भगवान दे सकते हैं, परमपद केवल भगवान दे सकते हैं वह उनकी प्रकृति है। जैसे सूर्यनारायण के अतिरिक्त कोई प्रकाश नहीं दे सकता, जैसे चन्द्र के अतिरिक्त कोई शीतलता नहीं दे सकता, जैसे जल के अतिरिक्त कहीं मधुरता नहीं आ सकती इसी प्रकार मुक्तिदान भगवान का असाधारण धर्म है। वह कहीं अन्यत्र जा ही नहीं सकता।** इसलिए बालि ने कहा कि मैं समझ गया कि आपको मुझे मारने से क्या मिला? कुछ भी तो नहीं मिला। मैं लड़ रहा था दूसरे से और आपने मुझे मारा। आपको यदि मरवाना ही था तो मुझे सुग्रीव से मरवा सकते थे। पर आप जानते थे कि बालि इतना बड़ा पापी है कि सुग्रीव के मारने से मर तो जायेगा पर इसको मोक्ष नहीं मिलेगा अत: मेरा भवबन्धन छुड़ाने के लिए आप मुझ पर बाण चलाने का निर्णय लेकर आये आपको प्रणाम है।

क्रमशः........

# श्रीमद्भगवद्गीता ( ८१ )

( गतांक से आगे )

**( विशिष्टाद्वैतपरक श्रीराघवकृपाभाष्य )**

**भाष्यकार–धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर**
**जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज**

**व्याख्या-** यह सत्य ही है कि सभी विरुद्ध धर्म मुझमें ही रहते हैं। इसलिए मेरे यहाँ सब कुछ सम्भव है। **करना न करना अन्यथा करना और विपरीत करना इस सबमें जो समर्थ है उसे ईश्वर कहते हैं।** इसलिए देखो अज अर्थात् अजन्मा होता हुआ भी मैं कौसल्या आदि माताओं के गर्भ से जन्म भी लेता हूँ। आत्मा शब्द का यहाँ स्वरूप अर्थ है। अर्थात् अपरिवर्तनीय स्वरूप वाला होकर भी मैं क्षण में परिवर्तित होता रहता हूँ। इसलिए मुझे राम कहते हैं। राम का अर्थ होता है रमणीय और क्षण क्षण में नया होते रहना ही रमणीयता का स्वरूप है।

**क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः।।**

अथवा आत्मा शब्द शरीर का वाचक है, आत्मा शरीरे, ऐसा कोश भी कहता है। अर्थात् जिसके शरीर का व्यय अर्थात् नाश नहीं होता वही मैं अव्ययात्मा हूँ। जीव जन्मता भी है और मरता भी है। परन्तु मै जन्म लेता हूँ मरता नहीं हूँ। इसलिए भगवान् बहूनि मे, व्यतीतानि जन्मानि, कह रहे हैं परन्तु, मरणानि, नहीं कहते। कारण कि जिस भी शरीर को भगवान् ग्रहण करते हैं वह नित्य ही हो जाता है। पर जीव के यहाँ ऐसा नहीं होता। इसीलिए गीता २/२२ में भगवान् कहते हैं।

''वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि'' न तु नारायणः अर्थात् जीर्ण वस्त्र को छोड़कर नर नये वस्त्रों को धारण करता है नारायण के वस्त्र जीर्ण होते ही नहीं। क्योंकि वह चिरपुरातन और नित्य नूतन हैं। देखो– मैं कभी बालक कभी पौगण्ड, कभी किशोर हो जाता हूँ। बहुत क्या कहूँ। मेरे परिवर्तनों की कला तो देखो। श्री मथुरा के रंगमंच पर कंसवध प्रसंग में एक होते हुए भी मुझ कृष्ण को दर्शकों ने बारह प्रकार से देखा जैसे–

**मल्लन ने वज्र नरभूषण मनुष्यों ने**
**नारियों को दिखा मूर्तिमान मैन रूप में।।**
**गोपन को स्वजन सलोनो नन्द नन्दन में**
**दुष्ट नरपालन को काल के स्वरूप में।।**
**कंस को तो मृत्यु विदुषन को विराट रूप**
**जोगिन को शान्त तत्व परम अनूप मैं।।**
**यादवन को हैं इष्टदेव वसुदेव जू को**
**गिरिधर बालरूप भग्न भवकूप में।।**

यथा–

**मल्लानामशनिर्नृषां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्,**
**गोपानां स्वजनो ऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः।**
**मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगनिामं,**
**वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रंगं गतः साग्रजः।।**

भागवत १०/४३/१७

इस प्रकार अजन्मा होकर जन्म लेने वाला, अव्ययात्मा होकर परिवर्तनशील होता हुआ, भूतों का ईश्वर होकर भी ब्रह्मा से लेकर तृणपर्यन्त जीवों का शासक, कभी अनीश्वर का भी अभिनय करता हूँ। इस प्रकार आत्ममाया अर्थात् अपनी लीलाशक्ति

से अथवा अपनी योगमाया से अथवा अपनी आह्लादिनी शक्ति सीताजी या राधाजी के साथ अपनी प्रकृति को स्वीकार कर अवतार लेता हूँ। कुछ लोग प्रकृति का वैष्णवी माया अर्थ कर लेते हैं पर वह असंगत है। क्योंकि आगे प्रयुक्त आत्ममाया शब्द से उसमें पुनरुक्ति हो जायेगी। वास्तव में प्रकृष्ट है कृति जिसकी वह भगवत्स्वरूपा भगवान की स्वाभाविकी शक्ति है। इसलिए उपनिषद् में श्रुति कहती है– 'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च' 'सम्भवामि' का अर्थ पूर्णरूप से उत्पन्ना होना है। यहाँ सम्भवामि शब्द के सम् उपसर्ग का अर्थ है कि भगवान मां के गर्भद्वार रज पिता के शुक्र समागम क्रिया और गर्भवास आदि किसी भी प्रजनन क्रिया की अपेक्षा नहीं करते। वात्सल्य सम्बन्ध से युक्त भगवान को पुत्र मानने वाले वैष्णव दम्पती का सङ्कल्प ही उनके गर्भाधान की क्रिया है।

भगवान् श्रीराम का कौसल्या में गर्भाधान तो दशरथ जी का हविप्रदान रूप ही है। जैसा कि वाल्मीकि रामायण में कहा भी गया है–

**ततस्तु ताः प्राश्य तमुत्तमस्त्रियो महीपतेरुत्तम पायसं पृथक्।**
**हुताशनादित्यसमानतेजसोऽचिरेण गर्भान् प्रतिपेदिरे ततः।।**

(बा० रा० बाल० १६/३१)

इसीलिए श्रीमानस में भी–

**एहि विधि गर्भसहित सब नारी।**
**भईं हृदय हर्षित सुख भारी।।**

मानस १/१९०/५

अथवा 'माया कृपायां लीलायां' इस कोश के अनुसार यहाँ माया शब्द कृपावाची है। इस प्रकार आत्म अर्थात् नित्य बद्धमुक्त जीवों पर 'मायया' कृपा के कारण अपने स्वभाव को आधार मानकर भक्तवत्सलत्वादि गुणों को प्रकट करने की इच्छा से मैं जन्म लेता हूँ।

अब प्रश्न है कि भगवान् के अवतार में कोई श्रुति भी प्रमाण है? इस प्रश्न का उत्तर है– हैं! जैसे शुक्लयजुर्वेद की संहिता, श्रुति स्पष्ट कहती है–

**प्रजापतिश्चरति गर्भेऽन्तर्जायमानोबहुधाभिजायते।**
**तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीराः। तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वाः।**

शुक्ल यजु० ३१/१९

अर्थात् प्रजाओं के पति साकेतविहारी श्रीराम तथा गोलोक विहारी श्रीकृष्ण कौसल्या आदि माताओं के गर्भ में विचरण करते हैं तथा वे गर्भद्वार आदि की अपेक्षा न करके भी कौसल्या जी की प्रार्थना पर चार रूपों में और देवकी जी की प्रार्थना पर दो रूपों में साधारण बालक का अनुकरण करते हुए प्रकट होते हैं। उनके इस जन्म रहस्य को भगवद्भक्त धीरगण ही जानते हैं। उन परमात्मा में सम्पूर्ण भुवन विराजते हैं। इसी प्रकार कृष्णावतार में वसुदेव जी मानस संकल्प से ही देवकी में गर्भ का आधान करते हैं। इसीलिए भागवत १०/१/१६ में भगवान् शुकाचार्य कहते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने सम्पूर्ण अंशों के साथ वसुदेव के मन में प्रवेश किया। सामान्य जीवात्मा वासनामय पिता के शुक्र में प्रवेश करता है परन्तु भगवान उपासनापूर्ण पिता के मन में प्रवेश कर रहे हैं, यही अन्य जीवों की उनकी विशेषता है। इसी बात को और स्पष्ट करने के लिए भा० १०/२/१८ में शुकाचार्य कहते हैं–

**ततो जगन्मङ्गलमच्युतांशं समाहितं शूरसुतेन देवी।**
**दधार सर्वात्मकमात्मभूतं काष्ठा यथाऽऽनन्दकरं मनस्तः।।**

भा० १०/२/१८

क्रमशः........

गतांक से आगे–

# जय राधा गोविन्द जू

## ( वसिष्ठायनबिहारी श्रीराधागोविन्द जी का विवाह संस्कार )

❑ पूज्यपाद जगद्‌गुरु जी

**जय राधा गोविन्द जू गिरिधर प्राण अधार।**
**कीरति लाडली दूलही दूलह नन्द कुमार।।**

प्रतीक्षा पूर्ण हुई। ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा ७ जून २००९ के दिन जब पूरा का पूरा राघव परिवार एक स्वर्णिम अध्याय जोड़ने के लिए उत्सुक वैष्णवजनों के नयन उस चिरप्रतीक्षित ब्रह्मदम्पती के विवाह की प्रसन्नता में जीने के लिए उत्कण्ठित, सब कुछ नया नया और नया। प्रकृति अपनी प्राकृतिक ऊष्मा को छोड़कर आन्तरिक शीतलता का वितरण कर रही थी और ज्वालापुर के गंगा पैलेस के पास सारे वरयात्री यह उत्सव जीने के लिए उपस्थित हुए। एक ओर नाचने गाने का आनन्द दूसरी ओर कीर्तन की धीर ध्वनि तीसरी ओर सबके मन में एक नया प्रयोग निहारने के लिए उत्कण्ठा से भरा उत्साह और चौथी ओर हास परिहास का सात्विक वातावरण आनन्द ही आनन्द। आनन्दकन्द दम्पती का विवाहोत्सव, सुन्दर बग्घी सजाई गई जिस पर गोविन्द जी को वर वेश में विराजना था और उन्हीं के मित्र होने के कारण मुझे भी उस वरयात्रा में सम्मिलित होने के लिए उसी बग्घी पर बैठना था। मैंने भी अपने जीवन को और उस क्षण को धन्य माना और महात्मा सूरदास जी की वह पंक्ति सहसा मन पर आ गई–

**सूरदास ह्वै कुटिल बराती गीत सुमंगल गैहों।**

मंगल, किसका? मंगलमूल माधव का, मंगलायतन श्रीहरि का, मंगल निकेतन वृन्दावनवीथी विहरणपरायण तरुण वनिताजन गेगीयमान गुण गणगौरव भग्नभक्तरौरव, समभिनवजलधरसुन्दर, गोपालपूगपुरन्दर, सकलकल्याण गुणगणैकमन्दिर, भववारिधिमन्दरमन्दर उन श्यामसुन्दर साक्षान्मन्मथ–मन्मथ का, उन्हीं कोटिकोटिकन्दर्पदर्पदलन का, उन्हीं अघटितघटनापटीयसी माया परिकलन का। शोभायात्रा अपूर्व थी क्योंकि यह लौकिक दम्पती का विवाह नहीं था और ना हीं लौकिक वर की वरयात्रा। ज्वालापुर की गलियों में से, बाजार में से, हाट में से, बाट में से चतुरस्त्र एक अनुपम वातावरण आनन्द का, प्रमोद का, आमोद का और उत्सव का। भगवान रश्मिमाली भी अपनी तीक्ष्ण किन्तु अमृतमय दीघितियों से निहार रहे थे श्रीहरि के इस अभूतपूर्व सौन्दर्य को। नववेश में सजीं माताएँ गा रही थीं–

**गोविन्द जू फूलौ ना समाय**
**लगन आई आँगन में।**

जय जयकार हो रहा था। विवाहे के गीत गाए जा रहे थे। अट्टालिकाओं से महिलाएँ फूलों के गुच्छों की बौछार कर रहीं थीं। और गुलाबजल के फव्वारे पड़ रहे थे। मैं भी एक अन्तरंग अनुभूति कर रहा था और अन्तरंग नेत्रों से इन अनदेखे उत्सवों को जी रहा था। सभी लोग गोविन्द जी पर और मुझ पर भी समय समय पर पुष्पों की वर्षा कर रहे थे। मैं सोच रहा था कि विधाता ने उस प्रेम सरोवर का वातावरण आज उपस्थित कर दिया। इस जेठ के महीने में सावन की हरियाली तीज उपस्थित कर डाली। शीतलता का वातावरण था चारों ओर शीतल पेय पिलाये जा रहे थे। लगभग तीन हजार बाराती उस उत्सव को देखने के लिए आज शोभायात्रा में पदयात्रा कर रहे थे। सभी लोग राधे गोविन्द गोविन्द राधे, गीत गा रहे थे, कोई नाच रहा था कोई उछल रहा था कोई हँस

रहा था कोई प्रभु से विनोद कर रहा था। लगता था कि नन्दगाँव के छोरे बरसाने की सखियों के साथ विनोद कर रहे हैं। बस यही था वातावरण। वहाँ उस समय कोई नहीं था बस नन्दगाँव था और बरसाना गोविन्द थे और राधा जी, गोविन्द के सखा थे और राधा जी की सखियाँ। लगभग तीन घण्टे तक इस शोभायात्रा को जीने के पश्चात् हम सभी अपने परिकर अरविन्द शर्मा जी के निवास पर पहुँचे जहाँ बारातियों का स्वागत होना था। अद्‌भुत स्वागत हुआ, आनन्द हुआ फिर हम 'बन्धन पैलेस' उपस्थित हुए और 'बन्धन पैलेस' में ही आज दिव्य वरवधू का ग्रन्थिबन्धन होना था कदाचित् इसीलिए उसका नाम 'बन्धन पैलेस' पड़ा होगा। क्योंकि जिनके स्मरण से जीव की ग्रन्थियाँ छूट जाती हैं उन्हीं का आज ग्रन्थिबन्धन होना था। सुन्दर मण्डप सजा, हाल खचाखच भर गया। किसी प्रकार की धक्का मुक्की नहीं थी, किसी प्रकार का कोलाहल नहीं था, पुलिस की व्यवस्था भी नहीं की गई थी। अनुशासन था परब्रह्म परमात्मा का और अनुशासन था एक मर्यादामय जगद्‌गुरु की आचार्यपरम्परा की प्राचीर का। सब लोग जयजयकार कर रहे थे। प्रारम्भ हुआ विवाह महोत्सव वैदिक विधान से। जिस प्रकार नारद जी के पौरोहित्य में ब्रह्मा जी ने श्रीकृष्ण जी को राधा जी का कन्यादान किया था वही उत्सव फिर दुहराया गया और मेरे अर्थात् जगद्‌गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य के पौरोहित्य में कन्यादान सम्पन्न हुआ। गोविन्द जी के श्रीहस्तकमल में राधा जी को समर्पित किया सुमन मंगल ने और उनके पति प्रवीण मंगल ने। वेदध्वनि से वातावरण रसमय हो गया। समय समय पर वेदध्वनि हो रही थी और उसी समय राधाकृष्ण की अठखेलियों के गीत रसिकजन गा रहे थे। कहाँ गया समय किसी को पता ही नहीं चला और भागवत जी के दशमस्कन्ध के ३०वें अध्याय का ३२वाँ श्लोक अब चरितार्थ हो गया–

**इमान्यधिक मग्नानि पदानि वहतो वधूम्।**
**गोप्यः पश्यत कृष्णस्य भाराक्रान्तस्य कामिनः।।**

श्रीभागवतकार ने राधा जी को वधू कहा। वधू उस महिला को कहते हैं जो अपने भाई के द्वारा दी हुई लाजा की आहुति करती है। आज लाजाहुति हुई, कन्यादान हुआ। स्पष्ट वृषभानु ने घोषणा की–

**इयं राधा मम सुता सहधर्मचरी तव।**
**प्रतीक्ष्य चैनां भद्रं ते पाणिं गृहणीष्व पाणिना।।**

'राधानाम्नीं कन्यां सर्वाभरणभूर्षितां ददामि विष्णवे तुभ्यं ब्रह्मलोक जिगीषया'। यह राधा मेरी सुता आपकी धर्मचारिणी है इनको एक बार पत्नी रूप में निहारे इनका हाथ पकड़िये, आपको नजर न लग जाय। सम्पूर्ण आचरणों से भूषित राधा नामक इस कन्या को अब मैं ब्रह्मलोक को जीतने की इच्छा से भगवान विष्णु को दे रहा हूँ। आप महाविष्णु हैं। ग्रहण कीजिए राधा को। मैं भी उसी उत्साह से मन्त्र पढ़ रहा था और मेरे साथ मन्त्र पढ़ने वाले तीन शिष्य भी थे चन्द्रदत्त सुवेदी, केशवराज पोखरियाल और कृष्णकुमार चौबे। उस समय मेरी अग्रजा आप सबकी बुआ जी एक अभूतपूर्व भावना में डूब रहीं थीं। उनकी निर्दोष आँखों में आनन्द के आँसू उमड़ तो रहे थे पर अमंगल के भय से उन्हें गिराने में वे संकोच कर रही थीं। अद्‌भुत दृश्य था। सब लोग गोविन्द जी को निहार रहे थे। उस विग्रह में एक प्रकार की वासनानिग्रहता और उपासनायुक्त अनुग्रह का उभय संगम था। जय जयकार हो रही थी। सब कुछ वैदिक

विधान से हुआ। भाँवरी हुई और भाँवरी में सात बार अग्नि की परिक्रमा की राधा गोविन्द ने। और जब कहा 'सतईं भँवरिया हे तब राधा श्याम की' तब चारों ओर जय जयकार की ध्वनि गूँजने लगी। सिन्दूरदान की विधि सम्पन्न हुई। गोविन्द जी ने राधा जी को सिन्दूर दान किया और सप्तपदी के विधान के आधार पर दोनों का ग्रन्थिबन्धन सम्पन्न हो गया। चिरप्रतीक्षित उत्सव फिर दुहराया गया द्वापर का वातावरण कलियुग में आया। वृन्दावन का वह प्रेम सरोवर लगता था कि 'बन्धन पैलेस' में समाहित हुआ। द्वापर कलियुग के आँचल में छिप गया। उत्साह से दोनों ओर से कार्यक्रम हुए। मेरी ओर का प्रतिनिधित्व कर रहे थे राकेश मित्तल और सारिका मित्तल और कन्या पक्ष का प्रतिनिधित्व कर रहे थे प्रवीण मंगल और सुमन मंगल। यद्यपि दोनों ही मेरे शिष्य हैं परन्तु इस बार गोविन्द के मन में क्या उत्सुकता हुई कि उन्होंने अपना विवाह रचा ही लिया। और लगता है कि लोगों का जो सहस्त्रों वर्षों का अपवाद था उस अपवाद पर आज विराम का चिह्न लगा, लोगों के मुँह में ताला लगा।

मैंने भी कह डाला कि राधाकृष्ण के दाम्पत्य के सम्बन्ध में सन्देह सर्वथा निर्मूल है **और मैं कह सकता हूँ कि अठारहों पुराणों में श्रीराधा जी के विवाह की चर्चा है।** और भागवत जी में तो १८ हजार बार श्रीराधा जी का स्मरण किया गया है। श्रीराधा जी श्रीकृष्ण की नित्यसहचरी हैं। जैसे श्रीरामचरितमानस के अयोध्याकाण्ड के दोहा क्रमांक ९७ में सीता जी ने श्रीराम को आर्यपुत्र कहा–

**आरति बश सनमुख भयउँ बिलग न मानव तात।**
**आरजसुत पद कमल बिनु बादि जहाँ लगि नात।।**

वहाँ जैसे सीता जी ने श्रीराम को आर्यपुत्र कहा उसी प्रकार सम्पूर्ण भागवत में एक ही बार आर्यपुत्र शब्द का प्रयोग हुआ। वह भी श्रीराधा जी ने किया श्रीमद्भागवतम् के दशम स्कन्ध के ४७वें अध्याय के २१वें मालिनी छन्द के श्लोक के प्रथम चरण में–

**अपि बह मधुपुर्यामार्यपुत्रोऽधुनाऽऽस्ते**
**स्मरति स पितृगेहान् सौम्यबन्धूंश्च गोपान्।**
**क्वचिदपि स कथा नः किङ्करीणां गृणीते**
**भुजमगुरुसुगन्धं मूर्ध्न्यधास्यत् कदा नु।।**

श्रीराधा जी ने श्रीकृष्ण को आर्यपुत्र कहा। उस बार आर्यपुत्र का विवाह सम्पन्न हुआ था राधा जी के साथ और उसको बहुत कम लोगों ने देखा। मुझे तो लगता है कि मर्त्यलोक में किसी ने नहीं देखा तो कदाचित् उसी पुण्य की भरपाई करने के लिए गोविन्द जी ने मेरे मन में ऐसी प्रेरणा दी होगी इस बार कि राधा गोविन्द जी का विवाहोत्सव रचाया ही जाय। और उस बार जो लोगों ने नहीं देखा है वे देखें और द्वापरकालीन श्रीराधाकृष्ण विवाह के दृश्य पर भी प्रश्नचिह्न लगायें। उस दृश्य पर कलियुग हँसे और द्वापर से यह कहे कि तुमने तो श्रीराधाकृष्ण का विवाह सबको नहीं दिखाया, चुपके से करवाया पर मैंने सबके सामने श्रीराधागोविन्द का विवाह कराया। जय जयकार हुई, धन्य हुआ वातावरण, धन्य हुईं श्रीराधा जी श्रीकृष्ण को पाकर और श्रीकृष्ण जी धन्य हुए श्रीराधा को पाकर दोनों चकोर दोनों चन्द्रमा। इस प्रकार आज मैं इतना ही कह सकता हूँ कि–

**जय राधा गोविन्दजू नागर जुगल किशोर।**
**दुलहिन दूलह मुदित मन जय 'गिरिधर' चित चोर।।**
**श्री राधागोविन्द भगवान की जय।।**

❑❑❑

# भारत को गारत होने से बचाओ

❑ डॉ० उन्मेष राघवीय

वैसे तो पूरा संसार ही भयंकरतम विभीषिकाओं की चपेट में है किन्तु वर्तमान भारत तो अनेक ज्वलन्त समस्याओं से जूझ रहा है। चारों ओर भ्रष्टाचार को बोलबाला है। आतंकवाद महादैत्य के रूप में मंडरा रहा है। प्रदूषण चाहे किसी भी प्रकार का हो सभी के लिए सिरदर्द बना हुआ है। बलात्कार-हत्याकाण्ड एवं निरपराध प्राणियों की निर्मम हत्या जैसे कुकृत्यों ने मानव का घिनौना चित्र बना दिया है। बोट और नोट खींचने की लालसा ने राजनीतिक नेताओं को मदान्ध बना दिया है। कहाँ ले जाएगी यह महत्वाकांक्षा सभी को? अपने अतीत को भुलाकर भविष्य के अन्धकार के प्रति उदासीन रहने वाले तथाकथित प्रगतिशील नेताओं ने भारतीय समाज को विकृत कर दिया है। पश्चिम की परम्पराओं के अन्धानुकरण का परिणाम अन्धकार में आकण्ठ डूबना है। जिस क्षेत्र में भी देखो तथाकथित प्रगति के गीत गाए जा रहे हैं, सफलता के सहरे पढ़े जा रहे हैं। विदेशी कम्पनियों के आकर्षण के सागर में युवावर्ग डूब चुका है। दूरदर्शन तथा स्वतन्त्र प्रसारणों के प्रचलन ने भोगविलास की सामग्री, गर्हणीय विज्ञापन और मनमाने तथ्य प्रस्तुत करके वाल तथा युवापीढ़ी को भारतीय संस्कृति से विच्छिन्न करने में कोई कमी नहीं छोडी है। प्राचीन शिक्षा, संस्कार, मर्यादा, जीवनमूल्य, साहित्य तथा जीवनशैली सबका उन लोगों के द्वारा उपहास किया जा रहा है जो न सत्ता में हैं न प्रभाव में हैं और न ही पारम्परिक चिन्तन पथ के पथिक हैं। अधिक क्या कहा जाए विश्व के अनेक देश, अनेक मत-पन्थ-मजहब-रिलीजन एकमात्र भारतीय संस्कृति को नष्ट भ्रष्ट करने पर तुले हैं। इसी संस्कृति में रचे-बसे रहने पर भी भोगवादी जनता भौतिकवाद के चक्कर में मौलिकता को विस्मृत कर चुकी है। आज मानवता के उद्घोष में दानवता ही छिपकर बैठी है। धर्म और सत्कर्म की आड़ में पाखण्ड पनप रहा है। समस्याएँ सुरसा की भाँति खड़ी हैं। गोवंश का हजारों-लाखों की संख्या में संहार हो रहा है। जिस देश में स्वाहाकार-स्वधाकार होते थे वहाँ आज हाहाकार हो रहा है। पारिवारिक कलह और दुश्चरित्रता के कारण आज खुले आम हत्याएँ हो रही हैं। अधिक क्या कहा जाए, आज विकास के नाम पर विनाश अधिक हो रहा है।

ऐसी विषम परिस्थिति में धर्मप्रेमी जनता किंकर्तव्यविमूढ़ सी हो रही है। राष्ट्र और धर्म दोनों की दुर्दशा देखकर यद्यपि सज्जनों को आन्तरिक बहुत दुःख होता है। किन्तु यदि अपने धर्मशास्त्रों को हम देखें तो वहाँ युगानुरूप समाधान मिल सकते हैं। जैसे भगवान् के दिव्यचरित्रों का अध्ययन अध्यापन बढ़ाया जाए। उनमें निहित शिक्षाओं को जीवन में उतारा जाए। वेदादि धर्मशास्त्रों में वर्णित स्वधर्म अथवा स्वकर्तव्य के प्रति सतत जागरूक रहा जाए। वैचारिक उदारता का यह अर्थ कभी न लिया जाना चाहिए कि हमारी संस्कृति हमारी विरासत, हमारी माँ-बहिन की लाज दानव-दल लूट रहा हो और हम 'अहिंसा परमोधर्मः' के ही गीत गाते रहें।

अहिंसा का यह अर्थ तब उचित होगा कि अत्याचारियों की हिंसा भी अहिंसा माना जाय। अपने राष्ट्र और धर्म के गीत गाने वाले तथा तदनुरूप इनकी रक्षा के लिए तत्पर रहने वाले लोगों का संघटन बनाकर राष्ट्रद्रोहियों को ललकारना चाहिए। ऐसे सांसदों और विधायकों का चयन करके ही लोकसभा और विधानसभा में भेजना चाहिए जो भारत के कण कण के प्रति प्रेम और इसकी रक्षा के लिए मनवाणी और कर्म से संकल्प लें। लोकतन्त्र में संघटित रहकर ही दुर्लभ वस्तु को सुलभ किया जा सकता है। इतना ही क्यों, जो तत्त्वदर्शी मनीषी और हितैषी हों उनको उच्चपदों पर परामर्श हेतु नियुक्त किया जाए। जो चिन्तनशील–मननशील महात्मा–सन्त–आचार्य हों उनके चरणों में वर्तमान समस्याओं का समाधान पूछा जाए। कुलगुरु वसिष्ठ, समर्थ गुरु रामदास महान नीतिज्ञ आचार्य चाणक्य जैसे महापुरुषों ने इस देश की दिशा और दशा बदली है। उन्होंने ही अपने तपोबल से सुयोग्य शिष्यों को इस धरती का अलंकार बनाया है। आवश्यकता केवल सत्संकल्प की, शिव संकल्प की अथवा संकल्पबल की।

आशा है भारतीय जनमानस एवं जनमानस के हितचिन्तक भारत को गारत होने से बचाने की पहल प्रारम्भ करेंगे।

**भारत माता की जय।**

❑❑❑

# सच्ची भक्ति

❑ **शिवकुमार गोयल**

धर्मशास्त्रों के प्रकांड विद्वान संत अनमीषि को शास्त्रीय ज्ञान के कारण 'अक्षर महर्षि' कहा जाता था। वह आश्रम में छात्रों को ज्ञान–दान करने में लगे रहते थे।

एक संत उनके आश्रम में आए। उन्होंने महर्षि से कहा, 'आप शास्त्रों के ज्ञाता हैं। शास्त्रानुसार क्या दान देते हैं?' उन्होंने कहा, 'मैं छात्रों को निःशुल्क पढ़ाता हूँ। यह भी तो ज्ञान–दान ही है।' संत जी ने शास्त्र का प्रमाण देकर कहा, 'सद्गृहस्थ संत को अन्नदान भी जरूर करना चाहिए। भूखों व जरूरतमंदों को अन्नदान करना सर्वोत्कृष्ट धर्म है।' महर्षि ने संकल्प किया, 'आज से अन्नदान करके ही भोजन किया करूँगा।' उन्होंने प्रतिदिन दरिद्र को भोजन कराना शुरू कर दिया।

एक दिन आश्रम में कोई भी भोजन मांगने नहीं आया। उन्हें लगा कि आज उनका संकल्प पूरा नहीं होगा। ऋषि दंपति भूखे की खोज में आश्रम से निकल गए। उन्होंने एक वृक्ष के नीचे एक वृद्ध कुष्ठ रोगी को कराहते हुए देखा। उन्होंने उससे विनयपूर्वक कहा, 'तुम भूखे हो, आश्रम में चलकर भोजन करो।' वृद्ध ने कहा, 'मैं चांडाल हूँ। मैं आश्रम में कैसे जाऊँगा?'

ऋषि का हृदय उसके शब्द सुनकर करुणा से भर गया। उन्होंने कहा, 'चांडाल और ब्राह्मण में कोई अन्तर नहीं होता, हम एक ही परमात्मा के अंश हैं।' वृद्ध उनके साथ आश्रम में आ गया। ऋषि दम्पति ने भोजन कराया व उसका उपचार किया।

ऋषि को सोते समय अनुभूति हुई कि भगवान कह रहे हैं, यही सेवा मेरी सच्ची भक्ति है।

❑❑❑

# श्रीरामकथा की प्रासंगिकता

❑ श्रद्धेय चन्द्रबली 'हंस'

रामकथा मानव-मन की व्यथा से उद्भूत है। इस सृष्टि में जो भी श्रेष्ठतम है वह अट्टहास के कोलाहल से नहीं वरन् पीड़ा के क्रंदन से उद्भूत है। आदिकाव्य रामायण का जन्म भी पीड़ा की कोख से ही हुआ है-

**मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।**
**यत् क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।**

वा०रा० २१/१५

रामकथा व्यथित मानव-हृदय का सहज रसोद्रेक है। वह समस्त मानवीय करुणा का आसव है इसीलिये मानवमात्र की पीड़ा की राम-बाण औषधि भी है। जब तक धरती पर मनुष्य रहेगा, उसकी पीड़ा रहेगी तब तक रामकथा की प्रासंगिकता बनी रहेगी।

कुछ लोग बासीपन और परिवर्तन की बातें करते हैं, वे आधुनिकता, समकालीनता और प्रगतिशीलता की बातें करते हैं। उनके लिये अतीत दगे हुये कारतूस के खोखे की तरह व्यर्थ है और इसे जेब में रखने के बजाय फेंक देने में ज्यादा समझदारी है। पर यह पश्चिम का दृष्टिकोण हो सकता है, हमारे भारतीय मनीषियों का दृष्टिकोण ठीक इसके उलट है। हम अपने अतीत को दगे हुये कारतूस के खोखे की तरह नहीं मां की उस गोद की तरह देखते हैं जिसकी प्रासंगिकता और उपयोगिता प्रसव के बाद पोषक के रूप में बनी रहती है।

हमारे लिये हमारा अतीत उपेक्षणीय नहीं, वंदनीय है क्योंकि इसके आधान में हमारे पूर्वजों का अमृत चिंतन वैसे ही भरा पड़ा है जैसे धात्री माँ के स्तनों में दूध। अब एक बच्चे के लिये माँ के दूध की जो प्रासंगिकता है ठीक वहीं प्रासंगिकता हमारे लिये हमारे अतीत की है।

इस सृष्टि और समाज का सब कुछ परिवर्तनीय नहीं है। प्रत्येक परिवर्तन सापेक्ष है तथा उसे किसी न किसी स्थायी (अपेक्षाकृत) आधार की अपेक्षा होती है। नदी प्रतिपल बदलती है पर उसके अस्तित्व को पहचान देने वाले कगार नहीं, यदि कगार भी बहने लगे तो नदी मर जायेगी। कुलाल का चाक घूमता है पर वह धुरी नहीं जो स्थायी रहकर चाक को घूर्णन की शक्ति और आधार प्रदान करती है। गति और स्थायित्व के बीच का संतुलन ही इस सृष्टि और समाज के अस्तित्व का रहस्य है। मानव समाज कुलाल के चाक की तरह ही गतिशील है और इसे गतिशील रहना भी चाहिये, लेकिन वह धुरी नहीं घूमनी चाहिये, जिस पर यह चक्र घूम रहा है। रामकथा वह धुरी है जिस पर भारतीय समाज घूर्णित, गतिमान और प्रगतिशील है। रेलगाड़ी दौड़ती है उसकी पटरी नहीं। रामकथा भारतीय समाज की प्रगति की वही पटरी है। भारतीयता न तो भौगोलिकता में है और न स्थापत्य या खान-पान और पहनावे में। आधुनिकता, समकालीनता और प्रगतिशीलता की पहुँच इन्हीं स्तरों तक चुक जाती है। लेकिन कुछ चीजें हैं जो इनसे ज्यादा गहराई पर हैं और इन परिवर्तनों और गति के लिये आधार का काम करती हैं, उन चीजों को हम मानव-जीवन-मूल्यों के रूप में जानते हैं। वे जीवन-मूल्य रामकथा में राम के गुणों के रूप में संगुम्फित हैं। यथा, श्रीराम नियतात्मा,

महावीर्यवान, द्युतिमान, धृतिमान, जितेन्द्रिय, बुद्धिमान, नीतिमान, वाग्मी, श्रीमान, शत्रुसंहारक, सुदर्शन, धर्मज्ञ, सत्यसंध, प्रजापालक, शास्त्रज्ञ, तत्वज्ञ, स्मृतिमान, प्रतिभावान, सर्वलोकप्रिय, साधु, उदार-हृदय, विलक्षण, समदर्शी, समुद्र की तरह गंभीर, हिमालय की तरह दृढ़, क्रोध में कालाग्नि सदृश, क्षमा में पृथ्वीतुल्य, त्याग में कुबेर और सत्य में धर्मराज के समान हैं। यदि प्राचीन काल के मनीषी इस तरह के मानव की कल्पना वर्तमान को टिक्थ के रूप सौंपते हैं तो आधुनिकता के नाम पर आप इसमें क्या घटा-बढ़ा सकते हैं? क्या इस तरह के मनुष्य की आज आवश्यकता नहीं है? इनमें से कौन से ऐसे गुण हैं जिन्हें आप आज अप्रासंगिक घोषित कर सकते हैं। ये ही मानवीय गुण भारतीय समाज द्रष्टाओं के स्वप्न और भारतीय समाज की धुरी रहे हैं, और आज भी हैं, और इसीलिये आज भी रामकथा की प्रासंगिकता है।

कुछ चीजें ऐसी होती है जो प्रांसगिकता के बौने प्रश्न चिह्न से काफी ऊपर होती हैं। व्यक्ति के आँसू और मुस्कान इसी कोटि में आते हैं। क्या आज का आदमी अब इसलिये नहीं मुस्कुरायेगा कि मनुष्य पाषाण काल से मुस्कुराता आ रहा है और अब यह मुस्कुराना रूढ़ि में बदल गया है या वह इसलिये आँसू नहीं बहायेगा क्योकि यह एक आदिम परम्परा है। अरे भाई! शस्त्र बदल सकते हैं, शस्त्र पकड़ने वाले हाथ और उन हाथों के मजहब बदल सकते हैं, शस्त्र के आघात झेलने वाले वक्ष और उनकी जातियाँ बदल सकती हैं पर क्या हर आघात के बाद उठने वाली चीखें, बहने वाले आँसू और महसूस की जाने वाली पीड़ायें भी बदल सकती हैं। आधुनिकता की सनक में आप उन चीजों की क्यों उपेक्षा करते जा रहे हैं जो काल के साथ परिवर्तित नहीं होती हैं वरन् काल के परिवर्तन की मानदण्ड बनती हैं। चूँकि रामकथा आमजन की व्यथा-कथा है इसीलिए कालातीत है। काल नहीं वरन् राम-कथा काल के बासीपन और अप्रासंगिकता की घोषणा कर सकती है। हमारी संस्कृति कालजयी इसीलिए है क्योंकि हमने कालजयी मूल्यों को सामाजिक धुरी के रूप में मान्यता प्रदान की है। अतः रामकथा चिरपुरातन और चिरनवीन तथा सार्वयुगीन प्रासंगिकता से परिपूर्ण है क्योंकि यह 'आमजन' की आँसू और मुस्कान की कथा है।

"रामकथा आम-जन के आँसू और मुस्कान की कथा" पर कुछ लोगों की भृकुटियाँ तन सकती हैं और वे इसे आमजन की नहीं अभिजन की गाथा घोषित करने की जिद तक कर सकते हैं। प्रस्तुत अनुच्छेद ऐसे ही लोगों के नाम समर्पित है। निवेदन इतना ही है कि आप जिद नहीं सार्थक बहस के धरातल पर उतरें। श्रीराम जीवन के संघर्ष में न तो अवतार की तरह उतरते हैं और न राजकुमार की तरह। वे "तापस बेस बिसेष उदासी" के रूप में अपने पिता के राज्य से निर्वासित होते हैं। वे अकिंचनता के उस सीमा पर खड़े हैं कि नदी की उतराई में पत्नी की अँगूठी तक देनी पड़ती है। "प्रभुहि सकुच एहि नहि कछु दीन्हा।" उनका अवतारी रूप मात्र अपने भक्तों के लिये है और उन्हीं के सामने वे अपनी भगवत्ता प्रकट करते हैं। अपने प्रतिपक्षियों से तो वे मनुष्यता की सीमा में ही रहकर निपटते हैं। मेघनाद हो या रावण ये सभी युद्ध में अमानवीय और अति मानवीय शक्तियों का प्रयोग करते हैं पर श्रीराम मनुष्यता के धरातल पर ही खड़े होकर इनका जवाब देते हैं। राक्षसी शक्तियों का सामना करते

समय वे न तो राक्षस बन जाते हैं और न देव। मनुष्यता की सीमा में रहकर भी हम अपनी पैशाचिक समस्याओं से जूझ सकते हैं और उन्हें पराजित कर सकते हैं, यही श्रीराम का मनुष्य मात्र को सर्वोपरि संदेश है। रावण जब नहीं मरता है तो श्रीराम विभीषण से उसकी मृत्यु का रहस्य पूछते हैं पर स्वयं के अन्तर्यामित्व को प्रयोग नहीं करते हैं–

**मरइ न रिपु श्रम भयउ बिसेषा।**
**राम बिभीषन तन तब देखा।।**

राम रावण का युद्ध एक आमजन और शोषक तथा उत्पीड़क पूँजीवादी ताकतों में बीच में इसलिये और भी है क्योंकि श्रीराम रावण से आम जन की तरह लड़ते हैं अभिजन की तरह नहीं। ''रावन रथी बिरथ रघुबीरा'', नाथ न रथ नहि तन पद त्राना'', क्या ये उदाहरण पर्याप्त नहीं? राम के साथ चतुरंगणी सेना नहीं वानर सेना है जिनके अस्त्र उनके लात–हाथ और दाँत हैं– ''मुठिकन लातन दाँतन काटहिं'' क्या कोई राजा था राजकुमार या अभिजन इन्हीं संसाधनों से लड़ाई लड़ता है? क्या राम केवल अपनी लड़ाई लड रहे हैं? क्या यह युद्ध में शामिल वानर भालुओं एवं आदिवासियों की स्वयं की लड़ाई नहीं है? क्या यह आमजन की शोषण एवं उत्पीड़न के विरुद्ध लड़ाई नहीं है? क्या एक मात्र सीता का ही हरण रावण ने किया था?

**देव जच्छ गंधर्व नर किन्नर नागकुमारि।**
**जीति बरी निज बाहुबल बहु सुंदर बन नारि।**

क्या हनुमान जी ने सीता जी की खोज के समय इन हरी गई स्त्रियों की दुर्दशा स्वयं नहीं देखी थी–

**''नर-नाग सुर गंधर्व कन्या रूप पुनि मन मोहहीं''।**

राम जिस अन्याय के विरूद्ध युद्धरत हैं उस अन्याय का शिकार वह पूरा युग है और श्रीराम के अपने युग के लिये लड़ रहे हैं मात्र स्वयं के लिये नहीं। श्रीराम की विशेषता यह है कि वे अन्याय एवं अत्याचार को मात्र आँसू बहाकर क्लीब पुरुष की तरह चुपचाप सह नहीं लेते हैं वरन् सब कुछ दाव पर लगाकर इसके विरूद्ध उठ खड़े होते हैं। अब प्रश्न है कि क्या अन्याय एवं अत्याचार के विरूद्ध संघर्ष किसी भी युग में अप्रांसगिक हो सकता है? तत्कालीन देवताओं की तरह ही अन्याय एवं अत्याचार से समझौता कर अर्वाचीन रावणों की गोद में बैठकर मलाई काट रहे बुद्धिजीवियों को इस बात का जवाब देना चाहिये?

आज राम मात्र इसीलिये वन्दनीय नहीं है कि अवतार थे। आज के अनास्थावादी वैज्ञानिक युग में संभव है हम अवतारी राम को बहुत देर तक बचा कर न रख पायें पर– दे रही दिखाई भग्न, मग्न रत्नाकर की वह राह, एक निर्वासित का उत्साह। इस अदम्य उत्साह को भी क्या कोई वैज्ञानिक युग मार सकता है? इस अत्यन्त यान्त्रिक युग में एक मात्र प्रेम और उत्साह ही तो मानव पूँजी के रूप में बचे रह गये हैं जिसे अभी तक मशीनों के हवाले नहीं किया जा सका है? क्या कभी प्रेम और उत्साह भी जो रामकथा की विशेषता है अप्रांसगिक हो जायेगा? क्या नितांत दबे, कुचले, निहत्थे, शोषित, अशिक्षित सर्वहारा जन को प्रेम की संजीवनी से सींचकर और मानवोचित अदम्य उत्साह से भरकर, जयशील बनाकर उस युग के सबसे बड़े दुर्दांत अत्याचारी के विरुद्ध सन्नद्ध कर देने का उत्कट अध्यवसाय जो मानवीय इतिहास में केवल रामकथा के नाम दर्ज है, किसी भी युग के लिये दुर्लभ

प्रेरणास्रोत नहीं है? विशेषकर आज के मरियल भारतीय समाज के लिये जहाँ नंगा खुदाऊ से बंगा सिद्ध हो रहा है। भयभीत समाज के लिये जब तक भय-अभय की आवश्यकता रहेगी, तब तक रामकथा की प्रासंगिकता रहेगी। क्योंकि श्रीराम के जीवन का संकल्प ही है-

**सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।**
**अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम।।**

वा०रा० ६११८/३३

श्रीहनुमान जी रामकथा में श्रीराम के लीला सहचर हैं। पूरे रामचरित मानस में हनुमान जी किसी भी शस्त्र से नहीं लड़ते हैं जहाँ तक कि अपने चिर परिचित हथियार गदा से भी नहीं। रामचरित मानस के हनुमान गदाधर हनुमान नहीं हैं। कवितावली में गोस्वामी तुलसीदास जी हनुमान की युद्ध कला का वर्णन करते हैं-

**हाथिन सो हाथी मारे,**
**घोरों सो संघारे घोर,**
**रथनि सो रथ बिदरनि बलवान की।**
**लाबीं लूम लसत,**
**लपेटी पटकत भट,**
**देखौ देखौ लखन लरनि हनुमान की।**

अर्थात् रावण के साधनों से ही रावण का विनाश करते हैं। वे लंका की आग से ही लंका जलाते हैं और हमें संदेश देते हैं कि पापी का विनाश स्वयं उसी के पाप से हो जाता है। इस ऐतिहासिक सत्य का अब तक कोई अपवाद नहीं है कि जो लोग तलवार के बल पर जीते हैं, एक दिन उनकी गर्दन उसी तलवार की नोक से कटती है, बस आवश्यकता है तो उस तलवार को थोड़ी सी जुम्बिश देने की। और जब तक यह आवश्यकता बनी रहेगी राम और रामकथा की प्रासंगिकता बनी रहेगी। अतः हम बाल्मीकि रामायण के इस सुभाषितम् के साथ अपनी बात समाप्त करना चाहेंगे कि-

**यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।**
**तावद् रामायण कथा लोकेषु प्रचरिष्यति।।**

वा०रा० ११३/३६

अर्थात् जब तक इस पृथ्वी पर नदियों और पर्वतों की सत्ता रहेगी, तब तक संसार में रामायण कथा का प्रचार होता रहेगा। ❑❑❑

## पूज्यपाद जगद्गुरु जी के आगामी कार्यक्रम

❑ प्रस्तुति-पूज्या बुआ जी

| दिनाङ्क | विषय | आयोजक तथा स्थान |
|---|---|---|
| ०७ जुलाई २००९ | श्रीगुरु पूर्णिमा | श्रीचित्रकूट में ही मनायी जाएगी |
| १९ सितम्बर २००९ से २७ सितम्बर २००९ तक | श्रीमद्भागवत कथा | नैमिषारण्य जिला-सीतापुर (इस कथा का आमन्त्रण अगले पृष्ठ पर देखें) |

**विशेष- ७ जुलाई २००९ से ४ सितम्बर २००९ तक श्रीतुलसीपीठ चित्रकूट में पूज्यपाद जगद्गुरु जी का चातुर्मास्यव्रत तथा 'विभीषणशरणागति' पर प्रतिदिन दिव्य प्रवचन होगा।**

## विश्वविलक्षण विभूति धर्मचक्रवर्ती श्रीवैष्णवचक्रचूड़ामणि, महामहोपाध्याय जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज के श्रीमुख से प्रथम बार

# श्रीनैमिषारण्य तीर्थ में 1008 श्रीमद्भागवत पारायण महायज्ञ

भगवत्प्रेमी महानुभाव,

ज्ञातव्य है कि आगामी 19 सितम्बर से 27 सितम्बर 2009 तक अठासी हजार ऋषियों की तपस्थली नैमिषारण्य तीर्थ में पूज्यपाद जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज के श्रीमुख से श्रीमद्भागवत कथा का विशाल एवं ऐतिहासिक आयोजन किया जा रहा है।

यह महायज्ञ विश्वकल्याणार्थ एवं यजमानों के पितरों को मोक्ष प्रदान कराने हेतु पितरों की मोक्षदायिनी नगरी नैमिषारण्य में हो रहा है जिसमें आप सभी सम्मिलित होकर तथा उसके यजमान बनकर पुण्य लाभ प्राप्त करें इस महायज्ञ में 1008 यजमानों के भाग लेने की सुविधा है। जो भी महानुभाव पितरों के नाम से, सुख-शान्ति-समृद्धि व परिवार कल्याण हेतु भागवत पाठ कराना चाहें वे शीघ्र ही अपना नाम अंकित दें। यजमानों की आवास-भोजन की व्यवस्था आयोजन समिति ही करेगी।

एक यजमान के लिए देय राशि 5,100·00 मात्र है। तथा जो यजमान महानुभाव अपने मातृ पक्ष-पितृपक्ष व श्वसुर पक्ष तीनों के नाम गोत्र से पाठ कराना चाहें वे 15,300·00 रुपये देकर अपना नाम लिखा सकते हैं।

**निवेदक**

**पं० अमरनाथ शास्त्री**

**आयोजक**

**हरे राम हरे कृष्ण सत्संग सेवासमिति**

**जगद्गुरु रामभद्राचार्य धाम**

**( बस स्टैण्ड के पास ) नैमिषारण्य**

**जि० सीतापुर ( उ०प्र० )**

**फोन नं०- 05865-251272**

**मो०- 09918331369, 09936377207**

ड्राफ्ट बनवाने का पता-

**हरे राम हरे कृष्ण सत्संग सेवा समिति**

**( मिश्रिख कम नीमसार 0210112 ) इलाहाबाद बैंक के नाम बनवाकर समिति के नाम नैमिषारण्य के नाम भेज सकते हैं।**

❑❑❑

# भागवत सप्ताह विवरणिका

❑ पूज्यपाद जगद्गुरु रामानन्दाचार्य
स्वामी श्रीरामभद्राचार्यजी महाराज

शौनक सूत सम्बाद भागवत महिमा
विषादजुत भगति नारद की बतकही।
गगनगिरा गभीर भागवत श्रवण ही,
सत्कर्म मनुज को विरुद बाँकुरो लही।।
कृष्णरूप भागवत आत्मदेव को चरित,
गोकर्णदेव धुन्धुकारी मोक्ष निर्वही।
ज्ञान औ वैराग्य शुचि जागरण भयहरण,
भागवतमहातम 'गिरिधर' कथा कही।।१।।
मङ्गलशौनक प्रश्न शुकजन्म हरि अवतार,
कथा भागवत व्यास प्रगटायो है।
उत्तरागरभ-रक्षा भीष्म मोक्ष राजा जन्म,
उदय विजय शुक उपदेश भायो है।।
विदुर उद्धव वार्ता मैत्रेय भागवत कथा सृष्टि,
प्रजापति जन्म वाराह जू जायो है।
जय-विजय को शाप हिरण्याक्षवध हरिकृत,
सप्ताह प्रथमदिन 'गिरिधर' गायो है।।२।।
कपिल जनम देवहूति उपदेश नवकन्या जस,
दत्तजग्य नारायण भायो है।
शम्भु ध्रुव को चरित पृथु अवतार कथा,
प्राचीनबर्हिगुन प्रचेता सुहायो है।।
प्रियव्रतकथा ऋषभावतार उपदेश,
भरत को चरित विराग सरसायो है।
जड़भरत रहनि रहूगण ते कहनि,
सप्ताह द्वितीय दिन 'गिरिधर' गायो है।।३।।
भूगोल खगोल विधि नरक निसिधि सिधि,
हरिनाम महिमा प्रताप ताप तायो है।
अजामिल उपाख्यान दिति अदिति संतान,
नारायणकवच सुजन मन भायो है।।
दधीचि को अस्थिदान वृत्रवध को बखान,
चित्रकेतु मरुत जन्म कथा थायो है।
प्रह्लाद जनम मरम सुधरम गुन,
हरिरस भगति विलास मन भायो है।।
नरसिंह अवतार हिरण्यकशिपुबध,
सप्ताह तृतीय दिन गिरिधर गायो है।।४।।
विमलगजेन्द्रमोक्ष समुद्रमन्थनकथा,
कच्छप धनवन्तरि मोहिनी प्रगटायो है।
बलिजय अश्वमेध वामनावतार भिक्षा,
गङ्गाजन्म मत्स्य अवतार मन भायो है।।
अम्बरीश सगर दिनेश बंश नृपकथा,
रामचन्द्र आविर्भाव सुख सरसायौ है।
चन्द्रवंश पुरुयदुकथा कृष्ण को जन्म,
सप्ताह चतुर्थदिन गिरिधर गायो है।।५।।
नन्दोत्सव पूतनाशकट तृणावर्त हरि,
बाललीला दधिचोरी व्रजमाटी खायो है।

उलूखलबन्धन यमलाजुन उधारि कान्ह,
वृन्दावन जाइ गाइ बछरु चरायो है।।
वकवत्स अधवधि नागनाथि अग्निपियो,
गिरिधरेउ गोपी प्रेम रासरस छायो है।
मथुरागमन कंशबध रुक्मिणी विवाह,
सप्ताह पञ्चम दिन गिरिधर गायो है।।६।।
प्रद्युम्न जनम दिव्यमहिषी वरण भौम-
वध षोडशसहस्त्र नारिब्याहि लायो है।
पारिजात हरौ सुरजीति वाणभुजकाटि,
ऊषा अनिरुद्ध को विवाह रचवायो है।।
पौण्ड्रशिशुपाल दन्तवक्र विदूरथदलि,
पारथनिमित्त महाभारत करायो है।
सुदामा को मीत कृष्णचन्द्र द्वारकाधीश
सप्ताह के छठे दिन गिरिधर गायो है।।७।।
यादवकुमार परिहासमिस विप्रशाप,
मूसल जनम कुल नाश दरशायो है।
वसुदेव नारदनिमित्त नवयोगेश्वर,
कथा व्यथा हरनि उद्धवगीता गायो है।।
कृष्णलीला सम्वरण कलिधर्म को कथन,
परीक्षितगोलोकगमन मुनि भायो है।
पुराणसंहिताविधि मार्कण्डेय मायाविधि,
सप्ताह सप्तमदिन गिरिधर गायो है।।८।।

❑❑❑

गुरौ प्रसन्ने परमः प्रसीदति
गुरौ विषण्णे वृषणो विषीदति।
गुरौ च तुष्टे ननु लोकसम्पदो
गुरौ हि रुष्टे विपदः पदे पदे।।

महाकवि स्वामी रामभद्राचार्य प्रणीत
श्रीभार्गवराघवीयम् ३/८०

**कृपाटीका-** गुरुदेव के प्रसन्न होने पर परमेश्वर प्रसन्न होते हैं। गुरुदेव के दुःखी होने पर भगवान् विष्णु दुःखी हो जाते हैं। सद्गुरु के सन्तुष्ट होने पर संसार की सारी सम्पत्तियाँ आ जाती हैं और गुरुदेव भगवान् के रुष्ट होने पर पग-पग पर विपत्तियों के दर्शन होते हैं।

❑❑❑

# सादरमभिनन्दनम्

**श्री लक्ष्मी वेंकटेश्वर परब्रह्मणे नमः**

**श्रीमते रामानुजाय नमः**

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्री रामभद्राचार्या–णां श्रीभक्त्युद्यान दिव्यदेश प्राङ्गणे श्री वेंकटेशदेव भगवत्कृपाकटाक्ष पुरस्तात् साधु मंगलाशासनपूर्वकं श्रीत्रिदण्डिदेवस्थानस्थान्यासिपीठाधीश्वर द्वारा सादरमभिनन्दनम्–

**रामानन्दे चरणकमले रामभक्ति प्रबन्धे**
**श्रद्धाभक्त्या चरणशरणे पूर्णलब्धाश्रयत्वम्।**
**सेवाभावं प्रभुवरदया प्राप्तविद्यानिधित्वं**
**यस्याद्यात्र प्रकटमहिमा रामभद्रार्यकः सः।।**

**ध्यानज्ञाने शमदमयुतो रामभद्राभिधानः**
**शास्त्राचार्यो ललितवचनै रामभक्तिं प्रबोध्य।**
**भक्तान् सर्वान् रघुवरपदे सेवकत्वे नियुज्य**
**भूयाद्भूमौ सदयरसिको रामभद्रार्यलीनः।।**

**नानाशास्त्रप्रखरविदुषो वेदवेदान्तगम्यः**
**शान्तोदान्तः सुश्रुतिनयनो रामरक्षारसौघः।**
**श्रीरामस्य सरसवचनैर्यस्य विद्यावधानात्**
**सोऽयं भूयादभिमत गुरू रामभद्रार्यकोऽसौ।।**
**विशिष्टाद्वैत सिद्धान्ते मर्मज्ञो राममन्त्रदः।**
**रामभद्र प्रसादेन रामभक्ति प्रवर्धनः।।**

**वेद विद्यावगाहेन धर्मधाम प्रबोधकः।**
**चित्रकूट वरे धाम्नि रामानन्दार्यपीठगः।।**

**वेदवेदाङ्ग निष्ठातो धर्मशास्त्र प्रवाचकः।**
**जगद्वन्द्यो जगद्गुरुर्वर्धतामभिवर्धताम्।।**
**रामभक्ति प्रवृत्या वै सर्वसामर्थ्य साधकः।**
**ज्ञान ध्यान भयो योगी रामभद्रार्य सङ्गमः।।**

**सर्वोपनिषदामर्थे रामायण रसार्द्रधीः।**
**चित्रकूट कलालीनो भासते भास्करद्युतिः।।**
**मोहाऽज्ञान निरासाय समेषां हृदयङ्गमः।**
**तुलसीधाममठाधीशो रामभद्रोऽभिनन्द्यते।।**

**रामलीलालवेलीना दृष्टिरन्तः प्रकाशिनी।**
**यस्यानन्दमयी वाणी ब्रह्मानन्दप्रदायिनी।।**
**रामकथारसाह्लादे रामभद्रप्रसन्नधीः।**
**देवारण्य सतां संघे जायतां शुभदर्शनः।।**

**रामभद्र प्रबोधेन भक्तभाग्य प्रवर्धिनी।**
**कथानन्दमयी रम्या रामानन्द निबन्धिनी।।**
**रामभद्रप्रसादेन व्यासेनार्थ प्रियाध्रुवम्।**
**भूयाद् भक्तिमयी गंगा पैकवली सुसङ्गमा।।**

❑❑❑

गतांक से आगे

# शिखा की वैज्ञानिकता का रहस्य

❑ पूज्यपाद पं० दीनानाथ शास्त्री सारस्वत

(१२) कई व्यक्ति ऊपर कहे पक्ष की सिद्ध्यर्थ 'यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव' (यजुः १७/४८) यहां 'विशिखा इव' का 'विगतशिखाः- शिखाहीनाः' अर्थ करके अपने इष्ट पक्ष को सिद्ध करना चाहते हैं, यह ठीक नहीं। इस मन्त्र में ग्रीष्ममूलक उष्णता के कारण शिखा कटवाना अथवा शीत होने से शिखा रखवाना नहीं कहा गया। यहाँ विशेषण 'कुमार' है, तो क्या बड़ों को गर्मी नहीं लगती?' तब उनका यह प्रमाण-प्रदर्शन व्यर्थ है। क्योंकि इससे उस पक्ष की सिद्धि नहीं।

वस्तुतः उक्त मंत्र में 'विशिखाः का विशेष्य कुमाराः' है, 'ग्रीष्मखिन्ना नराः' नहीं। उसका एक अर्थ है 'विविधशिखावन्तः'। कुमारावस्था में कई अपने प्रवरानुसार पाँच शिखा या तीन शिखा रखते हैं, जैसे कि 'प्रयोगरत्न' में कहा है- 'मध्ये शिरसि चूड़ा स्याद् वासिष्ठानां तु दक्षिणे। उभयोः पार्श्वयोरत्रिकश्यपानां शिखा मता'। 'माधवीय में भी ऐसा ही कहा है। आपरतन्य में भी इसी प्रकार कहा है- 'तूष्णीं केशान् विनीय यर्थार्षे शिखाः निदधाति' (आप.गृ.१६-१५) तथा ऋषिप्रवर-संख्यया। 'अथैनमेकशिखस्त्रिशिखः पञ्चशिखो वा यथा वा एषां कुलधर्मः स्यात् यथर्पिं शिखां निदधाति।' (बोधा० गृ० २।४।१७-१८) 'संस्कारभास्कर' में भी कहा है- 'दक्षिणतः चूडा वसिष्ठानाम्' (४०।२) 'उभयतोऽत्रिकश्यपानाम्' (३) 'पञ्चचूडा अङ्गिरसः' (५)। स्वा० दयानन्दजी ने भी अपनी 'संस्कारविधि' में लिखा है- '(चूड़ाकर्म में) पाँचों ओर थोड़ा-थोड़ा केश रखावे' (७६ पृष्ठ)। अपने यजुर्वेदभाष्य में भी स्वामी जी ने लिखा है- 'यथा विगत शिखा विविधशिखा या, बिना चोटी के वा बहुत चोटियोंवाले बालकों के समान बाणा आदि शस्त्र-अस्त्रों के समूह अच्छे प्रकार गिरते हैं'। इस प्रकार 'विशिखाः' का 'विविधशिखाः' भी अर्थ हुआ।

चूडाकर्म संस्कार में मध्यवाली शिखा को छोड़कर शेष शिखाओं का मुण्डन करा दिया जाता है। इसीलिए 'यज्ञोपवीतविधि' में आता है- 'तासां मध्यशिखावर्जम् उपनयने वपनं कार्यम्'। 'जैमिनिगृह्यसूत्र' में भी कहा है- 'सर्वाणि लोमनखानि वापयेत् शिखावर्जम्' (१।१८) फलतः उन्हीं विविध शिखाओं को सूचित करने वाला उक्त मन्त्र है। यदि यहाँ 'विशिखाः' का 'शिखाहीनाः' अर्थ किया जाय तो उपमानोपमेयभाव घटित नहीं होता। 'विशिखा बाणाः सम्पतन्ति' यह उपमेय वाक्य है, 'विशिखाः कुमाराः सम्पतन्ति' यह उपमान-वाक्य है, बाण शिखाहीन नहीं होते, किन्तु शिखाहीन ही होते हैं। 'शिखा' होती है उनके पंख, तभी तो बाणों की गति तेज हो जाती है। इसी कारण आगे क्रिया है- 'सम्पतन्ति' सम्यक् पतन्ति (खूब उड़ते हैं) शिखा- (पंख) हीन बाणों की सम्पात क्रिया (उड़ना क्रिया) नहीं होती। इससे उक्त मन्त्र से शिखाहीनता सिद्ध नहीं होती। एक प्रश्न होता है कि तब तो 'सशिखा इव' पाठ होता, 'विशिखा इव' क्यों? इस पर उत्तर है कि 'विशिष्ठा-गोखुरपरिमाणा शिखा येषाम्' यहाँ 'वि' का

अर्थ 'विशिष्ट' अर्थात् गोखुरपरिमाण वाली शिखा है; अथवा 'वि' का अर्थ 'विविधाः शिखाः येषाम्' यह भी हो सकता है जैसे कि- 'प्रयोगरत्न' आदि के अनुसार पहले दिखाया जा चुका है। अथवा 'शिखाहीनता' का भी अर्थ हो तो वहाँ मध्य की शिखा से भिन्न शिखाओं का राहित्य ही इष्ट है। कौमार्य में उनका मुण्डन हुआ करता है-यह पहले ही कहा जा चुका है। इससे भी उक्त पक्ष (गर्मदेश में शिखा काटने) की सिद्धि नहीं होती।

मीमांसा आदि में तो इसी (कुमारा विशिखा इव) मन्त्र को शिखा स्थापन में मूलक कहा है। जैसे कि- 'मीमांसादर्शन' (१।३।१) सूत्र के भाष्य में शवरस्वामी ने स्पष्ट लिखा है- 'गोत्रचिह्न' शिखाकर्मः दर्शनं च- 'यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव' इति। 'चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः। 'कर्तव्यं श्रुतिनोदनात्' (२।३५) इस मनु-पद्य की टीका में कुल्लूकभट्ट ने लिखा है- 'श्रुतिनोदनात्- 'यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव' इति मन्त्रलिङ्गात्'। यहाँ पर श्रीकुल्लूकभट्ट ने उक्त मन्त्र को शिखास्थापक ही माना है। उक्त पद्य में नारायण नामक टीकाकार ने भी लिखा है-'श्रुतेः मन्त्ररूपायाश्चोदनाया लिङ्गतया प्रवर्तकत्वात्। मन्त्रश्च 'यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमाराः विशिखा इव'। यहाँ भी वही बात हुई। यही राघवानन्द ने भी लिखा है- 'श्रुतिनोदनात् -यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव' इति श्रुतेः। इस प्रकार 'काठकगृह्यसूत्र के ४०।१६ सूत्र के व्याख्यान में देवपाल ने भी कहा है- 'श्रुतिमूलकमेतत् कर्म-इति प्रदर्शितम् - 'यत्र बाणा निष्पतन्ति कुमारा विशिखा इव' इत्यादिना।

(१३) अब एक प्रश्न बच जाता है- 'यदि शिखाराहित्य अवैदिक है; तथा 'कुमारा विशिखा इव' में 'विशिष्टशिखाः' वा 'विविधशिखाः' यह अर्थ है; तो यजुर्वेद वाजसनेयी-संहिता के भाष्यकार उबट-महीधर आदि ने इसका 'विगत-शिखाः' वा 'शिखा-हीनाः' यह अर्थ क्यों लिखा है? इससे तो शिखाछेदन ही सिद्ध होगा- इस पर यह जानना चाहिये कि- उबट-महीधर के उक्त व्याख्यान से भी उक्त अभिप्राय की सिद्धि नहीं हो सकती। उनके आशय पर भी विचारना चाहिये। वह आशय यह है जैसे शिखाहीन बाण गिर ही जाया करते हैं, लक्ष्यवेध रूप उन्नति नहीं कर सकते; वैसे ही शिखाहीन कुमार ही पतन को प्राप्त करते हैं; उन्नति प्राप्त नहीं कर सकते। तभी तो कषायरस वाले सोम के पान में अप्रवृत्त होते हुए कुमारों को लोभ भी यही दिया जाता था कि-इसके पीने से तुम्हारी शिखा बढ़ जायगी 'शिखा ते वर्धते वत्स! गुडूचीं श्रद्धया पिब'। इस प्रकार यहाँ 'संपतन्ति का 'सम्यक् पतन्ति अवनतिं प्राप्नुवन्ति' 'अवनति प्राप्त करते हैं' अर्थ होने से 'विशिखाः का 'शिखाहीनाः' अर्थ से समन्वय हो जाता है। बात वही हमारी आकर निकली कि-शिखाहीन अवनति को प्राप्त करते हैं। प्रतिपक्षियों की इससे इष्ट-सिद्धि न हुई। इस प्रकार शिखा का धारण उन्नति-क्रिया का साधक सिद्ध हुआ। इसीलिए 'काठकगृह्यसूत्र' (४०।७) में देवपाल ने व्याख्या की है- 'निःशिखत्वं तु अमङ्गलधर्मोऽरिष्टहेतुः। तथा च पठन्ति- 'अमेध्यमेतत् शिरोऽशिखम् , यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव' इति निन्दावादः। इससे हमारा अभिप्राय ही पुष्ट हुआ।

क्रमशः........

# कालिका दशकम्

❑ पूज्यपाद जगद्गुरु जी

विराजमानामलमुण्डमालिकां
कृपालुचित्तां हिमशैल बालिकाम्।
प्रपन्नभक्तालि वरूथपालिकां
त्रिलोकवन्द्यां प्रणमामि कालिकाम्।।१।।

प्रचण्ड पञ्चास्य शुभासनास्थितां
महाबलां वर्धित भक्त वैभवाम्।
भवोद्भवां भावितभाववल्लभाम्
सुरेन्द्रवन्द्यां प्रणमामिकालिकाम्।।२।।

निसर्गनीलोत्पलदामवर्चसं
स्वभक्ततोषार्थ समिद्धतेजसम्।
प्रचण्डकालानल कोटिभीषणां
दुरन्तसत्त्वां प्रणमामि कालिकाम्।।३।।

महेन्द्रपूज्यां विवुधैरभिष्टुतां
निपीत दैत्येन्द्र शरीर शोणिताम्।
त्रिशूलनिर्मूलित शूल संहतिं
कृपालु सत्वां प्रणमामि कालिकाम्।।४।।

श्रुतिप्रतिष्ठा दनुजेन्द्रमर्दिनीम्
स्मृतिप्रणम्यां प्रणतार्तिनाशिनीम्।
स्वखड्गंसम्मर्दितरक्तबीजकां
महाकरालां प्रणमामि कालिकाम् ।।५।।

अगाधवीर्याम्बुधि भीषणोच्छल-
त्तरङ्गमालार्दित दैत्यकुञ्जराम्।
प्रचण्डवक्त्राग्नि निदग्धदानवां
जगत्प्रणम्यां प्रणमामि कालिकाम्।।६।।

समुण्डमालां गणनीय गौरवां
सदाप्रपन्नार्दित घोर सैरवाम्।
निमग्नशूलाम्बुधि रक्तबीजकाम्
तमालवर्णां प्रणमामि कालिकाम्।।७।।

महानुभावां तरलांतपस्विनीं
हरप्रसादां तरुणीं तरस्विनीम्।
सदादिशक्तिं जननीं च तामसीम्
तमोनिहन्त्रीं प्रणमामि कालिकाम्।।८।।

त्रिताप पापापहहासशालिनीं
महायुधां तर्जित राक्षसाधमाम्।
सुपीठसंस्थां यमुनाजलप्लुतां
सरोजनेत्रां प्रणमामि कालिकाम्।।९।।

नवाम्बुदाभां भवभामिनीमहं
प्रचण्डहुंकारयुतां खलार्दिनीम्।
स्वभक्तकामप्रद कामधुग्गवीम्
दशेद्यदोषं प्रणमामि कालिकाम्।।१०।।

श्रीरामभद्राचार्येण कालिका दशकं मुदा।
गीतं सुरेन्द्र संतुष्ट्यै भूयान्मोदाय वै सताम्।।

❑❑❑

# समदर्शी बनो समवर्ती नहीं

❑ परमवीतराग स्वामी रामसुखदास जी महाराज

(वे सन्त-महापुरुष-आप्तपुरुष धन्य हैं जिनके चिन्तन-मनन-लेखन-दर्शन से जनमानस की बुद्धि भगवान के नाम-रूप-लीला-धाम के श्रवण तथा दर्शन में लगकर मनुष्य जीवन को कृतार्थ बना देती है। ऐसे ही महापुरुषों में परमवीतराग स्वामी रामसुखदास जी का नाम विश्वविख्यात है। प्रस्तुत हैं आपके अमृत वचन, जिनसे पाठक को तत्त्वदर्शन के ज्ञान का सुअवसर तो प्राप्त होगा ही उसके जीवन में सकारात्मक परिवर्तन भी आ सकता है।)

**-प्रधान सम्पादक**

आजकल समता पर विशेष चर्चा चल रही है। सबके साथ समता का बर्ताव करो-ऐसा प्रचार किया जा रहा है। परन्तु वास्तव में समता किसे कहते हैं और वह कब आती है-इसे समझने की बड़ी आवश्यकता है।

समता कोई खेल-तमाशा नहीं है, प्रत्युत परमात्मा का साक्षात् स्वरूप है। जिनका मन समता में स्थित हो जाता है, वे यहाँ जीते जी ही संसार पर विजय प्राप्त कर लेते हैं और परब्रह्म परमात्मा का अनुभव कर लेते हैं *। यह समता तब आती है, जब दूसरों का दुःख अपना दुःख और दूसरों का सुख अपना सुख हो जाता है। गीता में भगवान् कहते हैं-

**आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।**
**सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः।।**

(६/३२)

'हे अर्जुन! जो पुरुष अपने शरीर की तरह सब जगह सम देखता है और सुख अथवा दुःख को भी सब जगह सम देखता है, वह योगी परम श्रेष्ठ माना गया है।'

जैसे शरीर के किसी भी अङ्ग में पीड़ा होने पर उसके दूर करने की लगन लग जाती है, ऐसे ही किसी प्राणी को दुःख, सन्ताप आदि होने पर उसको दूर करने की लगन लग जाय, तब समता आती है। सन्तों के लक्षणों में भी आया है-

**'पर दुख दुख सुख सुख देखे पर'।।**

(मानस ७/३८/१)

जब तक अपने सुख की लालसा है, तब तक चाहे जितना उद्योग कर लें, समता नहीं आयेगी। परन्तु जब हृदय से यह लगन लग जायगी कि दूसरों को सुख कैसे पहुँचे? उसको आराम कैसे हो? उनको लाभ कैसे हो? उनका कल्याण कैसे हो? तब समता स्वतः आ जायगी। इसका आरम्भ सर्वप्रथम अपने घर से करना चाहिये। हृदय में ऐसा भाव हो कि किसी को किञ्चिन्मात्र भी दुःख या कष्ट न पहुँचे, किसी का कभी अनिष्ट न हो। चाहे मैं कितना ही कष्ट पाऊँ पर मेरे माता-पिता, स्त्री-पुत्र, भाई-भौजाई आदि को सुख होना चाहिये। घरवालों को सुख पहुँचाने से अपने हृदय में शान्ति आयेगी ही। जहाँ अपने घर का भी सम्बन्ध नहीं है, वहाँ सुख पहुँचायेंगे तो विशेष आनन्द की लहरें आने लग जाएगी। परन्तु ममतापूर्वक

---

* **इहैप तैर्जितः सर्गो येषं साम्ये स्थितं मनः।**
**निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्माणि ते स्थिताः।।** (गीता ५/१९)

सुख पहुँचाने से हमारी उन्नति नहीं होगी। जहाँ हमारी ममता न हो, वहाँ सुख पहुँचायें अथवा जहाँ हम ममतापूर्वक सुख पहुँचाते हैं, वहाँ से अपनी ममता हटा लें–दोनों का परिणाम एक ही होगा।

चित्रकूट में लक्ष्मण जी भगवान् राम और सीता जी की सेवा कैसे करते हैं, यह बताते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं–

**सेवहिं लखनु सीय रघुबीरहि।**
**जिमि अबिबेकी पुरुष शरीरहि।।**

(मानस २/१४२/१)

अर्थात् लक्ष्मण जी भगवान् राम और सीता जी की वैसे ही सेवा करते हैं, जैसे अज्ञानी मनुष्य अपने शरीर की सेवा करता है। अपने शरीर की सेवा करना, उसे सुख पहुँचाना समझदारी नहीं है। अपने शरीर की सेवा तो पशु भी करते हैं। जैसे, बँदरी की अपने बच्चे पर इतनी ममता रहती है कि उसके मरने के बाद भी वह उसके शरीर को पकड़े हुए चलती है, छोड़ती नहीं। परन्तु जब कोई वस्तु खाने के लिये मिल जाती है, तब वह स्वयं तो खा लेती है पर बच्चे को नहीं खाने देती। बच्चा खाने की चेष्टा करता है तो उसे ऐसी घुड़की मारती है कि वह चीं-चीं करते भाग जाता है। अतः ममता के रहते हुए समता का आना असम्भव है।

जिससे हमें कुछ लेना नहीं है, जिससे हमारा कोई स्वार्थ नहीं है, ऐसे व्यक्ति के साथ भी हम प्रेमपूर्वक अच्छा-से-अच्छा बर्ताव करें, जिससे उसका हित हो। कोई व्यक्ति मार्ग में भटक गया है, उसे मार्ग का पता नहीं है और वह हमसे पूछता है। हम उसे बड़ी प्रसन्नता से मार्ग बतायें अथवा कुछ दूर तक उसके साथ चलें तो हमें हृदय में प्रत्यक्ष सुख का, शान्ति का अनुभव होगा। परन्तु यदि हम जानते हुए भी उसे मार्ग नहीं बतायेंगे तो हमारे हृदय में सुख नहीं होगा। यह अनुभव की बात है, कोई करके देख ले। किसी को प्यास लगी है तो उसे बता दे कि भाई, इधर आओ, इधर ठण्डा जल है। फिर हम अपना हृदय देखें। हमारे हृदय में प्रसन्नता आयेगी, सुख आयेगा। यह सुख हमारा कल्याण करने वाला है। दूसरा दुःख पाये पर मैं सुख ले लूँ– यह सुख पतन करने वाला है। इससे न तो व्यवहार में हमारी उन्नति होगी और न परमार्थ में। हम सत्सङ्ग का आयोजन करते हैं। उसमें आने वाले व्यक्तियों के बैठने की व्यवस्था करते हैं तो उनसे प्रेमपूर्वक कहें कि आइये, यहाँ बैठिये। उन्हें वहाँ बैठायें, जहाँ से वे ठीक तरह से सुन सकें। वे आराम से कैसे बैठ सकें? ठीक तरह से कैसे सुन सकें–ऐसा भाव रखकर उनसे बर्ताव करें। ऐसा करने से हमारे हृदय में प्रत्यक्ष शान्ति आयेगी। पर वहीं हुक्म चलायें कि क्या करते हो? इधर बैठो, इधर नहीं तो बात वही होने पर भी हृदय में शान्ति नहीं आयेगी। भीतर में जो अभिमान है, वह दूसरों को चुभेगा, बुरा लगेगा। ऐसा बर्ताव करें और चाहें कि समता आ जाय तो वह कभी आयेगी नहीं।

सबके हित में जिसकी प्रीति हो गयी है, उन्हें भगवान् प्राप्त हो जाते हैं– **'ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः'** (गीता १२।४)। कारण कि भगवान् प्राणिमात्र के परम सुहृद हैं (गीता ५।२९) वे प्राणिमात्र का पालन-पोषण करने वाले हैं। आस्तिक-से-आस्तिक हो अथवा नास्तिक-से-नास्तिक, दोनों के लिये भगवान् का विधान बराबर है। एक व्यक्ति बड़ा आस्तिक है, भगवान् को बहुत मानता है और उन्हें पाने के लिये साधन-भजन करता है और एक व्यक्ति ऐसा नास्तिक है कि संसार से भगवान् का खाता उठा देना चाहता है। भगवान् को मानने से और

भगवान् के कारण ही दुनिया दुःख पा रही है, भगवान् नाम की कोई चीज है ही नहीं–ऐसा उसके हृदय में भाव है और ऐसा ही प्रचार करता है। ऐसे नास्तिक–से–नास्तिक व्यक्ति की भी प्यास जल मिटाता है और यह जल आस्तिक–से–आस्तिक व्यक्ति की भी प्यास मिटाता है। जल में यह भेद नहीं है कि वह आस्तिक की प्यास ठीक तरह से शान्त करे और नास्तिक की प्यास शान्त न करे। वह समान रीति से सबकी प्यास मिटाता है। ऐसे ही सूर्य समान रीति से सबको प्रकाश देता है, हवा समान रीति से सबको श्वास लेने देती है, पृथ्वी समान रीति से सबको रहने का स्थान देती है। इस प्रकार भगवान् की रची हुई प्रत्येक वस्तु सबको समान रीति से मिलती है।

समता का अर्थ यह नहीं है कि समान रीति से सबके साथ रोटी–बेटी (भोजन और विवाह) का बर्ताव करें। **व्यवहार में समता तो महान् पतन करने वाली चीज है। समान बर्ताव यमराज का, मौत का नाम है; क्योंकि उसके बर्ताव में विषमता नहीं होती।** चाहे महात्मा हो, चाहे गृहस्थ हो, चाहे साधु हो, चाहे पशु हो, चाहे देवता हो, मौत सबकी बराबर होती है। इसलिये यमराज को 'समवर्ती' (समान बर्ताव करने वाला) कहा गया है *। अतः जो समान बर्ताव करते हैं, वे भी यमराज हैं।

पशुओं में भी समान बर्ताव पाया जाता है। कुत्ता ब्राह्मण की रसोई में जाता है तो पैर धोकर नहीं जाता। ब्राह्मण की रसोई हो अथवा हरिजन की, वह तो जैसा है, वैसा ही चला जाता है; क्योंकि यह उसकी समता है। पर मनुष्य के लिये यह समता नहीं है, प्रत्युत महान् है। समता तो यह है कि दूसरे का दुःख कैसे मिटे, दूसरे को सुख कैसे हो, आराम कैसे हो, ऐसी समता रखते हुए बर्ताव में पवित्रता, निर्मलता रखनी चाहिये। बर्ताव में पवित्रता रखने से अन्तःकरण पवित्र, निर्मल होता है। परंतु **बर्ताव में अपवित्रता रखने से, खान–पान आदि एक करने से अन्तःकरण में अपवित्रता आती है, जिससे अशान्ति बढ़ती है।** केवल बाहर का बर्ताव समान रखना शास्त्र और समाज की मर्यादा के विरुद्ध है। इससे समाज में संघर्ष पैदा होता है।

वर्णों में ऊँचे हैं और शूद्र नीचे हैं–ऐसा शास्त्रों का सिद्धान्त नहीं है। ब्राह्मण उपदेश के द्वारा, क्षत्रिय रक्षा के द्वारा, वैश्य धन–सम्पत्ति, आवश्यक वस्तुओं के द्वारा और शूद्र शरीर से परिश्रम करके सभी वर्णों की सेवा करें। इसका अर्थ यह नहीं है कि दूसरे अपने कर्तव्य–पालन में परिश्रम न करें। प्रत्युत अपने कर्तव्य –पालन में समान रीति से सभी परिश्रम करें। जिसके पास जिस प्रकार की शक्ति, विद्या, वस्तु, कला आदि है, उसके द्वारा चारों ही वर्ण चारों वर्णों की सेवा करें, उनके कार्यों में सहायक बनें। परन्तु चारों वर्णों की सेवा करने में भेदभाव न रखें।

आजकल वर्णाश्रम को मिटाकर पार्टीबाजी हो रही है। आज वर्णाश्रम में इतनी लड़ाई नहीं है, जितनी लड़ाई पार्टीबाजी में हो रही है–यह प्रत्यक्ष बात है। पहले लोग चारों वर्णों और आश्रमों की मर्यादा में चलते थे और सुख–शान्तिपूर्वक रहते थे। आज वर्णाश्रम की मर्यादा को मिटाकर अनेक पार्टियाँ बनायी जा रही है, जिससे संघर्ष को बढ़ावा मिल रहा है। गाँवों में सब लोगों को पानी मिलना कठिन हो रहा है। जिसके अधिकार में कुआँ है, वे कहते हैं कि

* 'समवर्ती परेतराट्' (अमरकोष १।१।५८)

कि तुमने उस पार्टी को वोट दिया है, इसलिये तुम यहाँ से पानी नहीं भर सकते। माँ, बाप और बेटा– तीनों अलग–अलग पार्टियों को वोट देते हैं और घर में लड़ते हैं। भीतर में वैर बाँध लिया कि तुम उस पार्टी के और हम इस पार्टी के। कितना महान् अनर्थ हो रहा है!

यदि समता लानी हो तो दूसरा व्यक्ति किसी भी वर्ण, आश्रम, धर्म, सम्प्रदाय, मत आदि का क्यों न हो, उसे सुख देना है, उसका दुःख दूर करना है और उसका वास्तविक हित करना है। उसमें यह भेद हो सकता है कि आप राम–राम कहते हैं, हम कृष्ण–कृष्ण कहेंगे; आप वैष्णव हैं, हम शैव हैं, आप मुसलमान हैं, हम हिन्दू हैं, इत्यादि। परन्तु इससे कोई बाधा नहीं आती है। **बाधा तब आती है, जब यह भाव रहता है कि वे हमारी पार्टी के नहीं हैं, इसलिये उनको चाहे दुःख होता रहे पर हमें और हमारी पार्टी वालों को सुख हो जाय। यह भाव महान् पतन करने वाला है।** इसलिये कभी किसी वर्ण आदि के मनुष्यों को कष्ट हो तो उनके हित की चिन्ता समान रीति से होनी चाहिये और उन्हें सुख हो तो उससे प्रसन्नता समान रीति से होनी चाहिये। जैसे, ब्राह्मणों और हरिजनों में संघर्ष हुआ। उसमें हरिजनों की हार और ब्राह्मणों की जीत होने पर हमारे मन में प्रसन्नता हो अथवा ब्राह्मणों की हार और हरिजनों की जीत होने पर हमारे मन में दुःख हो तो यह विषमता है, जो बहुत हानिकारक है। ब्राह्मणों और हरिजनों– दोनों के प्रति ही हमारे मन में हित की समान भावना होनी चाहिये। किसी का भी अहित हमें सहन न हो। किसी का भी दुःख हमें समान रीति से खटकना चाहिए यदि ब्राह्मण दुःखी है तो उसे सुख पहुँचायें और यदि हरिजन दुःखी है तो उसे सुख न पहुँचायें– ऐसा पक्षपात नहीं होना चाहिये, प्रत्युत हरिजन को सुख पहुँचाने की विशेष चेष्टा होनी चाहिये। हरिजनों को सुख पहुँचाने की चेष्टा करते हुए भी ब्राह्मणों के दुःख की उपेक्षा नहीं होनी चाहिये। इस प्रकार किसी भी वर्ण, आश्रम, धर्म, सम्प्रदाय आदि को लेकर पक्षपात नहीं होना चाहिये। सभी के प्रति समान रीति से हित का बर्ताव होना चाहिये। यदि कोई निम्नवर्ग है और उसे हम ऊँचा उठाना चाहते हों तो उस वर्ग के लोगों के भावों और आचरणों को शुद्ध और श्रेष्ठ बनाना चाहिये; उनके पास वस्तुओं की कमी हो तो उसकी पूर्ति करनी चाहिये; उनकी सहायता करनी चाहिये; परन्तु उन्हें उकसाकर उनके हृदयों में दूसरे वर्ग के प्रति ईर्ष्या और द्वेष के भाव भर देना अत्यन्त ही अहितकर, घातक है तथा लोक–परलोक में पतन करने वाला है। कारण कि ईर्ष्या, द्वेष, अभिमान आदि मनुष्य का महान् पतन करने वाले हैं। यदि ऐसे भाव ब्राह्मणों में हैं तो उनका भी पतन होगा और हरिजनों में है तो उनका भी पतन होगा। उत्थान तो सद्भावों, सद्गुणों, सदाचारों से ही होता है।

भोजन, वस्त्र, मकान आदि निर्वाह की वस्तुओं की जिनके पास कमी है, उन्हें ये वस्तुएँ विशेषता से देनी चाहिये, चाहे वे किसी भी वर्ण, आश्रम, धर्म, सम्प्रदाय आदि के क्यों न हों। सबका जीवन–यापन सुखपूर्वक होना चाहिये। सभी सुखी हों, सभी नीरोगी हों, सभी का हित हो, कभी किसी को किञ्चिन्मात्र भी दुःख न हो * – ऐसा भाव रखते हुए यथायोग्य

---

* **सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे भवन्तु निरामयाः।**
**सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।।**

बर्ताव करना ही समता है, जो सम्पूर्ण मनुष्यों के लिये हितकर है।

गीता में भगवान् कहते हैं-

**विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।**
**शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।।**

(५।१८)

'ज्ञानी महापुरुष विद्या-विनययुक्त ब्राह्मण में और चाण्डाल में तथा गाय, हाथी एवं कुत्ते में भी समरूप परमात्मा को देखने वाले होते हैं।'

ब्राह्मण और चाण्डाल में तथा गाय, हाथी एवं कुत्ते में व्यवहार की विषमता अनिवार्य है। इनमें समान बर्ताव शास्त्र भी नहीं कहता, उचित भी नहीं और कर सकते भी नहीं। जैसे पूजन विद्या-विनययुक्त ब्राह्मण का ही हो सकता है न कि चाण्डाल का; दूध गाय का ही पीया जाता है, न कि कुतिया का; सवारी हाथी की ही हो सकती है न कि कुत्ते की। इन पाँचों प्राणियों का उदाहरण देकर भगवान् मानो यह कह रहे हैं कि इनमें व्यवहार की समता सम्भव न होने पर भी तत्त्वतः सबमें एक ही परमात्मतत्त्व परिपूर्ण है। महापुरुषों की दृष्टि उस परमात्मतत्त्व पर ही सदा-सर्वदा रहती है। इसलिये उनकी दृष्टि कभी विषम नहीं होती।

यहाँ एक शङ्का हो सकती है कि दृष्टि विषम हुए बिना व्यवहार में भिन्नता कैसे होगी? इसका समाधान यह है कि अपने शरीर के अङ्गों- (मस्तक, पैर, हाथ, गुदा आदि) में हमारी दृष्टि अर्थात् अपनेपन और हित की भावना समान रहती है, फिर भी हम उनके व्यवहार में भेद रखते हैं; जैसे-किसी को पैर लग जाय तो क्षमा-याचना करते हैं पर किसी को हाथ लग जाय तो क्षमा-याचना नहीं करते। प्रणाम मस्तक और हाथों से करते हैं, पैरों से नहीं। गुदा से हाथ लगने पर हाथ धोते हैं, हाथ से हाथ लगने पर नहीं। इतना ही नहीं एक हाथ की अंगुलियों में भी व्यवहार में भेद रहता है। किसी को तर्जनी अंगुली दिखाने और अँगूठा दिखाने का भेद तो सब जानते ही हैं। इस प्रकार शरीर के भिन्न-भिन्न अङ्गों के व्यवहार में तो भेद होता है पर आत्मीयता में भेद नहीं होता। इसलिये शरीर के किसी भी पीड़ित अङ्ग की उपेक्षा नहीं होती। व्यवहार में भेद होने पर भी पीड़ा मिटाने में हम समानता का व्यवहार करते हैं। शरीर के सभी अङ्गों के सुख-दुःख में हमारा एक ही भाव रहता है। इसी प्रकार प्राणियों में खान-पान, गुण, आचरण, जाति आदि का भेद होने से उनके साथ ज्ञानी महापुरुषों के व्यवहार में भी भेद होता है और होना भी चाहिये। परंतु उन सब प्राणियों में एक ही परमात्मतत्त्व परिपूर्ण होने के कारण महापुरुष की दृष्टि में भेद नहीं होता। उन प्राणियों के प्रति महापुरुष की आत्मीयता, प्रेम, हित, दया आदि के भाव में कभी फरक नहीं पड़ता। उनके अन्तःकरण में राग-द्वेष, ममता, आसक्ति, अभिमान, पक्षपात, विषमता आदि का सर्वथा अभाव होता है। जैसे अपने शरीर के किसी अङ्ग का दुःख दूर करने की चेष्टा स्वाभाविक होती है, वैसे ही पता लगने पर दूसरे प्राणी का दुःख दूर करने की और उसे सुख पहुँचाने की चेष्टा भी उनके द्वारा स्वाभाविक होती है। यही कारण है कि भगवान् ने यहाँ महापुरुषों को समदर्शी कहा है, न कि समवर्ती।

❑❑❑

# यह दाग मिटाना ही होगा

प्रस्तुति-डा० उन्मेष 'राघवीय'

सारा नभ मंडल डोल उठा
गौओं की करुण पुकारों से।
धरती की छाती दहल उठी
नित बढ़ते अत्याचारों से।।१।।
जो बीत रही गोमाता पर
वह ऐसी करुण कहानी है।
जो उबल नहीं पड़ता सुनकर
वह खून नहीं है पानी है।।२।।
गो मान बिन्दु है भारत का
यह रक्षक भी है पालक भी।
यह धन का है भण्डार अथक
यह जन-जीवन संचालक भी।।३।।
इसकी रक्षा से आँख मूंद
जो अब तक पाप कमाया है।
उसने भारत को गारतकर
इस हालत में पहुँचाया है।।४।।
तुम कैसे जनता के सेवक
जब जनमत को ठुकराते हो।
जब गो रक्षा की बात चले
तब लोगों को बहकाते हो।।५।।
चोले में आज अहिंसा के
छिप गया माँस व्यापारी है।
मुर्गी मछली पाली जाती
गौओं की हत्या जारी है।।६।।
उस गोपालक की धरती पर
बूचड़ खाने खुलवाते हो।
बनकर गाँधी के अनुयायी
तुम तनिक नहीं शर्माते हो।।७।।
जिस गोमाता की रक्षाकेहित
कूकाओं ने बलिदान किया।
उस गो माता की रक्षा के हित
अब सन्तों ने आह्वान किया।।८।।
अब समय यही है चेतो तुम
इस जनमत का सम्मान करो।
मत खेलो फाग लहू के तुम
मत सत्ता पर अभिमान करो।।९।।
जन-रोष अगर ज्वाला बनकर
उत्तप्त उरों से फूटेगा।
तो अभिमन्यू बनकर जन-जन
पापों के गढ़ पर टूटेगा।।१०।।
जिस कुर्सी से है प्यार तुम्हें
यह पाप उसे ले डूबेगा।
ऐसा विप्लव हो जायेगा
जो आप उसे ले डूबेगा।।११।।
अब तुमको गोबध-बन्दी का
कानून बनाना ही होगा।
है दाग देश के माथे पर
यह दाग मिटाना ही होगा।।१२।।

❑❑❑

# व्रतोत्सवतिथिनिर्णयपत्रक

## आषाढ़ शुक्ल पक्ष/सूर्य दक्षिणायन, वर्षा ऋतु

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | व्रत पर्व आदि विवरण |
|---|---|---|---|---|
| द्वादशी | शनिवार | अनुराधा | 4 जुलाई | शनि प्रदोष व्रत |
| त्रयोदशी | रविवार | ज्येष्ठा | 5 जुलाई | — |
| चतुर्दशी | सोमवार | मूल | 6 जुलाई | श्रीसत्यनारायणव्रत |
| पूर्णिमा | मंगलवार | पू०षा० | 7 जुलाई | **श्रीगुरुपूर्णिमा** श्रीव्यास पूजा |

## श्रावण कृष्ण पक्ष/सूर्य दक्षिणायन वर्षा ऋतु

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | व्रत पर्व आदि विवरण |
|---|---|---|---|---|
| प्रतिपदा | बुधवार | उ०षा० | 8 जुलाई | — |
| द्वितीया | गुरुवार | श्रवण | 9 जुलाई | अशून्य शयन प्रारम्भ |
| तृतीया | शुक्रवार | श्रवण | 10 जुलाई | पंचक रात 9/12 से प्रारम्भ |
| चतुर्थी | शनिवार | धनिष्टा | 11 जुलाई | श्री गणेश चतुर्थी व्रत |
| पंचमी | रविवार | शतभिषा | 12 जुलाई | — |
| षष्ठी | सोमवार | पू०भा० | 13 जुलाई | श्रावण सोमवार व्रत |
| सप्तमी | मंगलवार | उ०भा० | 14 जुलाई | शीतला सप्तमी |
| अष्टमी | बुधवार | रेवती | 15 जुलाई | पंचक समाप्त 5/9 सायं |
| नवमी | गुरुवार | अश्विनी | 16 जुलाई | कर्क अर्कः संक्रान्ति श्रावण मास |
| दशमी | शुक्रवार | भरणी | 17 जुलाई | — |
| एकादशी | शनिवार | कृतिका | 18 जुलाई | **कामदा एकादशी व्रत (सबका)** |
| द्वादशी | रविवार | रोहिणी | 19 जुलाई | प्रदोष व्रत |
| त्रयोदशी | सोमवार | मृगाशिरा | 20 जुलाई | — |
| चतुर्दशी | मंगलवार | आर्द्रा/पुनर्वसु | 21 जुलाई | पितृकार्य अमावस्या |
| अमावस्या | बुधवार | पुष्य | 22 जुलाई | हरियाली अमावस्या सूर्यग्रहण प्रातः 5/33 से 7/25 तक |

## श्रावण शुक्ल पक्ष/सूर्य दक्षिणायन, वर्षा ऋतु

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | व्रत पर्व आदि विवरण |
|---|---|---|---|---|
| द्वितीया | गुरुवार | श्लेषा | 23 जुलाई | चन्द्रदर्शनम् |
| तृतीया | शुक्रवार | मघा | 24 जुलाई | संघारा तीज |
| चतुर्थी | शनिवार | पू०फा० | 25 जुलाई | श्रीगणेश चतुर्थी व्रत |
| पंचमी | रविवार | उ०फा० | 26 जुलाई | नाग पंचमी |
| षष्ठी | सोमवार | हस्त | 27 जुलाई | — |
| सप्तमी | मंगलवार | चित्रा | 28 जुलाई | **गोस्वामी श्रीतुलसीदास जयन्ती** |
| अष्टमी | बुधवार | स्वाति | 29 जुलाई | श्रीदुर्गाष्टमी व्रत |
| नवमी | गुरुवार | विशाखा | 30 जुलाई | — |
| दशमी | शुक्रवार | अनुराधा | 31 जुलाई | — |
| एकादशी | शनिवार | ज्येष्टा | 1 अगस्त | **पुत्रदा एकादशी व्रत (सबका)** |

卐 श्रीमद्राघवो विजयते 卐

धर्मचक्रवर्ती, महामहोपाध्याय, जीवनपर्यन्त कुलाधिपति, वाचस्पति, महाकवि
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य **स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज**
का राष्ट्रीय, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक चेतना का संवाहक

# श्रीतुलसीपीठसौरभ

**( मासिक पत्र )**

सीतारामपदाम्बुजभक्तिं भारतभविष्णु जनतैक्यम्।
वितरतु दिशिदिशि शान्तिं श्रीतुलसीपीठसौरभं भव्यम्।।

वर्ष १३ | जुलाई २००९ (४, ५ अगस्त को प्रेषित) | अंक-११



**पूज्यपाद जगद्गुरु जी के सम्पर्क सूत्र :**
**श्रीतुलसीपीठ, आमोदवन,**
पो० नया गाँव श्रीचित्रकूटधाम (सतना) म०प्र०485331
✆–07670–265478, 05198- 224413
**वसिष्ठायनम् -** जगद्गुरु रामानन्दाचार्य मार्ग
रानी गली नं०–1, भूपतवाला, हरिद्वार (उत्तरांचल)
दूरभाष–01334–260323
**श्री गीता ज्ञान मन्दिर**
भक्तिनगर सर्कल, राजकोट (गुजरात)
दूरभाष–0281–2364465
**पंजीकृत सम्पादकीय कार्यालय एवं पत्र व्यवहार का पता**
आचार्य दिवाकर शर्मा,
220 के., रामनगर, गाजियाबाद–201001
मो०– 09971527545

# रामानन्दः स्वयं रामः प्रादुर्भूतो महीतले

## विषयानुक्रमणिका



## सुधी पाठकों से विनम्र निवेदन

१. ‘श्रीतुलसीपीठसौरभ’ का प्रत्येक अंक प्रत्येक दशा और परिस्थिति में प्रत्येक महीने की ४ तथा ५ तारीख को डाक से प्रेषित किया जाता है। पत्रिका में छपे महीने का अंक आगामी महीने में ही आपको प्राप्त होगा।

२. ‘श्रीतुलसीपीठ सौरभ’ मंगाने हेतु बैंक ड्राफ्ट ‘श्रीतुलसीपीठसौरभ’ के नाम से ही बनबाएँ तथा प्रेषित लिफाफे के ऊपर हमारा नाम तथा पूरा पता स्पष्ट अक्षरों में लिखें। मनीआर्डर पर हमारा नाम-पता ही लिखें प्रधान सम्पादक अथवा प्रबन्ध सम्पादक कभी न लिखें।

३. पत्रव्यवहार करते समय अथवा ड्राफ्ट-मनीआर्डर भेजते समय अपनी वह ग्राहक संख्या अवश्य लिखें जो पत्रिका के लिफाफे के ऊपर आपके नाम से पहले लिखी है।

४. ‘श्रीतुलसीपीठसौरभ’ में **‘पूज्यपाद जगद्गुरु जी’** से अभिप्राय **धर्मचक्रवर्ती श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज समझा जाए।**

५. ‘श्रीतुलसीपीठ सौरभ’ में प्रकाशित लेख/कविता/अथवा अन्य सामग्री के लिए लेखक/कवि अथवा प्रेषक महानुभाव ही उत्तरदायी होंगे, सम्पादक मण्डल नहीं।

६. ‘श्रीतुलसीपीठसौरभ’ प्राप्त न होने पर हमें पत्र लिखें अथवा फोन करें। हम यद्यपि दूसरी बार पुनः भेजेंगे। किन्तु अपने डाकखाने से भलीप्रकार पूछताछ करके ही हमें सूचित करें।

७. डाक की घोर अव्यवस्था के चलते हमें दोषी न समझें। हमें और आपको इसी परिस्थिति में ‘पूज्यपाद जगद्गुरु जी’ का कृपा प्रसाद शिरोधार्य करना है।

८. सुधी पाठक अपने लेख/कविता आदि स्पष्ट अक्षरों में लिखकर भेजें। यथासमय-यथासम्भव हम प्रकाशित करेंगे। अप्रकाशित लेखों को लौटाने की हमारी व्यवस्था नहीं है।

**सदस्यता सहयोग राशि**

| | |
|---|---|
| संरक्षक | ११,०००/– |
| आजीवन | ५,१००/– |
| पन्द्रह वर्षीय | १,०००/– |
| वार्षिक | १००/– |

**–सम्पादकमण्डल**

श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास, चित्रकूट के स्वामित्व में मुद्रक तथा प्रकाशक डॉ0 कु0 गीतादेवी (प्रबन्धन्यासी) ने श्री राघव प्रिंटर्स, जी-17 तिरुपति प्लाजा, बेगम पुल रोड, बच्चापार्क, मेरठ, फोन (का0) 4002639, मो0-9319974969, से मुद्रित कराकर कार्यालय 220 के., रामनगर, गाजियाबाद से प्रकाशित किया।

सम्पादकीय-

# आचार-विचार अवश्य शुद्ध हो

सम्पूर्ण संसार में ही आचार और विचार दोनों में शुद्धता का अभाव है यह कुतर्क देकर आचार और विचार के पालन में असावधानी कदापि नहीं रखी जा सकती। विश्व की बात छोड़िए भारत का तो आचार और विचार ऐसा अक्षुण्ण धन है जिसकी रक्षा प्रत्येक भारतीय को करनी चाहिए। हमारे वेदादि धर्मशास्त्रों में आचार अर्थात् शुद्ध आचरण पर पर्याप्त बल दिया गया है। दैनिक जीवन में मनुष्य जिन आचरणों को सम्पन्न करता है उनमें शुद्धता होनी चाहिए अथवा कहिए मानवीय जीवनमूल्यों की रक्षा के लिए निर्धारित धर्मशास्त्रों द्वारा वह आचरण अनुमोदित होना चाहिए। हम वही करें जो हमारे लिए करणीय हो। हम वह कदापि न करें जिसके करने से सभ्य समाज में हमारी निन्दा और चर्चा होती हो। आचार का अर्थ इतना ही नहीं और भी व्यापकता के साथ आज प्रचलित है। जैसे हमारा खान-पान, रहन-सहन आदि। आज का मानव बहुत आचारहीन हो गया है इसीलिए शास्त्रकारों ने कोरे विद्वान को भी आचारहीन देखकर चेताया है-

**आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः**
**यद्यप्यधीताः सह षड्भिरङ्गैः।**

जो वेद अपने ज्ञान, उपदेश और आचरण से सबको पवित्र कर देते हैं वही वेद आचारहीन को पवित्र करने में समर्थ नहीं है। आज की आचारहीनता का कहानी कहने से पाप भी लगता है किन्तु सभ्य समाज में दिग्भ्रमित हुए लोगों को आचारहीनता के दुष्परिणामों से सावधान किया जाना किसी भी प्रकार अनुचित नहीं है। आज घरों में रसोई शुद्धता के साथ तैयार नहीं की जाती। जूते चप्पल पहनकर रसोई में सब खूब घूमते रहते हैं। प्याज लहसुन आदि अभक्ष्य पदार्थों का प्रयोग निर्भीकता से किया जाता है। यद्यपि अन्न, सब्जियाँ, मसाले, घी, दूध, तेल आदि अनेक खाद्य पदार्थों में घोर निन्दनीय मिलावट, अखाद्य वस्तुओं की विषभरी मिलावट ने मानवमात्र की आचारगत शुद्धता ध्वस्त कर दी है, तथापि जो वस्तु हम छोड़ सकते हैं अथवा अपनी रसोई अथवा थाली से दूर कर सकते हैं उसे अवश्य करना चाहिए। शुद्ध वस्तु का यत्नपूर्वक संग्रह करना चाहिए। खेद है कि आज शुद्ध सात्त्विक भोजन ग्रहण करने वाले सन्त-महात्मा सद्गृहस्थ सबके घर भोजन ग्रहण करने से बचते हैं। आज भगवान् को भोजन अर्पित करने का प्रचलन 'पुरानी परम्परा' कहकर बन्द सा हो गया है इतना ही नहीं रसोई तैयार करने वाली माता बहिनें रसोई में ही जूठा कर लेते हैं। गौमाता की रोटी, पितरों के नाम पर भोजन, कौए की रोटी, अतिथि को भोजन तो गिनती के घरों में ही देखे जाते हैं। क्या यही प्रगति है? क्या यही विकास है? क्या यही सम्पन्नता है? यदि नहीं तो हम सभी को अपना अन्न (खानपान) शुद्ध करना होगा तभी हमारा मन अच्छे संकल्पों बाला बनेगा। भगवती उपनिषद् के "अन्नमयं हि सौम्यंमनः" वाक्य का भी सम्भवतः यही भाव रहा होगा। हमारा कल्याण तभी सम्भव है जब हम खाना नहीं भोजन करेंगे और भोजन भगवान् को श्रद्धा, शुद्धता और प्रेम से निवेदित करके भोजनप्रसाद मानकर ग्रहण करेंगे। अपने हित का चिन्तन करके ही विश्व के हित का चिन्तन करने का मार्ग भी तभी प्रशस्त होगा। नमो राघवाय।

**आचार्य दिवाकर शर्मा**
प्रधान सम्पादक

# वाल्मीकिरामायण सुधा ( ५१ )

(गतांक से आगे)

❑ **धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज**

क्योंकि–

**तदस्यं तस्य वीरस्य स्वर्गमार्ग प्रभावनम् ।**
**रामबाणासनक्षिप्तमावहत् परमां गतिम् ।।**

और सब लोग तो इन्द्र के विमान पर जाते हैं। यहाँ इन्द्र ही आया है वह अपने विमान पर कैसे जाय? भगवान ने कहा कोई बात नहीं और लोग इन्द्र के विमान पर जाते हैं परन्तु इन्द्र के अंश को जाना है तो मेरे बाणरूप विमान पर बैठकर जायगा। भगवान राम के बाण ने ही बालि को साकेत तक पहुँचा दिया और कहा जाओ आनन्द करो। बालि ने कहा आप कितने करुणामय हैं मैं जानता हूँ आप कभी अनुचित नहीं करेंगे–

कुलीनः सत्त्वसम्पन्नस्तेजस्वी चरितव्रतः।
रामः करुणवेदी च प्रजानां च हिते रतः।।
सानुक्रोशो महोत्साहः समयज्ञो दृढ़व्रतः।
इत्येतत् सर्वभूतानि कथयन्ति यशो भुवि।।

आप दशरथ जी के बेटे हैं, आप में दस गुण अनिवार्य हैं–कुलीनता–आप अच्छे कुल में उत्पन्न हुए हैं, सत्त्व से सम्पन्न हैं प्रशस्त तेज से युक्त हैं, चरित ही आपका व्रत है, आप बहुत व्युत्पन्न हैं, आपमें महान उत्साह है आप दृढव्रत हैं आप समयज्ञ हैं क्षेम, दम, तप आदि सब आप में रहते हैं। मैं जानता था कि आप मुझे नहीं मारेंगे क्योंकि मैं दूसरे से लड़ रहा हूँ। पर आपने यह नियम वास्तव में केवल मुझ पर कृपा करने के लिए किया क्योंकि–

**जेहि जन पर ममता अति छोहू।**
**जेहि करुणा करि कीन्ह न कोहू।।**

आप करुणा करके क्रोध करना जानते ही नहीं, मैं जानता हूँ कि आप आत्मा का हनन नहीं कर रहे हैं। मैं इन्द्र का पुत्र हूँ आपके बाण लगने से मेरा हृदय पावन हो गया आप धर्मध्वज नहीं हैं अर्थात् आप दिखावे के लिए धर्म का आचरण नहीं करते आप अधार्मिक नहीं परम धार्मिक हैंआप ढाक पात से ढके हुए कूप की भाँति नहीं हैं पाप समाचार आपका नहीं है, आप जो कहते हैं वही करते हैं। मैं आपको सज्जनों का वेशधारी अर्थात् ढोंगी नहीं समझता हूँ आपको मैं प्रच्छन्न धार्मिक नहीं जानता आप तो परम धार्मिक हैं। आप हमको आनन्द देने के लिए इस धराधाम पर प्रकट हुए हैं। भौतिक दृष्टि से कोई हेतु नहीं बन रहे हैं जिनके आधार पर आपने मुझे मारा। मैं आपके देश में कोई अत्याचार नहीं करता, कोई पाप नहीं करता, आपका मैंने कभी अपमान नहीं किया है फिर आप मुझ निरपराध को क्यों मारेंगे? आप मार रहे हैं तो निश्चय ही मेरा कोई न कोई अपराध है उसे भले ही जनसाधारण न जाने पर मैं जानता हूँ। बालि ने कितना सुन्दर कहा है कोई इतना सुन्दर कहेगा? **हमारा दुर्भाग्य है कि हम संसार के काम में इतने व्यस्त हो गये हैं कि न तो राम जी के चिन्तन के लिए हमें समय मिलता है और न रामायण जी के चिन्तन का समय मिलता है। यदि दोनों के चिन्तन के लिए समय मिल गया होता तो हमारे जीवन की सारी विडम्बनाएँ चली गईं होतीं और भारत का नक्शा बदल गया होता। जब चिन्तन का समय होता है तब हम**

**सोते रहते हैं।** कितना मधुर कहा है बालि ने, ऐसा कोई कहेगा ही नहीं। प्रभो! मैं जानता हूँ नय, विनय, सत्य, क्षमा आदि। काम के विषय में भी मैं भलीभाँति जानता हूँ। भगवान शंकर ने तीसरे नेत्र से काम को जलाया इसका रहस्य क्या किसी को पता है? पूछो जाकर नागेश्वर नाथ से कि तीसरे नेत्र से क्यों जलाया? यदि काम को जलाना था तो दाहिने सूर्यनेत्र से जलाते फिर तीसरे से क्यों? इसलिए जलाया कि राम में र का उच्चारण मूर्धा से होता है (ऋतुरषाणां मूर्धा) वही श्रीराम का र शिव जी का मूर्धन्य अग्नि है तीसरा नेत्र राम। केवल राम के र से शिव जी महाराज ने रामाग्नि को प्रकट करके–**हेतु कृशानु भानु हिमकर को।** राम नाम से प्रकट हुई अग्नि के द्वारा काम को जलाया। इससे कामस्य प्रधानं भस्मीभवनं यस्मात् इति नवीनं व्याख्यानम्।

**सत्वं कामप्रधानश्च कोपनश्चानवस्थितः।**
**राजवृत्तेषु संकीर्णः शरासनपरायणः।।**

क्या राम जी क्रोधी हैं? नहीं, उनकी कृपा से जीव का कोप नष्ट हो जाता है बालि कहता है–आप प्राणों में स्थित हैं, सबके प्राणों के पति हैं–

**तुम हो एक अगोचर सबके प्राणपति।**
**किस विधि मिलूँ दयामय तुमको मैं कुमति।।**

राजधर्म में आप संकीर्ण नहीं रहते। शरासन ही आपका परायण है– 'प्रणवं धनुः शरो ह्यात्मा' भागवत जी के लिए उपनिषद् का ज्ञान आवश्यक है। टीका से भागवत जी नहीं लगते उनके लिए भक्तिभाव चाहिए।

**भक्त्या भागवतं शास्त्रं न व्युत्पत्त्या न टीकया।**

**पकौड़ी खाकर चाय पीकर वाल्मीकि रामायण नहीं लगती, रामायण तो चरणोदक पीकर लगती है।** प्रभु मैं आपको जानता हूँ आप कितने कृपालु हैं। बालि बहुत करुण बोल रहा है–

**त्वया नाथेन काकुत्स्थ न सनाथा वसुन्धरा।**
**प्रमादा शीलसम्पूर्णा पत्येव च विधर्मणा।**

जब बालि ने इतनी प्रशंसा की तो श्रीराम ने कहा बालि! मैंने तुमको मार दिया मैं शठ हूँ। बालि ने कहा आप ऐसा न कहें। आज मैं अपने सम्बन्ध का प्रयोग करूँगा राघव! मैं इन्द्र का बेटा हूँ आप दशरथ जी के बेटे हैं। आपका बड़ा भाई भी मैं हूँ। आप प्रायश्चित्त की भाषा क्यों बोल रहे हैं?

**शठो नैकृतिकः क्षुद्रो मिथ्याप्रश्रितमानसः।**
**कथं दशरथेन त्वं जातः पापो महात्मना।।**

राघव! कारण गुण कार्यगुण में आते हैं। आपका जन्म ऐसे व्यक्ति के द्वारा हुआ है, कितना व्युत्पन्न है यह बालि, इसने पंचमी का प्रयोग नहीं किया क्योंकि दशरथ जी के शरीर की धातु से तो राम जी का जन्म ही नहीं हुआ है, षष्ठी का प्रयोग भी नहीं किया क्योंकि आप किसी के सम्बन्धी नहीं हैं आप भले ही मान लें। केवल मरण में तृतीया की। अर्थात् केवल दशरथ जी ने जन्म में आपकी सहायता की है। 'साधकतमम् करणम् ' है, मनु के रूप में दशरथ जी ने तपस्या करके आपको पुत्र रूप में प्राप्त किया है। उन्होंने तो यही कहा था कि–

**चाहउँ तुमहि समान सुत प्रभु सन कवन दुराव।**

हे प्रभो! उन्होंने अपको ब्रह्मरूप में देखा था इसलिए आप शठ नहीं हैं आप क्षुद्र (तुच्छ) नहीं हैं आप तो सबसे बड़े हैं–

**प्राणनाथ रघुनाथ गुसाईं।**
**जो बड़ होत सो राम बड़ाई।।**

क्या मेरे मानने से आप शठ हो जायेंगे? आपको प्रायश्चित्त क्या लगा? कुछ नहीं आपका मन निरन्तर पवित्र है। आप पापी नहीं हैं क्योंकि महात्मा दशरथ जी ने तपस्या करके आपको प्रकट किया है। पिता

महात्मा है तो बेटा परमात्मा है। इस प्रकार पूरा अर्थ उलट गया। आप बड़े कृपालु हैं। बालि ने एक बात इतनी करुण कही कि फूट फूट कर रोना पड़ता है। बालि बोला–

**उदासीनेषु योऽस्मासु विक्रमोऽयं प्रदर्शितः।**
**नापकारिषु पश्येयं विक्रमं ते नरेश्वर।**

हम लोग अपकारी हैं, हमने पूरा मर्यादा का उल्लंघन किया पर मेरे जैसे पापी के बुलाने पर आप चले आये। बड़े बड़े उदासीन मुनिजन उन चरणों का विन्यास देखने के लिए तरसे पर उनके पास आप नहीं गये मेरे पास चले आये इतनी बड़ी कृपा कौन करेगा?

**त्यक्त्वा सुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं**
**धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम्।**
**मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावत्**
**वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्।।**

सरकार! मैं आपका कितना ऋणी हूँ। मेरा रोम रोम आपका ऋण नहीं चुका सकता। कौन कहता है कि मैं आपसे बलवान था–

**अद्य वैवस्वतं देवं पश्येस्त्वं निहतो मया।**

यहाँ काकुवक्रोक्ति है। क्या यदि मेरे सामने आप लड़ते तो क्या आपको मैं यमलोक भेज सकता था? मैं आपको कैसे यमलोक भेज सकता था जिसके रोम रोम में करोड़ों ब्रह्माण्ड हैं तो मैं आपको कहाँ भेजूँगा?

**ब्रह्माण्ड निकाया निर्मित माया**
**रोम रोम प्रतिवेद कहै।**
**मम उदर सो वासी यह उपहासी**
**सुनत धीर मति थिर न रहै।**

श्लोकों का ठीक अर्थ लगाने के लिए राममन्त्र का जप, गायत्री जी का जप करना होता है। भिन्न भिन्न व्रत करने होते हैं–

**व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्।**
**दक्षिणया श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमीहते।।**

व्रत से व्यक्ति को दीक्षा मिलती है, दीक्षा से दक्षिणा अर्थात् कुशलता कुशलता से व्यक्ति को श्रद्धा यानी आस्था, तब सत्यस्वरूप आनन्दकन्दमुकुन्द सतत मुनिजन परिपीत चरणारविन्दामन्दमकरन्द कौसल्यानन्दवर्धन मोचितभक्तभवबन्धन सरजूपुलिनबिहारी दशरथाजिरबिहारी मुनिमनहारी रघुनाथ जी के दर्शन होते हैं। राघव! कितने कृपालु हैं आप, आपकी कृपालुता का मैं वर्णन कैसे करूँ–

**त्वयादृश्येन तु रणे निहतोऽहं दुरासदः।**
**प्रसुप्तपन्नगेनैव नरः पापवशं गतः।।**

कौन कहता है कि आपने मुझे छिपकर मारा। जब आपके धनुष की टंकार से पक्षिगण भाग गये तो क्या मैं बहरा था। आपने मुझे अपने एक ही बाण के विमान पर बिठाकर साकेत लोक भेज दिया। अब मैं अमरावती लौटकर नहीं जाऊँगा। जिस प्रकार सोये हुए पापी को शेषनारायण कहीं पहुँचा सकें उसी प्रकार आपने मुझ पापी को साकेतलोक भेज दिया। बालि ने पुनः श्रीराम जी से निवेदन किया–

**काममेवंविधोलोकः कालेन विनियुज्यते।**

यदि अधर्म से मैं मारा गया होता तब अनुचित होता। दुष्टवध आपका धर्म है मैंने दुष्टता की थी इसलिए आने मुझे मारा तो उचित ही किया। अब मेरे जाने पर सुग्रीव राजा बनेगा–

**क्षमं चेद् भवता प्राप्तमुत्तरं साधु चिन्त्यताम्।**

अब आप मेरे उत्तरकाल की क्रिया का विचार कीजिए। इतना कहकर एक बार राघव को निहारकर बालि चुप हो गया। कोई निन्दा नहीं की–

**इत्येवमुक्त्वा परिशुष्कवक्त्रः**
**शराभिघाताद् व्यथितो महात्मा।**

**समीक्ष्य रामं रविसंनिकाशम्**
**तूष्णीं बभौ वानरराजसूनुः।।**

इस प्रकार वानरराज बालि सूर्य के समान तेजस्वी श्रीरामचन्द्र जी की ओर देखकर चुप हो गया। उसका मुख सूख गया था और बाण के आघात से उसे बहुत पीड़ा हो रही थी। आगे बालि कहेगा भी कि–

**त्वत्तोऽहं वधमाकांक्षन् वार्यमाणोऽपि तारया।**
**सुग्रीवेण सह भ्रात्रा द्वन्द्वयुद्धमुमागतः।।**

मैं चाहता ही था कि आपके हाथों मेरी मृत्यु हो जाय। तारा के मना करने पर भी मैं सुग्रीव से द्वन्द्व युद्ध करने आ गया। आपको लग गया कि सुग्रीव में वह क्षमता नहीं है कि मुझको स्वर्ग भेज सके आपने मुझ पर कृपा की। जब इतनी प्रशंसा कर दी तो भगवान राम ने सोचा कहीं गड़बड़ न हो जाय, कहीं मेरा भगवत्त्व स्पष्ट न हो जाय तब रावण कह देगा कि हम भगवान के हाथों नहीं मरेंगे इसलिए भगवत्त्व को अभी छिपाकर रखना चाहिए। अतः भगवान थोड़ी सी नरलीला करते हुए कहते हैं कि अब मैं तुम्हें मारने का कारण बताता हूँ–

**तदेतत्कारणं पश्य यदर्थं त्वं मया हतः।**
**भ्रातुर्वर्तसि भार्यायां त्यक्त्वा धर्मं सनातनम्।।**

तुमने धर्म को क्लिष्ट किया है आचरण को मटियामेट करके रख दिया है। तुमने सनातन धर्म का उल्लंघन किया है। शास्त्र कहते हैं–

**औरसीं भगिनीं वापि भार्यां वाप्यनुजस्य ह।**
**प्रचरेत नरः कामात्तस्य दण्डो वधःस्मृतः।।**

स्मृति ने मुझे आज्ञा दी है कि अपनी बेटी, बहिन और अपनी अनुजवधू इनके प्रति जो कुदृष्टि करता है उसके लिए वध ही दण्ड है। इसलिए मैंने तुम्हें दण्ड दिया। तुम तो शाखामृग हो तुम्हें किसी भी प्रकार दण्ड देने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मेरे मन में न कोई ताप है, न क्लेश है, न क्रोध है। सुग्रीव से मैंने मित्रता की थी अतः तुमसे मैं मित्रता नहीं कर सकता था क्योंकि तुम मित्र होने योग्य नहीं थे। ऐसे चरित्रहीन से मैं कैसे मित्रता करता। सुग्रीव से मेरे वंशानुगत गुण भी मिल रहे थे क्योंकि वे सूर्यपुत्र हैं और मैं भी सूर्यवंशी हूँ। सुग्रीव से मित्रता के लिए हनुमान जी ने संस्तुति की थी इसलिए भी मैंने उनसे मित्रता की। अतः तुम इस दण्ड का अनुमोदन करो।

**एवमुक्तस्तु रामेण प्रव्यथितो भृशम्।**
**न दोषं राघवे दध्यौ धर्मेऽधिगतनिश्चयः।।**

इस प्रकार जब रघुनाथ जी ने कहा तब बालि बहुत दुःखी हुआ और सोचने लगा कि मैंने प्रभु को इतना कठोर क्यों कहा? भगवान राम को कठोर वचन सुनने का स्वभाव नहीं है। बालि ने ध्यान करके भी देखा कि श्रीराघव में कोई दोष नहीं है। राघव जी ने उचित ही किया है। एक और जनश्रुति कहाँ से फैली कि श्रीराम ने बालि को छिपकर मारा था इसलिए बालि ने बहेलिये का रूप धारण कर भगवान श्रीकृष्ण से बदला लिया इसका वर्णन मुझे कहीं नहीं मिला यह अपलाप मात्र है। मानो बालि मर गया पर कुछ धूमकेतुओं को वकील बनाकर चला गया कि तुम हमारी वकालत करते रहना। जब यह कहा गया है कि– 'यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद् धाम परमं मम। भगवान के धाम जाकर कोई लौटता नहीं है तो बालि कैसे लौट आया? श्रुति बार बार कहती है– 'न सः पुनरावर्तते'। बालि ने कहा सरकार! मेरी एक बात मानने की कृपा करें –

**मामप्यवगतं धर्माद् व्यतिक्रान्तपुरस्कृतम्।**
**धर्मसंहितया वाचा धर्मं च परिपालय।।**

क्रमशः........

# श्रीमद्भगवद्गीता ( ८२ )

( गतांक से आगे )

**( विशिष्टाद्वैतपरक श्रीराघवकृपाभाष्य )**

**भाष्यकार–धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज**

अर्थात् जिस प्रकार पूर्व दिशा चन्द्रमा को धारण करती है उसी प्रकार वसुदेव द्वारा मानस संकल्प से गर्भाधान किये हुए नित्य अंशों वाले सबको आनन्द देने वाले आत्मा के समान अणु आकार वाले जगत का मंगल करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण को भगवती देवकी ने गर्भ में धारण किया।

'मनस्तः' शब्द में तृतीयार्थ में 'तसि' प्रत्यय हुआ है। यदि कहें कि मनस्तः का अन्वय 'आनन्दकरम्' के साथ कर लिया जाय और अर्थ किया जाय कि जैसे मन से चन्द्रमा को पूर्ण दिशा ने धारण किया था तो यह कहना ठीक नहीं होगा क्योंकि चन्द्रमा को मन से पूर्व दिशा ने धारण किया हो ऐसा प्रमाण कहीं मिलता नहीं। चन्द्रमा मनसो जातः यह आध्यात्मिक पक्ष है। चन्द्रमा के अवतारवाद में तो अत्रि के नेत्र से चन्द्रमा का उत्पन्न होना ही पुराण प्रसिद्ध है। इसीलिए कालिदास भी ने "अथ नयसमुत्थं ज्योतिरद्रेरिवद्यौः" इस प्रकार कहा। अतः मनस्तः का अन्वय सूरसुतेन के साथ ही होगा। इसलिए आत्ममाया का अर्थ है जीवात्माओं पर कृपा करके अपने स्वरूप को गिराये (च्युत) किये बिना ही भगवान् अवतार लेते हैं। जो शंकराचार्य जी ने गीताभाष्यभूमिका में कहा– वे भगवान् ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, तेज, वीर्य से सम्पन्न अपनी त्रिगुणात्मिका वैष्णवी मूल प्रकृति रूप माया को वश में करके अजन्मा, अव्ययात्मा और जीवों के ईश्वर होकर भी लोगों पर अनुग्रह करते हुए जन्म लिए हुए की भाँति और देहवान की भाँति प्रतीत होते हैं अर्थात् न तो उनका जन्म होता है और न उनके कोई शरीर होता है। और इस पर जो मधुसूदन सरस्वती ने अपनी कारिका में कहा कि जो अनेक शक्ति सम्पन्न माया नामक कारणोपाधि है वही भगवान का देह है ऐसा भाष्यकार का मत है और निर्गुण सच्चिदानन्द रसघन मुझ देहदेही भाव शून्य भगवान वासुदेव में देह की प्रतीति माया मात्र ही है। यही उस कारिका की व्याख्या भी की। कुछ लोग नित्य निरवयव परमात्मा में देहदेहीभाव की कल्पना करते हैं परन्तु उनके कथन में कोई युक्ति नहीं है फिर भी उन्हें बोलते हुए हम मना नहीं ही कर सकते। इस न्याय से उनका अपवाद नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार श्री शंकराचार्य और मधुसूदन सरस्वती का कथन पूर्णतः अनर्गल है। यदि भगवान के शरीर को मायामय मान लिया जाय तो उसमें मिथ्यात्व की आपत्ति होगी। इसलिए सच्चिदानन्द भगवान के शरीर को मायामय मान लेने पर उसमें ध्यान धारणा आदि की असिद्धि हो जाने पर, वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम्, इत्यादि श्रुतियों में कोई प्रामाणिकता नहीं रह जायेगी। यदि शंकराचार्य एवं मधुसूदन सरस्वती के अनुसार नित्यकारणोपाधि भगवान का शरीर है तो फिर उपाधि को व्यावर्तक मानना पड़ेगा और भगवान व्यक्ति। यदि कहो कि कोई आपत्ति नहीं और यदि भगवान ही

व्यावर्त्य हैं तब तो यः सर्वज्ञः सर्ववित् इत्यादि हजारों श्रुतियों में अप्रमाण्य आ जायेगा। दूसरी बात यह भी है कि यदि नित्य कारणोपाधि को भगवान का शरीर माना जायेगा तो किसका कौन आश्रय है, यह भी तो बताना पड़ेगा। यदि कहें कि माया ही ब्रह्म को आश्रय देगी तो यह असम्भव है। किसी ने अंधकार को सूर्यनारायण को आश्रय करते नहीं देखा और कहीं भी शरीरी को शरीर का आधार होते हुए न देखा न सुना। यदि कहें कि भगवान ही माया का आश्रय करते हैं तो फिर माया का स्वरूप बताना पड़ेगा। यदि कहें कि सद् और असद् दोनों से अनिर्वचनीय वस्तु ही माया का स्वरूप है तो फिर जो निश्चित पदार्थ है वह अनिवर्चनीय वस्तु को कैसे आश्रय बनायेगा। भला शून्य आकाश दीवार का अवलम्बन कैसे बन सकता है। यदि कहो कि माया अनित्य है तो फिर नित्य परमात्मा अनित्य माया का आश्रय कैसे लेंगे। यदि कहोगे कि माया भी नित्य है तो फिर माया की नित्यता में प्रमाण के रूप में कोई श्रुति उपस्थित करनी पड़ेगी। यदि कहो माया असत् है तो सत् स्वरूप परमात्मा उसका आलम्बन कैसे करेंगे। झूठे माया को ही भगवान का शरीर मानेगे तो श्रुतियों का विरोध होगा। वे भगवान कहाँ रहते है? ऐसा पूछने पर सनत्कुमार ने कहा अपनी महिमा में रहते हैं। माया भगवान की महिमा नहीं है। यद्यपि इसलिए भगवान में देह-देही भाव सिद्ध नहीं होता। फिर भी अनेक श्रुति वचनों के अनुरोध से भगवान की इच्छामय शरीर की परिकल्पना की जा सकती है। क्योंकि श्रुति वचनों पर कोई युक्ति या तर्क नहीं किया जाता। वेद में तो हेतु पूछने वाला भी नास्तिक कहा जाता है जैसे ''आकाशवत्'' सर्वगतश्च नित्यः। ''मनोमयः प्राण शरीर आत्मा। 'आकाशशरीरं' ब्रह्म। इत्यादि श्रुतियाँ भगवान के शरीर में प्रमाण हैं। आकाश-स्तल्लिङ्गात् १/१/२३ यह ब्रह्मसूत्र भी भगवान के शरीर में प्रमाण है। भगवान के अवयवावयी भाव के पक्ष में पुराणों में हजारों प्रमाण उपलब्ध हैं जो नित्य सिद्ध होता है उसके लिए युक्तियों की कोई आवश्यकता नहीं होती। प्रचण्ड किरणों से सम्पन्न मध्याह्न के सूर्यनारायण को सिद्ध करने के लिए क्या किन्हीं युक्तियों की आवश्यकता पड़ती है? फिर भी श्रुतियों में भगवान् के हस्त, चरण, मुख आदि अवयवों के वर्णन मिलते हैं जैसे 'सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपाद।'

बहुत क्या कहें यदि भगवान को अवयवहीन ही माना जायेगा तो फिर मधुसूदन सरस्वती की 'वंशी विभूषित करात्' गीता १८/६६ मधुसूदनी रचना का क्या होगा। अवयवहीन भगवान में वंशीविभूषितकरत्व कैसे घटेगा। जब उनके पास हाथ ही नहीं तो वंशी बजायेंगे कैसे। यदि कहा जाय कि यह असत्य है तो फिर इसके रचयिता महोदय भी असत्यवादी हैं। इसलिए असत्यवादी व्यक्ति के सभी वाक्य असत्य होंगे। इसलिए असत्यवादियों के साथ भाषण करना व्यर्थ है। यदि कहें कि जो सावयव होता है वह अनित्य होता है क्योंकि वह कार्य है। जैसे घड़ा अवयववान होकर अनित्य है। इस कार्यकरण भाव के अनुसार ब्रह्म अनित्यं 'अवयवत्वात्' इस अनुमान से ब्रह्म में अनित्यता आने लग जायेगी। तो ऐसा नहीं होगा क्योंकि बहुत स्थलों पर अनुमान व्यवहार में खरा नहीं उतरता जैसे 'योनिमत्व रूप हेतु से यदि भोगत्व सिद्ध किया जाय तो वह भगिनी और पुत्री में भी आपतित होने लगेगा। जबकि वहाँ हेतु है साध्य नहीं। इसलिए श्रौत सिद्धान्तों में अनुमान प्रमाण नहीं बनता।

क्रमशः........

# रासपञ्चाध्यायी विमर्शः ( १ )

❑ धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

रासपञ्चाध्यायी आध्यात्मिक जगत का एक ऐसा लोकोत्तर चिन्तनदर्शन महार्णव जिसमें आकण्ठनिमग्न अवगाहन करने वाले असंख्य भावुक मनीषी और प्रेमीजन धन्यता और कृतार्थता का निरन्तर अनुभव करते हैं–सनातनधर्म की अक्षुण्ण धरोहर है। हजारों वर्षों से भागवत तत्त्ववेत्ता आप्तपुरुषों ने अपनी पराऋतम्भराप्रज्ञाप्रसूत भावभूमि पर नूतनभावों को प्रकट करके भगवान को भी भारत की भक्ति की भविष्णुता के प्रति आकृष्ट किया है। ऐसे ही आप्तपुरुषों की सरणी में अग्रगण्य, वर्तमान काल की आध्यात्मिक चिन्तनधारा के अद्वितीय मनीषी एवं भागवत को व्युत्पत्ति तथा टीका की अपेक्षा अपनी भक्ति से निरन्तर लगाने के अभ्यस्त पूज्यपाद जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज का अनुपम निबन्ध ''रासपञ्चाध्यायी विमर्शः'' श्रीतुलसीपीठसौरभ के सुधीपाठकों के आनन्दवर्धन के लिए क्रमशः प्रस्तुत किया जा रहा है। [प्रधान सम्पादक]

**रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे।**
**रघुनाथाय नाथाय श्रीसीतायाः पतये नमः।।१।।**
**कृष्णाय कृष्णचन्द्राय कृष्णदेवाय सात्वते।**
**यदुनाथाय नाथाय श्रीराधायाः पतये नमः।।२।।**
**नमस्यामः शुकाचार्यं वासिष्ठं व्याससम्भवम्।**
**पिबामो यन्मुखाम्भोजच्युतं भागवतामृतम् ।।३।।**
**श्रीसीतानाथ समारम्भां श्रीरामानन्दार्यमध्यमाम्।**
**अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे श्रीगुरुपरम्पराम् ।।४।।**
**वांछाकल्पतरुभ्यश्च कृपासिंधुभ्य एव च।**
**पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः।।५।।**
**शुकाचार्य के पदकमल बार बार शिर नाय।**
**कहउँ रास लीला मुदित सरस रहस्य सुहाय।।६।।**

परिपूर्णतम परात्पर परब्रह्म भगवान श्रीसीताराम जी की कृपा तथा परम परमेश्वर, सर्वसर्वेश्वर योगेश्वर रासबिहारी श्रीराधाकृष्ण भगवान की अनुकम्पा से आज हम एक ऐसे चरित्र की चर्चा करने जा रहे हैं जिस पर प्रारम्भ से लेकर अद्यावधि शतशः संदेह बने रहे हैं। कहते सभी हैं पर निःसंदिग्ध कोई नहीं कहना चाहता और न कोई कहने का साहस करता है। सनातन धर्म की एक विडम्बना भी यही है कि लोग वास्तविकता के लिए न तो साहस जुटा पाते हैं और न ही वास्तविकता की जिज्ञासा कर पाते हैं। इसलिए बहुत से सिद्धान्त पुस्तकों में तिरोहित ही रह जाते हैं। पहले की अपेक्षा आज की परिस्थिति बहुत ही विचित्र परिवेश में परिवर्तित हो गई है। पहले प्रायशः अन्धविश्वास से काम चला लिया जाता था और यह कह दिया जाता था कि ''हेतुप्रष्टा तु नास्तिकः'' हेतु पूछनेवाला नास्तिक होता है, पर शास्त्रों में हेतु नहीं पूछना चाहिए। वहाँ क्यों? कैसे? क्या? कब? कहाँ से? किसलिए इत्यादि प्रश्नों की न तो कोई उपयोगिता है और न ही कोई आवश्यकता। इस भय के कारण सामान्य व्यक्ति या तो दब जाता था या अपनी भावनाओं को दबाकर उन्हें समाप्त कर देता था। तर्क की शक्ति समाप्त हो गई और लगता यही है कि इन्हीं कारणों से इस पवित्र अजेय भारत देश को लगभग दो हजार वर्षों पर्यन्त दासता देखनी पड़ी। दो हजार वर्ष पर्यन्त परतंत्रता की शृंखला में रहना पड़ा किन्तु अब युग बदल चुका है, परिस्थितियाँ भिन्न हो

गई हैं, चिन्तन भिन्न हो गया है। एक ओर भौतिकता का बोलबाला है तो दूसरी ओर कम्प्यूटरीकरण का एक अभूतपूर्व प्रभाव। आज का बालक भी तो जन्म लेते ही कम्प्यूटराइज्ड हो जाता है, कम्प्यूटरीकृत हो जाता है। इसलिए अब ''**हेतुप्रष्टा तु नास्तिकः**'' की बहुत उपयोगिता नहीं रह गई है। यद्यपि यह उपयोगिता पहले भी बहुत नहीं थी। वहाँ ''**हेतुप्रष्टा तु नास्तिकः**'' का इतना ही तात्पर्य था कि वेदमंत्रों में बहुत कुतर्क नहीं करना चाहिए। पर इसका यह तात्पर्य नहीं समझ लेना चाहिए कि सुतर्कों से भी मुख मोड़ लिया जाय, क्योंकि इस सिद्धान्त के समाधान के लिए मनु ने दोनों बातें कही है। पहले कह दिया यह ''**यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मं वेद नेतरः**'' अर्थात् जो तर्कों अर्थात् जिज्ञासाओं के साथ धर्म का अनुसन्धान करता है वही धर्म को जानता है दूसरे नहीं, परन्तु उस तर्क में भी उनको बहुत स्वतंत्रता उच्छृंखलता अभीष्ट नहीं है। हमारी भारतीय मानसिकता की एक सबसे बड़ी विशेषता रही है कि हम स्वतंत्रता चाहते हैं पर स्वच्छन्दता नहीं, क्योंकि स्वतंत्रता मनुष्य का अधिकार है और स्वच्छन्दता पशु का धर्म है। स्वच्छन्द तो वही हो सकता है जो शरीरधर्म से उठ जाये, जैसे मुनिगण, जैसे परमेश्वर भगवान्। हम न तो ऋषि हैं और न ही भगवान्, हम मनुष्य हैं एक मध्यमवर्गीय प्राणी हैं। अतः हमारी परिस्थिति में स्वतन्त्रता ही उपयोगी होगी स्वच्छन्दता नहीं। स्वतन्त्रता का अर्थ होता है अपने कर्म के अनुसार कार्यपद्धति का निर्धारण। 'स्व' का अर्थ है आत्मीय और हमारे आत्मीय हैं भगवान्। उनका तन्त्र है वेद और वेदानुमोदित स्मृतियाँ तथा पुराण और अन्य वैदिक साहित्य। इसलिए हम स्वतन्त्रता से विचार करने जा रहे हैं स्वच्छन्दता से नहीं और न ही हम किसी को भी स्वच्छन्दता से विचार करने की अनुमति देंगे। यहाँ यह ध्यान रखना होगा कि **यह एक आधिकारिक वक्तव्य है। यह कोई ऐसा-वैसा वक्तव्य नहीं है। किसी अनुत्तरदायी वक्ता का वक्तव्य नहीं है। यह जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य का वक्तव्य है।** जिसमें निष्पक्ष वैज्ञानिकपद्धति और एक प्रातिभ परिवेश में सनातन धर्म की व्याख्या की जायेगी और **यह व्याख्या एक उत्तरदायी व्यक्ति के द्वारा की जायेगी और इसका एक-एक शब्द शास्त्रसम्मत होगा और प्रत्येक सिद्धान्त पर मैं स्वयं उत्तरदायी रहूँगा** इसलिए इस वक्तव्य को निःस्संदेह और निर्भ्रान्त रूप से सुनना चाहिए। यह कहा जा चुका है कि सनातनधर्म का जो मूल सिद्धान्त है उसके स्रोत हैं भगवान् वेद और वेदों को सनातनधर्मी मानस अपौरुषेय मानता है। इन्हें किसी पुरुष ने नहीं बनाया। ये परमात्मा भगवान् श्रीसीताराम जी के और श्रीसीतारामाभिन्न भगवान् श्रीराधाकष्ण जी के निश्वासभूत हैं, उनके स्वाभाविक श्वास हैं वेद। इसलिए श्रीरामचरितमानस में श्रीहुलसीहर्षवर्धन गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज ने भी यह सिद्धान्तरूप में स्वीकार कर लिया कि वेद भगवान के निश्वास हैं।

**जाकी सहज श्वास श्रुति चारी।**
**सोइ हरि पढ़ यह कौतुक भारी।।**

मानस १/२०४/५

और यह बात उपनिषदों में भी कही गई है। **यस्य निःश्वसितमेतत् ऋग्वेदः यजुर्वेदः सामवेदः अथर्ववेदश्च।** वेद भगवान् के निश्वास हैं। निश्वास का तात्पर्य यह है कि जैसे किसी की भी सत्ता का अनुमान उसके श्वास के आधार पर होता है। सामान्य भाषा में कहा जाता है कि जब तक श्वास चलता है तब तक व्यक्ति जीता है। श्वास बन्द होने पर व्यक्ति मरा हुआ समझ लेना चाहिए, इसी प्रकार श्वासरूप वेद ही परमात्मा की सत्ता की प्रमाण में परम प्रमाण हैं। क्या प्रमाण हैं परमात्मा हैं? उत्तर हुआ वेद। जैसे

श्वास से हम किसी व्यक्ति की सत्ता का निश्चय करते हैं। अतएव यदि वेद ही हमारे परम प्रामाणिक हैं और गोस्वामी जी ने तो डिम-डिम घोष करते हुए कहा कि वेद की महिमा अतुलनीय है औरों की बात को छोड़ो यदि भगवान भी वेद के विरुद्ध कुछ कहना चाहते हैं तो सनातनधर्मी उन्हें नहीं स्वीकारेगा। जैसे बुद्धावतार को हमने माना पर बुद्ध की बात हमें इसलिए मान्य नहीं हुई क्योंकि वह वेद के विरुद्ध थी। आज भगवान् बुद्ध की पूर्णिमा है और आज ही हम इस वक्तव्य का प्रारम्भ कर रहे हैं। हम भगवान बुद्ध को प्रणाम करते हैं, भगवान बुद्ध को मानते हैं, पर भगवान बुद्ध की बात मानने में हमें इसलिए संकोच होता है कि वे कहीं-कहीं वेद के विरुद्ध कुछ कहना चाहते हैं। यहाँ यह बात सुगमता से समझ लेनी चाहिए कि वैदिक भारतीय मानस मातृपक्षीय है। हम पिता की अपेक्षा माता को श्रेष्ठ मानते हैं और पिता की सत्ता में हम माता को ही परम प्रमाण मानते हैं **और माता की सत्ता की प्रामाणिकता की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि 'प्रत्यक्षे किं प्रमाणम् ' अर्थात् प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नही होती। इसलिए श्रुति की सत्ता में हमें कोई सन्देह नहीं है। परमात्मा की सत्ता का परम प्रमाणभूत सिद्धान्त समझाती है हमारी श्रुति माता। प्रायशः पिता माता पर अत्याचार करता है तो पुत्र माता का पक्ष लेता है, पिता का नहीं ठीक यही बात यहाँ भी है कि जब भगवान् किसी कारण से यदि श्रुति की बात नहीं मानना चाहेंगे तो हम भगवान् का पक्ष न लेकर भगवती श्रुति, अपनी माता का पक्ष लेंगे और लिया भी। बुद्ध से कह दिया ठीक है आप यदि हमारी माँ की निन्दा कर रहें हैं तो हम आपको यहाँ से विदा देना चाहते हैं, जाइये जहाँ जाते बने। भिन्न-भिन्न स्थान पर करिये प्रचार। हम आपकी दयालुता को मानते हैं, परन्तु वेद विरुद्ध वक्तव्य को कदापि हम नहीं मानेंगे। इसीलिए दोहावली में गोस्वामी जी ने कहा-**

अतुलित महिमा वेद की तुलसी कीन्ह विचार।
जो निन्दित निन्दित भए विदित बुद्ध अवतार।।

क्रमशः........

# अहंकार पतन का कारण

धन और देहबल के अहंकार में डूबकर जो धर्म तथा मर्यादाओं का उल्लंघन कर मनमाना उच्छृंखल आचरण करते हैं, एक न एक दिन वे दुर्गति को अवश्य प्राप्त होते हैं।

धन का अहंकार मनुष्य को अंधा बनाकर उससे बड़ा-से-बड़ा घोर पाप-कर्म करा देता है। धन के मद में अंधा हुआ व्यक्ति कई बार तो छोटे-बड़े का अन्तर भूलकर, अपने कर्त्तव्य को भुलाकर अक्षम्य अपराध तक कर बैठता है। वह यह भूल जाता है कि धन की चकाचौंध ने उसकी आँखों पर पर्दा डाला हुआ है तथा वह जो घोर कुकृत्य, धर्मविरुद्ध आचरण करने में नहीं हिचकिचा रहा, यही उसके वंशनाश तथा घोरपतन का कारण बनने वाले हैं। अतः धन के मद में अन्धे कदापि नहीं बनो।

जीवन का अन्तिम लक्ष्य धन, सत्ता या ऐश्वर्य नहीं, भगवान की कृपा प्राप्ति होना चाहिए। सीमा से अधिक सम्पत्ति विपत्ति का कारण अवश्य बनती है।

**-[एक सत्सङ्ग का सुमन]** ❑❑❑

# पाप का फल तो भोगना ही पड़ता है

❑ परमवीतराग स्वामी रामसुखदास जी महाराज

एक सुनी हुई घटना है। किसी गाँव में एक सज्जन रहते थे। उनके घर के सामने एक सुनार का घर था। सुनार के पास सोना आता रहता था और वह गढ़कर देता रहता था। ऐसे वह पैसे कमाता था। एक दिन उसके पास अधिक सोना जमा हो गया। रात्रि में पहरा लगाने वाले सिपाही को इस बात का पता लग गया। उस पहरेदार ने रात्रि में उस सुनार को मार दिया और जिस बक्से में सोना था, उसे उठाकर चल दिया। इसी बीच सामने रहने वाले सज्जन लघुशङ्का के लिये उठकर बाहर आये। उन्होंने पहरेदार को पकड़ लिया कि तू इस बक्से को कैसे ले जा रहा है? तो पहरेदार ने कहा– 'तू चुप रह, हल्ला मत कर। इसमें से कुछ तू ले ले और कुछ मैं ले लूँ।' सज्जन बोले– 'मैं कैसे ले लूँ? मैं चोर थोड़े ही हूँ।' पहरेदार ने कहा– 'देख, तू समझ जा, मेरी बात मान ले, नहीं तो दुःख पायेगा।' पर वे सज्जन माने ही नहीं। तब पहरेदार ने बक्सा नीचे रख दिया और उस सज्जन को पकड़कर जोर से सीटी बजा दी। सीटी सुनते ही और जगह पहरा लगाने वाले सिपाही दौड़कर वहाँ आ गये। उसने सबसे कहा कि 'यह इस घर से बक्सा लेकर आया है और मैंने इसको पकड़ लिया है।' तब सिपाहियों ने घर में घुसकर देखा कि सुनार मरा पड़ा है। उन्होंने उस सज्जन को पकड़ लिया और राजकीय आदमियों के हवाले कर दिया। जज के सामने बहस हुई तो उस सज्जन ने कहा कि 'मैंने नहीं मारा है' उस पहरेदार सिपाही ने मारा है।' सब सिपाही आपस में मिले हुए थे, उन्होंने कहा कि 'नहीं इसी ने मारा है, हमने खुद रात्रि में इसे पकड़ा है,' इत्यादि।

मुकदमा चला। चलते–चलते अन्त में उस सज्जन के लिये फाँसी का हुक्म हुआ। फाँसी का हुक्म होते ही उस सज्जन के मुख से निकला– 'देखो, सरासर अन्याय हो रहा है भगवान के दरबार में कोई न्याय नहीं। मैंने मारा नहीं मुझे दण्ड हो और जिसने मारा है वह बेदाग छूट जाय, जुर्माना भी नहीं; यह अन्याय है।' जज पर उसके वचनों का असर पड़ा कि वास्तव में यह सच्चा बोल रहा है, इसकी किसी तरह से जाँच होनी चाहिये। ऐसा विचार करके उस जज ने एक षड्यन्त्र रचा।

सुबह होते ही एक आदमी रोता–चिल्लाता हुआ आया और बोला– 'हमारे भाई की हत्या हो गयी, सरकार! इसकी जाँच होनी चाहिये।' तब जज ने उसी सिपाही को और कैदी सज्जन को मरे व्यक्ति की लाश उठाकर लाने के लिये भेजा। दोनों उस आदमी के साथ वहाँ गये, जहाँ लाश पड़ी थी। खाट पर लाश के ऊपर कपड़ा बिछा था। खून बिखरा पड़ा था। दोनों ने उस खाट को उठाया और उठाकर ले चले। साथ का दूसरा आदमी खबर देने के बहाने दौड़कर आगे चला गया। तब चलते–चलते सिपाही ने कैदी से कहा– 'देख, उस दिन तू मेरी बात मान लेता तो सोना मिल जाता और फाँसी भी नहीं होती, अब देख लिया सच्चाई का फल?' कैदी ने कहा– 'मैंने तो अपना काम सच्चाई का ही किया था, फाँसी हो गई तो हो गई! हत्या की तूने और दण्ड भोगना पड़ा मेरे को! भगवान् के यहाँ न्याय नहीं!'

खाट पर झूठमूठ मरे हुए के समान पड़ा हुआ आदमी उन दोनों की बातें सुन रहा था। जब जज के सामने खाट रखी गयी तो खून भरे कपड़े को हटाकर वह उठ खड़ा हुआ और सारी बात जज को बता दी

कि रास्ते में सिपाही यह बोला और कैदी यह बोला। यह सुनकर जज को बड़ा आश्चर्य हुआ। सिपाही भी हक्का-बक्का रह गया। सिपाही को पकड़कर कैद कर लिया गया। परन्तु जज के मन को सन्तोष नहीं हुआ। उसने कैदी को एकान्त में बुलाकर कहा कि 'इस मामले में तो मैं तुम्हें निर्दोष मानता हूँ पर सच-सच बताओ कि इस जन्म में तुमने कोई हत्या की है क्या?' वह बोला- बहुत पहले की घटना है। एक दुष्ट था, जो छिपकर मेरे घर मेरी स्त्री के पास आया करता था। मैंने अपनी स्त्री को तथा उसको अलग-अलग खूब समझाया पर वह माना नहीं। एक रात वह घर पर था और अचानक मैं आ गया। मेरे को गुस्सा आया हुआ था। मैंने तलवार से उसका गला काट दिया और घर के पीछे जो नदी है, उसमें फेंक दिया। इस घटना का किसी को पता नहीं लगा। यह सुनकर जज बोला- 'तुम्हारे को इस समय फाँसी होगी ही; मैंने भी सोचा कि मैंने किसी से घूस (रिश्वत) नहीं खायी, कभी बेईमानी नहीं की, फिर मेरे हाथ से इसके लिये फाँसी का हुक्म लिखा कैसे गया? अब सन्तोष हुआ। उसी पाप का फल तुम्हें यह भोगना पड़ेगा। सिपाही को अलग फाँसी होगी?

(उस सज्जन ने चोर सिपाही को पकड़वाकर अपने कर्तव्य का पालन किया था। फिर उसको जो दण्ड मिला है, वह उसके कर्तव्य -पालन का फल नहीं है, प्रत्युत उसने बहुत पहले जो हत्या की थी, उस हत्या का फल है। कारण कि मनुष्य को अपनी रक्षा करने का अधिकार है, मारने का अधिकार नहीं। मारने का अधिकार रक्षक क्षत्रिय का, राजा का है। अतः कर्तव्य का पालन करने के कारण उस पाप(हत्या) का फल उसको यहीं मिल गया और परलोक के भयंकर दण्ड से उसका छुटकारा हो गया। कारण कि इस लोक में जो दण्ड भोग लिया जाता है, उसका थोड़े में ही छुटकारा हो जाता है, थोड़े में ही शुद्धि हो जाती है, नहीं तो परलोक में बड़ा भयंकर (ब्याजसहित) दण्ड भोगना पडता है।)

इस कहानी से यह पता चलता है कि मनुष्य के कब किये हुए पाप का फल कब मिलेगा इसका कुछ पता नहीं। भगवान् का विधान विचित्र है। जब तक पुराने पुण्य प्रबल रहते हैं तब तक उग्र पाप का फल भी तत्काल नहीं मिलता। जब पूर्वपुण्य समाप्त होते हैं, तब उस पाप की बारी आती है। पाप का फल (दण्ड) तो भोगना ही पड़ता है, चाहे इस जन्म में भोगना पड़े या जन्मान्तर में।

**अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।**
**नाभुक्तं क्षीयते कर्म जन्मकोटिशतैरपि।।**

❑❑❑

# सद्गुरु चरण सहारे हैं

❑ डॉ० प्रो० रामदेव प्रसाद सिंह 'देव' ( पूर्व कुलपति )

**केहू तो मगन परिजन सुतदार संग**
**केहू दिनरात धन धाम को सँवारे हैं।**
**केहू मान सम्मान सुजस लोभपाश वश**
**लोक ईशना समक्ष निज हियहारे हैं।**

**केहू जोग जप तप नियम व्रत करि**
**सुरलोक सुख हेतु सर्वस वारे हैं।**
**किंतु दीन देव प्रज्ञाकिंकर अकिंचन को**
**एकमात्र सद्गुरु चरण सहारे हैं।**

गतांक से आगे

# शिखा की वैज्ञानिकता का रहस्य

❑ पूज्यपाद पं० दीनानाथ शास्त्री सारस्वत

नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च' (यजुः १६/२९) इस मंत्र को शिखाछेदन में उदाहृत करना भी युक्त नहीं हो सकता। क्योंकि-यहाँ पर शिखाहीनता नहीं कही गई; सामान्य केश वहाँ पर इष्ट हैं। 'केशा न शीर्षन् यशसे, श्रियै शिखा' (यजुः १९/९२) इस मन्त्र में शिखा तथा केश भिन्न-भिन्न शब्द आये हैं। तब केशों से 'शिखा' का ग्रहण नहीं हो सकता। इधर 'श्रियै शिखा' इस मन्त्र से विरोध भी पड़ेगा। शिखा भी प्राप्ति के लिए कही गई है, फिर उसे क्यों काटा जाय? अथवा रुद्राध्याय के इस मन्त्र में रुद्र के दो आश्रम बताये गये हैं। कपर्दी-जटाजूटधारी को कहते हैं; सो यह शब्द वानप्रस्थावस्था का द्योतक है; क्योंकि-वानप्रस्थी को ऐसे ही जटिल रहना पड़ता है और 'व्युप्तकेश' से संन्यासाश्रम इष्ट है; वैसे कि-महीधराचार्य ने भी अपने भाष्य में संकेत दिया है-'यत्यादिरूपेण मुण्डितत्वम्।'

(१४) संन्यासियों के लिए शिखा का त्याग तो अपवाद है प्रतिपक्षियों से प्रोक्त कारण नहीं। इस कारण उनके लिए 'ताण्ड्यमहाब्राह्मण' में कहा है- ' शिखा अनुप्रवपन्ते, पाप्मानमेव तदपघ्नते। लघीयांसः स्वर्गलोकमयामेति' (४/१०/२५)। स्वा० दयानन्द जी ने भी प्राजापत्येष्टि (जिसमें यज्ञोपवीत और शिखा का त्याग किया जाता है) कर इस प्रकार मनु० (६/३८) के प्रमाण से (संस्कार-विधि २६२ पृष्ठ) 'सर्ववेदसम-गृहाश्रमस्थ पदार्थ मोह, यज्ञोपवीत और शिखा आदि को धारण करता है, उनको छोड़, यह अथर्ववेद के प्रमाण से (संस्कार विधि पृ० २७२) 'सर्ववेदसम शिखा सूत्र यज्ञोपवीत आदि पूर्वाश्रम-चिह्नों का त्याग करना है यह सबसे बड़ा यज्ञ है' इस तैत्तिरीयके प्रमाण से संस्कारविधि पृ० २७९ में संन्यासियों के लिए शिखा-त्याग स्वीकार किया है।

७५ वर्ष के बाद सामान्यतया संन्यास का विधान है; तब आयु की वृद्धि की जाने से शरीर की पूर्णता हो जाने के कारण 'अधिप' मर्मस्थल की त्वचा कठोर हो जाती है, और शिखाजन्य लाभ भी ७५ वर्ष तक प्राप्त होकर सारे शरीर में व्याप्त हो जाते हैं; तब उस समय शिखा-त्याग में भी कोई हानि नहीं होती। इसके अतिरिक्त तथा कर्मकाण्ड तथा उपासनाकाण्ड के समाप्त हो जाने से तत्सम्बद्ध शिखा-सूत्र का त्याग ठीक भी है। 'विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत् कृतम्' (१/४) यह 'कात्यायनस्मृति' का वचन कर्मउपासनाकाण्डपरक है, ज्ञानकाण्डपरक नहीं। जो लोग शिखाजन्य सब लाभों को प्राप्त करके सिद्धि को प्राप्त हो चुके हों; जिसकी सब वासनाएँ नष्ट हो चुकी हों; संन्यास के अधिकारी भी वही हैं; शिखा-त्याग में भी उन्हीं का अधिकार है, क्योंकि अब उनका किसी भी कर्मफल के साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं रहता। शिखा रखी जाती है कर्मकरणार्थ और प्राणों के रक्षणार्थ। वे ही ज्ञानशाली योग प्राप्त कर कर्मों को छोड़कर अपने प्राणों को ब्रह्मरन्ध्र में स्थापित कर उन प्राणों के निकलने में अन्तरायस्वरूप शिखा को हटाकर उस रिक्त स्थान के द्वारा उन प्राणों को निकाल देते हैं; जिससे उनकी ऊर्ध्वगति होती है। उक्त वेद मन्त्र में, तथा संन्यास-विधान में गर्म ऋतु वा देश के कारण शिखात्याग नहीं कहा गया। इससे प्रतिपक्षियों का पक्ष कभी भी सिद्ध नहीं होता।

### शिखा रखने में अन्य उपपत्ति

(१५) तीन आश्रमों तक शिखा रखने फिर संन्यास में उसका त्याग करने में यद्यपि पहले

उपपत्तियाँ दी जा चुकी हैं, तथापि अन्य उपपत्तियाँ भी दी जाती हैं। पाठक सावधानी से देखें।

सारी सृष्टि का मूल अग्नि ही है। अग्नि का स्वरूप उसकी शिखा से ही व्यक्त होता है। **अग्नि को संस्कृत में 'शिखी' कहा जाता है। अग्नि जब शिखारहित हो तो उसमें हवन निषिद्ध माना गया है।** जब अग्नि 'शिखी' हो; तो किसी की शक्ति नहीं कि-उसका स्पर्श कर सके। उसके उस स्वरूप (शिखित्व) के नष्ट होने पर भस्म भी उसे आच्छन्न कर दिया करती है। आज हम भी जो पददलित हो रहे हैं, उसमें भी कारण यह है कि हमने अपना अग्नि से प्राप्त स्वरूप शिखित्व हटा दिया है। हम सब अग्नि से उत्पन्न हैं, अग्नि के उपासक हैं। अग्नि से ही हम 'तनुं मे पाहि, आयुर्मे देहि, वर्चा मे देहि, अग्ने! यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आवृण' (पारस्क० २/४/०७) 'मयि मेघां, मयि प्रजां, मयि अग्निस्तेजो दधातु' (आश्व० गृ० १/२१/४) 'यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते। तया मामद्य मेधयाग्ने! मेधाविनं कुरु स्वाहा' (यजुर्वेद वाज० सं० ३२/१४) इत्यादि प्रार्थना करते हैं।

हमारे गोत्र-पुरुष भी हमारा अग्नि के साथ प्राचीन सम्बन्ध बताते हैं। जमदग्निगोत्र 'जमद् (ज्वलद्) अग्नि' (निरुक्त ७/२४/८) को बताता है, अङ्गिरस् गोत्र अग्नि के अंगार (निरु० ३/१७/१) को बताता है। इस प्रकार भृगु, अत्रि, भारद्वाज आदि की भी वही अग्निमूलक उत्पत्ति की निरुक्ति कही गई है। ब्राह्मणों में तो अग्नि का विशिष्ट निवास माना गया है, जैसे कि- 'वैश्वानरः प्रविशति अतिथिर्ब्राह्मणो गृहान्' (कठोपनि० १/१/७) 'ब्राह्मणो ह वा इममग्नि वैश्वानरं बभार (गोपथब्रा० १/२/२०), 'अग्निः यो ब्राह्मणान् आविवेश' (अथर्व १९/५९/२)। तभी निषादों के खाने के समय बिनता ने गरुड़ को ब्राह्मण खाने के लिए निषेध कर दिया कि- ब्राह्मण के खाने से तेरे गले में दाह होगा। देखो 'महाभारत' आदिपर्व २९ अध्याय। अस्तु।

जो जिसकी उपासना करता है, अन्त में उसके स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। उपासक भी चाहता है; तभी वह अपने उपास्य के स्वरूप की प्राप्त्यर्थ उपास्य के ही लिङ्गों को धारण करता है। जैसे- गणेशभक्त सिन्दूर आदि, शैव भस्म, रुद्राक्षादि माला को, वैष्णव लोग गोपीचन्दन तुलसीमाला आदि को धारण करते हैं। इसीलिए शुक्लयजुर्वेद के **शतपथब्राह्मण में कहा है-'देवो भूत्वा देवान् एति' (१४/६/१०)।**

इस प्रकार हम लोग भी अग्नि के उपासक होने से उसके लिङ्ग 'शिखा को धारण करते हैं, और उस चिह्न को धारण करना भी चाहिये। ब्रह्मचर्य गृहस्थ, वानप्रस्थ आदि तीन आश्रमों में अग्नि की उपासना कही गई है। अनग्नि (अग्निरहित) होकर हम प्रत्यवायभाक् माने जाते हैं। संन्यास आश्रम में जब कि अग्नि का त्याग कहा है; तब अग्नि के चिह्न शिखा का भी त्याग कहा गया है। अग्निसेवन (यज्ञ) के अधिकारपट्ट (यज्ञोपवतीत-सूत्र) का भी त्याग कहा गया है। ऐसी स्थिति में पुरुष का अग्निमय संसार से भी कोई सम्बन्ध नहीं रहता। तभी तो मृत्यु के समय भी संन्यासी को अग्नि से नहीं जलाया जाता। इससे स्पष्ट है कि- हमें तीन आश्रम तक शिखा का त्याग ठीक नहीं। अग्नि के उपासक शिखा के श्रद्धालु हमारे प्राचीन ऋषि-मुनि जल-वायु आदि का सेवन करते हुए भी परम तेजस्वी थे! तेजस्वी होने से वर-शाप आदि देने में भी समर्थ हुए। इसीलिए ही शिखा में अधिक बल भी ब्राह्मणादिकों में था। आज वे ही शिखा की उपेक्षा से तेजोहीन हो गये हैं। शिखात्याग सर्वथा नहीं करना चाहिये। ऐसा करने पर यही शिखा आपको तेजस्वी बनायेगी। शिखा-त्याग का ही परिणाम देशनिर्वासन वा पाकिस्तान हुआ है।

क्रमशः........

# भगवान श्रीराम की अनुपम झाँकी

❑ पूज्यपाद जगद्गुरु जी

ऐसन स्वरूप कहाँ पवल हे,
नृप दशरथ कुमार।
कोटि-कोटि काम के लजवल हे
दुलहा सरकार।
जगत सिरमाँर सिर मौरिया हे,
सरसे सुषमा अपार।
मरकत शयल पर साजल हे,
मानो रवि रश्मिधार।
मीन हू लहि काम केतुता हे,
सेई कुन्डल उदार।
नाशा ललित सुकपोल गोल हे
पाटल सुकुमार।
खंजनहु खंजता छिसरी हे,
लखि नयन कजरार।
कुंचित कच लखि भृकुटी हे,
मद तजो धनुमार।
ध्याई भव भावन मुखाम्बुज हे,
भयो चन्दसुधासार।
अरुण हुलहि अरुणाई हे।
भजि अधर अरुणार।
काम करि सावक समान कर हे,
धनु अंजनि हार।
पियरी बियहूति धोती रे,
छलके श्रृंगार।
मिथिला के वासी मगन भये हे,
पाये पैरि के न पार।
नृपति विदेह से विदेह भये हे,
लखि रूप परावार।
आये जनक की दुअरिया हे,
राम अश्व असवार।
लखि रघुवर सीतावर हे,
'गिरिधर' बलिहार।

# युगल सरकार की झाँकी

देखु-देखु-सखि, देखु, सिया दुलहिनिया हे।
कोटि-काम बाम केर, चित भुलहिनिया हे।।
रघुनंदन बाम दिशि, जनक नन्दनिया हे।
पूरण शशि से संग, शरद चन्दनिया हे।।
शीश चूड़ामणि लसे, माँग में सिन्दूरिया हे।
नाणिनी के संग जैसे, आशीन अँजोरिया हे।।
पल्लव अधर सोहे, मुख सोहे पनमा हे।
काम केतु सम सखि, कुन्डल सोहे कनमा हे।।
खंजन नयन लसे, मन्द - मुस्कनिया हे।
दाड़िम दसन सखि, शान्त चितवनिया हे।।
जनक सुकृत सखि, ललना मुरतिया हे।
छवि हू कि छवि सिया, हरति अरतिया हे।।
नित मन मन्दिर लसे, राम-सिया जोड़िया हे।
कवि 'गिरिधर' केरि, जीवन की मुरिया हे।।

प्रस्तुति- श्रीमती मधुजा लाल (सीतामढी)

# ज्ञान और भक्ति

❑ **धर्मसम्राट् स्वामी करपात्री जी महाराज**

बड़े कुतूहल के साथ लोगों का प्रश्न होता है कि ज्ञान बड़ा कि भक्ति? कुछ लोग ज्ञान की महिमा दिखलाते हुए भक्ति का अपकर्ष दिखलाते हैं, तो कुछ लोग भक्ति की महिमा के सामने ज्ञान को निकृष्ट ठहराते हैं। कोई भक्ति को ज्ञान का साधन कहते हैं, तो कोई ज्ञान को भक्ति का साधन कहते हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी का कहना है कि ज्ञान से विश्वास और विश्वास से प्रीति होती है–

**''जाने बिनु न होइ परतीती।**
**बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती।।**
**प्रीति बिना नहिं भक्ति दृढ़ाई।**
**जिमि खगेश जल की चिकनाई।।''**

भक्तिमणि प्राप्त करने के लिये भी ज्ञान–वैराग्य को साधन ही माना गया है–

**''पावन पर्बत वेद पुराना।**
**राम कथा रुचिराकर नाना।।**
**मर्मी सज्जन सुमति कुदारी।**
**ज्ञान बिराग नयन उरगारी।।**
**भाव सहित जो खोजइ प्रानी।**
**पाव भगति मनि सब सुखखानी।।''**

भक्ति के बिना जो ज्ञान को ढूँढ़ते हैं, वे मन्दभाग्य हैं। वे मानो कामधेनु को छोड़कर दूध के लिये आक ढूँढ़ते हैं–

**''जे अस भगति जानि परिहरहीं।**
**केवल ज्ञान हेतु श्रम करहीं।।**
**ते सठ कामधेनु गृह त्यागी।**
**खोजत आक फिरहिं पय लागी।।''**

श्रीमद्भागवत में भी कहा है–

**''येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिनस्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः।**
**आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः।।''**

अर्थात् हे कमलनयन! जो ज्ञान के प्रभाव से अपने को निर्मुक्त जानने वाले हैं या ज्ञानी मानते हैं, परन्तु आपके श्रीचरणरविन्द प्रेम द्वारा जिनकी बुद्धि शुद्ध नहीं है, वे बड़ी कठिनाई से उच्चतम पद पर आरूढ़ होकर भी पुनः पतित हो जाते हैं। क्योंकि उन्होंने आपके श्रीचरण–कमल का आदर नहीं किया।

**''जे ज्ञान मान विमत्त तव भव हरनि भक्ति न आदरी।**
**ते पाइ सुरदुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी।।''**

**''नानुव्रजति यो मोहाद् व्रजन्तं हरिमीश्वरम्।**
**ज्ञानाग्नि-दग्ध-कर्माऽपि स भवेद्राक्षसाधमः।।''**

अर्थात् श्रीहरि की रथयात्रा में जो मोहवश उनका अनुगमन नहीं करता, वह ज्ञानाग्निदग्धकर्मा होकर भी राक्षसाधम हो जाता है। जो ज्ञानप्रयास को छोड़कर सन्तों को भी मुखरित करने वाली श्रवणरन्ध्र में प्राप्त भगवान् की वार्ता को शरीर, वाक् तथा मन से प्रणाम करता हुआ, जीवन व्यतीत करता है, वह त्रिलोकी में अजित भगवान् को भी जीत लेता है, अर्थात् मनोवचनातीत भगवान् को अपने तनु तथा मन के वश में कर लेता है–

**''ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव**
**जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीयवार्ताम्।**
**स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभिर्ये**
**प्रायशोऽजितजितोऽप्यसि तैस्त्रिलोक्याम्।।''**

**''तथा न ते माधव तावकाः क्वचिद्**
**भ्रश्यन्ति मार्गात्त्वयि बद्धसौहृदाः।**
**त्वयाभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया**
**विनायकानीकपमूर्धसु प्रभो।।''**

भगवान् के साथ जिनका सौहार्द सुदृढ़ है, ऐसे भगवान् के भक्त कभी भी मार्ग से नहीं गिरते, अपितु वे भगवान् द्वारा सुरक्षित हो विघ्नसेनानियों के सिर पर पादविन्यास करते हुए निर्भय विचरते हैं।

**''या निर्वृतिस्तनुभृतां तव पादपद्मध्यानाद्**
**भवज्जनकथाश्रवणेन वा स्यात्।**
**सा ब्रह्मणि स्वमहिमन्यपि नाथ माभूत्**
**किन्त्वन्तकासिलुलितात्पततां विमानात्।।''**

भक्तों को भगवान् के श्रीचरणारविन्द के ध्यान में रस मिलता है किंवा भगवद्भक्तों के चरित्र-श्रवण से जो रस व्यक्त होता है, वह स्वप्रकाश, स्वमहिमास्थित भगवान् में भी नहीं व्यक्त होता। फिर अन्तक की तलवार से विलुलित विमानों से गिरने वाले लोगों के सुखों की तो चर्चा ही क्या है?

इसके सिवाय यह भी है कि ज्ञान हो जाने पर भी भक्ति के बिना उसकी शोभा नहीं होती।

**''नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम्।**
**कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे न चार्पितं कर्मयदप्यकारणम्।।''**

ज्ञान, वैराग्य, धर्म और कर्म यह सभी प्रेम-लक्षणा भक्ति से ही सुशोभित होते हैं। उसके बिना सब निरर्थक हो जाते हैं।

**''योग कुयोग ज्ञान अज्ञानू।**
**जहँ न राम प्रेम परधानू।।**
**सो सब कर्म धर्म जरि जाऊ।**
**जहँ न राम पदपङ्कज भाऊ।।''**

साथ ही ज्ञान के उत्कर्ष का भी पक्ष प्रसिद्ध ही है। **''नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते''** अर्थात् ज्ञान के समान कोई भी पवित्र नहीं है। **''वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सूदुर्लभः''** सब कुछ वासुदेव ही हैं, ऐसा ज्ञानवान् महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है। ज्ञान को छोड़कर दूसरा कल्याण का मार्ग ही नहीं है। बिना ज्ञान के भक्ति होती ही नहीं-**''तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।'' ''ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः।'' ''नैनमविदितो देवो भुनक्ति।''** अर्थात् यह देव बिना ज्ञान के प्राणी का अन्तरात्मा होकर भी पालन नहीं करता, अर्थात् सर्वानर्थ से विनिर्मुक्त नहीं करता। भगवान् ज्ञानी को प्रत्यक्ष अपना आत्मा ही बतलाते हैं। **''ज्ञानीत्वात्मैव मे मतम्।''**

समस्त भक्तों की अपेक्षा ज्ञानी भक्त की विशेषता स्वयं श्रीभगवान् स्वीकार करते हैं- **''तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।''**

गोस्वामीपाद तुलसीदास जी भी ज्ञान को ही साक्षात् मोक्षप्रद बललाते हैं-

**''धर्म ते बिरति योग ते ज्ञाना।**
**ज्ञान मोक्षप्रद बेद बखाना।।''**
**''भेद गए बिनु रघुपति,**
**अति न हरहिं भवजाला।''**
**''सकल दृश्य निज उदर मेलि,**
**सोवइ निद्रा तजि योगी।**
**सो हरिपद अनुभवइ परम सुख,**
**अतिशय द्वैत वियोगी।।''**

साथ ही जब द्वैत अज्ञान का कार्य्य है, तब उसकी निवृत्ति के लिये ज्ञान की अपेक्षा है ही- **''क्रोध कि द्वैत बुद्धि बिनु, द्वैत कि बिनु अज्ञान।''** साथ ही भक्ति का ज्ञान साधनों में वर्णन स्पष्ट है-

**''मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।।''**
**''मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।**
**स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते।।''**
**''यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।**
**तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।।''**
**''श्रद्धाभक्तिध्यानयोगादवेहि।।''**

इत्यादि श्रुतियों के द्वारा यह सिद्ध होता है कि भक्ति से ही ब्रह्मात्मत्तत्व का साक्षात्कार होता है।

इन दोनों पक्षों पर विचार करने के पहले यह समझ लेना चाहिये कि भक्तिपद का प्रयोग कहाँ होता है। वैदिकों की दृष्टि में कर्म, उपासना और ज्ञान यह तीन साधन प्राणियों के कल्याण के मूल हैं। कर्म से मल की निवृत्ति, उपासना से विक्षेप की निवृत्ति, और ज्ञान से आवरण की निवृत्ति होती है। मल, विक्षेप, आवरण इन तीनों उपद्रवों से उपद्रुत होकर अन्तरात्मा अनन्त अनर्थों का भागी होता है।

❑❑❑

# सावन में कजरी के महोच्छव

❑ धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

**सावन में कजरी के महोच्छव**
**मैथिली मेघ मल्हार में गावैं।**
**झूले कदम्ब की डार पै झूलन**
**हेरि सबै गुड़ियान झुलावैं।।**
**शीतल मन्द सुगन्ध बयारि**
**फुहारि परै मन मोद बढ़ावैं।**
**'गिरिधर' के प्रभु के उपमान ज्यौं**
**मेघ बिलोकि सिया सुख पावैं।।**

**कुमुदिनी टीका-** सावन में कजरी के महोत्सव के समय सीताजी मेघ मल्हार राग में श्रावणी गाती हैं। स्वयं कदम्ब की डाल पर झूला झूलती हैं और क्रम से अपनी गुड़ियों को भी झुलाती हैं। इसी प्रकार शीतल मन्द-सुगन्ध वायु एवं फुहारों का आनन्द लेती हुई सभी को प्रसन्न करती हैं और गिरिधर कवि के स्वामी श्रीराम के शरीर के उपमान रूप में मेघों को निहार-निहार कर सीताजी बहुत सुखी होती हैं।

**बीरुध बीरन के सिर बाँधन**
**सावन में जरई सिय बोवैं**
**सींचति नेह के नीर निरन्तर**
**गाइ के गीत सोवाई के सोवैं**
**नेम करैं हरतालिका तीज को**
**प्रीति पुरातन चित्त में गोवैं**
**'गिरिधर' स्वामि चरित्र को गावति**
**जागति ही सब राति बिगोवैं।।**

**कुमुदिनी टीका-** बालरूपिणी भगवती सीताजी श्रावण के महीने में वृक्षरूप अपने भाइयों के सिरों में बाँधने के लिये जरई अर्थात् जौ का पौधा उगाने के लिये जौ के बीज बोती हैं, उसे गमले में सदैव प्रेम के जल से सींचती हैं। सायंकाल गीत गाकर जरई को सुलाकर सोती हैं और सीताजी हरतालिका तीज अर्थात् भाद्रपद शुक्ल तृतीया को व्रत करती हैं। प्रभु की पुरातन प्रीति को अपने चित्त में छिपा के रखती हैं। गिरिधर कवि के स्वामी श्रीरामचरित्र को गाती हुई जागरण में ही सम्पूर्ण रात्रि बिता देती हैं।

**विशेष-** पौराणिक कथा के अनुसार भाद्रपद शुक्ल तृतीया को हरतालिका सखी द्वारा पार्वती जी ने शिवजी का अपहरण करवा लिया था इसलिये यह दिन अखंड सौभाग्य के लिये शुभ माना जाता है। इसे प्रत्येक भारतीय सौभाग्याकांक्षिणी कुमारियाँ और सौभाग्यवती नारियाँ दोनों ही करती हैं। इसमें महिलाएँ रात्रि में सोती नहीं। इसी दिन वर्ष में एक बार गीत में ही अपने पति के नाम का उच्चारण करती हैं।

**आगिलि लीला में रक्षन हेतु ज्यौं**
**राखी अशोक की डारी में बाँधैं।**
**शीश धरैं जरई सिय सादर**
**टीका लगाइके भाइहिं साधैं।।**
**बारहिं बार निहोरि महेशहिं**
**नेह ते गौरिहुँ को अवराधैं।**
**'गिरिधर' स्वामिनि बृक्षन के हित**
**आशिरबाद लहैं अवगाधैं।।**

**कुमुदिनी टीका-** अग्रिम अर्थात् प्रभु की

रणलीला में अपनी प्रतिबिम्ब स्वरूप माया की सीता के रक्षण के लिये ही मानो सीताजी अशोक वृक्ष की डार में राखी बाँधती हैं और उसके सिर पर आदरपूर्वक सीताजी जरई अर्थात् जौ का पौधा रखती हैं और अपने भाई अशोक को टीका लगाकर उसे समझा रही हैं कि जब मेरे प्रतिबिम्ब में माया की सीता वेदवती का आवेश होगा और उन्हें रावण हरण करके लंका ले जाकर तुम्हारे अर्थात् अशोक वृक्ष के नीचे निवास देगा तब तुम माया सीता जी को मेरा ही स्वरूप मानकर उनकी रक्षा और देखभाल करना। भगवती सीता बार-बार वृक्षों के लिए शंकर जी से प्रार्थना करती हैं। गौरी-गणेश की आराधना करती हैं। गिरिधर कवि की स्वामिनी सीताजी अपने वृक्ष भाइयों के लिए देवताओं से अगाध आशीर्वाद प्राप्त करती हैं।

**भाई सगे सिय मान तरून को**
**लाकरिहूँ कबहूँ न कटावैं।**
**पावक होत्र में सो समिधा हित**
**डारि हरी तरु की न छँटावैं।।**
**कानन काटै न देइ किराततनि**
**शाखन आगिहुँ ते न हटावैं।**
**'गिरिधर' स्वामिनि पादप की**
**बहिनी बनि बीर बिपत्ति बटावैं।।**

**कुमुदिनी टीका-** भगवती सीताजी वृक्षों को सगा भाई मानकर उनकी लकड़ी कभी नहीं कटाती। अग्निहोत्र में समिधा के लिये भी हरी डालें भी काटने की आज्ञा नहीं देतीं। आदिवासी कोलकिरातों को भी कभी भी वन काटने नहीं देतीं। अपने सामने आई हुईं वृक्षों की शाखाओं को भी नहीं हटातीं। गिरिधर कवि की स्वामिनी सीताजी वृक्षों की बहिन बनकर अपने बीरन की विपत्ति बाँट लेती हैं।

**सीय कहें जग सार के सार ये**
**भोर्‌यौं बिरीछ कबौं न कटावौ।**
**ये परियाबरनी सरवस्व हैं**
**भूतल पूत इन्हें न मिटावौ।।**
**ये बरषा के निदान औ प्रान हैं**
**स्वारथ लागि इन्हें न छँटावौ।**
**'गिरिधर' जो इन्हें काटन चाहत**
**डाँटि तिन्हैं हटकौ औ हटावौ।।**

**कुमुदिनी टीका-** बालरूपिणी भगवती सीताजी सभी प्राणियों से कहती हैं कि ये वृक्ष संसार के सारसर्वस्व भगवान श्रीराम के भी सार अर्थात् साले हैं। फलतः तुम सब मनुष्यों के मामा हैं, भूलकर भी इन वृक्षों को कभी मत कटने दो। ये वृक्ष पर्यावरणी पदार्थों के सर्वस्व हैं अर्थात् इन्हीं से पर्यावरण शुद्ध रह सकता है। ये पृथ्वी के पुत्र हैं इन्हें कभी मत नष्ट करो अर्थात् वृक्षों को कभी मत काटो, ये वृक्ष ही वर्षा के कारण और प्राण हैं, इनके कम हो जाने और न रहने से उचित वर्षा नहीं हो सकेगी, सब लोग जल के बिना मर जाओगे, अपने स्वार्थ के लिये बड़े बड़े व्यावसायिक संयंत्र भवन और महला दुमहला बनाने के लिये इन वृक्षों को मत कटाओ। गिरिधर कवि की स्वामिनी सीताजी कहती हैं कि जो स्वार्थी, राष्ट्रद्रोही तत्व अपने क्षुद्र स्वार्थ के लिये वृक्षों को काटना चाह रहे हैं। उन्हें डाँट धमकाकर रोको और बलपूर्वक उन्हें दूर भगा दो।

**भौतिकवाद की भीम बिभीषिका**
**मानव मूल्यनि खाइ लई है।**

**शान्ति नहीं कतहूँ कबहूँ**
**सुख मंगल निष्ठा हेराई गई है।।**
**स्वाहा सुनी नहि हा हा दसौं दिशि**
**कैसी दशा यह आइ गई है।**
**राखिय कानन 'गिरिधर' स्वामि**
**न तौ विपदा भहराइ गई है।।**

**कुमुदिनी टीका-** भगवती सीताजी गिरिधर कवि के स्वामी भगवान श्रीराम से प्रार्थना करती हुई कहती हैं कि हे प्रभो! भौतिकवाद की भयंकर विभीषिका मानव मूल्यों को खा गई है, कहीं भी कभी भी किसी को भी न तो शान्ति है और न ही सुख और मंगल ही। सबकी निष्ठा लुप्त हो गई है। स्वाहा का अर्थ सुनाई नहीं पड़ रहा है। दसों दिशाओं में हाहाकार ही हाहाकार है। हे भगवन्! यह कैसी परिस्थिति आ गई है। हे गिरिधर कवि के आराध्य देव प्रभु राघव! अब आप ही वन्य सम्पदा की रक्षा कीजिये नहीं तो भारत पर घोर विपत्ति टूट पड़ी है।

**पश्चिम सभ्यता नीच परम्परा**
**के सिगरे अनुकारि भए हैं।**
**मानत बेद न मातु पिता गुरु**
**कौड़ी न लागि भिखारी भए हैं।।**
**कानन काटि कुसौध बनाइ**
**बिषाद बढ़ाइ दुखारी भए हैं।**
**'गिरिधर' स्वामिनि राम बिहाई के**
**चाम के लोग पुजारी भए हैं।।**

**कुमुदिनी टीका-** भगवती सीताजी कहती हैं, अरे! सभी लोग पश्चिमी सभ्यता और निकृष्ट परम्परा के अनुकरण करने वाले बन गए हैं। लोग वेद, माता-पिता, गुरु को नहीं मानते हैं, कानी कौड़ी के लिये सभी भिखारी बन गए हैं, अब वनों को काटकर विलासितापूर्ण महलें बनाकर स्वयं कष्ट को बढ़ावा देकर लोग दुखी हो गए हैं। गिरिधर कवि की स्वामिनी मुझ सीता और प्रभु राम को छोड़कर प्रायशः लोग चमड़ी के पुजारी हो गए हैं।

**छोड़ि स्वदेशी सुसात्विक वस्तुनि**
**मूढ़ बिदेशी को बस्तु लये हैं।**
**जोग बिहाइ के जोगा करै शठ**
**रोग बियोग कुभोग हये हैं।।**
**मुद्रा हरे सबके मुद मंगल**
**साक्षर राक्षस आज भये हैं।**
**'गिरिधर' देखहु पश्चिम जाइके**
**सूरज हूँ हठि के अथये हैं।।**

**कुमुदिनी टीका-** लोग स्वदेशी-सात्विक वस्तुओं को छोड़कर विदेशी सारहीन वस्तुएँ लेने लगे हैं, दुष्टजन योग छोड़कर योगा कर रहे हैं अर्थात् भारतीय पद्धति की योग साधना छोड़कर मनमानी कल्पित जोगा की साधना करते हैं, आज सभी लोग भोगवासना के परिणाम स्वरूप रोगों और वियोगों द्वारा नष्ट कर दिये गए हैं। मुद्रा अर्थात् पैसे की प्यास ने सबकी प्रसन्नता और मंगलों को नष्ट कर दिया है। आज साक्षर ही राक्षस बन गये हैं अर्थात् तथाकथित पढ़े लिखे लोग भी केवल अपने ही स्वार्थ साधन में लग गये हैं। गिरिधर कवि कहते हैं जरा देखो यदि पश्चिमदिशा में जाकर सूर्य नारायण भी अस्त हो जाते हैं तो तुम किस खेत की मूली हो?

**(श्रीसीतारामकेलिकौमुदी से साभार)**

# गुरु पूजन के शुभ अवसर पर

❑ श्री ललिताप्रसाद बड़थ्वाल

गुरुवर आप ही हो मेरे आश्रयदाता।
आप ही रक्षक बन्धु पिता अरु माता।।
आप ही दानवता में मानवता लाते हो।
आप ही मानव को देव बनाते हो।।
दुखियों को सुख देने वाले हो।
आप ही अधमों के उद्धारक हो।।
मन जब श्रीचरणों में लग जाता है।
तब जीवन अमृतमय बन जाता है।।
वह साधन ज्ञान सिखाते हो तुम।
आसुरि वृत्ति का क्षय हो जाता है।।
आप ही भवसागर से तारक हो।
सुकृति सुमति शुभ गति के कारक हो।।

हर लो हे ज्योतिर्मय मेरा अज्ञान तिमिर।
जग में आवागमन का भय न रहे फिर।।
गुरुवर पावन हैं मैं पतित महान।
इस नीच पर कृपा करो भगवान।।
मुझ में कुछ न रहे अभिमान।
दे दो बुद्धियोग का ऐसा वरदान।।
यदि गुरुदेव का अवतार न होता।
''ललित'' जैसे पतित का भी निस्तार न होता।
गुरुवर की कृपा का अन्त नहीं है।
उनके सम कोई सन्त नहीं है।।
प्रभु को पाने का सुगम सहारा है।
गुरुमंत्र ही एकमात्र आधार हमारा है।।

❑❑❑

# सच्ची भक्ति

प्रस्तुति- श्रीशिवकुमार गोयल

धर्मशास्त्रों के प्रकांड विद्वान संत अनमीषि को शास्त्रीय ज्ञान के कारण 'अक्षर महर्षि' कहा जाता था। वह आश्रम में छात्रों को ज्ञान-दान करने में लगे रहते थे।

एक संत उनके आश्रम में आए। उन्होंने महर्षि से कहा, 'आप शास्त्रों के ज्ञाता हैं। शास्त्रानुसार क्या दान देते हैं?' उन्होंने कहा, 'मैं छात्रों को निःशुल्क पढ़ाता हूँ। यह भी तो ज्ञान-दान ही है।' संत जी ने शास्त्र का प्रमाण देकर कहा, 'सद्गृहस्थ संत को अन्नदान भी जरूर करना चाहिए। भूखों व जरूरतमंदों को अन्नदान करना सर्वोत्कृष्ट धर्म है।' महर्षि ने संकल्प किया, 'आज से अन्नदान करके ही भोजन किया करूँगा।' उन्होंने प्रतिदिन दरिद्र को भोजन कराना शुरू कर दिया।

एक दिन आश्रम में कोई भी भोजन मांगने नहीं आया। उन्हें लगा कि आज उनका संकल्प पूरा नहीं होगा। ऋषि दंपती भूखे की खोज में आश्रम से निकल गए। उन्होंने एक वृक्ष के नीचे एक वृद्ध कुष्ठ रोगी को कराहते हुए देखा। उन्होंने उससे विनयपूर्वक कहा, 'तुम भूखे हो, आश्रम में चलकर भोजन करो।' वृद्ध ने कहा, 'मैं चांडाल हूँ। मैं आश्रम में कैसे जाऊँगा?'

ऋषि का हृदय उसके शब्द सुनकर करुणा से भर गया। उन्होंने कहा, 'चांडाल और ब्राह्मण में कोई अन्तर नहीं होता, हम एक ही परमात्मा के अंश हैं।' वृद्ध उनके साथ आश्रम में आ गया। ऋषि दम्पती ने भोजन कराया व उसका उपचार किया।

ऋषि को सोते समय अनुभूति हुई कि भगवान कह रहे हैं, यही सेवा मेरी सच्ची भक्ति है।

# मनुष्य जीवन की अनमोल संपदा है समय

❑ प्रस्तुति-श्री वासुदेव अग्रवाल (हैदराबाद)

हम जी रहे हैं-यह धारणा सत्य नहीं है। सत्य तो यह है कि हम मर रहे हैं। जितने वर्ष चले गये, उतने हम मर गये। हम निरन्तर मर रहे हैं, जीवन से दूर जा रहे हैं, पर वहम होता है कि हम जी रहे हैं।

यह संसार 'मृत्यु संसार सागर' है। इसमें हर चीज मर रही है। इसलिये सावधान हो जाओ। सिवाय भगवान के कोई आपकी रक्षा करने वाला नहीं है। जो सम्पूर्ण दोषों का खजाना है, वह कलियुग बड़ी तेजी से आ रहा है। अतः निरंतर नामजप करते रहें। यह नामरूपी धन आप निरंतर संग्रह करते रहें। जीवन का कोई भरोसा नहीं है। मरना निश्चित है। सब चीजें महंगी हो रही हैं। भगवान का भजन भी महंगा हो रहा है! मृत्यु का कोई समय निश्चित नहीं है, इसलिये हर समय भजन करते रहो- 'सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर' (गीता ८।७)। हर समय भजन करना बीमा है। बीमा कराकर निश्चिन्त हो जाओ। भगवान शंकर के लिये कुछ भी करना, जानना और पाना बाकी नहीं है, फिर भी वे मांगते हैं-

**बार-बार बर माँगउँ हरषि देहु श्रीरंग।**
**पद सरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग।।**

(मानस, उत्तर० १४ क)

जैसे वियोग नित्य है, ऐसे ही अक्रियता भी नित्य है। प्रत्येक साधक के अंत में अक्रिय अवस्था आती है।

भगवान के चरणों में स्थित होकर कुछ भी चिंतन न करें, निर्विकल्प हो जायँ तो ठेठ भगवान के चरणों में पहुंच गये, कुछ करना शेष नहीं रहा! भगवान के चरण कहाँ नहीं हैं? सब जगह भगवान के चरण हैं- 'सर्वतः पाणिपादम्' (गीता १३/१३)। स्याही में कौन सी लिपि नहीं है? सोने में कौन-सा गहना नहीं है? पत्थर में कौन-सी मूर्ति नहीं है? जहां निश्चय करो, वहीं भगवान प्रकट हो जाते हैं। प्रह्लाद जी के लिये वे खम्भे से प्रकट हो गये! परमात्मा अहंकार से दूर हैं। उनके शरण हो जायँ। जहाँ शरण हुए, वही भगवान हैं।'

नेत्रों (इन्द्रियों) की दृष्टि सीमित है, उनसे बुद्धि की दृष्टि तेज है और उससे भी विवेकदृष्टि तेज है। विवेकदृष्टि से मनुष्य बहुत दूर तक देख सकता है।

कानों से लौकिक तथा पारमार्थिक सभी विषयों का ज्ञान हो सकता है। इसलिये 'श्रवण' की मुख्यता है। शास्त्रों और संतों से सुनकर ही हम मानते हैं कि 'परमात्मा' हैं। परंतु शास्त्रों और संतों में श्रद्धा होगी, तभी मानेंगे। परमात्मा मानने का विषय है। आजकल जिनसे पतन, बन्धन हो, उनको तो मानते हैं, पर जिनसे कल्याण हो, उनको नहीं मानते, उनसे परहेज करते हैं!

जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं के भाव और अभाव का अनुभव सबको होता है, पर अपने अभाव का अनुभव कभी किसी को नहीं होता यह आध्यात्मिक विषय है। अपना होनापर निरन्तर मौजूद है। इस आध्यात्मिक विषय को ठीक जान जायँ तो दुःख, अभाव सब मिट जाते हैं। इस विषय को हम कानों से सुनकर जान सकते हैं। जो किसी इन्द्रिय का विषय नहीं है, उस आत्मा को कानों से सुनकर जान सकते हैं। इसलिये सत्सङ्ग सुनने की बड़ी महिमा है। आत्मा जिसका अंश है, वह परमात्मा है।

अब परमात्मज्ञान कहते हैं। कोई ईश्वर को मानता है, कोई नहीं मानता। अगर मूल में ईश्वर नहीं है तो ईश्वर मानने वाले झूठे हुए, पर उनका नुकसान क्या हुआ? अगर ईश्वर है ईश्वर को न मानने वाला रीता रह जायगा! अतः ईश्वर को मानने वाले के हृदय में हलचल नहीं रहती।

अपने लिये करने से मनुष्य कभी कृतकृत्य नहीं होता। निष्काम भाव से दूसरों के हित के लिये सब कर्म करने से वह कृतकृत्य हो जाता है। अपने आपको जानने से वह ज्ञात-ज्ञातव्य हो जाता है। परमात्मा मिलने से भी प्राप्त-प्राप्तव्यता बाकी रहती है, क्योंकि प्रेम बाकी रहा! ज्ञान होने से तो अज्ञान निवृत्त होता है, नया कुछ नहीं मिलता, पर प्रेम में नयी चीज मिलती है। वह प्रेम निरन्तर बढ़ता रहता है, उसका कभी अन्त नहीं आता। इस प्रेम के भूखे भगवान भी हैं और भक्त भी।

ज्ञान में तो दुःख, संताप आदि मिट गये, पर मिला क्या? परंतु भक्ति में प्रतिक्षण वर्धमान प्रेम मिलता है। प्रेम में 'और मिले, और मिलें'-यह भूख निरन्तर बढ़ती ही रहती है। प्रेम में एक रस होता है, जिसकी कभी पूर्ति नहीं होती। जैसे, सत्सङ्ग करते-करते तृप्ति नहीं होती। अर्जुन कहते हैं कि आपके अमृतमय बचन सुनते-सुनते मेरी तृप्ति नहीं हो रही है- '**भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम्**' (गीता १०/१८)। परीक्षित भी कहते हैं कि सुनने से तृप्ति नहीं होती, भूख-प्यास भूल गया! तक्षक के काटने की बात की तरफ भी ख्याल नहीं है! महाराज पृथु भी सुनने के लिये हजार कान मांगते हैं। इसका नाम प्रेम है। न पेट भरता है, न वस्तु समाप्त होती है। राम-राम करना इतना प्रिय लगता है कि छूटता ही नहीं। प्रेम के विलक्षण रस का कोई पारावार नहीं है। रस, रुचि बढ़ती ही रहती है।

मनुष्य के पास एक बहुत विलक्षण धन है, जो सबको बराबर मिला हुआ है। यह धन है-मानवजीवन का समय। यह धन भगवान की अहैतुकी कृपा से मिला है, अपने पुरुषार्थ से नहीं। इस धन से हम बहुत चीजों का, विद्याओं का, कलाओं का सम्पादन कर सकते हैं। समय से सब कुछ खरीदा जा सकता है। समय खर्च करके मनुष्य बुद्धिमान, बलवान बन सकता है। देवलोकों में, ब्रह्मलोक में जा सकता है। तत्वज्ञान, भक्ति प्राप्त कर सकता है। बात समय के सदुपयोग-दुरुपयोग की है। नरकों की प्राप्ति के लिये भी समय खर्च करना पड़ता है- 'नरक स्वर्ग अपबर्ग निसेनी'। बीमारी के सदुपयोग से भी परमात्मा की प्राप्ति कर सकते हैं। बीमारी भगवान की दी हुई शुद्ध तपस्या है। उसमें एक आनन्द आता है। ऐसे तप से बुद्धि भी विकसित होती है।

प्रत्येक परिस्थिति में हमारी दृष्टि भगवान पर रहनी चाहिये। विपरीत-से-विपरीत परिस्थिति में भी भगवान की कृपा रहती है। जो प्रतिकूल परिस्थिति में रोते हैं, वे बालक हैं, बेसमझ हैं। मां बालक को नहलाती है तो वह रोता है, परंतु बालक के रोने की परवाह न करके मां उसको नहलाकर नये कपड़े पहनाकर गोदी में ले लेती है। गोदी में लेने पर मां और बालक दोनों को आनन्द होता है। कोई कष्ट आये तो युधिष्ठिर को, द्रौपदी को याद करो। भगवान राम, राजा नल को याद करो। उन पर भी कितना कष्ट आया, पर वे अपने धर्म से विचलित नहीं हुए।

यह संसार पहले भी नहीं था, पीछे भी नहीं रहेगा। सब शहर पहले भी जंगल थे, पीछे भी जंगल हो जाएंगे। उत्पत्ति-विनाश का प्रवाह बह रहा है। 'है' की सत्ता से ही यह 'नहीं' भी 'है' की तरह दीखता है। है तो परमात्मा, पर दीखता है संसार। जैसे, रज्जु सर्प की तरह और अभ्रक चाँदी की तरह दीखता है।

भगवान् को याद करना और सेवा करना इन दो के बिना मनुष्य नहीं है, पशु है।

मनुष्य शरीर को अधम भी बताया है और उत्तम भी- 'पंच रचित अति अधम सरीरा' (मानस, कि. ११/६) 'नर तन सम नहिं कवनिउ देही' (मानस, उत्तर. १२१/९)। मनुष्य शरीर की विशेषता विवेक को लेकर है। विवेक के सदुपयोग की महिमा है। विवेक का सदुपयोग है-अपने जाने हुए असत् का त्याग करना। असत् को जानते हैं, पर उसका त्याग नहीं करते-यह बड़ा भारी अपराध है, गलती है। त्याग का अर्थ है-असत् के आश्रय भरोसा, विश्वास का त्याग। हमारा लक्ष्य असत् नहीं होना चाहिये। असत् का त्याग होने पर ज्ञान, भक्ति आदि सबकी सिद्धि स्वतः हो जायेगी।

❑❑❑

# तीन महत्त्वपूर्ण बातें

❑ संकलनकर्ता- श्रीशरद् जी श्रीवास्तव ( दिल्ली )

तीन बातों से सदा बचो- १-अपनी प्रशंसा, २-दूसरों की निन्दा और ३-परदोषदर्शन।

तीन बातें ध्यान रखकर करो- १-ईश्वर का स्मरण, २-दूसरों का सम्मान और ३-अपने दोषों को देखना।

तीन बातें सदा सोचो- १-भगवान् का प्रेम कैसे प्राप्त हो? २-दु:खियों का दु:ख कैसे दूर हो? ३-हृदय पापशून्य कैसे हो?

तीन बातों पर सदा अमल करो- १-सत्य, २-अहिंसा और ३-भगवान् का नामजप।

तीन बातों से सदा अलग रहो- १-परचर्चा से, २-वादविवाद से और ३-नेतागींरी से।

तीनों पर सदा दया करो- १-अबला पर, २-पागल पर और ३-राह भूले हुए पर।

तीनों पर दया न करो- १-अपने पाप पर, २-आलस्य पर और ३-उच्छृंखलता पर

तीनों को सदा वश में रखो- १-मन, २-उपस्थ इन्द्रिय और ३-जीभ।

तीनों के सदा वश में रहो- १-भगवान् के, २-धर्म के और ३-शुद्ध कुलाचार के।

तीनों से सदा मुक्त रहो- १-अहंकार से, २-ममता से और ३-आसक्ति से।

तीन से सदा सच्चे रहो- १-धन से, २-काछ से और ३-जबान से।

तीन पर ममता करो- १-ईश्वर पर, २-सदाचार पर और ३-गरीबों पर।

तीन से सदा डरते रहो- १-अभिमान से, २-दम्भ से और ३-लोभ से।

तीन के सामने सदा नम्र रहो- १-गुरु, २-माता और ३-पिता।

तीन से सदा प्रेम करो- १-ईश्वर, २-धर्म और ३- देश

तीन को सदा हृदय में रखो- १-दया, २-क्षमा और ३-विनय।

तीन का सदा सेवन करो- १-सन्त, २-सत्-शास्त्र और ३- पवित्र भूमि।

तीन को हृदय से निकाल दो- १-राग, २-द्वेष और ३-मत्सर।

तीन व्रतों का पालन करो- १-परस्त्री सेवन का त्याग, २-परधन का त्याग और ३-असहायों की सेवा।

तीन उपवास करो- १-एकादशी, २-पूर्णिमा और ३-अमावस्या।

तीन बातों में शंका न करो- १-शास्त्रवचन, २-गुरुवचन और ३-शुद्ध मन की प्रेरणा।

तीन का भरण-पोषण करो- १-माता-पिता, २-स्त्री-बच्चे और ३-दीन-दु:खी।

तीन का संग छोड़ दो- १-व्यभिचारी का, २-जुआरी का और ३-लबारी का।

तीन प्रकार के लोगों से दूर रहो- १-नास्तिक से, २-माता-पिता-गुरु का द्रोह करने वाले से और ३-सन्त पुरुषों की निन्दा करने वाले से।

तीन की दशा पर विशेष ध्यान रखो- १-विधवा स्त्री, २-अनाथ बालक और ३-दबे हुए और पराश्रित प्राणी।

तीन की आवश्यकताओं पर विशेष ध्यान दो- १-मूकप्राणी, २-संसारत्यागी संन्यासी और ३-कुछ भी न माँगने वाले अतिथि।

तीन की परवाह न करो- १-धर्मपालन के लिये कष्ट की, २-दूसरे का दु:ख दूर करने के लिये धन की और ३-रोगी की सेवा में अपने शरीर की।

तीन आदमियों को मत रोको- १-जल्दी छूटने वाली रेल में चढ़ने वाले मुसाफिर को, २-दूसरों की सेवा करने वाले को और ३-दाता को।

तीन कामों में खूब जल्दी करो– १–भजन में, २–दान में और ३–शास्त्र के अभ्यास में।

तीन कामों को ढील में छोड़ दो– १–मुकदमेबाजी को, २–विवाद को और ३–किसी के दोषनिर्णय को।

तीन आवेशों के समय कोई भी क्रिया करने से रुक जाओ– १–क्रोध के समय, २–कामवासना के समय और ३–लोभ के समय।

तीनों का सम्मान करो– १–वृद्ध का २–ब्राह्मण का और ३–निर्धन का।

तीनों का सदा हृदय से आदर करो– १–भगवान् के विग्रह का, २–सन्त महात्मा का और ३–सत्–शास्त्र का।

तीनों के सामने नम्र रहो– १–गुरुजन, २–विद्वान् और ३–राजपुरुष।

तीन कामों के खूब मन लगाकर करो– १–भजन, २–भगवान् का ध्यान और ३–सत्संग।

तीन आँसुओं को पवित्र मानो– १–प्रेम के, २–करुणा के और ३–सहानुभूति के।

तीन आँसू अपवित्र मानो– १–शोक के, २–क्रोध के और ३–दम्भ के।

तीन बनने से बचो– १–महन्त, २–दीक्षा देने वाले गुरु और ३–मालिक।

तीन बनने में सुख मानो– १–अज्ञात सेवक, २–व्यर्थ निन्दा का पात्र और ३–परमसुख के साधन।

तीन बातों का दुराग्रह न करो– १–सम्प्रदांय, २–वेष का और ३–अपने मत का।

तीन बातों का सदा सत् आग्रह रखो– १–सत्य का, २–धर्म का और ३–सच्चरित्रा का।

तीन कामों से कम सम्पर्क रखो– १–सभा–समिति, २–अखबरनवीसी और ३–दलबन्दी।

तीन न बनाओ– १–शिष्य, २–जमात और ३–मठ।

तीन बनाओ– १–धर्मशाला, २–कुआँ और ३–देवमन्दिर।

तीन चीजें लगाओ– १–वृक्ष, २–प्याऊ और ३–अन्नक्षेत्र।

तीनों से घृणा न करो– १–रोगी से, २–निर्धन से और ३–नीची जातिवाले से ।

तीन से घृणा करो– १–पाप से, २–अभिमान से और ३–मन की मलिनता से।

तीन जगह न जाओ– १–वेश्यालय, २–जुआखाना और ३–कलाल के घर।

तीन जगह रोज जाओ– १–देवमन्दिर, २–सन्त की कुटिया और ३–आजीविका के स्थान।

तीन से मजाक न करो– १–अंगहीन से, २–विधवा या अनाथ से और ३–दीन–दुःखी प्राणी से।

तीन को प्रतिदिन प्रणाम करो– १–ईश्वर, २–माता–पिता, पति और गुरुजन और ३–सन्त–महात्मा।

तीन बातों को मन की उन्नति के लिये रोज नियम से करो– १–स्वाध्याय, २–ध्यान और ३–अपने मानसिक दोषों का स्मरण।

तीन बातें स्वास्थ्य के लिये रोज नियम से करो– १–शुद्ध वायु में घूमना, २–नियमित आहार–विहार और ३–कुपथ्य का त्याग।

तीन चीजों से ज्ञान मिलता है– १–श्रद्धा, २–तत्परता और ३–इन्द्रियसंयम।

तीन नरक के दरवाजों में कभी मत घुसो– १–काम, २–क्रोध और ३–लोभ।

तीन आवश्यक साधन करो– १–समता, २–संयम और ३–सब प्राणियों के हित की चेष्टा।

तीन को गुरु न बनाओ– १–स्त्री को, २–धन को और ३–नास्तिक को।

तीन का चिन्तन नित्य करो– १–भगवान् का, २– सन्तवाणी का और ३–वैराग्य का।

❑❑❑

## जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज के श्रीमुख से प्रथम बार

# श्रीनैमिषारण्य तीर्थ में 1008 श्रीमद्भागवत पारायण महायज्ञ

भगवत्प्रेमी महानुभाव,

ज्ञातव्य है कि आगामी 19 सितम्बर से 27 सितम्बर 2009 तक अठासी हजार ऋषियों की तपस्थली नैमिषारण्य तीर्थ में पूज्यपाद जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज के श्रीमुख से श्रीमद्भागवत कथा का विशाल एवं ऐतिहासिक आयोजन किया जा रहा है।

यह महायज्ञ विश्वकल्याणार्थ एवं यजमानों के पितरों को मोक्ष प्रदान कराने हेतु पितरों की मोक्षदायिनी नगरी नैमिषारण्य में हो रहा है जिसमें आप सभी सम्मिलित होकर तथा उसके यजमान बनकर पुण्य लाभ प्राप्त करें इस महायज्ञ में 1008 यजमानों के भाग लेने की सुविधा है। जो भी महानुभाव पितरों के नाम से, सुख-शान्ति-समृद्धि व परिवार कल्याण हेतु भागवत पाठ कराना चाहें वे शीघ्र ही अपना नाम अंकित दें। यजमानों की आवास-भोजन की व्यवस्था आयोजन समिति ही करेगी।

एक यजमान के लिए देय राशि 5,100·00 मात्र है। तथा जो यजमान महानुभाव अपने मातृ पक्ष-पितृपक्ष व श्वसुर पक्ष तीनों के नाम गोत्र से पाठ कराना चाहें वे 15,300·00 रुपये देकर अपना नाम लिखा सकते हैं।

## इस आयोजन के विशेष आकर्षण तथा विषय

- ❑ इस कथा के पूज्यव्यास पूज्यपाद जगद्गुरु जी भी स्वयं यजमान हैं। वे भी एक पोथी का पूजन अर्चन करेंगे।
- ❑ 5,100.00 की सहयोग राशि अर्पित करने वाले यजमानों के लिए ज्ञातव्य है कि इसी धन-राशि में आप दो व्यक्तियों की आवास व्यवस्था, भोजन व्यवस्था तथा पण्डितों को दी जाने वाली दक्षिणा भी सम्मिलित है। आपको तो केवल कथा श्रवण के लिए पधारना है।
- ❑ अपने तथा पारिवारिक सदस्यों के पहुँचने की सूचना एक माह पूर्व समिति को अवश्य दें कि आप कितने व्यक्ति, कितने समय तक के लिए किस दिन से किस दिन तक रहेंगे। यदि कोई यजमान अपने साथ पुत्र/पुत्री अथवा किसी अन्य को रखना चाहते हैं तो उसके लिए आपको प्रति व्यक्ति 2100·00 समिति को अतिरिक्त जमा करने होंगे।
- ❑ कीमती सामान न लाकर उपयोगी अनिवार्य सामान ही अपने साथ लाएँ।
- ❑ **नैमिषारण्य क्षेत्र में आने का मार्ग इस प्रकार है-**
- ❑ लखनऊ से 100 कि०मी० दूर सीतापुर जिले में नैमिषारण्य तीर्थ स्थित है।
- ❑ लखनऊ से नैमिषारण्य को प्रात: 7 बजे से सायं 4 बजे तक केसर बाग डिपो की सीधी बस सेवा उपलब्ध है।
- ❑ कानपुर से बालामऊ पैसेन्जर ट्रेन द्वारा प्रात: 5 बजे सीधे नैमिषारण्य पहुँचा जा सकता है।
- ❑ दिल्ली से मुरादाबाद होकर लखनऊ जाने वाली ट्रेन से हरदोही उतरकर 38 कि०मी० दूर पर नैमिषारण्य है। यहाँ से बस सुविधा उपलब्ध है। अथवा सत्याग्रह एक्सप्रैस (रक्सौल) पुरानी दिल्ली से सायं 5 बजे चलकर अगले दिन प्रात: 4 बजे सीतापुर कैण्ट उतरकर बस से नैमिषारण्य पहुँचे।
- ❑ हरदोही एवं सीतापुर कैण्ट से प्रति घण्टे प्रात: से सायं तक नैमिषारण्य के लिए बस सेवा उपलब्ध है।

**निवेदक- पं० अमरनाथ शास्त्री**

**आयोजक- हरे राम हरे कृष्ण सत्संग सेवासमिति**

**जगद्गुरु रामभद्राचार्य धाम, ( बस स्टैण्ड के पास ) नैमिषारण्य, जि० सीतापुर ( उ०प्र० )**

**फोन नं०- 05865-251272, मो०- 09918331369, 09936377207**

ड्राफ्ट बनवाने का पता-

**हरे राम हरे कृष्ण सत्संग सेवा समिति**

**( मिश्रिख कम नीमसार 0210112 ) इलाहाबाद बैंक के नाम बनवाकर समिति के नाम नैमिषारण्य के नाम भेज सकते हैं।** ❑❑❑

# गुरुपूर्णिमा महोत्सव सोल्लास सम्पन्न

❑ श्रीअशोक बत्रा ( दिल्ली )

श्रीचित्रकूट धाम में अवस्थित श्रीतुलसीपीठ और उसी में प्रतिष्ठित श्रीरामचरितमानस मन्दिर का सभागार। शुभअवसर था श्रीगुरुपूर्णिमा महोत्सव का। नभोमण्डल के सूर्य में अत्यन्त उष्णता थी किन्तु पृथ्वी के ज्ञानभक्ति वैराग्य के सूर्यरूप पूज्यपाद जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज में रामभक्तों को देखकर सहिष्णुता विराजमान थी। सुदूर स्थानों से अपनी विनम्रता लेकर पधारे थे हजारों गुरुभक्त। सभी के मन में उत्कण्ठा थी अपने आचार्यचरणों को निहारने की और तत्परता थी अपने सद्गुरुदेवके पूजन करने की। इसी बीच समुपस्थित हुए परमपूज्यपाद प्रातःस्मरणीय अर्चनीय वन्दनीय जगद्गुरु जी अपनी मन्दस्मित मुस्कान के साथ। मस्तक पर ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक, श्रीमुख पर तपोमूर्ति महर्षियों का दिव्यतेज, दायें श्रीहस्तकमल में त्रिदण्ड विराजमान, तपस्वी मनस्वी संन्यासियों का वेष और चरण खडाऊँ की ध्वनि से राष्ट्रधर्म विरोधियों को पावनपरिसर से पलायन कराने वाले पूज्यपाद जगद्गुरु जी ने सभी का नमो राघवाय रूप अभिवादन स्वीकार किया और घोषणा की कि ''सर्वप्रथम मैं अपने परमाराध्य आचार्य श्रीमदाद्यजगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी महाराज की श्रीचरणपादुकाओं का पूजन वन्दन करूँगा''। ऐसा ही होना था, अपने श्रीराघव परिवार के जाने माने गुरुभाई पण्डित वाचस्पति मिश्र जी ने पूजन से सम्बद्ध वैदिक मन्त्रोच्चार प्रारम्भ किये, पूज्यपाद जगद्गुरु जी ने अपने आचार्यचरणों का षोडशोपचार पूजन प्रारम्भ किया। वेदध्वनि से सम्पूर्ण मानसमन्दिर महक उठा। सभी दर्शकों की मनोभूमि अपने जगजञ्जाल से हटकर वैदिक एवं पौराणिक युग के आनन्द में पहुँच गई। पूजनोपरान्त पूज्य आचार्य चरणों ने अत्यन्त संक्षिप्त उद्बोधन में कहा–

भारतीय वैदिक संस्कृति के प्रथम शिक्षक भगवान श्रीराम आज के ही दिन विद्या ग्रहण करने गुरुकुल आये थे। और वामन द्वादशी को ५६ दिन में पढ़कर लौट गये थे। इसी दिन सान्दीपनि जी के आश्रम में भगवान श्रीकृष्ण पढने आये और ६४ दिन में पढ़कर लौटे। भगवान वेदव्यास कालपी के किनारे सत्यवती–पाराशर को माध्यम बनाकर इसी दिन प्रकट हुए। गुरु पूजा का अर्थ प्रसाद (प्रसन्नता) है। जो भीतर कुटिलता रखकर गुरुपूजा करेंगे वे दण्ड के भागी होंगे। हम जो करें सरलभाव से करें पैसा या दक्षिणा का महत्त्व नहीं। आज्ञा पालन करें इसी से होगी भगवत्प्राप्ति। शिक्षागुरु और दीक्षागुरु की पूजा करें। बड़ों का सम्मान करें। गुरु और भगवान की आप सब पर कृपा बरसती रहे यही मेरा सबको आशीर्वाद।

इस आशीर्वादात्मक एवं निर्देशात्मक उद्बोधन के पश्चात् सर्वप्रथम पूजन करने की आज्ञा मिली तीन गुरुभाइयों को – श्रीशुक्ला जी, श्रीराजेन्द्र गोयल जी एवं श्रीनन्दकिशोर खेतान जी, तीनों ने सपत्नीक पूज्यपाद गुरुदेव का पूजन सम्पन्न किया और इस प्रकार सबके द्वारा गुरुपूजन की परम्परा का क्रम प्रारम्भ हो गया। मध्य मध्य में पूज्या बुआ जी के निर्देशानुसार कुछ सावधानियाँ रखने की प्रार्थना कर रहे थे डा० सुरेन्द्र शर्मा 'सुशील' और डा० ब्रजेश दीक्षित 'मानसमृगेन्द्र'। नमो राघवाय के मधुर गीत का स्वर, जयघोषों की आवाज तथा पूज्यपाद गुरुदेव की प्रसन्नवदन झाँकी आज सभी को कृतार्थ कर रही थी। पूजन से निवृत्त होने वाले गुरुबहिन–भाइयों को प्रसाद वितरित किया जा रहा था और श्रीराममन्त्र की दीक्षा लेने वालों को पंक्तिबद्ध खड़ा किया जा रहा था, आज इन्हें दीक्षा लेकर श्रीराघव परिवार का सक्रिय सदस्य होना था। सभी में अद्भुत उत्साह अनिर्वचनीय विनम्रता भरी थी। हो भी क्यों नहीं उनके सम्मुख ऐसे सद्गुरुदेव विराजमान थे जिनके संकल्प बल से अनेक सेवा प्रकल्प चल रहे हैं, विश्व का अनूठा विकलांग विश्वविद्यालय चल रहा है और हजारों–लाखों परिवारों में भगवद्भजन में प्रवृत्ति हो रही है।

अन्त में हजारों गुरुबहिन–भाइयों तथा धर्मप्रेमी महानुभावों को भोजन प्रसाद कराया गया और सब सायंकाल होते होते अपने गन्तव्य को प्रस्थान कर गए।

❑❑❑

# मुरादाबाद में श्रीरामकथा की अमृतवर्षा होगी

आध्यात्मिक जगत के देदीप्यमान सूर्य धर्मचक्रवर्ती श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज के श्रीमुख से हरेकृष्ण सेवान्यास समिति, मुरादाबाद के तत्त्वावधान में ६ सितम्बर दिन रविवार से १४ सितम्बर २००९ सोमवार तक श्रीरामकथा की अमृतवर्षा होगी। नवदिवसीय इस रामकथा का समय होगा– सायं ६ बजे से रात्रि १० बजे तक। स्थान– कम्पनी बाग, मुरादाबाद (उ०प्र०)।

इस कथा की विशाल भव्यकलश शोभायात्रा ६ सितम्बर रविवार को दोपहर २ बजे से विधायक निवास, बाजीगरान (मुरादाबाद) से प्रारम्भ होगी। समिति के पदाधिकारियों एवं सभी सदस्यों का पूर्ण प्रयास है कि यह कथामन्दाकिनी जनमानस का अवश्य कल्याण करेगी।

विशेष–

- इस कथा कार्यक्रम का संस्कार टी०वी० चैनल पर सीधा प्रसारण होगा।
- रात्रि में प्रतिदिन १० बजे से भोजन भण्डारा भी चलेगा।

**सम्पर्कसूत्र**

कार्यालय– ए १५९ आशियाना, मुरादाबाद (उ०प्र०)
मो०– ०९८३७०९५६००, ०९४१२२४५५८८,
०९४१२२४५९२०, ०९९२७८००७५९

## क्या हो मेरे तुम बाबा

**श्रीमती बिन्दु भारद्वाज**

क्या हो मेरे तुम बाबा तुलसी कैसे मैं बतलाऊँगी
प्राणों के भी प्राण हो तुम चरणों में शीश नवाऊँगी
ना रचते तुम 'श्रीमानस' जो श्रीराम को कैसे जानती मैं
ना कहते जो श्रीराम कथा श्रीराम मैं ना अनुरागती मैं
दिव्य श्रीमानस रचकर तुमने प्राणों पर उपकार किया
राम प्रेम की वरषा करके जीवन को आधार दिया
हृदय के नीरस मरुथल में अमृत बन के तुम बरसे हो
जन्मों की प्यास बुझाकर के मन ही मन में तुम हरषे हो
प्रति उपकार मै क्या कर पाऊँ प्रति पल तुमको निहारूँगी
श्रीराम के चरणों से भी पहले तुमको मैं शीश नवाऊँगी
चन्दन तरु हैं श्री राघव जो शीतल और मंद समीर हो तुम
आनन्द के घन हैं राम यदि तृषित प्राणों के नीर हो तुम
तुमरी कृपा से ओ मेरे बाबा राघव के गुण गाऊँ मैं
पर दे दो मेरे भोले बाबा राम प्रेम पा जाऊँ मैं

# पूज्यपाद जगद्गुरु जी की सिंगापुर यात्रा सम्पन्न

❑ श्री सर्वेश गर्ग गाजियाबाद

विदेशों में बसे हिन्दु जनमानस को स्वकर्तव्य अथवा स्वधर्म का उपदेश करने के उद्देश्य से एवं विकलांग बहिन-भाइयों की सेवा के लिए सहयोग अर्जित करने हेतु विदेशयात्रा पर गए पूज्यपाद जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज बहुत प्रसन्न हैं अपने उद्देश्य की पूर्ति होते देखकर।

विगत १८ जून २००९ को पूज्यपाद जगद्गुरु जी के साथ पूज्या बुआ जी (डा० कुमारी गीतादेवी मिश्रा) मेरी धर्मपत्नी श्रीमती सुधा गर्ग एवं इन पंक्तियों का लेखक मैं गाजियाबाद में ''चलत विमान कोलाहल होई। जय रघुवीर कहैं सब कोई।।'' इस सम्पुट से श्रीसुन्दरकाण्ड का पाठ करने के पश्चात् एकादशी व्रत का पुण्य लेकर नई दिल्ली से सिंगापुर के लिए उड़ गए। पूज्यपाद गुरुदेव तो अपने जप-नियम में व्यस्त हो गए और समय-समय पर प्रसन्नमुद्रा में हमारी ओर कृपादृष्टि कर लेते थे। इधर पूज्या बुआ जी और हम दोनों पति पत्नी पूज्यपाद जगद्गुरु जी के साथ यात्रा करने के सौभाग्य को सोचकर आनन्दित हो उठते थे। हम सिंगापुर पहुँचे। अनेक धर्मानुरागी महानुभावों ने हम सबका स्वागत किया। पूज्यपाद आचार्यश्री तथा पूज्या बुआ जी से निर्धारित स्थान पर विश्राम करने की प्रार्थना की गई। हम दोनों अपने मध्यमपुत्र प्रिय नितिन गर्ग एवं पुत्रवधु सौभाग्यवती प्राची के आवास पर चले गए। सायंकाल कथा का प्रारम्भ हुआ। आयोजकों में उत्साह था भागवत कथा श्रवण का और पूज्यपाद गुरुदेव में आतुरता थी भागवत कथा श्रवण कराने की। विशाल एवं मञ्च पर बने आसन पर आसीन थे विश्वविलक्षण विभूतिपाद गुरुदेव और रंग में दिखाई दे रहे थे अनेक गण्यमान्य महानुभाव के साथ धर्मप्रेमी महानुभाव। पूज्यगुरुदेव ने कथा के मध्य में कभी अवधी गीत, कभी मैथिलीगीत, कभी भोजपुरी भाषा का लालित्य आदि में जब अपने प्यारे सीताराम भगवान को गाया तब श्रोता झूम उठे, विभोर हो उठे। श्रोताओं के मुखमण्डल को देखकर लगता था मानो वे इसीलिए तो प्रसन्न हैं ही कि भगवान् की दुर्लभ कथा श्रवण कर रहे हैं इससे भी अधिक भावुक इसीलिए हैं कि उनके प्यारे भारत से एक ऐसे विलक्षण आचार्यश्री पधारे हैं जो भगवत् कथाओं के मर्मज्ञ हैं। सरल सुबोध और अपनी मातृभाषा में निर्मित पूज्यपाद जगद्गुरु जी के गीतपदों तथा भजनों को सुनकर प्रत्येक श्रोता धन्यता का अनुभव करता था।

कथा के विश्राम दिवस पर सिंगापुर के राष्ट्रपति एस० आर० नार्दन महोदय सपत्नीक पधारे। उनकी पूज्यपाद जगद्गुरु जी के प्रति अतिशय विनम्रता दर्शनीय थी। भारत से सिंगापुर पहुँचे पूज्यसन्त विजयकौशल जी महाराज भी कथा श्रवण करने के लिए बद्धासन में देखे गए। पूज्यपाद गुरुदेव ने ''राहुल रोड़'' नामक पुस्तक का भी लोकार्पण किया। इसके लेखक-उत्तरप्रदेश के श्रीशर्मा जी हैं। भारत लौटने पर सर्वप्रथम पूज्यपाद गुरुदेव ने भारत माता को साष्टांग प्रणाम किया, पश्चात् हरिद्वार में गंगास्नान के पश्चात् ही अन्नजल ग्रहण किया।

उल्लेखनीय है कि १९ सितम्बर से २७ सितम्बर २००९ तक नैमिषारण्य तीर्थ में आयोजित भागवत कथा श्रवण करने के लिए सिंगापुर से भी अनेक यजमानों ने अपनी स्वीकृति दी है।

❑❑❑

# व्रतोत्सवतिथिनिर्णयपत्रक

## श्रावण शुक्ल पक्ष/सूर्य दक्षिणायन, वर्षा ऋतु

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | व्रत पर्व आदि विवरण |
|---|---|---|---|---|
| द्वादशी | रविवार | मूल | 2 अगस्त | – |
| त्रयोदशी | सोमवार | पूर्वाषाढ़ा | 3 अगस्त | सोम प्रदोष व्रत |
| चतुर्दशी | मंगलवार | पूर्वाषाढ़ा | 4 अगस्त | – |
| पूर्णिमा | बुधवार | उ०षा० | 5 अगस्त | **रक्षाबन्धन, संस्कृत दिवस, सत्यनारायणव्रत** |
| पूर्णिमा | गुरुवार | श्रवण | 6 अगस्त | पूर्णिमा तिथि की वृद्धि पंचक प्रारम्भ रात 3/7 से |

## भाद्रपद कृष्ण पक्ष/सूर्य दक्षिणायन वर्षा शरद् ऋतु

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | व्रत पर्व आदि विवरण |
|---|---|---|---|---|
| प्रतिपदा | शुक्रवार | धनिष्ठा | 7 अगस्त | – |
| द्वितीया | शनिवार | शतभिषा | 8 अगस्त | – |
| तृतीया | रविवार | पू०भा० | 9 अगस्त | श्रीगणेश चतुर्थी (संकट चौथ) |
| चतुर्थी | सोमवार | उ० भा० | 10 अगस्त | – |
| पंचमी | मंगलवार | रेवती | 11 अगस्त | पंचक समाप्त 11/17 रात को |
| षष्ठी | बुधवार | अश्विनी | 12 अगस्त | हलषष्ठी |
| सप्तमी | गुरुवार | भरणी | 13 अगस्त | **श्रीकृष्णजन्माष्टमी व्रत (स्मार्त)** |
| अष्टमी | शुक्रवार | कृतिका | 14 अगस्त | **श्रीकृष्णजन्माष्टमी व्रत (वैष्णव)** |
| नवमी | शनिवार | रोहिणी | 15 अगस्त | नन्दोत्सव (गोकुल), भारत स्वतन्त्रता दिवस |
| दशमी | रविवार | मृगाशिरा | 16 अगस्त | सिंहे सूर्य–संक्रान्ति दिवस |
| एकादशी | रविवार | मृगाशिरा | 16 अगस्त | **जया एकादशीव्रत (सबका)** |
| द्वादशी | सोमवार | आर्द्रा | 17 अगस्त | वत्स द्वादशी |
| त्रयोदशी | मंगलवार | पुनर्वसु | 18 अगस्त | भौम प्रदोष व्रत |
| चतुर्दशी | बुधवार | पुष्य | 19 अगस्त | – |
| अमावस्या | गुरुवार | श्लेषा | 20 अगस्त | कुशोत्पाटिनी अमावस्या |

## श्रावण शुक्ल पक्ष/सूर्य दक्षिणायन, वर्षा ऋतु

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | व्रत पर्व आदि विवरण |
|---|---|---|---|---|
| प्रतिपदा | शुक्रवार | मघा/पू०फा० | 21 अगस्त | चन्द्रदर्शनम् |
| द्वितीया | शनिवार | उ०फा० | 22 अगस्त | – |
| तृतीया | रविवार | हस्त | 23 अगस्त | वाराह अवतार–हरितालिका तीज |
| चतुर्थी | रविवार | हस्त | 23 अगस्त | श्रीगणेश चतुर्थी व्रत चतुर्थी तिथि का क्षय है। |
| पंचमी | सोमवार | चित्रा | 24 अगस्त | ऋषि पंचमी व्रत |
| षष्ठी | मंगलवार | स्वाति | 25 अगस्त | सूर्य षष्ठी व्रत |
| सप्तमी | बुधवार | विशाखा | 26 अगस्त | – |
| अष्टमी | गुरुवार | अनुराधा | 27 अगस्त | श्रीदुर्गाष्टमी |
| अष्टमी | शुक्रवार | ज्येष्ठा | 28 अगस्त | श्रीराधाष्टमी अष्टमी तिथि की वृद्धि |
| नवमी | शनिवार | ज्येष्ठा | 29 अगस्त | – |
| दशमी | रविवार | मूल | 30 अगस्त | – |
| एकादशी | सोमवार | पूर्वाषाढ़ा | 31 अगस्त | **पद्मा एकादशी व्रत (सबका)** |

卐 श्रीमद्राघवो विजयते 卐

धर्मचक्रवर्ती, महामहोपाध्याय, जीवनपर्यन्त कुलाधिपति, वाचस्पति, महाकवि
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य **स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज**
का राष्ट्रीय, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक चेतना का संवाहक

# श्रीतुलसीपीठसौरभ

**( मासिक पत्र )**

सीतारामपदाम्बुजभक्तिं भारतभविष्णु जनतैक्यम्।
वितरतु दिशिदिशि शान्तिं श्रीतुलसीपीठसौरभं भव्यम्।।

वर्ष १३ | अगस्त २००९ (४, ५ सितम्बर को प्रेषित) | अंक-१२

**संस्थापक-संरक्षक**
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य
**स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज**

**संरक्षक एवं प्रकाशक**
**डॉ० कु० गीता देवी ( पूज्या बुआ जी )**
प्रबन्धन्यासी, श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास, चित्रकूट

**सम्पादक**
**आचार्य दिवाकर शर्मा**
220 के, रामनगर, गाजियाबाद-201001
**मो०-** 09971527545

**सहसम्पादक**
**डा० सुरेन्द्र शर्मा 'सुशील'**
डी-255, गोविन्दपुरम्, गाजियाबाद-201001
दूरभाष : 0120-2767255, मो०-09868932755

**प्रबन्ध सम्पादक**
**श्री ललिता प्रसाद बड़थ्वाल**
सी-295, लोहियानगर, गाजियाबाद-201001
0120-2756891, मो०- 09810949921

**सहयोगी मण्डल** (ये सभी पद अवैतनिक हैं)
**डा० श्रीमती वन्दना श्रीवास्तव,** ✆ 09971149779
**श्री दिनेश कुमार गौतम,** ✆ 09868977989
**श्री सत्येन्द्र शर्मा एडवोकेट,** ✆ 09810719379
**श्री अरविन्द गर्ग सी.ए.,** ✆ 09810131338
**श्री सर्वेश कुमार गर्ग,** ✆ 09810025852
**डॉ० देवकराम शर्मा,** ✆ 09811032029

**पूज्यपाद जगद्गुरु जी के सम्पर्क सूत्र :**
**श्रीतुलसीपीठ, आमोदवन,**
पो० नया गाँव श्रीचित्रकूटधाम (सतना) म०प्र०485331
✆-07670-265478, 05198- 224413
**वसिष्ठायनम् -** जगद्गुरु रामानन्दाचार्य मार्ग
रानी गली नं०-1, भूपतवाला, हरिद्वार (उत्तरांचल)
दूरभाष-01334-260323
**श्री गीता ज्ञान मन्दिर**
भक्तिनगर सर्कल, राजकोट (गुजरात)
दूरभाष-0281-2364465
**पंजीकृत सम्पादकीय कार्यालय एवं पत्र व्यवहार का पता**
आचार्य दिवाकर शर्मा,
220 के., रामनगर, गाजियाबाद-201001
मो०- 09971527545

# रामानन्दः स्वयं रामः प्रादुर्भूतो महीतले

## विषयानुक्रमणिका



## सुधी पाठकों से विनम्र निवेदन

१. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' का प्रत्येक अंक प्रत्येक दशा और परिस्थिति में प्रत्येक महीने की ४ तथा ५ तारीख को डाक से प्रेषित किया जाता है। पत्रिका में छपे महीने का अंक आगामी महीने में ही आपको प्राप्त होगा।

२. 'श्रीतुलसीपीठ सौरभ' मंगाने हेतु बैंक ड्राफ्ट 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' के नाम से ही बनबाएँ तथा प्रेषित लिफाफे के ऊपर हमारा नाम तथा पूरा पता स्पष्ट अक्षरों में लिखें। मनीआर्डर पर हमारा नाम-पता ही लिखें प्रधान सम्पादक अथवा प्रबन्ध सम्पादक कभी न लिखें।

३. पत्रव्यवहार करते समय अथवा ड्राफ्ट-मनीआर्डर भेजते समय अपनी वह ग्राहक संख्या अवश्य लिखें जो पत्रिका के लिफाफे के ऊपर आपके नाम से पहले लिखी है।

४. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' में **'पूज्यपाद जगद्गुरु जी'** से अभिप्राय **धर्मचक्रवर्ती श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज समझा जाए।**

५. 'श्रीतुलसीपीठ सौरभ' में प्रकाशित लेख/कविता/अथवा अन्य सामग्री के लिए लेखक/कवि अथवा प्रेषक महानुभाव ही उत्तरदायी होंगे, सम्पादक मण्डल नहीं।

६. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' प्राप्त न होने पर हमें पत्र लिखें अथवा फोन करें। हम यद्यपि दूसरी बार पुनः भेजेंगे। किन्तु अपने डाकखाने से भलीप्रकार पूछताछ करके ही हमें सूचित करें।

७. **डाक की घोर अव्यवस्था के चलते हमें दोषी न समझें। हमें और आपको इसी परिस्थिति में 'पूज्यपाद जगद्गुरु जी' का कृपा प्रसाद शिरोधार्य करना है।**

८. सुधी पाठक अपने लेख/कविता आदि स्पष्ट अक्षरों में लिखकर भेजें। यथासमय-यथासम्भव हम प्रकाशित करेंगे। अप्रकाशित लेखों को लौटाने की हमारी व्यवस्था नहीं है।

**–सम्पादकमण्डल**

### सदस्यता सहयोग राशि

| | |
|---|---|
| संरक्षक | ११,०००/– |
| आजीवन | ५,१००/– |
| पन्द्रह वर्षीय | १,०००/– |
| वार्षिक | १००/– |

श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास, चित्रकूट के स्वामित्व में मुद्रक तथा प्रकाशक डॉ0 कु0 गीतादेवी (प्रबन्धन्यासी) ने श्री राघव प्रिंटर्स, जी–17 तिरुपति प्लाजा, बेगम पुल रोड, बच्चापार्क, मेरठ, फोन (का0) 4002639, मो0–9319974969, से मुद्रित कराकर कार्यालय 220 के., रामनगर, गाजियाबाद से प्रकाशित किया।

**सम्पादकीय-**

# भागवत कथा सुख और शान्ति देती है

## ( इस बार नैमिषारण्य में अवश्य सुनिए )

भगवान् की भक्तिभागीरथी हजारों वर्षों से प्रवाहित करने वाला श्रीमद्भागवत महापुराण योगीन्द्र मुनीन्द्र अमलात्मा महात्माजन के कण्ठ का हार है। यही ग्रन्थरत्न भगवान् का अक्षरावतार है। वैष्णवों का धन है भक्तों का जीवन है। इस ग्रन्थ के अक्षर अक्षर की भारतीय समाज में पूजा होती है। अध्येताओं द्वारा इसके आख्यानों का अनुसन्धान होता है। हजारों वर्षों से लाखों करोड़ों महानुभाव इस ग्रन्थराज की कथाओं को कहकर जहाँ अपना जीवन धन्य करते आ रहे हैं वहीं अनेक तत्त्वदर्शी मनीषी महानुभाव भी श्रीमद्भागवत कथा सुनाकर लोकोपकार करते आ रहे हैं। शब्दान्तर से कहें तो भागवत कथा भक्तों की व्यथा को नष्ट करके तथा उन्हें निर्मल करके भगवान् की भक्ति भागीरथी में स्नान कराती रहती है। इस महाग्रन्थ में ज्ञानियों को दिव्यज्ञान, विज्ञानियों को गूढार्थचिन्तन, साधकों को साधना के दर्शन होते हैं।

आज आध्यात्मिक जगत में रामायण और भागवत की कथा की बहुलता है। अनेक साधक भागवत कथा कहकर सदाचरण और संस्कारों की शिक्षा के शिविर लगा रहे हैं। ऐसा सकारात्मक करना भी चाहिए। किन्तु ध्यान रखने की बात है कि श्रीमद्भागवत महापुरुण सुनने सुनाने वालों के लिए जो निर्देश भगवान् वेदव्यास जी ने दिए हैं उनका अधिक से अधिक पालन करना चाहिए। कथावाचकों को चाहिए कि भगवान् को रिझाने के लिए कथा कहें श्रोताओं की वाह-वाह लूटने के लिए नहीं। मूलकथा से निरन्तर जुड़े रहकर कथा कहें अपने व्यक्ति प्रशंसा के संस्मरण, शेर, शायरी, गीत, कव्वाली आदि से बचें। गंगाजल में गटर को मिलाना उचित नहीं तथा समन्वय नहीं कहा जा सकता। भगवत्प्रेम मन, वाणी और कर्म में यदि प्रवाहित होता है तो कथावक्ता और श्रोता दोनों धन्य हो जाते हैं।

परम सौभाग्य का विषय है कि वर्तमान युग में विश्वविलक्षण आप्तपुरुष-महापुरुष श्रीचित्रकूट तुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज ऐसे भागवतकथाव्यास हैं जिनके जीवन का प्रत्येक श्वास भगवद् विश्वास से पूरित है, जिनको भागवत जी की प्रत्येक पंक्ति का नित्य अनुसन्धान सिद्ध है, जिन्होंने भागवत जी की प्रायोपवेशस्थली श्रीशुकताल तीर्थ में अपने आराध्यदेव भगवान् श्रीराम को ही भागवतकथा का मुख्य यजमान बनाकर दिव्यभावों की भागीरथी प्रवाहित की है उनके श्रीमुख से प्रथमबार श्रीनैमिषारण्य तीर्थ में श्रीमद्भागवत कथा का आयोजन किया गया है। वंशपरम्परा से प्राप्त कथा कहने का अधिकार राष्ट्र और धर्म के आराधन का विचार जिनकी कथाओं का विशिष्ट आकर्षण होता है उन पूज्यपाद जगद्गुरु जी के द्वारा सम्पन्न होने वाली १००८ श्री मद् भागवत कथा के विशाल एवं भव्य आयोजन में भाग लेकर आप सभी अखण्ड पुण्य प्राप्त करें-ऐसी हमारी विनम्र प्रार्थना है। नमो राघवाय। (कृपया मोबाइल पर ही सम्पर्क करें)

**आचार्य दिवाकर शर्मा**
**प्रधान सम्पादक**

# वाल्मीकिरामायण सुधा ( ५२ )

(गतांक से आगे)

❑ धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

हे धर्मज्ञ हे अशरणशरण परिकलितराजीवचरण विश्वभयहरण मैथिलीकण्ठाभरण कारणकरण तारणतरण अकारणकरुणावरुणालय विशुद्धचिन्मय सकलगुणगणनिलय सरकार! मैंने अब आपको जान लिया और मैंने धर्म का भारी उल्लंघन किया है परन्तु हे राघव! आपकी धर्मसम्मिता वाणी के द्वारा मैंने सब कुछ समझ लिया है अब कृपा करके मेरा पालन कीजिए।

**अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो बर माँगऊँ।**
**जेहिं जोनि जन्मौं कर्मवश तहँ राम पद अनुरागऊँ।**
यह तनय मम शम **विनय बल कल्याणप्रद प्रभु लीजिए।**
**गहि बाँह सुरनरनाह आपन दास अंगद कीजिए।।**

मैं जिस भी योनि में जन्म लूँ वहाँ आपके चरणों में मेरा प्रेम बना रहे।

**म चात्मानमहं शोचे न तारां न च बान्धवान्।**
**यथा पुत्रं गुणज्येष्ठमंगदं कनकांगदम्।।**

मुझे स्वयं पर कोई शोक नहीं है। मैं तो धन्य हो गया, तारा के लिए भी मुझे कोई शोक नहीं है। तारा को मैं आपके चरणों में सौंप रहा हूँ। बालि भगवान राम से कह रहा है कि तारा को सँभालियेगा, इन्हें सुग्रीव की रक्षा में कर दीजिए, सुग्रीव को ये उचित सलाह देंगी। आज समाज में बहुत भ्रान्तियाँ फैली हुई हैं उनका निराकरण बहुत आवश्यक है। प्रथम तो बालि को श्रीराम ने छिपकर नहीं मारा था दूसरे, सुग्रीव ने तारा को पत्नी बनाकर नहीं रखा था मेरा एक ग्रन्थ अभी पुनः मुद्रित होने को है सुग्रीव की कुचाल और विभीषण की करतूत उसमें मैंने सभी भ्रान्तियों का निवारण एवं इस प्रकार के सभी प्रश्नों का समाधान किया है। सुग्रीव ने तारा को माँ के समान रखा था। रामचरित्र पर मूर्खों का कितना लाञ्छन है? और विभीषण ने भी मन्दोदरी को माँ के समान ही रखा था। पृथ्वी भी राजा की पत्नी होती है तो रावण के द्वारा भुक्त पृथ्वी का विभीषण भोग कर रहे हैं। सोचिये तारा जैसी महिला जो राघवेन्द्र जी के चरणों में आ गई वह क्या पतित होगी? तारा जी ने राघव जी को देखा और कहा–

**त्वमप्रमेयश्च दुरासदश्च**
**जितेन्द्रियश्चोत्तम धर्मकश्च।**
**अक्षीणकीर्तिश्च विचक्षणश्च**
**क्षितिक्षमावान् क्षतजोपमाक्षः।।**

हे रघुनन्दन! आप अप्रमेय देशकाल और वस्तु की सीमा से रहित हैं आपको पाना बहुत कठिन है। आप जितेन्द्रिय और उत्तम धर्म का पालन करने वाले हैं। आपकी कीर्ति कभी नष्ट नहीं होती आप दूरदर्शी एवं पृथ्वी के समान क्षमाशील हैं आप कमलनेत्र हैं। जो तारा रघुनाथ जी के प्रति इतना प्रेम करती है वह क्या कभी व्यभिचारिणी होगी? तारा कौन है? तारा में सीता जी का 'ता' और राम जी का 'रा' है। तारा को दोनों की कृपा प्राप्त है। तारा पंचकन्याओं में है और मन्दोदरी भी। एक बार हम भगवान का दर्शन करने को तरसते हैं–

**तारा बिकल देखि रघुराया**
**दीन्ह ज्ञान हरि लीनी माया।**

**उपजा ज्ञान चरन तब लागी**
**लीन्हेसि परम भगति बर माँगी।**

जब परमात्मा जिसे ज्ञान दे रहे हैं, परमात्मा जिसकी माया का हरण कर रहे हो तब क्या वह अज्ञानी के द्वारा मोहित होगी? सीता जी ने कहा तो है–

**अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।**

लक्ष्मण जी के चरणों में आने में तारा को कोई लज्जा नहीं लगी। क्योंकि लक्ष्मण जी परम वैष्णव हैं। जो लक्ष्मण जी शूर्पणखा के नाक कान काट सकते हैं, यदि तारा व्यभिचारिणी होती तो तारा को देखकर क्या लक्ष्मण को क्रोध न आता। इसी कारण बालि ने भगवान श्रीराम से कहा कि सुग्रीव की सहायता में इन्हें रख लीजिए तारा जो कहेंगी उसे सुग्रीव मानेंगे तो इनका कल्याण होगा। यही हुआ अंगद के विषय में क्या करूँ? बालि ने प्रार्थना की–

**यह तनय मम शम विनय बल**
**कल्याणप्रद प्रभु लीजिए।**
**गहि बाँह सुरनरनाह**
**आपन दास अंगद कीजिए।।**

बालि का संस्कार करके तारा ने विलाप किया। भगवान ने तारा को समझाया और कहा आप चिन्ता न करें भगवान की यही इच्छा थी। तारा को ज्ञान हुआ तब श्रीराम ने कहा आप सुग्रीव की रक्षा कीजिए। आपको सीता जी के भी दर्शन होंगे आप पति के साथ जलिए मत। हनुमान जी ने कहा–

**ततः काञ्चनशैलाभभस्तरुणार्क निभाननः।**
**अब्रवीत् प्राञ्जलिर्वाक्यं हनूमान मारुतात्मजः।।**

सरकार! आप पधारें और सुग्रीव जी का राज्याभिषेक करायें। आप भी इस रमणीय पर्वतगुफा किष्किन्धा में पधारने की कृपा करें और सुग्रीव जी को राज्य का स्वामी बनाकर वानरों का हर्ष बढ़ायें। हनुमान जी के ऐसा कहने पर शत्रुओं का संहार करने वाले और वाणी में कुशल श्री रघुनाथ जी ने हनुमान जी से कहा–

**चतुर्दश समाः सौम्य ग्रामं वा यदि वा पुरम्।**
**न प्रवेक्ष्यामि हनुमन् पितुर्निर्देशपालकः।।**

हे हनुमन्! सौम्य! मैं पिताश्री की आज्ञा का पालन कर रहा हूँ अतः चौदह वर्षों के पूर्ण होने तक किसी ग्राम या नगर में प्रवेश नहीं करूँगा। तुम्हीं वानरों के साथ मिलकर सुग्रीव को राज्याभिषेक कराओ साथ में लक्ष्मण जी को हनुमान जी के साथ भेज दिया। सुग्रीव को राजा बनाया और अंगद जी को युवराज बनाया। शरद् ऋतु आने पर श्रीराम ने देखा कि आकाश निर्मल है। न कहीं बिजली की गड़गड़ाहट है और न मेघों की घटा है। सब ओर सारसों की बोली सुनाई देती है। यह देखकर प्रभु श्रीराम–

**आसीनः पर्वतस्याग्रे हेमधातुविभूषिते।**
**शारदं गगनं दृष्ट्वा जगाम मनसा प्रियाम्।।**

आनन्दकन्द भगवान श्रीराम श्रीलक्ष्मण के साथ पर्वत पर विराजमान हो रहे हैं। शरत्कालीन स्वच्छ आकाश को देखकर प्रिया सीता जी के प्रति उनका मनरूपी मधुप चला गया। परिपूर्णतम परात्पर परमात्मा पुराणपुरुषोत्तम मैथिलीमनोरम वेदवेदान्तवेद्य सगुणसाकार शीर्षकुसुमसुकुमार कौसल्याकुमार देहप्रभाविजितकोटिकोटिमार परमोदार परमपावन कृपाकूपार हृतधरणिभार श्रीमद्राघवेन्द्रसरकार की कृपा हमारे ऊपर आप सब पर बरस रही है। मुझ पर तो विशेष बरस रही है। मैं तो यही कह रहा हूँ जैसा कि काकभुशुण्डि जी ने गरुड़ जी से कहा था–

**आजु धन्य मैं धन्य अति जद्यपि सब विधि हीन।**
**निज जन जानि राम मोहि सन्त समागम दीन।।**

आज सन्त समागम है सन्तों के बीच में आनन्द हो रहा है। मैं अपने पूरे प्राणों को लगाकर इस कथा को प्रस्तुत कर रहा हूँ। विश्राम नाम का कुछ भी नहीं हो पाता। बहुत से लोग हमसे दु:खी भी हो जाते हैं कि जगद्‌गुरु जी मिलते नहीं हैं। बहुत से सन्त भी अप्रसन्न हो जाते हैं। छ: छ: घन्टे की कथा और व्यवस्थित रूप में कथा कहना मुझ जैसे व्यक्ति के लिए थोड़ा कठिन तो है ही। पर आप निभवा रहे हैं और हम निभा रहे हैं। पहले सोचा था कि एक समय कथा कहेंगे पर महाराज जी ने कहा था कि कृपया दोनों समय कहें अब अच्छा लग रहा है। प्रायश: अब मेरी कथा धामों के अतिरिक्त दो बार नहीं हुआ करती। एक तो पढ़ने पढ़ाने का और विश्वविद्यालय का कार्य बहुत रहता है। यह तो मेरा अपना घर है। एक बार मुझे फिर श्रीरामचरितमानस सुनाने का मन है पर वह अभी जल्दी नहीं होगी।

श्रीरामचरितमानस अब तब सुनाऊँगा जब दो कार्य पूर्ण हो जायेंगे। एक तो तब जब मैं श्रीरामचरितमानस की नौ खण्डों में व्याख्या पूरी कर लूँगा और दूसरा कार्य उतने ही दिनों में जब श्रीराम जन्म भूमि का मन्दिर बनकर पूर्णतया सम्पन्न हो जायगा। तब निश्चित रूप से श्रीरामकथा आपको जल्दी करनी पड़ेगी। हमारे एक सन्त मित्र हैं वे कहते हैं कि आपकी कथा तो होती ही रहती है। मैं यहाँ कथा कहने दौड़कर आता हूँ। हमारा कार्य द्रुतविलम्बित होना चाहिए। अर्थात् संसार का कार्य तो द्रुत (शीघ्र) निबटाओ और भगवान के कार्य (कथा) में धीरे धीरे झूमझूमकर (विलम्बित)आनन्द लो। हम भी सांसारिक कार्य जल्दी निबटाते हैं और भगवान के कार्य आनन्द से करते हैं। आप लोग आशीर्वाद दें कि दोनों कार्य पूर्ण हो जायें फिर झूमकर श्रीरामचरितमानस हो जाय। आज मुख्य यजमान हमसे शिकायत कर रहे थे। कह रहे थे महाराज! आप गजब करते हैं। मैंने पूछा कि मैंने क्या गजब कर दिया तो वे बोले कि मुख्य यजमान तो आपने हमको बना रखा है। पर आप सुनाते सन्तों को हैं। अभी जब हम मन्दिर की ओर जा रहे थे तो एक सन्त ने हमसे कहा कि– ''विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यत:'' इस पर आपसे सुनने की इच्छा है। तब मैंने जल्दी में कहा कि या तो आप मेरी कक्षा में आ जाओ तब सुनायेंगे या सायंकाल सुनायेंगे क्योंकि यह 'भूषण' का प्रसंग है। पर इसी प्रसंग में सुनाते हैं कि भगवान राम सुग्रीव को राज्याभिषिक्त करके अंगद को युवराज बनाकर चातुर्मास्य बिता चुके हैं। सुग्रीव आ नही रहे हैं। यही तो भगवान की लीला है। सन्त जी का प्रश्न यह कि आप तो परिणामवाद का समर्थन करते हैं यहाँ विवर्तवाद कहा गया–

**श्रीलक्ष्मीरमणं नौमि गौरीरमणरूपिणम्।**
**स्फोटरूपं च तत्सर्वं जगदेतद् विवर्तते।।**

एक और भी कहा गया है–

**अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्वं यदक्षरम्।**
**विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यत:।।**

वाक्यपदीयम् का पहला श्लोक है। इस विषय में वहाँ कोई गड़बड़ नहीं सोचना चाहिए। क्योंकि वैयाकरण भी विवर्तवाद नहीं मानता। विवर्तते माने विशेषेण वर्तते। जिस परमात्मा से अर्थभाव द्वारा पदार्थ के रूप में जगत की प्रक्रिया विशिष्ट रूप से प्रवृत्त होती है। उसमें वैशिष्ट्य होता है। हमारे पक्ष का तो यह

समर्थन नहीं है। एक ही चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म कारणरुप में तो परम व्योम में विराजमान हो जाता है पर कार्यरूप में यहाँ पर परिणत हो जाता है। क्योंकि ब्रह्म दो रूपों में प्रतीत होता है।

उसको कारणब्रह्म कहिए अथवा सूक्ष्म ब्रह्म और स्थूल ब्रह्म कह लीजिए जो भी आप कहना चाहें। पर अर्थभाव से पदार्थ के रूप में परमात्मा प्रकट होते हैं, परिणत होते हैं– 'तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' अर्थात् जगत की रचना करके भगवान जगत में ही प्रविष्ट हो गये, अन्तर्यामी रूप में भगवान जगत में प्रविष्ट हो गये। इसलिए भगवान जगत में भी हैं और जगत के बाहर भी हैं। **जैसे आपने रसगुल्ला देखा है रसगुल्ले में बाहर भी रस होता है और भीतर भी रस होता है उसी प्रकार ब्रह्म जगत में भी है और जगत के बाहर भी है।** भगवान जीव को छोड़कर रह ही नहीं सकते उनका जीव के साथ अविनाभाव सम्बन्ध है–

**इदं हि विश्वं भगवानिवेतरो**
**यतो जगत्स्थाननिरोधि संभवाः।**
**तद्धि स्वयं वेद भवांस्तथापि वै**
**प्रादेशमात्रं भवतो निदर्शितम् ।।**

भागवत १/५/२०

इसी प्रकार उपनिषद में कहा भी गया है– यतः खल्विमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत प्रयन्त्यभिविशन्ति तद् विजिज्ञासस्व। इसीलिए विवर्त तो किसी भी मूल्य पर नहीं है। जगत का विवर्तवाद किसी भी मूल्य पर सम्भव नहीं है। यदि कोई विवर्तवाद सिद्ध करना चाहता है तो उससे प्रश्न होता है कि 'परिणामात्' को कहाँ ले जाओगे। अतः यहाँ श्री शंकराचार्य ने सूत्रकार के साथ अत्याचार किया है। इसलिए मधुसूदन सरस्वती स्वयं यह बात स्वीकार करते हुए कहते हैं–

**नस्तौमि तं व्यासमशेषमर्थं**
**यो ब्रह्मसूत्रैरपि नो बबन्ध।**
**विनापि तै संकलिताखिलार्थं**
**तं शंकरं नौमि सुरेश्वरं च।।**

उनका कहना है कि मैं व्यास जी की वन्दना तो नहीं करूँगा क्योंकि वे ब्रह्मसूत्रों में पूरा वेदान्त न कह सके। क्यों नहीं कह सके? इनकी बात नहीं कही यही उन्होंने गड़बड़ कर दिया। उन्होंने अद्वैतवाद नहीं कहा होगा यही गलती हो गई। फिर किसका वन्दन करोगे? ब्रह्मसूत्रों के बिना जिन्होंने सम्पूर्ण वेदान्त कह डाला। अर्थात् शंकराचार्य परम्परा के लोग भी स्वीकारते हैं कि जो कुछ वेदान्त में शंकराचार्य ने कहा वह सूत्रकार से सहमत नहीं था या सूत्रकार सम्मत नहीं था। ब्रह्मसूत्र पर भाष्य बहुत लोगों ने लिखा और इस शरीर ने (मैंने) भी लिखा। आनन्द कर दिया आपका आशीर्वाद था। ब्रह्मसूत्र का जब चतुर्थ अध्याय आप देखेंगे। तो पायेंगे कि किसी भी प्रकार श्री शंकराचार्य का अद्वैतवाद सिद्ध ही नहीं हो सकेगा। ये तो कहते हैं कि जीव की कोई सत्ता नहीं है औपाधिकी सत्ता है। जीव ब्रह्म ही है जबकि वास्तविकता में 'भोगमात्र साम्यलिङ्गात्' जीव ब्रह्म की केवल भोगमात्र में समानता कर सकता है। सर्वत्र तो समानता का प्रश्न ही नहीं उठता। 'सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति' विपश्चिता ब्रह्मणा सह सर्वान् कामान् अश्नुते अर्थात् जीव भगवान के समान भोग कर सकता है। भगवान जो खाते हैं जीव को भी खिला देते हैं पर भगवान का श्रीवत्सलाञ्छन जीव को नहीं मिल सकता। भगवान का शार्ङ्ग जीव को नहीं मिल सकता। भगवान की सीता जी जीव को नहीं मिल सकतीं।

क्रमशः........

# श्रीमद्भगवद्गीता ( ८३ )

( गतांक से आगे )

( विशिष्टाद्वैतपरक श्रीराघवकृपाभाष्य )

**भाष्यकार–धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज**

इस प्रकार अजन्मा अविनाशी सबके ईश्वर भगवान अपनी आह्लादिनी शक्ति के साथ जीवों पर कृपा के परवश होकर अपने स्वरूप को न छोड़ते हुए कौसल्या आदि माताओं को निमित्त बनाकर प्रकट होते हैं।श्री।।

**संगति–** अब अर्जुन फिर प्रश्न करते हैं कि आप कब अवतार लेते हैं? इस पर भगवान कहते हैं।

**यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।**
**अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।**

४/७

**रा०कृ०भा० सामान्यार्थ–** हे भरतवंश में उत्पन्न अर्जुन! जब जब धर्म की हानि होती है और अधर्म का अभ्युत्थान होता है तब तब मैं स्वयं को सृजता हूँ अर्थात् सगुण साकार रूप में प्रकट करता हूँ।

**व्याख्या–** अब यहाँ प्रश्न यह है कि ग्लानि शब्द हर्षक क्षेमार्थक 'ग्लै' धातु से निष्पन्न होता है और हर्ष होता है मूर्तिमान में। धर्ममूर्तिमान है नहीं, फिर भगवान ने 'धर्मस्यग्लानि' कैसे कहा?

**उत्तर–** यहाँ 'हर्ष' शब्द का 'मोष' करके 'क्षम' शब्द को हानि अर्थ मानने से संगति बन जाती है इसी प्रकार प्राचीन भाष्यटीकाकारों ने व्याख्या भी की है। गोस्वामी तुलसीदास जी भी इसका समर्थन करते हैं–

**जब जब होहि धरम कै हानी।**
**बाढ़हि असुर महा अभिमानी।।**
**तब तब प्रभु धरि बिबुध सरीरा।**
**हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।।**

मानस १/१२१/६–८

अथवा यहाँ सम्बन्ध में षष्ठी है अर्थात् जब जब धार्मिक को धर्म के सम्बन्ध में ग्लानि होती है तब तब भगवान का अवतार होता है। अथवा धर्म शब्द 'मत्वर्थीय अच्' प्रत्यय से बना है। अर्थात् धर्मः अस्ति अस्मिन् इति धर्मः। तस्य धर्मस्य। अर्थात् धर्मवतः जब जब धर्मवान् को ग्लानि होती है तब तब भगवान का अवतार होता है। इस व्युत्पत्ति का भी दशरथ जी की कथा के माध्यम से तुलसीदास जी महाराज समर्थन करते हैं। जैसे मानस में उन्होंने दशरथ जी को पहले धरमधुरन्धर कहा–

**धरम धुरन्धर गुननिधि ग्यानी।**
**हृदय भगति मति सारंगपानी।।**

(मानस १/१८७/८)

पुनः अगले ही दोहे में धर्मधुरन्धर महाराज की ग्लानि का भी वर्णन करते हैं। जैसे–

**एक बार भूपति मन माहीं।**
**भई ग्लानि मोरे सुत नाहीं।।**

मानस १/१८९/१

अथवा पुराणों के अनुसार धर्म देवता हैं और मूर्तिमान भी। इसीलिए श्रद्धा, मैत्री, दया, शान्ति, पुष्टि, तुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि ह्री तितीक्षा, क्षान्ति तथा मूर्ति ये तेरह धर्म की पत्नियाँ कही गयी हैं। एतएव भागवत २/७/६ में धर्म की पत्नी मूर्ति से नरनारायण का अवतार कहा गया है। यथा–

**धर्मस्य दक्षदुहितर्यजनिष्ट मूर्त्यां**
**नारायणो नर इति स्वतपः प्रभाव।**
**दृष्ट्वाऽऽत्मनो भगवतो नियमावलोपं**
**देव्यस्त्वनङ्गपृतना घटितुं न शेकुः।।**

भा०२/७/६

इस प्रकार जब धर्म देवता को ग्लानि अर्थात् उनके हर्ष का क्षय हो जाता है तब भगवान का अवतार होता है। मेरी इस व्याख्या में भी गोस्वामी जी का

समर्थन है।

**अतिसय देख धरम की ग्लानी।**
**परम सभीत धरा अकुलानी।।**

मानस १/१८४/४

अथवा यहाँ धर्म शब्द भगवान का वाचक है। 'धर्मो धर्म विदां श्रेष्ठः' विष्णु सहस्त्रनाम महाभारत २/६७/४६ में भगवान कृष्ण के लिए ही धर्म शब्द का प्रयोग हुआ है। 'ततस्तु धर्मोऽन्तरितो महात्मा:' इस पक्ष में तृतीय चरण में दृष्ट्वा शब्द का अध्याहार होगा। अर्थात् जब जब अधर्म का अभ्युत्थान देखकर मुझ धर्मरूप परमात्मा को ग्लानि होती है तब मैं अपने को धारण करता हूँ। यहाँ आत्मा शरीर का वाचक है 'आत्माशरीरी:' इसका यह कोष भी प्रमाण है। इस पक्ष में अर्थ होगा, हे भरतवंशी अर्जुन! जब जब अधर्म का अपराभव देखकर धर्मरूप मुझ परमात्मा को ग्लानि होती है तब मैं 'आत्मानं' अर्थात् निरवधिनिरतिशय कल्याणगुणगणनिलय, विशुद्ध सच्चिदानन्द रसधन दिव्य शरीर की रचना करता हूँ। सृजामि का तात्पर्य है कि मेरा शरीर ब्रह्मा नहीं बनाते और न वे बना सकते हैं। इसे मैं अपनी इच्छा से बनाता हूँ। इसीलिए मानस १/२९२ में गोस्वामी जी कहते हैं–

**निज इच्छा निर्मित तनु माया गुनगोपार।।श्री।।**

**संगति–** इसके अनन्तर आप क्या करते हैं? इस पर स्वजन परित्राण परायण नारायण कहते हैं–

परित्राणाय साधुनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।४/८

**रा०कृ०भा० सामान्यार्थ–** सन्मार्गगामी साधुओं की रक्षा करने के लिए तथा दुष्टों का विनाश करने के लिए तथा वैदिक धर्म की विधिवत स्थापना करने के लिए मैं प्रत्येक युग में प्रकट होता हूँ।

**व्याख्या–** परित्राण का अर्थ है चारों ओर से रक्षण। अर्थात् मैं साधुओं की चारों ओर से चारों भुजाओं से रक्षा करता हूँ। यहाँ धर्म शब्द सनातन धर्म का वाचक है। यहाँ यह ध्यान देना चाहिए कि भगवान स्वयं सच्चिदानन्द घन हैं। वे अपने सद्रूप से साधुओं का परित्राण करते हैं, अपने चिद्रूप से दुष्टों का विनाश करते है और अपने आनन्दरूप से धर्म की संस्थापना करते हैं। 'युगे-युगे' का तात्पर्य है कि भगवान प्रत्येक युग में अवतार लेते हैं। कभी अंशावतार तो कभी पूर्णावतार। अंशावतार के भी तीन भेद होते हैं– प्रवेश, आवेश और स्फूर्ति। अथवा भगवान कहते हैं कि मेरा पूर्णावतार त्रेता और द्वापर इन दो युगों में श्रीराम और श्रीकृष्ण के रूप में होता है। इसीलिए युगे युगे यह द्विरुक्ति की गयी। इन्हीं दोनों अवतारों में पूर्वोक्त तीनों हेतु संघटित हो जाते हैं। जैसे श्रीरामावतार में बाललीला में साधु परित्राण वनलीला में दुष्टों का विनाश और राज्यलीला में धर्म की स्थापना। इसी प्रकार श्रीकृष्णावतार में ब्रजलीला में साधुओं का परित्राण, मथुरालीला में दुष्टों का विनाश और द्वारिका लीला में धर्म की स्थापना। अथवा भगवान की प्रत्येक लीला में ये तीनों हेतु दिखाई पड़ते हैं। जैसे भगवान श्रीराम की बाललीला में विश्वामित्र यज्ञ रक्षा से साधु परित्राण ताड़का के वध से दुष्टों का विनाश तथा अहिल्योद्धार तथा सीता स्वयंवर से धर्म की स्थापना। इसी प्रकार श्रीकृष्णावतार में भी ब्रजलीला में गोवर्धन धारण तथा दावाग्निपान आदि से साधु परित्राण और पूतना आदि वध से दुष्टों का विनाश और रासलीला से धर्म की स्थापना। इसीप्रकार दोनों अवतारों में भगवान की प्रत्येक लीला में सुविज्ञ पाठक इन लीलाओं को देख सकते हैं। अत: युगे युगे शब्द का अभिप्राय है कि मैं त्रेता में दशरथ कौसल्या युगल के यहाँ तथा द्वापर में श्री वसुदेव-देवकी युगल के यहाँ प्रकट होता हूँ। यहाँ युग शब्द युगल के अर्थ में है इसलिए महाकवि कालिदास रघुवंश महाकाव्य में युगल शब्द के अर्थ में ही युग शब्द का प्रयोग करते हैं। वन्द्यं युगं चरणयोर्जनकात्मजाया:। अथवा यहाँ युगे अयुगे यह अकार का प्रश्लेष है। भगवान कहते हैं कि मैं कभी तो माता-पिता युगल को निमित्त बनाता हूँ और कभी अयुग अर्थात् कभी किसी को निमित्त न बनाकर जन्म ले लेता हूँ। ।।श्री।।

क्रमशः........

(गतांक से आगे)

# रासपञ्चाध्यायी विमर्श ( २ )

❑ धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

**अतुलित महिमा वेद की तुलसी कीन्ह विचार।**
**जो निंदत निंदित भए विदित बुद्ध अवतार।।**

अतएव उन्हीं वेद को समझाने के लिए प्रकट हुये हैं साक्षात् वेद कल्पवृक्ष के फलस्वरूप में श्रीमद् वेदव्यास एवं शुकाचार्य जी को माध्यम बनाकर श्रीमद् भागवत भगवान्। इसलिए भागवत जी के प्रथम स्कन्ध के प्रथम अध्याय के तृतीय श्लोक में आशीर्वादात्मक मंगलाचरण करते हुये वेदव्यास जी भगवान् ने हम सनातन धर्मावलम्बीजनों को आज्ञा दी कि, **अरे भावुक रसिको! अपना सौभाग्य तो देखो एक सुन्दर आम का फल तुम सबके सामने आकर उपस्थित हो गया है। वह किसका फल है? कल्पवृक्ष का। कौन सा कल्पवृक्ष? वेदरूप कल्पवृक्ष। उसमें बहुत मधुर स्वाद है। उसका स्वाद तो अमृत को भी फीका कर देता है क्योंकि वह शुकाचार्य रूप तोते के मुखारविन्द के निष्यन्दभूत परमानन्द श्रीकृष्ण प्रेमरस से सम्पूर्ण है। इसको पियो, क्योंकि पृथ्वी पर गिर करके भी यह फल विकृत नहीं हुआ, फूटा नहीं, इसमें पृथ्वी की धूल नहीं लगी। यह फल भी है और रस भी। फल इसलिए कि इसका एक आकार है और रस इसलिए है कि इसमें अन्य फलों की भाँति गुठली नहीं हैं। अन्य फलों की भाँति इसमें छिलका नहीं है। इसीलिए पीते जाओ पीते जाओ, तब तक पियो जब तक भगवान् श्रीराधाकृष्ण के चरणों में विलीन न हो जाओ।** बारम्बार पियो तुम्हें कोई मना नहीं करेगा। यहाँ 'पिबत' का प्रयोग कर रहे हैं और 'पिबत' पाणिनीय व्याकरण के अनुसार लोट् लकार के मध्यम पुरुष के बहुवचन का रूप है। ''यूयं पिबत'' तुम सब पीते जाओ पीते जाओ, कितनी बार? 'मुहुः' बारम्बार पियो कोई आपत्ति नहीं है। **'आलयं' अपनी लय के पर्यन्त पियो, लय को व्याप्त करके पियो, लय की मर्यादा के साथ पियो, पीते जाओ, कोई नहीं रोकेगा।** हम सबकी भाग्य की प्रशंसा करते हुये वेदव्यास जी 'अहो' शब्द का प्रयोग कर रहे हैं। अहो ! यह सौभाग्य और कहीं नहीं है। यह स्वर्ग में भी सौभाग्य नहीं है।

**स्वर्गे सत्ये च कैलासे वैकुण्ठे नास्त्ययं रसः।**
**अतः पिबन्तु सद्भाग्या मा मा मुंचत कर्हिचित्।।**

भा०मा०६/८३ ३०/९/०८

यह सत्यलोक में सौभाग्य नहीं है। बैकुण्ठ में यह सौभाग्य नहीं प्राप्त है। यह सौभाग्य तो इस भूतल पर, इसमें भी भगवती भारत माता की गोद में प्राप्त है। इससे इस सौभाग्य को मत जाने दो। उन्होंने द्रुत विलम्बित छन्द में आशीर्वाद देते हुये कहा,

**''निगमकल्पतरोर्गलितं फलं श ु क म ु ख ा द म ृ त ं द्र व स ं य ु त म ् ं शुकमुखादमृतंद्रवसंयुतम् पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भूविभावुका।''**

यह भागवत है आम का फल पर आम ही तो राम है। 'रामं' शब्द के ही अक्षर आम में आते हैं।

'राम' शब्द अपने में महत्वपूर्ण है। सामान्य रूप से राम सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति की व्याख्या कर देता है। 'र' का अर्थ है ऋग्वेद, 'आ' का अर्थ है आहुतिप्रधान यजुर्वेद, 'म' का अर्थ है मधुरता प्रधान सामदेव और पुनः अ का अर्थ है अथर्ववेद। 'राम' सम्पूर्ण वेदमय हैं। 'राम' ब्रह्मा, विष्णु और शिवमय हैं और भारत के तो दो ही इतिहास हैं रामायण और महाभारत। 'रा' का अर्थ है रामायण और 'म' का अर्थ है महाभारत। भारत की संस्कृति गंगा-यमुनी संस्कृति है। एक संस्कृति के नायक हैं भगवान् श्रीराम और दूसरी संस्कृति के नायक हैं भगवान् श्रीकृष्ण। अतः 'रा' का अर्थ है राघव और 'मा' का अर्थ है माधव। **इसलिए हम श्रीरामकृष्णात्मक सनातन धर्म को प्रणाम करते हैं।** भारतीय सिद्धान्त में श्रीराम और श्रीकृष्ण दोनों में ही कोई भेद नहीं स्वीकारा गया है। जो श्रीराम और श्रीकृष्ण में भेद स्वीकारते हैं वे निश्चित ही भारतीय संस्कृति का अपमान कर रहे हैं और भारतीय संस्कृति की हानि भी कर रहे हैं। इससे यहाँ यह बात कहनी मुझे बहुत आवश्यक प्रतीत होती है कि हम किसी भी मूल्य पर श्रीराम से श्रीकृष्ण को भिन्न नहीं मानते। इन दोनों में किसी को बड़ा-छोटा नहीं मानते। गोस्वामी जी ने कह दिया, **''को बड़ छोट कहत अपराधु।'' भगवान् श्रीराम ही श्रीकृष्ण हैं, भगवती श्रीसीता ही श्रीराधा हैं।** एक ओर उनकी हाथ में धनुष-बाण है तो दूसरी ओर मुरली और सुदर्शन चक्र। एक ओर भगवती श्रीसीता जी विराज रही हैं, तो दूसरी ओर भगवती श्रीराधा। हाँ, इस अवतार में बहुत-सी स्त्रियाँ भगवान् श्रीकृष्ण के साथ प्रेम करती हुयी दिखती हैं। भगवान् श्रीराम एक नारीव्रत मर्यादा के पालक हैं। वहाँ तो उनके साथ केवल भगवती श्रीसीता जी ही दिखेंगी, परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण के साथ ऐसा नहीं है, वे बहुपत्नीव्रत सिद्धान्त के पोषक हैं। अतएव, वहाँ पर यह आग्रह नहीं है, वस्तुतस्तु भगवती श्रीसीता जी की ही कायव्यूहभूत जो परछाइयाँ हैं वे ही यहाँ श्रीगोपियों के रूप में परिलक्षित होती है, क्योंकि भगवती श्रीसीता जी ही कृष्णावतार की राधा जी हैं। **मिथिला में श्रीविवाह मण्डप में श्रीसीताराम जी की जो परछाइयाँ मणियों के खम्भों में विराज रही हैं वे ही श्रीकृष्णावतार में रासलीला में बहुत सी गोपियों और बहुत से श्रीकृष्णों के रूप में परिलक्षित होती हैं अर्थात् मूलरूप में श्रीकृष्ण एक हैं जो राधा जी के साथ हैं।** परन्तु उन्होंने ही अपने प्रतिबिम्बों को गोपियों के रूप में प्रस्तुत कर दिया। और यह बात स्वयं भागवतकार कहते हैं। श्रीरासपंचाध्यायी के विश्राम में भगवान् शुकाचार्य जी ने महाराज परीक्षित जी को आज्ञा देते हुये कहा-

**''एवं परिष्वङ्गकराभिमर्शस्निग्धेक्षणोद्दामविलासहासैः।**
**रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः।।''**

१०/३३/१७

अर्थात् हे महाराज परीक्षित! जिस प्रकार से छोटा-सा बालक अपने प्रतिबिम्बों अर्थात् अपनी परछाइयों को देखकर उनसे हँसता है, खेलता है, उन्हें पकड़ता है, उन्हें चूमता है, उसी प्रकार रमेश, रमा अर्थात् कृष्णरस की शक्ति भगवती श्रीराधा के ईश्वर

श्रीकृष्णचन्द्र अपने आलिंगनों, विलासों, हासों, स्नेहभरी चितवनों और स्वतन्त्र भिन्न-भिन्न भावों के साथ व्रजसुन्दरियों के साथ खेल रहे हैं। हमारी समस्या यह है कि हम भारतीय कभी-कभी वैदिक वाङ्मय के साथ न्याय नहीं कर पाते। कुछ सोच नहीं पाते। और न ही कुछ सोचने का मन में अभिलाष रखते हैं। हम अपने ही परिवेश के आधार पर भगवान् का आकलन कर लेते हैं यही हमारी भूल हो जाती है, जबकि ऐसा नहीं करना चाहिए। भगवान् मनुष्य के परिवेश से ऊपर है। मनुष्य अथवा जीव इन्द्रियों के परतन्त्र हैं। मनुष्य इन्द्रियों के अधीन हैं पर भगवान इन्द्रियों के अधीन नहीं हैं। इसीलिए भगवान को गोविन्द कहा जाता है। **'गाः विन्दति''** जो इन्द्रियों को सेविकाओं के रूप में स्वीकार करते हैं उन्हें गोविन्द कहते हैं इन्द्रियाँ हमारी सेविका नहीं हैं। इसलिए श्री रामचरितमानस के सुन्दरकाण्ड में विभीषण कहते हैं कि भगवान् गौओं अर्थात् इन्द्रियों, ब्राह्मणों, धेनु अर्थात् गौओं और देवताओं का हित करने के लिए मनुष्य शरीर स्वीकार करते हैं-

**गो द्विज धेनु देव हितकारी।**
**कृपासिंधु मानुष तनुधारी।।**

इसलिए हमको अपनी परिस्थितियों के आधार पर भगवान् का आकलन कभी नहीं करना चाहिए। भगवान् सबके ऊपर हैं, भगवान् शरीर नहीं हैं, भगवान् मन नहीं हैं। भगवान बुद्धि नहीं हैं, भगवान् आत्मा भी नहीं हैं, भगवान् आत्मा से ऊपर हैं।

**इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।**
**मनसस्तु पराबुद्धिर्योबुद्धे परतस्तु सः।।**

गीता ३/४२

बुद्धि से परे है जीवात्मा और उससे भी यहाँ परतः लिखा और उससे भी परे हैं परमात्मा, इसलिए भगवान् सबसे ऊपर हैं। अतः भगवान के सम्बन्ध में उसी दृष्टिकोण से विचार करना पड़ेगा। हम यह कह रहे थे कि ये इन्द्रियाँ भगवान् की दासियाँ हैं, भगवान इनके वश में नहीं हो सकते और न ही इनके आधार पर भगवान् का कोई सिद्धान्त निर्मित होता है। भगवान् तो वही करते हैं जिससे उनके भक्त का अनुरन्जन होता है। भगवान् की लीलाएँ केवल हम जैसे प्राणियों के कल्याण के लिए होती है। इसलिए रासपंचाध्यायी की चर्चा करते हुए शुकाचार्य जी ने परीक्षित जी को सावधान किया, महाराज। क्रमशः........

# अवध बिहारी ने.....

❑ आचार्य दिवाकर शर्मा

**अवध बिहारी ने आज मेरा मन लूटा।**
**भवभयहारी ने आज मेरा मन लूटा।।**
**छूट गये सब संगी साथी**
**घर परिवार भी छूटा। अवधबिहारी ने....**
**पुत्र मित्र और जाया माया**
**सबका प्रेम है झूठा। अवधबिहारी ने....**
**काम क्रोध मद लोभ मोह**
**और कुबुद्धि का भाँडा फूटा। अवधबिहारी ने....**
**ज्ञान ध्यान सब धरा रह गया**
**पाया तत्त्व अनूठा। अवधबिहारी ने....**
**चरणकमल में चित्त लगा तो**
**मोहन्पाश भी टूटा। अवधबिहारी ने....**

गतांक से आगे

# शिखा की वैज्ञानिकता का रहस्य

❑ पूज्यपाद पं० दीनानाथ शास्त्री सारस्वत

(१६) पुरुष शक्ति के यौवन का विकास सुख-छाती आदि स्थानों में केशनिर्गम के द्वारा होता है, किन्तु स्त्री के यौवन का विकास इस केशनिर्गम द्वारा न होकर मासिक ऋतुधर्म स्वनों में दूब तथा जरायु की वृद्धि द्वारा होता है। जब यौवन-विकास के साथ केश-निर्गम का सम्बन्ध है तो जिस प्रकार वृक्ष की शाखा काटने से उसमें नवीन शाखा निकलने का वेग बढ़ता है, उसी प्रकार प्रतिदिन केश काटते रहने से या दाढ़ी-मूंछ मुण्डवाते रहने से यौवन का वेग भीतरी कामशक्ति रूप में स्नायुओं में अधिक प्रकट होता है और वह शुक्र के बाहर करवाने में सहायक होकर क्रम-क्रम से क्षीणता को प्राप्त करता जाता है। यही कारण है कि- ब्रह्मचारी, एवं वानप्रस्थी के लिए विशेषकर केशधारण की विधि शास्त्रों में आई है। **केश धारण करने से काम-सम्बन्धी नसों का वेग स्वभावतः दबा रहता है और शुक्र के बाहर होने की उत्तेजना प्राप्त नहीं होती।** सन्यासी तो उस यौवनावस्था का पार करके ही होता है, पहले भी सन्यासी हो जावे, तो 'सोऽहम्' भाव में अभेदबुद्धि वश काम की चिन्ता ही नहीं रहती, अतः यतिगण मुण्डन कराते हैं। गृहस्थावस्था में यौवन का कुछ उपयोग अपेक्षित होता ही है। अतः गोखुर इतने केश सिर के मध्य में रखकर शेष केश समय-समय पर कटाये जाते हैं। गोखुर में सिर के मध्य का अंश, और कुछ पीछे का अंश ढक जाता है, वही शिखा के रूप में सिर के ऊपर रहता है। योगशास्त्र के सिद्धान्तानुसार सिर के मध्य के उस अंश के नीचे ब्रह्मरन्ध्र और ब्रह्मरन्ध्र के ठीक ऊपर सहस्त्रदल कमल में परमात्मा का केन्द्र स्थान है। इन दोनों अंशों में शिखास्थान में केशराशि रखने से आत्मिक शक्ति बनी रहती है और काम-चिन्तनशक्ति दबी रहती है। इसी कारण हिन्दुजाति में शिखा के रखने के कारण ही बल, आयु, तेज, आत्मचिन्तन, काम का संयम भी दीखता रहा है, अन्य जातियों में वैसा न रहने से उच्छृङ्खलता, नास्तिकता, कामुकता, विलासिता, कायरपन आदि स्वाभाविक होते हैं। अब हिन्दुओं में भी शिखा की स्थापना में आस्था घटती जाने से पूर्वोक्त गुण भी घटते चले जा रहे हैं और अन्य दुर्गुण बढ़ते चले जा रहे हैं। जो गुण जिसके होने पर होता है, जिसके नष्ट होने पर नहीं होता, वह उसी का धर्म माना जाता है।

ध्यान के समय ओज शक्ति प्रकट होती है। यदि परमात्मा का ध्यान किया जाय तो मस्तक के ऊपर शिखा के रास्ते से ओज शक्ति प्रकट होती है परमात्मा की शक्ति उसी पथ से अपने भीतर आया करती है। इससे तेज आयु आदि की वृद्धि होती है। परमहंस यति लोग सदा ही ब्रह्म से मिले रहते हैं, इसलिए उन्हें पृथक रूप से शिखा द्वारा शक्ति खींचने की आवश्यकता नहीं होती है। ब्रह्मचारी और वानप्रस्थी शिखा और जटा द्वारा, गृहस्थी लोग गोखुर-शिखा द्वारा इस शक्ति का ग्रहण करके अपनी आध्यात्मिक

तथा आधिदैविक उन्नति प्राप्त करते हैं। शिखाधारण, शिखास्पर्श, शिखाबन्धन आदि प्रक्रिया द्वारा सहस्त्रदलकमल की ओर झुकाव रहने से आत्मदृष्टि मनुष्य में बढ़ा करती है- वही शिखा का रहस्य है।

बार बार बाल छंटवाते रहने से, शिखा न रखने से दाढ़ी मूंछ बार-बार मुण्डाते रहने से कामसम्बन्धी नसों में उत्तेजना फैलती है। अतः ऐसे मनुष्य प्रायः विषयी एवं विलासी हुआ करते हैं। स्थूल शरीर के सुन्दर बनाने में लगे रहने से उन्हें शिखा उसमें असुन्दरता का कारण प्रतीत होने से उसे वे कटा डालते हैं। ऐसे पुरुष वा जातियाँ आत्मोन्नति को खोकर विषय-विलासी बने रहते हैं। इसी कारण हमारे शास्त्रों में शेष बाल भी जब चाहे न कटवाकर किसी तिथि-विशेष वा नक्षत्र-विशेष वा वार-विशेष में मुण्डित करने का आदेश दिया है। ऐसा करने से उस आदेश के वशंवद होने से हममें सुन्दरता का भाव तथा तन्मूलक कामोत्तेजना नहीं रह पाती। इसके अतिरिक्त उस तिथि के देवता वा नक्षत्र के देवता, वा वार के देवता से संयम शक्ति में सहायता प्राप्त हो जाती है,और उस दिन नखकेशादि में जीवन नहीं रहता अर्थात् मनुष्य शरीर के साथ उनका चेतनता सम्बन्ध नहीं रहता। अतः ऐसे समय में केश कर्तन मुण्डनादि द्वारा हमारी नसों में उच्छृङ्खल कामोत्तेजना भी नहीं होती। हमारे सूक्ष्मदर्शी प्राचीन महानुभाव सूर्यनक्षत्रादि देवताओं का हमारे शरीर पर भिन्न भिन्न दिन भिन्न भिन्न प्रभाव जानते थे, जिसका आभास कभी-कभी आज के वैज्ञानिकों को भी हो जाता है। अतः कई तिथि-विशेषों में स्त्री गमनादि का भी हमारे पूर्ण वैज्ञानिक महानुभाव निषेध कर गये हैं। तिथि-विशेष में काटे गये हमारे केशादि यदि किसी जादूगर के हाथ में पड़ भी जाय, तब भी वह हमारा अनिष्ट करने में सक्षम नहीं हो सकता। बिना वार, तिथि, नक्षत्र का विचार किये केवल सुन्दरता का लक्ष्य करके केश आदि कटवाते रहने से, क्षुर वा रेजरोंका जब-तब प्रयोग करते रहने से, हमारी कामोत्तेजना की वृद्धि पुंस्त्वनाश, यौवन का सौख ही जीर्ण शीर्णता को प्राप्त हो जाना इत्यादि बातें हुआ करती हैं। उसका दुष्परिणाम प्राचीन मर्यादाओं को तोड़ रहे हुए हम लोग प्राप्त करते हुए दिनों दिन ह्रास को प्राप्त होने जा रहे हैं।

(१७) स्त्रियों के लिए केश काटना नहीं है, क्योंकि उनका स्त्री शक्तिविकाश ऋतुधर्म जरायु आदि द्वारा होता है, अतः स्त्रियाँ अपने प्राकृतिक धर्म को छोड़कर यदि पुरुषों की तरह बाल कटवाना प्रारम्भ करेंगी तो उनमें स्त्रीसुलभ शक्ति घट जायगी, उनमें ओज की न्यूनता तथा मातृभाव का नाश होकर पुरुषभाव आने लग जायगा, और जरायु, प्रसव, मासिकधर्म आदि के विषय में अनेक रोग उत्पन्न होकर उनके शरीरों को भीतर से खोखला कर डालेंगे। प्रायश्चित में भी उनका केवल चार अंगुल केश काटने के विधि है, पूरा शिरोमुण्डन नहीं किया जाता। केश रखने से ही उनके उत्पन्न होने वाले बच्चों के मस्तिष्क को भी लाभ पहुँचता है। हाँ, निवृति के आश्रम में उन्हें (स्त्रियों को) भी मुण्डन आदिष्ट है। वैधव्य स्त्रियों का सन्यास है, उसमें निवृत्तिवश उत्तेजना की आवश्यकता नहीं रहती, अतः वैधव्य में स्त्री का केश पूरा काट देने का विधान वेद-शास्त्रानुशिष्ट है।

क्रमशः........

# सतयुगी तीर्थ नैमिषारण्य

❑ डॉ० हरप्रसाद स्थापक 'दिव्य'

नैमिषारण्य पवित्र तीर्थ का, जग करता अभिनन्दन है।।टेक।।
परम्परागत गाथाओं की, कीर्ति पताका फहराई है।
अठासी हजार ऋषि मुनियों ने, तप से गरिमा पाई है।।
तैतीस कोटि देवता रहते, यह बनी हुई परिपाटी है।
भारत माता का यह गौरव, चन्दन इसकी माटी है।।
ज्ञान-गरिमा का पावन क्षेत्र, सुसंस्कारों का नन्दन वन है।।१।।
गोमती नदी का पवित्र जल, जो पापों का क्षय करता है।
यहाँ तीन कोटि तीर्थों का, स्नान नित्य हुआ करता है।।
आदि शक्ति ललिता देवी का, शक्ति पीठ सिद्धि देता है।
'व्यास',-'सूत' गद्धियों सेस, पुराणों का सत्य प्रकट होता है।।
हनुमान गढ़ी में 'नेमी' रक्षक, शंकर स्वयंकेशरी नन्दन हैं।।२।।
'मनु'-'सतरूपा' को सतयुग में, तप से पुत्र प्राप्ति का वर पाया।
'त्रेता' में दशरथ-कौशिल्या बन, पुत्र-'राम' गोद में आया।।
'नमो राघवाय' सब भजते, यज्ञ हवन पूजन करवाते।
पुत्र-पौत्र प्राप्ति के हित, सत्यनारायण की कथा कराते।।
हे! अग-जग के सतयुगी तीर्थ, स्वीकारो सबका वन्दन है।।३।।
मोक्ष दायिनी नगरी यह, 'रामभद्राचार्य' जी को प्यारी है।
भक्तन को सुख देने वाली, जगद्गुरु की महिमा न्यारी है।।
भागवत कथा श्रवण से होता, जन-जन का कल्याण है।
जीवन की सच्चाई झलकती, यह शाश्वत जीवन गाान है।।
महिमा मण्डित गुरु चरणन में, शिष्यों का शत-शत वन्दन है।।४।।
जगद्गुरु की महती कृपा से, होते प्रसन्न भगवान हैं।
सद्गुरु के सदोपदेशों से, बनते शिष्य महान हैं।।
संत समागम हरि कथा से, बनते शिष्य महान हैं।
संत समागम हरि कथा से, मिलते जीवन के उपदेश हैं।
सच्चा सुख अक शांति मिले, कटते जनम-जनम के क्लेष हैं।।
भागवत कथा श्रवण से, छूट जाय जग का बन्धन है।।५।।

# श्रद्धा-कर्म अनिवार्य हैं

❑ श्री जगदीशप्रसाद गुप्त ( जयपुर )

श्राद्धकर्म निरर्थक नहीं हैं सार्थक हैं। भारतीय संस्कृति के उन उच्च आदर्श एवं आचरण के दर्पण हैं, जहाँ श्राद्ध-कर्त्ता और श्राद्ध-कर्ता के पितृजन के स्वरूप प्रतिबिम्बित होते हैं। व्यक्ति विशेष के लिए श्राद्ध-कर्म निरर्थक हो सकते हैं-ये श्रद्धा एवं सम्मान के प्रतीक हैं। कैदी पिता शाहजहाँ अपने पुत्र औरंगजेबक को यह सन्देश देता है- "धन्य हैं वे हिन्दू जो अपने मृतक माता-पिता को भी खीर और हल्वा-पूड़ी से तृप्त करते हैं और तू अपने जिन्दे बाप को भी एक पानी की मटकी तक नहीं दे सकता। तुझसे तो वे हिन्दू अच्छे, जो मृतक माता-पिता की भी सेवा कर लेते हैं।"

आइये, चर्चा करें श्राद्ध प्रकरण की। चर्चा तो हमारे सभी शास्त्रों वेद, पुराण, उपनिषद, स्मृति में हुई है और श्राद्ध-कर्म परम्परा से होता आ रहा है। शास्त्र या बड़े लोग उसे ठीक बतलाते हैं तो उसका आचरण भी आवश्यक हो जाता है, त्याग नहीं करना चाहिए। श्राद्ध विषय को सरल रूप में समझने के लिए इतना ही मानना पर्याप्त है कि मृत्यु के बाद जीव स्थूल-शरीर को छोड़कर सूक्ष्म शरीर में रहता है और पुनर्जन्म लेता है। एक जीव अपने कर्म एवं प्रारब्ध के अनुसार दूसरे जीवों से सम्बन्ध स्थापित करता है- कोई माता, कोई पिता, कोई भईया बहिन, कोई स्त्री, कोई पुत्र, कोई मित्र, ऐसे सैकड़ों सम्बन्ध बनते हैं। मरने के बाद दूसरे जन्म में, जिनका पुत्र बनना है, सम्भव है, उन माता-पिता बनने वाले जीव का उपयुक्त शरीर में जन्म ही न हुआ हो, तब तक वह जीव उनकी प्रतीक्षा करता रहता है। उस स्थान को प्रतीक्षालोक न कहकर शास्त्र की भाषा में उसे पितृ-लोक कहते हैं और उस लोक के नियन्ता, व्यवस्थापक का नाम 'अर्यमा' है। यह आवश्यक नहीं है कि सभी जीव पितृलोक में प्रतीक्षा करते हों। जन्म लेने की उपयुक्त परिस्थिति विद्यमान हैं तो वह जीव तत्काल जन्म ले सकता है, उपयुक्त परिस्थिति विद्यमान नहीं है तो उसे प्रतीक्षा करनी ही है। प्रतीक्षा की कोई अवधि निश्चित नहीं है।

जीवित अवस्था में दो प्रकार की भूख लगती है- पहली, "दैहिक भूख", जो खाद्य पदार्थ खाने से मिटती है, और दूसरी, मन की भूख, जिसका सम्बन्ध स्थूल शरीर से नहीं, मन से होता है, इसे "तृष्णा" कहते हैं। पेट भरा रहता है, मन नहीं मरता, कुछ और चाहता है। मरने के बाद, जीव के पास स्थूल शरीर नहीं है, सूक्ष्म-शरीर है, उसे दैहिक-भूख नहीं लगती, उसे मन की भूख लगती है। उसके मन में, 'मन की भूख मिटने की भावना बनती है। उसकी तृप्ति हो जाय, इसके लिए उके मन में भावना बननी चाहिए कि मैंने अमुक पदार्थ भोगा मैं पा गया। इसके लिए, पितृ-लोकस्य जीव का एक सच्चा-प्रतिनिधि इस लोक में ब्राह्मण को बनाया जाता है- उसके भोजन को वह अपना भोजन मान सके और उसके मन की भूख मिट जाये, वह तृप्त हो जाए। यह अनुभव की तृप्ति का हेतु है, उसकी तृप्ति की व्यवस्था का नाम ही श्राद्ध है।

इस श्राद्ध-व्यवस्था से पितरों (जिनका श्राद्ध किया जाता है) को पितृलोक में मन की भूख को तृप्ति मिलती है। अगर वह पितृ-लोक में नहीं है, जिस योनि में है, वहीं उसको तृप्ति मिल जायेगी। अगर वे पितृ कहीं नहीं हैं (पितृ-लोक में नहीं हैं और

किसी योनि में नहीं है), मुक्त हो गए हैं तो वह तृप्ति स्वयं श्रद्धा-कर्त्ता को होगी और उसे सदैव अति आनन्द व सुख बना रहेगा। जीव ने पुनर्जन्म ले लिया या मुक्त हो गया, कहा नहीं जा सकता-इस अनिश्चितता की स्थिति में सभी के श्राद्ध का विधान बना लिया है। श्राद्ध-पक्ष में, पितृ-लोक से पितृजन वायु रूप में ब्राह्मण के साथ भोजन करते हैं। प्राचीन कथाएँ प्रचलित हैं-

१. भीष्म पितामह जब अपने पिता का श्राद्ध कर रहे थे तो गंगा जी से पिता जी का हाथ बाहर आया।

२. देवी सीता ने पुष्कस्तीर्थ में अपने ससुर आदि तीन पितृों को श्राद्ध में निमन्त्रित ब्राह्मणों के शरीर में प्रविष्ट हुआ देखा था।

३. महाराष्ट्र में सन्त ज्ञानेश्वर जी ने उनके पिता के श्राद्ध पर ब्राह्मणों के भोजन करने से अस्वीकार कर देने पर, अपने योग-बल से उन्हीं ब्राह्मणों के दिवंगत पितृों को आमन्त्रित करके प्रत्यक्ष भोजन कराया।

४. उत्त प्रकार की कथा श्री एकनाथ जी महाराज के लिए भी प्रसिद्ध है।

गरूड़-पुराण (१०।४-७) में भगवान श्रीकृष्ण ने गरूड़ जी से कहा है कि जीव का किसी योनि में पुनर्जन्म हो जाता है तो श्राद्ध से तृप्ति उनके आहारानुसार मिलता है-जैसे देव योनि को श्राद्धान्न अमृत होकर उसे प्राप्त होता है, गन्धर्व-योनि में श्राद्धन्न भोगरूप से और पशु-योनियों में तृणरूप में, वही अन्न नागयोनि में वायु रूप से, पक्षी की योनि में फलस्वरूप से और राक्षसयोनि के लिए माँस, प्रेत के लिए रक्त, मनुष्य के लिए अन्नपानादि तथा बाल्यावस्था में भोग रस हो जाता है।

हमारे शास्त्रों में यह चर्चा की गई है कि श्राद्ध-कर्म से वंचित पितृजन पितृलोक छोड़कर प्रेत बनकर प्रेत-लोक में चले जाते हैं और अपनी सद् गति के लिए अपनी अतिसमझदार सन्तान को नहीं कहकर अन्य धार्मिक व्यक्तियों को प्रेरित करते हैं कि वे उनके उद्धार के लिए श्राद्ध करें। ऐसे अनेक दृष्टान्त सुनने को मिलते हैं कि दूसरे लोगों ने प्रेत का श्राद्ध किया और उसे सद्गति प्राप्त हुई। गीताप्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित ''कल्याण'' के आदि सम्पादक नित्यलीलालीन भाई जी श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार ने अपने एक लेख में वर्णन किया है कि बम्बई की समुद्रतटीय चौपाटी पर उनसे एक बार सफेदपोश में एक पारसी प्रेतात्मा ने उनके पास बैंच पर बैठ कर यह प्रार्थना की थी- ''हमारे धर्म में श्राद्ध को नहीं मानते, परन्तु मेरी जीवात्मा प्रेत के रूप में भटक रही है। आप कृपा करके मेरे उद्धार के लिए कुछ करें।'' श्रीपोद्दार जी ने उस प्रेतात्मा के लिए श्राद्ध किया और उसे सद्गति प्राप्त हुई।

भारतीय ज्योतिष में वर्णन है कि पितृदोष से मांगलिक कार्य नहीं हो पाते, अनेक अकस्मात् बाधाएँ उत्पन्न होती हैं, सन्तान नहीं होती होती है तो विकलांग होती है, आर्थिकस्थिति कमजोर रहती है। पितृ-दोष निवारण के लिए श्राद्ध-पक्ष में, विशेषतः अमावस्या के दिन श्रद्धापूर्वक श्राद्ध करें, जिससे पितृजन प्रसन्न होवें। खर्चीला श्राद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। अपने दोनों हाथ से कुशा उठाकर दक्षिणामुखी होकर आकाश की ओर उनका धयान करते हुए आर्तभाव से पुकारना, जलांजलि देना ही पर्याप्त है, यह श्राद्ध है। ऐसे श्राद्धकर्ता के लिए गरूड़ पुराण में याज्ञवल्क्यजी ने ऋषियों से कहा है कि वह श्राद्धकर्म करके पुत्र सर्वजन श्रेष्ठता, सौभाग्य, समृद्धि, प्रभुरवता, मांगलिक दक्षता, अभीष्ट कामना-पूर्ति, वाणिज्य में लाभ, निरोगता, यश, शोकाराहित्य, परमगति, धन, विद्या,

वाक्-सिद्धि, पात्र, गौ, अज, आविक (भेंड), अश्व और दीर्घायु प्राप्त कर अन्तकाल में मोक्षलाभ प्राप्त करता है।

धूमधाम से श्राद्धकर्म करना महत्त्वपूर्ण नहीं और भयभीत होकर कृत्रिम श्रद्धा से श्राद्ध का प्रदर्शन करना भी महत्त्वपूर्ण नहीं है, अगर उसने माता पिता, पितामह, गुरुजनों आदि की जीवित अवस्था में सेवा नहीं की है, सम्मान और सद् व्यवहार नहीं रखा है, उन्हें सदैव दुखी रखा है, भूखा-प्यासा रखा है और उनके साथ गाली-गलौच मारपीट तक की है। किसी भी श्राद्ध-क्रिया से उनके पितृ-दोष निवृत्त नहीं हो सकता। जीवित अवस्था में जो उनसे तृप्त नहीं हुआ, वह पितृलोक में कैसे तृप्त होगा? उनका श्राद्ध करना निरर्थक है, उन्हें अपने कर्मों का अशुभ फल भोगने ही है।

इसी जन्म के कर्मो से प्रारब्ध बनता है, इससे कर्म भोग की बात बनती है। शाश्वत सत्य तो यह है जिन्हें अपने माता पिता प्राणतुल्य प्रिय रहे हैं, जीवित अवस्था में उनकी की गई सेवा ही उनके प्रति स्थायी सार्थक श्राद्ध है, उससे ही चारों पदार्थों-अर्थ, धर्म, काम व मोक्ष की प्राप्ति होती है। भगवान श्रीराम की वाणी है-

**चारि पदारथ कर तल ताकें।**
**प्रिय पितुमातु प्रान सम जाकें।।**

रामचरितमानस-अयोध्याकांड-४६(२)

❑❑❑

## हमारी आराध्य देवी

# आद्याशक्ति महामाया

❑ **जगदीशप्रसाद शर्मा शास्त्री**

ब्रह्मा जी अपने प्रिय पुत्र नारद को समझाते हुए बोले- आद्याशक्ति महामाया भगवती ही सम्पूर्ण संसार की आदि कारण हैं। वही संसार की उत्पत्ति करती हैं, वही संसार का पालन करती हैं और वही प्रलयकाल में संसार को अपने में समेट लेती हैं। वे ही सबकी आदि जननी हैं। वे मूलप्रकृति हैं। उनका कभी नाश नहीं होता। वे देवी परब्रह्म की इच्छा हैं। वे नित्य हैं और उनका विग्रह भी नित्य है। महाविद्या, महामाया, विश्वेश्वरी, वेदगर्भा और शिवा उनके नाम हैं। वही भुवनेश्वरी हैं। उनके चरण कमल के समान कोमल हैं।

परम रहस्य की बात यह है कि भगवती भुवनेश्वरी के चरण नख में ही यह जड़-जंगममय संपूर्ण ब्रह्मांड समाया है। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, वायु, अग्नि, सूर्य, यमराज, चंद्रमा, वरुण, कुबेर, इन्द्र, पर्वत, समुद्र, नदियां, गन्धर्व, अप्सरायें, नारद, वसुगण, बैकुंठलोक, ब्रह्मलोक तथा शिवलोक सबक सब भगवती के चरण नख में स्थित हैं। स्वयं भगवान विष्णु आद्याशक्ति भगवती की स्तुति करते हुए कहते हैं- हे भगवती भुवनेश्वरी! यह सम्पूर्ण संसार तुम्हारे भीतर विराजमान है। नाटक दिखलाने वाले नट की भांति तुम्हीं इस जगत की सृष्टि, पालन और संहार करती हो। तुम्हारी ही माया इस जगत को सजाती है। तुम मनोरंजन के लिए लीला कर रही हो। तुम्हारे तेज से सारा संसार उत्पन्न हुआ है। देवि, प्रलयकाल के समय तुम संसार का भक्षण कर लेती हो। तुम्हारे तेज से संपन्न होने पर ही सूर्य जगत को प्रकाशित करता है। तुम ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव को उत्पन्न करती हो और तुम ही शक्ति प्रदान करती हो। तुम्हारी कृपा से हम तीनों (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) जगत का कार्य संपादन करते हैं।

# मधुरोपासक श्रीमोदलता की भावसाधना

❑ डॉ० कृष्णचन्द्र 'मयङ्क'

मिथिला संत शिरोमणि श्रीमोदलता जी मधुररस तथा मधुरोपासना के अप्रतिम उद्‌गाता के रूप में विश्रुत हैं, जिन्होंने श्रीसीताराम विवाह-पदावली की रचना के द्वारा अपनी कुशाग्रीय शेमुषी को प्रथित किया है। श्रुति प्रोक्त 'मधुविद्या' में मैथिल याज्ञवल्क्य भी घिषणा की धन्यता प्रकट हुई है।

उन्होंने अपनी भार्या मैत्रेयी के प्रति मधुविद्या उपदिष्अ करते हुए कहा कि सूर्य, चन्द्र, आय, पृथ्वी आदि अखिल प्राणियों के लिए मधु हैं तथा समस्त प्राणी सूर्यादि हेतु मधु हैं। अन्ततः याज्ञवल्क्य ने आत्मा (अततेवी, आप्तेवी) को ही संपूर्ण प्राणियों के लिए मधु कहा-

'अयमात्मा सर्वेषां भूतानां महवस्त्रै'

वस्तुतः सूर्यमण्डलस्थमधु को आयत्र करना ही साधना का चरमोत्कर्ष है। सविताराधकों के द्वारा इसी मधु का आनयन होता है। ऋग्वेद की 'मधोर्धाराभिरोजसा' ''इन्द्रात्र सिच्यते मधु'' जिन्वन्कोशं मधुश्चुतम् 'मधु जिह्वा सुपाचय' 'विष्णोः पदे परमं मह व उत्सः' आदि उक्तियाँ मधुविद्या को ही प्रथित करनी हैं।

भक्ति के पञ्चरसों-शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा मधुर में इस मधुररस की श्रेष्ठता ही कथित होती है। इस रस में तन्मयासक्ति, कान्तासक्ति, अनन्यासक्ति, परमविरहासक्ति आदि का प्राकट्य होता भी चिन्मय जगत् में भगवान् को ही एकमात्र भोक्ता कहा गया है। शेष सभी प्रकृति रूपेण भगवान् की भोग्या हैं। अखिल जीवों की काया प्रकृति विनिर्मित होने के कारण, यह आवश्यक हो जाता है कि परमा प्रकृति की सन्निधि के द्वारा क्षराअरातीत-पुरुषोत्तम की कृपा प्राप्त की जाय। इसीलिए श्रुति ने 'सख सखिभ्यः ईड्यः' का उद्‌घोष किया है।द्ध

श्रीमोदलता ने प्रीति की पराकाष्ठा महाभाव को मिथिला लीला के परिप्रेक्ष्य में प्रथित किया है। प्रेम की स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग भाव तथा महाभाव से अष्ट अन्तर्दशाएँ हैं। इस महाभाव के उभय भेद-रूढ़ तथा अधिरूढ़ कथित हैं। पुनः अधिरूढ़ को भेद मादन तथा उन्मादन हैं। मादन (मोदन) स्थिति सखी-यूथ में संभव है। श्रीकिशोरों उन्मादन की अधिष्ठात्री हैं। उनकी काया की पीतिमा तथा उगवलना का संचार जब श्रीराम भी श्यामल काया पर हुआ, तब हरि में हरित्व का आगमन हो गया। यह किशोरी की कृपा का ही परिणाम है। श्रीमोदलता जी ने लिखा है-

''देखिअनु देखिअनु ये बहिना।
हरिओ हरिअर मेला होइते वैदेही दहिना।''

श्रीमोदलता जी ने सीताराम विवाह विषयक पदों की रचना की ब्रह्मा तथा जीव की सम्बन्ध-स्थापना के भाव को दृढ़ किया है। 'गुहा प्रविष्टाप्मानौ हि तद्दर्शनात्'- इस ब्रह्मसूत्र के अनुसार आत्मा-परमात्मा का निवास तो हृदय में है, फिर भी उसकी व्यापक अनुभूति नहीं होती है। 'आत्मास्त्र जन्तोर्निहितं ग्रहायाम्'- यह श्रुति भी इसे सिद्ध करती है। वस्तुतः सम्बन्ध स्थापना के पश्चात् ही, ब्रह्मा का प्राकट्य संभव है। मिथिलावासियों ने दुहलासरकार को राग समर्पित की, परम धन्यता को प्राप्त किया।

ब्रह्म की तीन शक्तियाँ संवित्, संधिनी तथा आह्लादिनी कथित हैं। ज्ञानात्मिका तथा सत्तात्मिका शक्ति के लिए आह्लादात्मिका शक्ति है भी है, जिनकी कृपा से ही भक्त्यानाद प्राप्त होता भी श्रीसीता, भगवान राम की आह्लादिनी शक्ति हैं। ये अपने कर्मों से प्रभु को वशीभूत करती हैं। "सिनोति वशं करोति स्वकर्मण: भगवातम् सा सीता।" महाभाव दशा में श्रीकिशोरी प्रियतममयी हो गाती हैं। श्रीमोदलता जी का कथन है–

**"प्रियतम प्यारी अहाँका अनन्या।**
**रोम-रोम रँग श्याम में रँगलनि,**
**त्यागि सकल रंग अन्या।**
**'मोद' प्रमपथ में श्री मैथिलि अहाँ से सौगुन धन्या।"**

श्रीमोदलता ने काञ्चन वन तथा कमलातट के कुंजों, निकुंजों तथा निमृतनिकुंजों के रस–रहस्य को पल्लवित कर भाव जगत् में अप्रतिम सुषमा की स्थापना की है, जो रसिक संवेद्य है। कुंज में प्रिया–प्रियतम की उपस्थिति के साथ सखियों का निर्वाद्य प्रवेश होता है। निकुँज में मात्र प्रिया–प्रियतम ही रहते हैं। मंजरियाँ (अल्यवयस्काएँ) द्वय रक्षिका होती हैं। सखियाँ लता–रन्ध्र से युगलछवि का अवलोकन करती हैं। निमृत निकुँज में प्रियतमा प्रियतम की काया में समाहित हो जाती हैं वा प्रियतमा, प्रिया की काया में अन्तर्लीन हो जाते हैं। श्रीमोदलता ने युगलछवि के आलम्बनत्व में अपनी वाणी–सरस्वती की सुषमा को प्रथित करने का महत्त्वपूर्ण प्रयास किया है–

**"दमकै छनि केहन अति दिव्य दमक,**
**सखि, देखिअन-देखिअन-देखिअन ये।**
**शत कोटि ससिहिं सौं रन्य रमक,**
**सखि, देखिअनु देखिअनु देखिअनु ये।।"**

भावजगत् में मिथिला लीला को ही 'रामायण' की संज्ञा प्रदान की गई है। श्रीराम ने मिथिला का कभी त्याग ही नहीं किया। वनगमन तथा रावणवधादि लीलाएँ तो विष्णु, लक्ष्मी तथा शेष के द्वारा सम्पन्न हुईं। मिथिला लीला पूर्णलीला हैं, क्योंकि इसमें रामायण के सभी पात्रों की विद्यमानता है। श्रीमोदलता जी की रचनाधार्मिक, उपर्युक्त कथन के आलोक में प्रतिफलित हुई है, जिसमें मधुररस की अभिव्यक्ति के साथ–साथ, रसोचित रीति, गुण, वृत्ति, बिम्बादि का विनियोग चित्राकर्षण है।

मिथिला–भाव के अप्रतिम व्याख्याता के रूप में श्रीमोदलता जी की कीर्ति दिशाओं में विसृत्व होती गयी है। मैथिली तथा ब्रजी इन उभय भाषाओं पर समानगति से अधिकार रखने वाले मोदलता की कारयित्री प्रतिमा की महती प्रशंसा की जाती है। मैथिली साहित्य के इतिहासकारों ने भी इनकी साधना पर ध्यान नहीं दिय है, यह चिन्ता का विषय है इन्होंने सीताराम विवाह के द्वारा जीव तथा ब्रह्म की सम्बन्ध–शाश्वतता का दिव्य उद्घोष किया तथा रसिक शिरोमणि के रूप में सम्पूर्ण भक्त–जगत में महती प्रतिष्ठा प्राप्त की।

सम्प्रति, मोदलता जी की काव्यसाधना पर, मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा से शोध कार्य भी सम्पन्न हुआ है इनकी इस साधना पर विद्वानों के विविध आलेख भी प्रकाशित हुए हैं तथा साहित्य अकादमी के द्वारा इनके जीवनवृत्त के प्रकाशन पर भी विचार किया जा रहा है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि श्रमोदलता ने सीताराम विषयिणी मधुर भक्ति तथा मधुरोपासना को वाणी प्रदान कर महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

❑❑❑

# मूल्यों के संकट की महामारी

## मूल मानवीय संस्कारों के खत्म होते जाने को स्वाइन फ्लू जैसी बिमारियों का कारण मान रहे हैं

❑ श्री तरुण विजय

नदियों को सुखाकर जहां आवासीय कालोनियां बनें, पशुओं को अकथनीय ढंग से तड़पा-तड़पा कर उनकी खाल से बने कोट 'संभ्रांत और कुलीन' लोग पहनें, खेती की जमीन पर सिनेमाहाल और मल्टीप्लेक्स खोले जाएं तथा रासायनिक खाद से 'जल्दी और ज्यादा' फसल उगाही के लाभ में जमीन को जहरीला बनाया जाए वहां स्वाइन फ्लू तथा एड्स जैसे रोग नहीं फैलेंगे तो क्या अमृत वर्षा होगी? जिन रोगों से आज पृथ्वी आक्रांत है और अरबों डालर खर्च करने के बाद भी जिनसे निजात पाना संभव नहीं हो रहा है वे सब मनुष्य की अप्राकृतिक वासनाओं और जुगुप्साजनक सीमा पर पहुंची भोगलिप्साओं का स्वाभाविक परिणाम है। वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशालाओं में इनके समाधान खोजेंगे, पर प्रकृति पर विजय पाने की पश्चिमी मानसिकता ने पृथ्वी को आहत किया है। पहले उन्होंने दूसरी आस्था और समाज को बर्बरता से कुचला। कोलंबस की खोज के बाद चार करोड़ रेड इंडियन तो अमेरिका में स्पर्णभक्षी, ईसाइयत के आक्रामक प्रचारकों द्वारा किए गए संहारों में मार डाले गए। फिर सामी पंथों के जिहाद प्राय: छह करोड़ जाने लील गए। सामी पंथो की ही भांति तीसरा पंथ कम्युनिज्म उभरा, जिसके पुरोधाओं स्टालिन, माओत्से तुंग और पोलपोट के शासन में अनुमानत: १२ करोड़ लोग बर्बरताओं के शिकार हुए और मारे गए। परमाणु बम जैसे जनसंहारक शस्त्र भी पश्चिम ने दिए। इन भोगवादी लिप्साओं के कारण पृथ्वी के प्राकृतिक वनों का घोर विनाश हुआ तथा मौसम में बदलाव आ गया। ग्लोबल वार्मिंग, कार्बन फुटप्रिंट आदि अंधाधुंध पश्चिमी औद्योगिकीकरण और प्राकृतिक नियमों के विपरीत जाकर अप्राकृतिक विश्व रचाने के परिणाम है। यह वह मानसिकता है जो पुरुष की पुरुष से शादी को स्वीकार्य, उचित व न्यायसंगत मानकर प्रकृति के निमयों का उपहास उड़ाती है, जो परिवार संस्था के पक्ष में दिए सब तर्क स्वच्छंद भोग की आधुनिक शैली में दफन करती है, जो स्त्री के मातृत्व को कारावास तथा डिस्को में बीयर पीकर गिर जाने को स्वातंत्र्य चेतना का प्रतीक मानती है, जो स्त्री की स्त्री से शादी और 'वन नाइट स्टैंड' को पेज थ्री की ग्लैमरस खबर बनाती है, जो पशु-पक्षियों को निर्दयता से मारकर उनके मांस भक्षण को 'नवीन युग' का प्रतीक मानती है।

फिर स्वाइन फ्लू, एड्स, बर्ड फ्लू और मैड काऊ रोग क्यों नहीं हों? एक साल में सत्तर हजार किसानों ने भारत में आत्महत्या की। ये सत्तर हजार किसान कितनी जमीन में खेती करते थे? कितना अन्न उगाते थे? किसी ने जानने की कोशिश नहीं की। सत्तर हजार अन्नदाता भूस्वामियों की आत्महत्या ने

देश का दिल नहीं दुखाया। आज व्यक्ति का मूल्यांकन धन कमाने की कला में प्रवीणता से माना जाता है, विधि–विधान के औचित्य–अनौचित्य का कोई महत्व नहीं है। अरुणाचल के जंगलों से प्लाइवुड़ बन गई, वरुणा और असि पर मकान बन गए, भारतपुझा नदी से लेकर यमुना तक गंदा नाला बन गई है या सूख रही है, माता–पिता के लिए अनाथालय खोलने वाले करोड़पति बेटे हैं तो डल झील के सिकुड़ते जाने से लापरवाह जिदाही सिर्फ साम्प्रदायिक नफरत के लिए मनुष्यों का रक्त बहा रहे हैं, तो बचेगा क्या? स्वाइन फ्लू का अर्थ है सुअर के संक्रमण से पैदा हुआ बुखार। सुअर को मारने के अजब तरीके अपनाए जाते हैं। पहले उनके नथुने काटे जाते हैं, वह तड़पता है, फिर उस पर नमक डालते हैं, वह फिर तड़पता है, इससे उसका मांस इकट्ठा होता है, फिर उसे सरियों से पीटते हैं, इससे उसका मांस नरम होता है। इससे भी ज्यादा बर्बरतापूर्वक गाय को मारा जाता है। ऐसे में स्वाइन फ्लू क्यों न हो?

हम वह बन जाना चाहते हैं जिसे पश्चिमी समाज अब त्याग रहा है। हम परिवार तोड़ रहे हैं, वे परिवार बचाने के तरीके ढूँढ रहे हैं। हम अपने बच्चों को न्यूक्लियर फैमिली यानी दादा–दादी, नाना–नानी रहित परिवार बसाने के फैशन से जोड़ रहे हैं तो वे फैमिली ट्री यानी अपने पुरखों की वंशावली ढूंढने में हजारों डालर खर्च करते हैं। हम गे–शादियों को कानूनी जामा पहनाकर खुद को आधुनिक समझते हैं। बच्चों की परवरिश ठीक से संस्कारित कैसे हो, इसके उपाय ढूंढने भारत आते हैं। हमारे शासक और विपक्षी दल सत्ता, वैभव और व्यक्तिगत गुटबाजी को देश सेवा मान बैठे हैं। किसी भी पार्टी में संस्कारित राष्ट्रीय जीवन बचाने के संदर्भ में चर्चा और चिंतन करने का वक्त नहीं है। हमने कभी यह नहीं सुना कि कोई राजनीतिक दल देश की स्वास्थ्य सेवाओं सम्बन्धी नीति पर राष्ट्रीय संगोष्ठी कर रहा है। सीमावर्ती जिलों तथा संवेदनशील क्षेत्रों में, जहां आतंकवाद व्याप्त है, बच्चों की शिक्षा में क्या विशेष अवयव जोड़े जा रहे हैं? क्या मणिपुर में विद्यालयों में राष्ट्रगीत पर पाबंदी और हिंदी फिल्मों की जगह कोरिया की फिल्में दिखाने से दिल्ली में बैठे किसी पक्ष–विपक्ष के नेता को दर्द होता है? लेह से तवांग तक की हिमालयी पट्टी में बच्चों का स्वास्थ्य और मानस कैसा बन रहा है, इस पर कभी संसद में चर्चा हुई? चर्चा होती है नेताओं की सुरक्षा घटाने, रोकने के बारे में।

हम मूल मानवीय संस्कारों को खत्म कर अच्छे परिणाम की आशा कैसे कर सकते हैं? इस परिदृश्य में मंगल विकास की अवधारणा सर्वाधिक उपयोगी और ग्राह्य प्रतीत होती है। प्रख्यात अर्थशास्त्री बजरंग लाल गुप्ता इन दिनों मंगल विकास की अवधारणा के कारण काफी चर्चित हैं। इस अवधारणा के मूल में मनुष्य और उसका आह्लाद है। उनका कहना है कि धन और संपदा अनिवार्यतः प्रसन्नता नहीं देते। यदि मनुष्य समाज को प्रसन्न तथा सर्वत्र सबके सुख के लिए माध्यम बनना है तो उसे प्रकृति संरक्षण के लिए सिद्ध होकर मानवीय मूल्यों की रक्षा का दायित्व निभाना होगा। जब हम इस धर्म से च्युत होते हैं तभी स्वाइन फ्लू, एड्स जैसे संकट आते हैं।

❑❑❑

# सतसङ्ग ( एक विद्यार्थी )

परमात्मा का नाम 'सत्' है ओर उसी के साथ नित्य सङ्ग करना– सत्सङ्ग कहलाता है; परन्तु हम जैसे अस्थिर वृत्ति के मनुष्यों के सन्मुख परमात्मा का प्रत्यक्ष होना कठिन है, अथवा यों कहना चाहिए कि जब तक हममे अनन्य प्रेम, भक्ति द्वारा परमात्मा को प्रसन्न कर प्रगट करने की शक्ति न आ जाय, तब तक हम उस ('सत') का सङ्ग करने में असमर्थ ही है।

इस वास्तविक सत्सङ्ग (ईश्वरीय सङ्ग) की प्राप्त करने के लिए अनेक साधन हैं, परन्तु उन सब साधनों में एक सर्वोत्तम है, जिसका नाम भी 'सत्सङ्ग' ही है। इस 'सत्सङ्ग' का अर्थ है– 'सत्पुरुषों के साथ सङ्ग करना। सत्पुरुष उन्हें कहते हैं जो परमात्मा के नित्य, शुद्ध, मुक्त, वास्तविक स्वरूप रूपी रसामृत का पान कर चुके हैं, अथवा जो 'सत्' का सङ्ग करते हैं या जो (संत) परमात्मा की प्राप्ति के हेतु अपने समस्त कुटुम्बियों का तथा सांसारिक धन–सम्पत्ति आदि समस्त मायावी वस्तुओं का परित्याग करके निरन्तर उसी 'सत्' का 'सङ्ग' करते हैं, जो इस अखिल ब्रह्माण्ड को एक ब्रह्ममय समझते हैं, जो अंजलिगत पुष्पों की भांति दुष्टों तथा सज्जनों को समानदृष्टि से देखते हैं, जिनके मुखमंडल पर दैविक तेज की झलक टपकती है, जिनकी सुमधुर, वेदपूर्ण, पूतवाणी में विद्युत् का–सा प्रभाव होता है।

ऐसे वीतराग, महात्माओं का 'सङ्ग' ही प्रथम दुर्लभ है, सौभाग्यवश यदि कहीं प्राप्त भी हो जाय तो उनको पहचानना भी सरल नहीं। फिर भी बिना पहचाने साधु–सङ्ग निष्फल नहीं जाता। 'सत्सङ्ग' की प्राप्ति महत्पुण्यों से होती है, अल्पकाल तक भी सत्पुरुषों का सङ्ग अत्यन्त प्रभावशाली होता है। इसे भी भगवान् ने नारद के प्रति कहा है–

हे नारद! 'अल्पकाल की हुई सत्पुरुषों की सेवा के प्रभाव से मुझमें तेरी दृढ़ भक्ति हो गई है, अतः अब इस निन्दित दासी पुत्र शरीर को छोड़कर मेरे पार्षदशरीर को प्रााप्त होओगे। अल्प सत्संग भी भवसागर से पार उतरने के लिए पर्याप्त है, इसी कारण स्वर्गादिक से भी वह श्रेष्ठ है। जैसा कि कहा है–

**सत्सेवयाऽदीर्घयाऽपि जाता मयि दृढ़ा मतिः।**
**हित्वाऽवद्यमिमं लोकं गन्ता मज्जनतामसि।।**

सत्संग के ही प्रभाव से सबको बुद्धि, कीर्ति, भक्ति आदि पदार्थ मिलते हैं। यथाः–

**'जलचर, थलचर, नभचर नाना,**
**जे जड़ चेतन जीव जहाना।**
**मति कीरति गति भूति भलाई,**
**जब 'जेहि' जतन जहां जेहि पाई।।**

बिना सत्संग के ज्ञान नहीं होता, और सत्सङ्गति राम की कृपा के बिना अप्राप्य ही है। साधुओं की संगति आनन्द–मंगल की मूल है, सब साधन दान, जप, तप यज्ञ, दान आदि फूलों का सिद्ध फल है। अथवा सत्सङ्गति आनन्द रूपी वृक्ष की मूल है यथा–

**'बिनु सत्सङ्ग विवेक न होई,**
**राम-कृपा बिनु सुलभ न सोई।**
**सत्सङ्गति मुद मङ्गल मूला,**
**सोइ सफल सिधि साधन फूला।।'**

यह सत्सङ्ग पतित अधम जीवों को भी उच्च शिखर पर पहुँचा देता है तथा शठों को भी सुधार देता है। यथा–

**अहो वयं जन्मभृतोऽद्यहास्य,**
**वृद्धा नु वृत्त्यापि विलोमजाता।**
**दौष्कुल्यमाधिं विधुनोति शीघ्रं,**
**महत्तमानामभिधानयोगः।।'**

श्री सनत्कुमार सत्सङ्ग की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि–

**''सङ्गमः खलु साधूनामुभयेषाञ्च सम्मतः।**
**यत्भाषणे च सम्प्रश्नः सर्वेषां वितनोति शम्।।''**

अर्थात् सत्पुरुषों का सङ्ग वक्ता तथा श्रोता को समान ही सुखदाई है, जिनका परस्पर वार्तालाप संप्रश्न सभी मनुष्यों का कल्याण करता है। ऐसा भगवद्भक्त-सङ्ग करने ही योग्य है। श्री रहूगण सत्सङ्ग–महिमा दिखलाते हैं कि–

**'न ह्यद्भुतं त्वच्चरणाब्जरेणुभि-**
**र्हतांसो भक्तिरधोक्षजेऽमला।**
**मौहूर्त्तिकाद्यस्य समागमाच्च मे,**
**दुस्तर्कमूलोऽद्य हतोऽविवेकः।।'**

सर्वदा आपके श्रीचरणों की रज के धारण करने से जिनके पाप नष्ट हो गए हैं, उन्हें भगवान् की निर्मल भक्ति प्राप्त हो जाती है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है, क्योंकि आपके दो घड़ीभर के सत्सङ्ग से ही दुष्ट तर्कों से जिसकी जड़ मजबूत हो रही है, ऐसा अविवेक भी नष्ट हो गया।

श्रीजड़भरत कहते हैं– 'हे रहूगण'! वह भगवान् तप, यज्ञ, अन्न–दान, गृहस्थधर्म, वेदाभ्यास, जल, अग्नि तथा सूर्य की उपासना से प्राप्त नहीं होता; किन्तु महापुरुषों की चरण–रज में स्नान करने से ही मिलता है।

अतः सत्पुरुषों का सङ्ग करना चाहिए, क्योंकि परमात्मा का साक्षात्कार करा देने में एकमात्र साधन सत्सङ्ग ही है। सत्संग की शरण लेने वाले भक्तों का भार उस 'सत्' अर्थात् परमात्मा पर ही पड़ जाता है। यदि खोजने पर भी कोई सत्पुरुष न मिले बल्कि, मद्यपी, कनफटे, असत्पुरुष ही भाग्यवश मिले तो उपनिषद् गीता, रामायणादि सद् ग्रन्थों का पठन–पाठन ही करना चाहिए–यह भी सत्सङ्ग है। किसी धम्र स्थान, देवालय में स्मरण करना तथा कथा वार्त श्रवण करना भी सत्सङ्ग ही है। इस प्रकार सब पुरुषों को एक होने से प्राणियों में सद्भावना बढ़ेगी और वहां धार्मिक कृत्य नित्य प्रति उत्सुकता तथा दृढ़ता के साथ होते रहेंगे, जिससे 'धर्म की जय, अधर्म का नाश निश्चय ही है। इस प्रकार प्रत्येक जगह 'सत्सङ्ग' का प्रचार होना चाहिए, जिससे धर्म का प्रचार होगा। एक साथ सब मनुष्य बैठकर एक स्वर होकर निःस्वार्थ भाव से यही पुकारे कि– विश्व का कल्याण हो, क्योंकि विश्वकल्याण से ही निजकल्याण सम्भव है। बस, इस प्रकार के सत्सङ्ग द्वारा जनता में धर्मप्रचार हो सकता है, सत्सङ्ग की प्रशंसा सभी ने की है, कवि कुलचूड़ामणि श्री गोस्वामी तुलसीदासजी भी सत्सङ्ग की प्रशंसा में यही लिखते हैं कि–

**'सात स्वर्ग अपबर्ग सुख,**
**धरिय तुला एक अंग।**
**तुले न ताहि सकल मिलि,**
**जो सुख लव सत्संग।।**

❑❑❑

# ध्यान का आधार है भजन

❑ प्रस्तुतिः- धर्मेन्द्र गोयल, पिलखुवा

अपने आत्मा के समान सब जगह सुख-दुःख को समान देखना तथा सब जगह आत्मा को परमेश्वर में एकीभाव से प्रत्यक्ष की भांति देखना बहुत ऊँचा ज्ञान है।

चिन्तनमात्र का अभाव करते-करते अभाव करने वाली वृत्ति भी शान्त हो जाय, कोई भी स्फुरणा शेष न रहे तथा एक अर्थमात्र वस्तु ही शेष रह जाय, यह समाधि का लक्षण है।

भगवान् के प्रेम में ऐसी निमग्नता हो कि शरीर और संसार की सुधि ही न रहे, यह बहुत ऊँची भक्ति है।

नेति-नेति के अभ्यास से 'नेति-नेति' रूप निषेध करने वाले संस्कार का भी शान्त आत्मा में या परमात्मा में शान्त हो जाने के समान ध्यान की ऊँची स्थिति और क्या होगी?

परमेश्वर का हर समय स्मरण न करना और उसका गुणानुवाद सुनने के लिये समय न मिलना बहुत बड़े शोक का विषय है।

मनुष्य में दोष देखकर उससे घृणा या द्वेष नहीं करना चाहिये। घृणा और द्वेष करना हो तो मनुष्य के अंदर रहने वाले दोषरूपी विकारों से करना चाहिये। जैसे किसी मनुष्य को प्लेग हो जाने पर उसके घर वाले प्लेग के भय से उसके पास जाना नहीं चाहते, परंतु उसको प्लेग की बीमारी से बचाना अवश्य चाहते हैं, इसके लिये अपने को बचाते हुए यथासाध्य चेष्टा पूरी तरह से करते हैं, क्योंकि वह उनका प्यारा है। इसी प्रकार जिस मनुष्य में चोरी आदि दोषरूपी रोग हों, उसको अपना प्यारा बन्धु समझकर उसके साथ घृणा या द्वेष न कर उसके रोग से बचते हुए उसे रोगमुक्त करने की चेष्टा करनी चाहिये।

भगवान बड़े ही सुहृद और दयालु हैं, वे बिना ही कारण हित करने वाले और अपने प्रेमी को प्राणों के समान प्रिय समझने वाले हैं। जो मनुष्य इस तत्व को जान जाता है, उसको भगवान के दर्शन के बिना एक पल के लिए भी कल नहीं पड़ती। भगवान भी अपने भक्त के लिए सब कुछ छोड़ सकते हैं, पर उस प्रेमी भक्त को एक क्षण भी त्याग नहीं सकते।

मृत्यु को हर समय याद रखना और समस्त सांसारिक पदार्थों को तथा शरीर को क्षणभंगुर समझना चाहिए। साथ ही भगवान के नाम का जप और ध्यान का बहुत तेज अभ्यास करना चाहिए। जो ऐसा करता है वह परिणाम में परम आनन्द को प्राप्त होता है।

मनुष्य जन्म सिर्फ पेट भरने के लिए ही नहीं मिला है। कीट, पतंग, कुत्ते, सूअर और गधे भी पेट भरने की चेष्टा करते रहते हैं। यदि उन्हीं की भाँति जन्म बिताया तो मनुष्य जीवन व्यर्थ है। जिनका शरीर और संसार अर्थात क्षणभंगुर नाशवान जड़वर्ग में सत् का भाव नहीं है, वे ही जीवन्मुक्त हैं, उन्हीं का मनुष्य जन्म सफल है। जो समय भगवद्भजन के बिना जाता है, वह व्यर्थ जाता है। जो मनुष्य समय की कीमत समझता है, वह एक क्षण भी व्यर्थ नहीं खा सकता। भजन से अंतःकरण की शुद्धि होती है, तब शरीर और संसार में वासना और आसक्ति दूर होती है, इसके बाद संसार की सत्ता मिट जाती है। एक परमात्मा सत्ता ही रह जाती है।

संसार स्वप्नवत् है। मृगतृष्णा के जल के समान है, इस प्रकार समझकर उसमें आसक्ति के अभाव का नाम वैराग्य है। वैराग्य के बिना संसार से मन नहीं हटता और इससे मन हटे बिना उसका परमात्मा में लगना बहुत ही कठिन है, अतएव संसार की स्थिति

पर विचारकर इसके असली स्वरूप को समझना और वैराग्य को बढ़ाना चाहिये।

भगवान हर जगह है, परंतु अपनी माया से छिपे हुए है। बिना भजन के न तो कोई उसको जान सकता है और न विश्वास कर सकता है। भजन से हृदय के स्वच्छ होने पर ही भगवान की पहचान होती है। भगवान प्रत्यक्ष हैं, परंतु लोग उन्हें माया के पर्दे के कारण देख नहीं पाते।

शरीर से प्रेम हटाना चाहिये। एक दिन तो इस शरीर को छोड़ना ही पड़ेगा, फिर इसमें प्रेम करके मोह में पड़ना कोई बुद्धिमानी नहीं है। समय बीत रहा है, बीता हुआ समय फिर नहीं मिलता, इससे एक क्षण भी व्यर्थ न गंवाकर शरीर तथा शरीर के भोगों से प्रेम हटाकर परमेश्वर से प्रेम करना चाहिए।

जब निरन्तर, भजन होने लगेगा, तब आप ही निरन्तर ध्यान होगा। भजन ध्यान का आधार है। अतएव भजन को खूब बढ़ाना चाहिए। भजन के सिवा संसार में उद्धार का और कोई सरल उपाय नहीं है। भजन को बहुत ही कीमती चीज समझना चाहिए। जब तक मनुष्य भजन को बहुत दामी नहीं समझता, तब तक उससे निरन्तर भजन होना कठिन है। रूपये, भोग, शरीर और जो कुछ भी है, भगवान का भजन इन सभी से अत्यन्त उत्तम है। यह दृढ़ धारणा होने से ही निरन्तर भजन हो सकता है।

❑❑❑

# गोस्वामी तुलसीदास जी के जन्म दिवस के अवसर पर

❑ बिन्दु भारद्वाज

क्या हो मेरे तुम बाबा तुलसी कैसे मैं बतलाऊँगी
प्राणों के भी प्राण तुम चरणों में शीश नवाऊँगा
ना रचते तुम 'श्रीमानस' जो श्रीराम को कैसे जानती मैं
ना कहते जो श्री राम कथा श्री राम मैं ना अनुरागती मैं
दिव्य श्री मानस रचकर तुमने प्राणों पर उपकार किया
राम प्रेम की वरषा करके जीवन को आधार दिया
क्या हो ......................................................................
हृदय के नीरस मरूथल में अमृत बन के तुम बरसो हो
जन्मों की प्यास बुझाकर के मन ही मन में तुम हरषे हो
प्रति उपकार मै क्या कर पाऊँ प्रति पल तुमको निहारूँगी
श्रीराम के चरणों से भी पहले तुमको मैं शीश नवाऊँगी
चन्दन तरू है श्री राघव जो शीतल और मंद समीर हो तुम
आनन्द के घन है राम यदि तृषित प्राणों के नीर हो तुम
तुमरी कृपा से ओ मेरे बाबा राघव के गुण गाऊ मैं
पर दे दो मेरे भोले बाबा राम प्रेम पा जाऊँ मैं

# युधिष्ठिर की धर्मपरायणता

भगवान श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को सम्बोधित करते हुए कहा था– हे युधिष्ठिर! मैं तुम्हारे साथ इसलिए नहीं हूं कि तुम मेरी बुआ कुंती के पुत्र हो, मेरे रिश्तेदार हो बल्कि मैं तो तुम्हारे साथ इसलिए हूं क्योंकि तुम धर्म के साथ हो और धर्म तुम्हारे साथ है, सत्य और न्याय तुम्हारे साथ है। इस महत्वपूर्ण तथ्य से यह ज्ञात होता है कि जिसके अन्दर धर्म है उसके जीवन में भगवान हैं। धर्मराज युधिष्ठिर को केवल देवताओं ने ही धर्मराज कहा हो ऐसी बात नहीं है बल्कि उस समय के जनसमुदाय ने भी उनको धर्मराज की डिग्री दी थी। हमारे देश में ऋषि, मुनि और आचार्य को किसी विश्वविद्यालय के द्वारा डिग्री नहीं दी जाती थी ये मुनि हैं, ये ऋषि हैं, राजऋषि अथवा ब्रह्मऋषि हैं, बल्कि तपस्या से वे लोग इस स्थान पर पहुंचते थे। युधिष्ठिर को समाज ने धर्मराज कहकर पुकारा, कारण 'महाभारत' के युद्ध के समय में रात्रि में वेश बदलकर अपने और पराए घायल पड़े हुए व्यक्तियों की दशा को देखकर आंखों में आंसू भरने वाला व्यक्ति कोई और नहीं था, युधिष्ठिर ही था और सबके घाव पर मरहम–पट्टी लगाने का कार्य करने वाला भी युधिष्ठिर ही था।

जब युधिष्ठिर महाभारत का युद्ध जीत गये और उनको सिंहासन के ऊपर बैठाया गया, उनके सिर के उपर मुकुट सजाया गया। सिंहासन पर आरूढ़ होकर, जनसमुदाय उनके दर्शन करने के लिए आया। तो जो घायल सैनिक थे वे भी ठीक हो करके दर्शन करने के लिए आये और जो सैनिक विदेशी थे, मतलब दुश्मन सैनिक थे उपचार के बाद ठीक हुये तो उनको भी मौका दिया गया कि तुम भी दर्शन कर सकते हो। जब दर्शन करने के लिए खड़े हुए तो सब घायल सैनिक ने एक आवाज में कहा कि रात्रि में आकर के हमारे जख्मों पर दवा लगाने का काम कोई और व्यक्ति नहीं करता था यही व्यक्ति करता था जो आज राजगद्दी पर बैठा हुआ है। ये हमार हृदय का भी राजा है, हमारी प्रजा का और हमारे देश का भी राजा है। इसलिए इनका नाम केवल युधिष्ठिर नहीं होना चाहिए, धर्मराज युधिष्ठिर होना चाहिए।

जिसके जीवन में धर्म है उसके जीवन में भगवान है। इसलिए तो जब युधिष्ठिर युद्ध के लिए दोनों सेनाओं के सजने के बाद अपने रथ में आकर के बैठे तो उन्होंने सबसे पहले काम यही किया– अपने गुरुजनों को प्रणाम करने के लिए पहुँचे। सबसे पहले भीष्म पितामह के पास गये युधिष्ठिर ने पाव छुए, और कहा– दादा जी युद्ध शुरू होने वाला है, लड़ाई होगी, खून बहेगा और न जाने किस किसको वीरगति प्राप्त होगी। मैं आपके चरणों में केवल इसलिए आया हूँ, अब तक हमने आपके चरणों में बैठकर केवल आशीर्वाद ही पाया था, आज हम लोगों से कुछ गलतियां हो रही हैं। क्योंकि लड़ाई में गलतियां हो सकती हैं, हम पहले ही आपसे माफी मांगने के लिए आये हैं।

अपने हक के लिए लड़ना पड़ रहा है। धर्म के लिए लड़ना पड़ रहा है। दादाजी हमें माफ करना हम आपको प्रणाम करने के लिए आए हैं। भीष्म के मुंह से निकला हे युधिष्ठिर! तुम धर्म के पक्ष में हो, इसलिए मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि जहां धर्म होता है वहां

विजय जरूर होती है, तुम सफल हो जाओगे। भीष्म के मुंह से आशीर्वाद निकला, युधिष्ठिर द्रोणाचार्य की तरफ बढ़ गए।

लेकिन दुर्योधन को गुस्सा आया दौड़कर के आगे आया, बोला दादाजी! आप लड़ाई तो हमारे पक्ष में लड़ रहे हो। आशीर्वाद जीतने का उनको देते हो। भीष्म ने कहा–दुर्योधन! तूने एक ही कार्य में दक्षता प्राप्त की है, जिद्ध करना। अगर तेरा ही कोई पांव आकर के छुएगा तेरा हाथ उसके सिर पर जरूर पहुंच जाएगा। इसमें सोचने की जरूरत नहीं पड़ती। यहां तो दिल का ही सौदा है, अन्दर से भावना उठती है और हाथ सिर पर पहुंच जाता है। हाथ जब सिर पर पहुंच जाता है तो उसके कल्याण की कामना ही करनी होती है। मैं भी क्या करूं साच तो नहीं पा रहा हूँ। हृदय में बैठा हुआ भगवान जो कुछ बुलवा रहा है, वही मैं बोल रहा हूँ। क्योंकि जब कोई झुकने के लिए आता है तो आशीर्वाद अपने आप निकलता रहता है। इस युधिष्ठिर को न जाने कैसा संस्कार विरासत में मिला है, ये पत्थर को भी मोम बनाना जानता है।

युधिष्ठिर द्रोणाचार्य की तरफ गए, द्रोणाचार्य के चरणों को छुआ और कहा– हे गुरुदेव! इस मोड़ पर आकर खड़े होना था, किस्मत कहां लेकर आई, अपने और परायों के बीच लड़ाई होती है, लेकिन यहां तो पराया कोई है ही नहीं, सारे ही तो अपने हैं, आपके चरणों में ये माथा सदा झुका है, लेकिन कभी अपशब्द नहीं बोले गए, कड़वा नहीं बोला गया, आज हमसे गलतियां हो सकती हैं। आपको पश्चाताप न हो कि हमने कैसे शिष्यों को ज्ञान दिया है। इसलिए हमें माफ करना। आपके सामने लड़ने के लिए खड़े हो जाएं तो बात अच्छी नहीं, लेकिन कर्त्तव्य के लिए, धर्म के लिए, लड़ना पड़ रहा है।

द्रोणाचार्य की आंखों में आंसू बहने लगे उन्होंने कहा कि युधिष्ठिर मेरे जीवन में अगर कोई गर्व करने की बात है तो यह बात है कि मैं तेरे जैसे शिष्य का गुरू हूं। जो तू सिर झुका रहा है, तो मेरा हृदय कह रहा है कि मेरे पास जो कुछ है, वह सब मैं तुझे दे दूंगा। भगवान करे कि तेरी ही विजय हो। बहुत प्यार से आचार्य द्रोण ने आशीर्वाद दिया।

लेकिन उससे भी आनन्दकारी बात क्या हुई, युधिष्ठिर आगे–आगे आशीर्वाद लेने के लिए पहुंचे, उनके पीछे–पीछे दूसरे भाई, चारों पांडव, कृपाचार्य के पास भी गए मामे, दादे आदि सबको प्रणाम किया। लेकिन युधिष्ठिर लड़ाई के लिए उतावले नहीं हैं। भीम बड़े भाई के पीछे–पीछे चल रहे हैं जैसे बड़े भाई कर रहे हैं, भीम भी करता जा रहा है। हालांकि भीम को यह लग रहा है कि समय ज्यादा खराब हो रहा है। अगर मौका मिल जाय तो जरा गदा के जौहर दिखाने का अवसर है। थोड़ी देर में युद्ध खत्म हो जायेगा बाद में प्रणाम होता रहेगा। फिर भी बड़े भाई चल रहे हैं तो हम भी अनुसरण कर रहे हैं। क्योंकि बड़ा भाई धर्म को साथ लेकर चल रहा है बड़ा घर का कोई भी हो अगर धर्म की मर्यादा घर में निभा रहा होगा, तो छोटे भाईयों पर असर जरूर होगा। कुछ–न–कुछ तो समझेंगे बुरा करने से और कड़वा बोलने से। क्योंकि एक मर्यादा को जिंदा रखा जा रहा है। तो दूसरों को भी ध्यान आएगा, हमें मर्यादा जिंदी रखनी चाहिए। इसके बाद युधिष्ठिर ने हाथ जोड़कर, दोनों ही पक्षों की तरफ आवाज देकर कहा कि भाईयों युद्ध तो निश्चित है। बहुत रोका लेकिन युद्ध होना ही

है, हो रहा है, पर मेरा एक निवेदन है मेरे पक्ष में जो सैनिक लड़ने के लिए खड़े हुए हैं, मैं उनसे निवेदन करना चाहता हूं कि अगर उन्हें लगता है कि मेरा पक्ष गलत है और मैं गलत जगह खड़ा हूँ, जिस भाई को ऐसा लगता है वह मेरा साथ छोड़कर दुर्योधन भाई के पक्ष में जाकर खड़ा हो सकता है।

अगर दुर्योधन भाई के पक्ष में किसी को ऐसा लग रहा है कि वह वहां गलत खड़ा हुआ है, उसको युधिष्ठिर के पास आना चाहिए तो मैं उसको गले लगाने के लिए तैयार हूं। इतना कहना था, दुर्योधन का छोटा भाई था, उसका नाम था विकर्ण उसने जब सैनिकों की तरफ देखा और देखने के बाद कहा कि इनकी आत्मा तो इनको अन्दर अन्दर से कचोट रही है, लेकिन हिम्मत वाले नहीं हैं।

मैं हूं हिम्मत वाला, मैं चलकर आऊँगा युधिष्ठिर तेरे पक्ष में। क्योंकि तेरे पक्ष में धर्म है, इसलिए तेरे साथ आकर के खड़ा होता हूँ। दुर्योधन का सगा भाई चलकर जब युधिष्ठिर के पास खड़ा हो गया। तो जो सैनिक उधर खड़े हुए थे। वे एक बार उसकी तरफ देखे दूसरी बार जमीन की तरफ देखें और कहें कि कम से कम हममें से एक तो था जो सच बात को कह गया। सत्य की राह पर चला गया।

भगवान श्रीकृष्ण ने विकर्ण की तरफ देखा और देखने के बाद कहा– विकर्ण अधर्म ने काल को बुला लिया और अब काल इन सबके सिर पर सवार है। जो दुर्योधन के पक्ष में खड़े हुए हैं लेकिन तून बहुत अच्छा किया। धर्म के पक्ष में आकर खड़ा हो गया और जो धर्म के पक्ष में आ जाता है, काल उसके चरणों के पास खड़ा रहता है। उसके सिर पर मंडराया नहीं करता इसलिए तू सुरक्षित है। तेरा कुछ बिगड़ने वाला नहीं है। आप सोचिए जो धर्म का पालन करता है, बड़ी से बड़ी विघ्न बाधाओं के बीच में वह सुरक्षित रहता है। संसार में धर्म ही जीवित रहता है, धर्म ही शान्ति देने वाला है, एक धार्मिक व्यक्ति है, तो दूसरा व्यक्ति कितना ही कठोर हो, उसके कठोर हृदय को भी मोम की तरह कोमल कर देता है।

यूं तो परीक्षाओं का दौर सबके जीवन में आता है। लेकिन धर्म की राह पर चलने वाले की परीक्षा कुछ ज्यादा ही होती है। धर्मराज युधिष्ठिर की तीन परीक्षाएं हुईं। तीनों परीक्षाओं में उन्होंने धर्म को नहीं छोड़ा। एक परीक्षा तो यह थी जब यक्ष ने युधिष्ठिर से प्रश्न करके उसकी परीक्षा ली। एक परीक्षा वह भी जब स्वर्ग जाने के लिए युधिष्ठिर हिमालय की यात्रा कर रहे थे, उनके साथ-साथ एक कुत्ता चल रहा था। युधिष्ठिर को जब लगा कि अब यह शरीर सम्भाला नहीं जा रहा है, तब उनके सामने एक विमान आकर रूका, उस विमान पर बैठे देवताओं ने आदर पूर्वक युधिष्ठिर से कहा कि आप आइये! आपके लिए स्वर्ग से विमान आया है।

युधिष्ठिर कहने लगे कि मैं अकेला इस विमान पर नहीं बैठूंगा, मेरे साथ यहां तक जो जीव चलकर आया है, ये कुत्ता एक रोटी, एक टुकड़े का लालच लेकर और मेरे पीछे-पीछे चलता हुआ आया है। इसको मैंने कभी थोड़ी बहुत रोटी देकर प्यार दिया होगा, अब सब तो एक साथ छोड़ गये लेकिन यह मेरा साथ नहीं छोड़ रहा है। अब मुझे सुख मिलने लगा है तो मैं इसका साथ नहीं छोड़ूंगा। मैं कुत्ते को

विमान में बैठाकर स्वर्ग जाना चाहूंगा।

देवताओं ने कहा– फिर तो आप स्वर्ग नहीं जा सकोगे। युधिष्ठिर कहने लगे नरक मिल जाय मैं नरक में ही रह लूंगा लेकिन जहां भी जाऊंगा अपने इस कुत्ते को साथ लेकर जाऊंगा। आखिर में कुत्ते को साथ बैठाया गया जैसे ही वह स्वर्ग पहुंचे, तो कुत्ता धर्म की शक्ल धारण करके खड़ा हो गया। और उसने कहा मैं धर्मराज बनकर आपकी परीक्षा लेने आया था।

धर्मराज युधिष्ठिर जैसे ही स्वर्ग में जाकर खड़े हुए और उनको किसी के चीखने चिल्लाने की आवाज सुनाई दी। ध्यान से सुना तो पता लगा कि उनके अपने ही भाई बन्धु रो रहे हैं। जिसकी तेज रोने की आवाज थी वह दुर्योधन था। युधिष्ठिर पूछने लगे कि यह मेरे भाइयों के रोने की आवाज आ रही है, ये लोग कहां है? बताया गया सब नरक में हैं। नरक में क्यों हैं? इसका ही कारण पूछा गया तो बताया कि कोई क्रोध करता था, कोई मोह करता था, कोई अभिमान करता था, तो कोई बड़ा जिद्दी था। युधिष्ठिर कहने लगे कि थोड़ी देर के लिए मैं भी उनके साथ बैठने की इच्छा रखता हूं स्वर्ग के अधिकारी ने कहा युधिष्ठिर अगर आप नरक में गये तो आप पुनः स्वर्ग नहीं आ पाओगे। युधिष्ठिर ने सुना अनसुना कर दिया। नरक की तरफ दौड़े और जहां उनके भाई थे, दरवाजे पर जाकर खड़े हो गए, द्वार बंद थे। लेकिन युधिष्ठिर के पुण्यों की शीतलता, सुगन्ध अंदर जाने लगी। तो अंदर बैठे दुर्योधन ने जोर से चिल्लाकर कहा–कोई पुण्यात्मा दरवाजे पर खड़ी है। उसकी शीतल छाया उसके शरीर को स्पर्श करती हुई वायु मेरे तन को शीतलता पहुंचा रही है। कृपा करके वह अंदर आ जाए। युधिष्ठिर ने दरवाजा खुलवाया और जाकर अंदर खड़े हो गये। जैसे ही अंदर जाकर खड़े हुए नरक में बैठे लोगों को शक्ति मिलने लगी। स्वर्ग के अधिकारी ने कहा कि आपने जो पुण्य किये हैं उनके कारण आपको स्वर्ग मिलेगा नरक नहीं। इसलिए आप नरक छोड़ो, स्वर्ग में चलो।

युधिष्ठिर ने मना कर दिया और गर्दन हिलाकर स्वर्ग को नकार दिया कि मैं वहां नहीं जाऊंगा। फिर जोर देकर कहा गया कि आप स्वर्ग में चलो। युधिष्ठिर ने एक शब्द में कहा जो बड़ा प्यारा था। उन्होंने कहा– अगर मेरे अंदर मेरे पुण्यों में और मेरे कार्यों में शक्ति है तो मैं इस नरक को भी स्वर्ग बना लूंगा। इसके विपरीत अगर मेरे अंदर शक्ति नहीं है, तो मेरे स्वर्ग को नरक होने में भी देर नहीं लगेगी। मैं जहाँ खड़ा हूँ वहीं ठीक हूँ।

युधिष्ठिर को बताया गया कि तुम्हारे भीम आदि भाई भी स्वर्ग में ही बैठे हुए हैं। पर यह आपकी परीक्षा थी कि आप ऐसे स्थान पर जाकर दया करते हो या नहीं करते हो। लेकिन हे युधिष्ठिर जी महाराज! एक बात आपको यह भी बताई जाए जो थोड़ी देर के लिए नरक में जाकर खड़े हुए इसका भी एक कारण था। आपने जीवन में एक बार आधा सच बोला था और आधा झूठ बोला था। अतः थोड़ी देर के लिए आपको भी नरक में आकर खड़ा होना पड़ा। धर्मराज युधिष्ठिर का धार्मिक जीवन अनुकरणीय, वन्दनीय और पूज्यनीय है।

**''स्वतंत्रवार्ता'' से साभार**

# पूज्यपाद जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज की षष्टिपूर्ति पर प्रकाशित होने वाले ग्रन्थ ''षष्टिपूर्ति'' का सम्पादन प्रारम्भ

धार्मिक जगत को सहर्ष सूचित किया जाता है कि श्रीराघवपरिवार के परमाराध्य श्री चित्रकूट तुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज का आगामी १४ जनवरी २०१० (मकर संक्रान्ति) को श्री चित्रकूट में ६० वाँ जन्मजयन्ती महोत्सव मनाया जाएगा। इस शुभ अवसर पर पूज्यपाद जगद्गुरु जी के विलक्षण व्यक्तित्व एवं कुशलकृतित्व पर 'षष्टिपूर्ति' नामक एक अभिनन्दन ग्रन्थ भी प्रकाशित किया जाएगा।

सभी से विनम्र अनुरोध है कि पूज्यपाद आचार्य श्री के लोकोत्तर चरित के कतिपय संस्मरण जो आपके साथ घटित हुए हों, उनके अलौकिक ज्ञान भक्ति और वैराग्य के प्रेरणास्पद प्रसंग अथवा उनकी विशिष्ट प्रतिभा तथा स्मृति के आख्यान लेख अथवा कविता के रूप में संस्कृत अथवा हिन्दी भाषा में लिपिबद्ध करके निम्नलिखित पतों पर शीघ्रातिशीघ्र भेजने की कृपा करें। आपके लेख/कविता/श्लोक/अभिनन्दन पत्र आदि हमें ३१ अक्टूबर २००९ तक अवश्य प्राप्त हो जाएँ। निवेदन है कि लेख सुवाच्य अथवा टंकित किए हुए हों।

**लेख भेजने के पते-**

१. डा० कुमारी गीता देवी मिश्रा (पूज्या बुआजी)
श्री तुलसी पीठ आमोदवन पोस्ट-नयागाँव
चित्रकूटधाम, (सतना) म० प्र०
पिन-४८५३३१, फोन- ०७६७०-२६५४७८

२. डा० सुरेन्द्र शर्मा 'सुशील'
शाश्वतम्, डी-२५५ गोविन्दपुरम्
गाजियाबाद (उ०प्र०) फोन-०९८६८९३२७५५

## 'षष्टिपूर्ति' अभिनन्दन ग्रन्थ समिति

संरक्षक-डा० कुमारी गीता देवी मिश्रा
(पूज्या बुआ जी) चित्रकूट
डा० शोभनाथ दुबे, कुलपति
जे० आर० एच० यू० चित्रकूट

अध्यक्ष- प्रेममूर्ति श्रीप्रेमभूषण जी महाराज, कानपुर

उपाध्यक्ष- १. आचार्य दिवाकर शर्मा गाजियाबाद
२. श्री सुशील कुमार अग्रवाल सहारनपुर

महामन्त्री-

सह/उपमन्त्री-

कोषाध्यक्ष- श्री सर्वेश जी गर्ग गाजियाबाद

संयोजक- डा० सुरेन्द्र शर्मा 'सुशील' गाजियाबाद

सहसंयोजक- डा० श्रीमती वन्दना श्रीवास्तव

परामर्शमण्डल- डा० देवर्षि कलानाथ शास्त्री
डा० वाचस्पति उपाध्याय
डा० राजेन्द्र मिश्र अभिराज
डा० श्री धर वसिष्ठ
डा० ब्रजेश दीक्षित
डा० रामाधार शर्मा
डा० नित्यानन्द मिश्र (हांग्कांग)

**निवेदक**
**षष्टिपूर्ति अभिनन्दन ग्रन्थ समिति**
**गाजियाबाद**

# व्रतोत्सवतिथिनिर्णयपत्रक

## भाद्रपद शुक्ल पक्ष/सूर्य दक्षिणायन, शरद् ऋतु

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | व्रत पर्व आदि विवरण |
|---|---|---|---|---|
| द्वादशी | मंगलवार | उ०षा० | 1 सितम्बर | **श्रीवामन जयन्ती भौम प्रदोष व्रत** |
| त्रयोदशी | बुधवार | श्रावण | 2 सितम्बर | — |
| चतुर्दशी | गुरुवार | धनिष्ठा | 3 सितम्बर | पंचक प्रारम्भ 9/35 दिन से अनन्त चतुर्दशी |
| पूर्णिमा | शुक्रवार | शतभिषा | 4 सितम्बर | सत्यव्रत—पूर्णिमा |

## अश्विनी कृष्ण पक्ष/सूर्य दक्षिणायन, शरद् ऋतु

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | व्रत पर्व आदि विवरण |
|---|---|---|---|---|
| प्रतिपदा | शनिवार | पू० भा० | 5 सितम्बर | पितृपक्ष प्रारम्भ प्रतिपदा का श्राद्ध |
| द्वितीया | रविवार | उ०भा० | 6 सितम्बर | द्वितीया का श्राद्ध |
| तृतीया | सोमवार | रेवती | 7 सितम्बर | तृतीया का श्राद्ध—पंचक समाप्त प्रातः 4/47 पर |
| चतुर्थी | मंगलवार | अश्विनी | 8 सितम्बर | चतुर्थी का श्राद्ध—गणेश चतुर्थी |
| पंचमी | बुधवार | भरणी | 9 सितम्बर | पंचमी का श्राद्ध |
| षष्ठी | गुरुवार | कृतिका | 10 सितम्बर | षष्ठी का श्राद्ध |
| सप्तमी | शुक्रवार | रोहिणी | 11 सितम्बर | सप्तमी का श्राद्ध |
| अष्टमी | शनिवार | मृगशिरा | 12 सितम्बर | श्रीदुर्गाष्टमी—अष्टमी का श्राद्ध |
| नवमी | रविवार | आर्द्रा | 13 सितम्बर | नवमी का श्राद्ध |
| दशमी | सोमवार | मृगशिरा | 14 सितम्बर | दशमी और एकादशी का श्राद्ध |
| एकादशी | मंगलवार | पुष्य | 15 सितम्बर | **इन्दिरा एकादशी व्रत (सबका),** द्वादशी का श्राद्ध |
| द्वादशी | बुधवार | श्लेषा | 16 सितम्बर | कन्या में सूर्य—संक्रान्ति—प्रदोष व्रत—त्रयोदशी का श्राद्ध |
| त्रयोदशी | बुधवार | श्लेषा | 16 सितम्बर | त्रयोदशी तिथि का क्षय |
| चतुर्दशी | गुरुवार | मघा | 17 सितम्बर | चतुर्दशी का श्राद्ध |
| अमावस्या | शुक्रवार | पू०फा० | 18 सितम्बर | **पितृ विसर्जिनी अमावस्या** |

## अश्विनी शुक्ल पक्ष/सूर्य दक्षिणायन, शरद् ऋतु

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | व्रत पर्व आदि विवरण |
|---|---|---|---|---|
| प्रतिपदा | शनिवार | उ0फा0 | 19 सितम्बर | शारदीय नवरात्र प्रारम्भ घटस्थापन |
| द्वितीया | रविवार | हस्त | 20 सितम्बर | चन्द्रदर्शनम् |
| तृतीया | सोमवार | चित्रा | 21 सितम्बर | — |
| चतुर्थी | मंगलवार | स्वाति | 22 सितम्बर | श्रीगणेश चतुर्थी व्रत |
| पंचमी | बुधवार | विशाखा | 23 सितम्बर | — |
| षष्ठी | गुरुवार | अनुराधा | 24 सितम्बर | — |
| सप्तमी | शुक्रवार | ज्येष्ठा | 25 सितम्बर | सरस्वती आह्वान |
| अष्टमी | शनिवार | मूल | 26 सितम्बर | श्रीदुर्गोष्टमी, श्रीसरस्वती पूजन |
| नवमी | रविवार | पू०षा० | 27 सितम्बर | नवरात्र समाप्त—महानवमी |
| दशमी | सोमवार | उ0षा0 | 28 सितम्बर | **विजयदशमी (दशहरा)** |
| एकादशी | मंगलवार | श्रवण | 29 सितम्बर | **पापांकुशाएकादशी व्रत (स्मार्त),** भैया भरत मिलाप |
| एकादशी | बुधवार | धनिष्ठा | 30 सितम्बर | एकादशी तिथि वृद्धि — **पापांकुशाएकादशी व्रत (वैष्णव)** पंचक प्रारम्भ 5/3 सायं से |

卐 श्रीमद्राघवो विजयते 卐

धर्मचक्रवर्ती, महामहोपाध्याय, जीवनपर्यन्त कुलाधिपति, वाचस्पति, महाकवि
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य **स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज**
का राष्ट्रीय, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक चेतना का संवाहक

# श्रीतुलसीपीठसौरभ

**( मासिक पत्र )**

सीतारामपदाम्बुजभक्तिं भारतभविष्णु जनतैक्यम्।
वितरतु दिशिदिशि शान्तिं श्रीतुलसीपीठसौरभं भव्यम्।।

वर्ष १४ सितम्बर २००९ (४, ५ अक्टूबर को प्रेषित) अंक-१



**पूज्यपाद जगद्गुरु जी के सम्पर्क सूत्र :**
**श्रीतुलसीपीठ, आमोदवन,**
पो० नया गाँव श्रीचित्रकूटधाम (सतना) म०प्र०485331
✆–07670–265478, 05198- 224413

**वसिष्ठायनम् –** जगद्गुरु रामानन्दाचार्य मार्ग
रानी गली नं०–1, भूपतवाला, हरिद्वार (उत्तरांचल)
दूरभाष–01334–260323

**श्री गीता ज्ञान मन्दिर**
भक्तिनगर सर्कल, राजकोट (गुजरात)
दूरभाष–0281–2364465

**पंजीकृत सम्पादकीय कार्यालय एवं पत्र व्यवहार का पता**
आचार्य दिवाकर शर्मा,
220 के., रामनगर, गाजियाबाद–201001
**मो०–** 09971527545

# रामानन्दः स्वयं रामः प्रादुर्भूतो महीतले

## विषयानुक्रमणिका



## सुधी पाठकों से विनम्र निवेदन

१. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' का प्रत्येक अंक प्रत्येक दशा और परिस्थिति में प्रत्येक महीने की ४ तथा ५ तारीख को डाक से प्रेषित किया जाता है। पत्रिका में छपे महीने का अंक आगामी महीने में ही आपको प्राप्त होगा।

२. 'श्रीतुलसीपीठ सौरभ' मंगाने हेतु बैंक ड्राफ्ट 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' के नाम से ही बनबाएँ तथा प्रेषित लिफाफे के ऊपर हमारा नाम तथा पूरा पता स्पष्ट अक्षरों में लिखें। मनीआर्डर पर हमारा नाम-पता ही लिखें प्रधान सम्पादक अथवा प्रबन्ध सम्पादक कभी न लिखें।

३. पत्रव्यवहार करते समय अथवा ड्राफ्ट-मनीआर्डर भेजते समय अपनी वह ग्राहक संख्या अवश्य लिखें जो पत्रिका के लिफाफे के ऊपर आपके नाम से पहले लिखी है।

४. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' में **'पूज्यपाद जगद्गुरु जी'** से अभिप्राय **धर्मचक्रवर्ती श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज समझा जाए।**

५. 'श्रीतुलसीपीठ सौरभ' में प्रकाशित लेख/कविता/अथवा अन्य सामग्री के लिए लेखक/कवि अथवा प्रेषक महानुभाव ही उत्तरदायी होंगे, सम्पादक मण्डल नहीं।

६. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' प्राप्त न होने पर हमें पत्र लिखें अथवा फोन करें। हम यद्यपि दूसरी बार पुनः भेजेंगे। किन्तु अपने डाकखाने से भलीप्रकार पूछताछ करके ही हमें सूचित करें।

७. **डाक की घोर अव्यवस्था के चलते हमें दोषी न समझें। हमें और आपको इसी परिस्थिति में 'पूज्यपाद जगद्गुरु जी' का कृपा प्रसाद शिरोधार्य करना है।**

८. सुधी पाठक अपने लेख/कविता आदि स्पष्ट अक्षरों में लिखकर भेजें। यथासमय-यथासम्भव हम प्रकाशित करेंगे। अप्रकाशित लेखों को लौटाने की हमारी व्यवस्था नहीं है।

**–सम्पादकमण्डल**

### सदस्यता सहयोग राशि

| | |
|---|---|
| संरक्षक | ११,०००/– |
| आजीवन | ५,१००/– |
| पन्द्रह वर्षीय | १,०००/– |
| वार्षिक | १००/– |

श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास, चित्रकूट के स्वामित्व में मुद्रक तथा प्रकाशक डॉ0 कु0 गीतादेवी (प्रबन्धन्यासी) ने श्री राघव प्रिंटर्स, जी–17 तिरुपति प्लाजा, बेगम पुल रोड, बच्चापार्क, मेरठ, फोन (का0) 4002639, मो0–9319974969, से मुद्रित कराकर कार्यालय 220 के., रामनगर, गाजियाबाद से प्रकाशित किया।

सम्पादकीय-

# भारतीय पर्व हमें शुभ सन्देश देते हैं
## ( दीपावली पर्व मंगलमय हो )

भारतीय परम्परा में त्यौहारों का बहुत अधिक महत्व है। त्यौहार के लिए पर्व शब्द का भी प्रयोग किया गया है। पर्व अर्थात् जो प्रसन्नता देता हो। इस दिन व्यक्ति और समुदाय दोनों विशेष प्रसन्न होते हैं, अपने दैनिक जीवन से हटकर कुछ विशेष नियमों का पालन करते हैं, साफ-सफाई आदि करते हैं, विशेष जप-तप नियम करते हैं। इतना ही क्यों, पर्वों के महत्व पर विशेष अनुसन्धान करने वाले तो इन पर्वों का आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक स्वरूप भी सिद्ध करते हैं। पारिवारिक पर्व, सामाजिकपर्व, जातीय पर्व, साम्प्रदायिक पर्व तथा राष्ट्रीय पर्व आदि भेदों से इन पर्वों को जाना जाता है।

दीपावली अथवा दीपमालिका पर्व प्रकाश का पर्व है। अधर्म पर धर्म की जय का प्रतीक है। दानवता पर मानवता की विजय का प्रतीक है। आतंकवाद को भारतीय पौरुष के द्वारा कुचले जाने का दिवस है। कण कण से अन्धकार को हटाकर प्रकाश के दीप जलाने का पुण्यपर्व है। ऐतिहासिक तथ्य हैं कि आतंकवाद के सरगने राक्षसराज रावण को ध्वस्त करके अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायक, जगन्नियन्ता, धर्मरक्षक भगवान् श्रीमद्राघवेन्द्र सरकार इस दिन श्रीअवध आए थे। श्रीअवध सहित सम्पूर्ण भारत में दीपावली मनाई गई। आज भी अपने अपने घरों को सजाकर आस्तिक महानुभाव दीपावली पर्व पर दीपक जलाते हैं, मिठाई बाँटते हैं, गणेश-लक्ष्मी पूजन करते हैं, एक दूसरे को बधाई देते हैं। व्यापारी वर्ग तो अपने बही-खातों को मांगलिक मन्त्र-यन्त्र से सजाते हैं। सारे हिन्दुसमाज में हर्षोल्लास का वातावरण होता है।

कौन नहीं जानता कि इसी दीपावली के दिन सारी हिन्दु जाति राक्षसराज रावण कुम्भकरण और मेघनाद के बहुत विशाल पुतले बनाकर फूँकती है। जब सायंकाल तीनों पुतलों में रखी विस्फोटक सामग्री धू-धू करके जल उठती है तब प्रत्येक आस्तिक व्यक्ति के मुख से यही निकलता है कि भारतीय संस्कृति, भारतीय जीवनमूल्यों, आदर्शों एवं विचारों के साथ खिलवाड़ करने वाला बड़े से बड़ा वैभवसम्पन्न व्यक्ति भी एक दिन विनाश को प्राप्त होता है। भारतीय संस्कृति स्वरूपा भगवती सीताजी का अपहरण करने वाले रावण के विशाल परिवार में कोई नहीं बचा। अनेक पर्वों के अन्दर छिपे ऐसे ही विशेष सन्देश सभ्य समाज के लिये सदैव आकर्षण के बिन्दु रहे हैं। सामान्य जनमानस के लिए भले ही पर्वों पर मौजमस्ती का वातावरण रहता हो किन्तु समाज के प्रबुद्ध वर्ग के लिए अथवा राष्ट्रधर्म दोनों का हितचिन्तन करने वाले महानुभावों के लिए भारतीय परम्परा के सभी प्रमुख पर्वों से शाश्वत सन्देश, गम्भीर शिक्षा तथा अलभ्य लाभ प्राप्त होते हैं।

सभी भारतवासियों को, श्रीराघव परिवार के सभी महानुभावों को श्रीतुलसीपीठसौरभ के सभी सुधी पाठकों को हम भी दीपावली पर्व की हार्दिक बधाइयाँ प्रदान करते हैं, साथ ही भगवान् श्रीसीताराम जी के श्रीचरणों में विनम्र प्रार्थना करते हैं कि जो लोग किन्हीं भी कारणों से भारतीय चिन्तन, भगवद्भक्ति और भारतीय परम्परा से विमुख होकर मनमाना आलाप गाते रहते हैं, भारतीय श्रद्धाकेन्द्रों के प्रति भयंकर विषवमन करते रहते हैं उन सभी को सद्बुद्धि देने की महती कृपा करें। भारतीय परम्परा परिष्कार में विश्वास करती है बहिष्कार में नहीं। हमारा ही उद्घोष विश्वविदित है-

**सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु।**
**सर्वः कामानवाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु।**
**दुर्जनः सज्जनो भूयात् सज्जनः शान्तिमाप्नुयात्।**
**शान्तो मुच्येत बन्धोभ्यो मुक्तश्चान्यान्विमोचयेत्।**

पुनः दीपावली पर्व की सभी को मङ्गलकामनाओं के साथ-

**आचार्य दिवाकर शर्मा प्रधान सम्पादक से केवल मोबाइल नं०- 09971527545 पर ही सम्पर्क करें**

**आचार्य दिवाकर शर्मा**
**प्रधान सम्पादक**

(गतांक से आगे)

# वाल्मीकिरामायण सुधा ( ५३ )

❑ धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

काव्यप्रकाश का एक श्लोक है–

**जनस्थाने भ्रान्तं कनकमृगतृष्णान्धित धिया**
**वचो वैदेहीति प्रतिपदमुदश्रु प्रलपितम्।**
**कृतालंका भर्तुर्वदनपरिपाटीसुघटना**
**मयाप्तं रामत्वं कुशलवसुता न त्वधिगता।**

यहाँ दोनों अर्थ हैं एक तो कुशलवसुता अर्थात् धन नहीं मिला और कुशलव की माता सीता तो केवल राघव को मिल सकती है यही राघव का साधारण लक्षण है। रामत्व सब जगह हो सकता है पर सीताविशिष्टरामत्व केवल दशरथनन्दन आनन्दकन्द कौसल्यानन्दवर्धन प्रभु श्रीराम में ही रहेगा। अतः इतर रामों से राम का सबसे मुख्य व्यावर्तक यदि कोई है तो सीता पदार्थ है। अब अर्थभावेन इतः जगतः प्रक्रिया विवर्तते विवर्त होती है विस्तृत होती है। विशिष्टा सती प्रस्तुता भवति यह यहाँ का तात्पर्य है। आज भगवान आनन्दकन्द प्रभु चिन्तित हो रहे हैं। सुग्रीव मुझे भूल गये–

**सुग्रीवहु सुधि मोरि बिसारी।**
**पावा राजकोश पुर नारी।**

राज पाकर अवध के राजा को भूल गये, कोश पाकर कोसलेश को भूल गये पुर पाकर पुरुषोत्तम को भूल गये। नारीपाकर नारायण को भूल गये। भगवान राम महाविष्णु हैं इसमें किसी को सन्देह नहीं रहना चाहिए। रामतापनीयोपनिषद् में कहा गया है–

**चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णौ जाते दशरथे हरौ।**
**रघोः कुलऽखिलं राति राजते यो महींश्रितः।।**

भगवान महाविष्णु हैं। विष्णु और महाविष्णु में अन्तर होता है। महाविष्णु सबके आराध्य हैं चाहे रामानन्दी हों चाहे रामानुजी। विष्णु सत्वगुणावच्छिन्न हैं महाविष्णु गुणानवच्छिन्न हैं। इसलिए 'विवेश वैष्णवं तेजः सशरीरः सहानुजः' का यहाँ क्या अर्थ है? वैष्णव तेज में भगवान प्रविष्ट नहीं होते वैष्णव तेज स्वयं उनका है ही वे अपने में कैसे प्रविष्ट होंगे? नह्यति चतुरोऽपि स्वस्कन्धभारोढुं प्रभवति' अत्यधिक चतुर भी क्या कभी अपने कन्धे पर चढ़ सकता है। इसलिए महर्षि वाल्मीकि ने बार-बार बहुत स्थलों में अन्तरभावितण्यर्थ का प्रयोग किया है। जैसे कहीं 'गच्छति' का प्रयोग किया है तो वहाँ अर्थ होगा 'गमयति' अर्थात् धातु रहेगी शुद्ध, पर उसका अर्थ ण्यन्तपरक होगा। इसी प्रकार 'सशरीरः सहानुजा' अर्थात् शरीर भगवान का ज्यों का त्यों है, लक्षणादि सब ज्यों के त्यों हैं फिर 'वैष्णवं तेजः विवेश' का क्या अर्थ होगा? अर्थ होगा 'वैष्णवं तेजः वेशयामास' अपने में वैष्णव तेज का प्रवेश करवा लिया। सारे देवता भगवान श्रीराम में विलीन होकर परिपूर्णतम परात्पर परब्रह्म बन जाते हैं। तभी तो गीता जी में कहा है– तेजस्तेजस्विनामहम्। अब भगवान राम चिन्तित हैं कि सुग्रीव मुझे कैसे भूल गये? लक्ष्मण जी ने कहा मैं गुरु हूँ दण्ड दूँगा।

**तमात्तबाणासनमुत्पतन्तं**
**निवेदितार्थं रणचण्डकोपम्।**
**उवाच रामः परवीरहन्ता**
**स्ववीक्षितं सानुनयं च वाक्यम्।।**

यों कहकर धनुष बाण हाथ में लेकर लक्ष्मण चल पड़े। श्रीराम ने कहा ऐसा मत करो। सुग्रीव को साम, दान, भय और भेद से ले आओ–

**तब अनुजहिं समुझायेउ रघुपति करुना सींव।**
**भय देखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव।।**

हनुमन्तलाल ने जाकर सुग्रीव को समझाया कि आप ठीक नहीं कर रहे हैं। राम जी ने आपका कार्य कर दिया आप उनको पहचानने का प्रयास नहीं कर रहे हैं। आपने उनके फलाहार की भी चिन्ता नहीं की। चार महीने में। शीघ्रता कीजिए अभी लक्ष्मण जी आने वाले हैं। हनुमान जी महाराज को 'रामायण महामालारत्नम्' कहा जाता है। हनुमान जी महाराज ने पाँच लोगों की रक्षा की है। सुग्रीव के प्राणों की रक्षा, वानरों के प्राणों की रक्षा, मैथिली जी के प्राणों की रक्षा, लक्ष्मण जी के प्राणों की रक्षा और भरतलाल जी के प्राणों की रक्षा। सुग्रीव तो आज ही समाप्त हो जाते। भगवान राम ने लक्ष्मण से कहा– लक्ष्मण! सुग्रीव से जाकर कह देना कि मैं उसी बाण से सुग्रीव को मार सकता हूँ। लक्ष्मण जी को आते हुए देखकर सुग्रीव भयभीत हो जाते हैं। **जीव का स्वभाव है कि वह लेते-लेते भूल जाता है और भगवान देते-देते भूल जाते हैं**। हनुमान जी महाराज तारा को जाकर समझाते हैं–

**सा पानयोगाच्च निवृत्तलज्जा**
**दृष्टिप्रसादाच्च नरेन्द्रसूनोः।**
**उवाच तारा प्रणयप्रगल्भं**
**वाक्यं महार्थं परिसान्त्वरूपम्।।**

टीकाकारों ने यहाँ अर्थ का अनर्थ किया है। टीकाकारों ने तारा का शराब पीने का वर्णन किया है। तारा शराब क्यों पियेगी? इसका उचित अर्थ होगा– पानस्य योगः संयोगः अर्थात् आज तारा को ज्ञात हो चुका है कि लक्ष्मण जी आयेंगे उनका चरणामृत धोकर मैं पान करूँगी। चरणामृत के पान का संयोग होने के कारण तारा ने आज अपनी शर्म छोड़ दी है यही अर्थ ग्राह्य है और यही वैष्णवजन सम्मत भी है। प्रत्येक वस्तु की व्याख्या उचित दृष्टिकोण से होती है। वही उपयुक्त होती है। प्रायशः गृहस्थ कूटधर्मा गृहस्थ रहे हैं। बालकालीन साधुओं की एक अलग परम्परा होती है। जो विषयों को भोग कर आते हैं उनके लिए वासना को भूलना बहुत कठिन होता है जबकि बालकालीन हमारे जैसे साधुअपनी मस्ती में रहते हैं। कभी न कभी उसका प्रभाव व्यक्तित्व पर पड़ता है। एक बार एक बहुत अच्छे सन्त बैठे थे एक व्यक्ति ने मंगलाचरण किया। तब हमने कहा कि मैं आपको घोषित करता हूँ कि यह व्यक्ति पहले गृहस्थ रहा होगा। इसकी वाणी बता रही है। लोगों ने कहा आपने कैसे जान लिया है जो बालकालीन साधु होता है वह ऐसी भाषा बोल ही नहीं सकता। एक उदाहरण से यह स्पष्ट करूँ। गोस्वामी जी दोनों व्यक्तियों का अनुवाद कर रहे हैं। अंगद का भी और हनुमान जी का भी। हनुमान जी बालकालीन विरक्त साधु हैं वे बोलते हैं–

**बिनती करउँ जोरि कर रावन।**
**सुनहु मान तजि मोर सिखावन।।**
**देखहु तुम निज हृदय विचारी।**
**भ्रम तजि भजहु भगत भय हारी।।**

अंगद जी की वाणी सुनिये–

**तोहि पटकि महि सेन हति चौपट करि तब गाउँ।**
**मन्दोदरी समेत शठ जनकसुतहिं लै जाउँ।।**

दोनों की वाणी में अन्तर पड़ेगा ही। इसको हम नकार ही नहीं सकते। ये विषय भोग इतने दुष्ट होते हैं कि इनका हमारी वाणी पर प्रभाव पड़ता ही है। इन विषय भोगों को भुलाना बहुत कठिन होता है। लक्ष्मण

जी ने सुग्रीव से कहा– सुग्रीव! तुम भूल गये। तभी तारा जी आ गईं। महर्षि वाल्मीकि ने वर्णन किया है–

**सा प्रस्खलन्ती मद विह्वलाक्षी**
**प्रलम्बकाञ्ची गुणहेमसूत्रा।**
**सलक्षणा लक्ष्मणसंनिधानं**
**जगाम तारा नमिताङ्गयष्टिः।**

तारा ने लक्ष्मण जी को देखा उसके भाग्य जाग गये। जब व्यक्ति भगवत्प्रेम की तरंग में आता है वह स्खलित होने लगता है। जैसे–

**शिथिल अंग पग मग डगि डोलहिं।**
**बिहवल बचन प्रेमवश बोलहिं।।**
**करह मनोरथ जस जिय जाके।**
**जाहिं सनेह सुरा सब छाके।।**

तारा जी के चरण ठीक नहीं पड़ रहे हैं। क्योंकि धातुओं में 'मदि हर्षसामोहयो' 'मदि' धातु के दोनों अर्थ होते हैं हर्ष भी और सम्मोह भी। हमारी व्याख्या गृहस्थ से भिन्न होगी उसमें गुणात्मक अन्तर होगा। यह आवश्यक नहीं कि जो अर्थ आप सोचते हैं वही अर्थ होगा क्योंकि 'अनेकार्था हि धातवः' अर्थात् धातुओं के अनेक अर्थ होते हैं। जैसे परि पूर्वक भू धातु का यदि अवज्ञान ही अर्थ होता तो केवल एक ही अर्थ लिया जाता। इसी प्रकार मद का अर्थ केवल शराब नहीं होता 'मदविह्वलाक्षी' अर्थात् आज लक्ष्मण जी के आगमन से तारा जी के मन में जितनी प्रसन्नता है उस प्रसन्नता से उनकी आँखें विह्वल हो रही हैं। आज साक्षात् जीवाचार्य (लक्ष्मण जी) हमारे पास आ रहे हैं। लक्ष्मण जी के पास तारा जी आईं। लक्ष्मण जी का क्रोध शांत हुआ। तारा शब्द सीताजी के ता और राम जी के रा से मिलकर बना है अर्थात् तारयतीति तारा। तारा ने कहा महाराज– मैं प्रसन्न हूँ यही अवध की संस्कृति है जैसा आप आचरण कर रहे हैं। आपके भाई राघवेन्द्र सरकार और महाराज बालि मुझे आपके चरणों में सौंप गये हैं अतः आप मेरी रक्षा करें। तुम सुग्रीव को क्षमा कर दो। तारा ने कहा–

**क्षमस्व तावत् परवीर हन्त**
**स्त्वद् भ्रातरं वानरवंशनाथम्।**

विपक्षीवीरों का नाश करने वाले राजकुमार लक्ष्मण! इन्हें अपना भाई समझकर क्षमा कर दीजिए। जीव तो प्रमाद करता ही है आप तो ईश्वर हैं सर्वज्ञ हैं। दीनबन्धु! आप गुरु हैं। जीव पर इतना क्रुद्ध मत होइये। तब–

**करि बिनती मन्दिर लै आये।**
**चरन पखारि पलंग बैठाए।।**
**तब कपीश चरननि सिर नावा।**
**गहि भुज लछिमन कण्ठ लगावा।।**

सुग्रीव के पलंग पर ही लक्ष्मण जी को बैठाया और उनके चरण पखारे। जब सुग्रीव ने श्रीलक्ष्मण के चरणों में शिर झुकाया तो लक्ष्मण जी ने उन्हें उठाकर गले से लगाया। इन भागवतों के सम्बन्ध में तो अनुचित सोचना ही नहीं चाहिए। जिनके लिए गोस्वामी जी महाराज ने कहा है–

**कपिपति ऋक्ष निशाचर राजा।**
**अंगदादि जे कीश समाजा।।**
**बन्दउँ सबके चरन सुहाए।**
**अधम शरीर राम जिन पाए।।**

मैं इनके चरणों का तथा आचरण का भी वन्दन करता हूँ कि शरीर भले अधम रहा हो पर चरित्र इतने उत्तम रहे कि इनको भगवान श्रीरामजी प्राप्त हुए। सुग्रीव ने पूरी बात बताई और क्षमा माँगी और कहा श्रीरघुनाथ जी से मुझे क्षमा करा दीजिए। अभी सारे वानर आ रहे हैं। लक्ष्मण जी ने कहा– कोई बात नहीं

आप अब मुझे भी क्षमा कर दीजिए। महर्षि वाल्मीकि कहते हैं–

**स च सर्वान् समानीय वानरान् वानरर्षभः।**
**दिशः प्रस्थापयामास दिदृक्षुर्जनकात्मजाम्।।**

सुग्रीव ने समस्त दिशाओं में सब वानरों को भेज दिया। दक्षिण दिशा में हनुमान जी को जाना है। सबको भेजने के पश्चात् सुग्रीव ने हनुमान जी से कहा– हनुमान जी! अब हमारी लाज आपके हाथ में है। भगवान श्रीराम जी–

**तं समीक्ष्य महातेजा व्यवसायोत्तरं हरिम्।**
**कृतार्थ इव संहृष्टः प्रहृष्टेन्द्रियमानसः।।**
**ददौ तस्य ततः प्रीतः स्वनामाङ्कोप शोभितम्।**
**अङ्गुलीयमभिज्ञानं राजपुत्र्याः परन्तपः।।**

अवध में जब किसी को बहुत प्रेम करते हैं तब हम लोग उकार लगाकर बोलते हैं जैसे– हनुमनऊ, बवऊ। भगवान श्रीराम धीरे से हनुमान जी को बुला रहे हैं–

**पाछे पवनतनय सिर नावा।**
**जानि काज प्रभु निकट बुलावा।।**

अपनी ही भाषा (अवधी) में हनुमान जी को निकट बुलाया–

**अंजनी के बारे हो दुलारे पौन देवता के।**
**सुना बिरवा बीर हनुमान, तन हिन्नै आवा।**
**तुहइ बचवा बाटइ हमरी नाव के खिवैया हो।**
**बाबा बजरंगी बलवान, तन हिन्नै आवा।।**
**सुना बिटवा............**

**कंचन बरन चमकै पियरी सरीरिया।**
**इन्द्रधनुष जैसन दमकै लरक लँगुरिया।**
**तोहइ भइया हुइजा हमरी लाज के रखैया हो।**
**बाबा बजरंगी बलवान, तन हिन्नै आवा।।**
**सुना बिटवा............**

**बिरह बिकल सीता दिन अरु रतिया।**
**दइके मुँदरिया जुड़ावा उनकी छतिया।**
**तोहइ बिटवा बाटइ हमरी नाव के खिवैया हो**
**अंजना तनय मतिमान, तन हिन्नै आवा।**
**सुना बिटवा............**

**जानकी जियन का समाचार जो लियइबा**
**हमरा से मुँहमाँगाबरदान पइबा**
**'गिरिधर' प्रभु तोहरे मन के बसइया हो**
**संकटमोचन हनुमान, तन हिन्नै आवा।**
**सुना बिटवा............**

बोलो वीर बजरंग बली की जय। हनुमान जी को धीरे से अपने बुलया और

**परसा शीष सरोरुह पानी।**
**कर मुद्रिका दीन्ह जन जानी।।**
**बहु प्रकार सीतहिं समुझाएहु।**
**कहि बलबीर बेगि तुम आएहु।।**

शिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। भगवान श्रीराम ने कहा–

**अनेन त्वां हरिश्रेष्ठ चिह्नेन जनकात्मजा।**
**मत्सकाशादनुप्राप्तमनु द्विग्नानुपश्यति।।**

हे कपिश्रेष्ठ! इस चिह्न के द्वारा जनककिशोरी सीता जी को यह विश्वास हो जायगा कि तुम मेरे पास से ही गये हो। इससे वह भय त्यागकर तुमको देखेगी। महर्षि वाल्मीकि आगे कहते हैं कि भगवान् श्रीराम हनुमान जी को आश्वस्त करते हुए कहते हैं कि–

**व्यवसायश्च ते वीर सत्त्वयुक्तश्च विक्रमः।**
**सुग्रीवस्य च सन्देशः सिद्धिं कथयतीव मे।।**

क्रमशः........

( गतांक से आगे )

# श्रीमद्भगवद्गीता ( ८४ )

## ( विशिष्टाद्वैक श्रीराघवकृपाभाष्य )

**भाष्यकार–धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज**

**संगति-** अब यहाँ अर्जुन प्रश्न करते हैं कि भगवान के अवतार से साधकों को क्या लाभ है? अर्जुन के इस प्रश्न पर भगवान कहते हैं–

**जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।**
**त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।।**
**४/९**

**रा० कृ० भा० सामान्यार्थ-** हे अर्जुन! मेरे दिव्य जन्म एवं वेद विहित अलौकिक कर्म तथा नाम, रूप, लीला, धाम को जो इस प्रकार तत्वों से जानता है वह पाञ्चभौतिक शरीर को छोड़कर फिर जन्म नहीं ग्रहण करता अथवा पुनर्जन्मात्मक संसार को नहीं प्राप्त होता वह तो मुझे ही प्राप्त कर लेता है।

**व्याख्या-** यहां 'च' शब्द से भगवान के नाम, रूप, लीला, धाम का संग्रह समझना चाहिए। 'दिव्यं' का तात्पर्य है 'दिविभवं' अर्थात् ये सब साकेतलोक एवं गोलोक की घटनाओं के परिणाम स्वरूप ही है और इनमें साधुपरित्राण, दुष्टविनाश एवं धर्म स्थापना तीनों हेतु सम्बद्ध रहते हैं। मेरे जन्म–कर्म के ज्ञान से ही साधक के जन्म–मरण समाप्त हो जाते हैं। यदि दर्शनादि हो जायें तो क्या पूँछना?

**बिन देखे ऐसी लगन लगी,**
**दर्शन होंगे तो क्या होगा?**

वह मुझे ही प्राप्त करता है। अतः मेरे जन्म, कर्म, रूप, लीला, धाम के ज्ञान से साधक पुनर्जन्म की विडम्बना से मुक्त हो जाता है, यह उसका अपूर्व लाभ है।।श्री।।

**संगति-** पुनः अर्जुन प्रश्न करते हैं आपके जन्म–कर्म के चरित्रों को जानकर जीव कैसे मुक्त होता है? इस पर भगवान कहते हैं–

**वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः।**
**बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भवमागताः।।**
**४/१०**

**रा० कृ० भा० सामान्यार्थ-** हे अर्जुन! मेरे जन्म कर्म के रहस्यज्ञानरूप तप से पवित्र हुए तथा राग, भय, क्रोध से मुक्त हुए मुझमें तल्लीन हुए, बहुत से मेरे शरणागत भक्त मुझमें सेव्यसेवक भाग अथवा मेरी निकटता प्राप्त कर चुके हैं।

**व्याख्या-** हे अर्जुन! 'मेरी जन्म–कर्म लीलाओं का यही वैशिष्ट्य है कि मेरे जन्म के चिन्तन से साधक को मुझमें अनुराग हो जाता है। अतः वह सांसारिक राग छोड़ देता है। मेरे कर्म संकीर्तन से साधक मुझ ही से अभयदान प्राप्त करके संसार में निर्भय हो जाता है और मेरी लीला के गान से दिव्य बोध प्राप्त कर क्रोध रहित हो जाता है। इस प्रकार मेरे जन्म चिन्तन से राग, भय, क्रोध मुक्त होकर मेरे कर्मचिन्तन से मुझमें तन्मयता करके मेरे नामादि चतुष्टय चिन्तन से मेरे आश्रित हो जाता है। उप का तात्पर्य है साधक मुझे संसार से अधिक मानने लगता है। इस प्रकार बहुत से लोग मेरे जन्म–कर्म रहस्य ज्ञान तप से पवित्र हो चुके हैं। 'मद्भाव' मम भावः 'मद्भाव' वे मुझमें भाव अर्थात् शान्त वात्सल्य दास सख्य और मधुर इनमें से कोई एक भाव प्राप्त

कर चुके हैं। अथवा मेरे प्रति सेव्य सेवक भाव प्राप्त कर चुके हैं अथवा मुझमें भाव अर्थात् स्थिति प्राप्त कर चुके हैं।।श्री।।

**संगति-** अर्जुन फिर प्रश्न करते हैं कि जब भक्त आपके शरणागत होते हैं तब आप क्या करते हैं? इस पर भगवान कह रहे हैं-

**ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।**
**मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।।**
**४/१९**

**रा० कृ० भा० सामान्यार्थ-** हे पृथापुत्र अर्जुन! जो लोग मुझमें जिसप्रकार से प्रपन्न अर्थात् शरणागत होते हैं, मैं उन्हें उसीप्रकार स्वीकार कर लेता हूँ। सभी मनुष्य मेरे ही मार्ग का अनुवर्तन करते हैं। अर्थात् जो जैसे व्यवहार करता है उसके साथ उसी प्रकार का व्यवहार करते हैं।

**व्याख्या-** यथा का तात्पर्य है शान्त, वात्सल्य, दास्य, सख्य और मधुर इन पाँचों में से जो जिस भाव से मेरी शरण में आता है मैं उसको उसी भाव से स्वीकार कर लेता हूँ। भाव का परिवर्तन नहीं करता। पार्थ शब्द का आशय है कि जैसे तुम पहले मेरे प्रति सख्य भाव रखते थे, तो मैंने उसी भाव से तुम्हें स्वीकारा और जब गुरु भाव से शरण में आये तब गीता का उपदेश कर रहा हूँ। सभी मनुष्य मेरे ही मार्ग का अनुसरण करते हैं अर्थात् जैसे का तैसे करते हैं। इसीलिए तुम भी क्रूरकर्मा कौरवों के साथ क्रूरता से वर्तन करो, कोमल मत बनो, नहीं तो मेरे मार्ग से विरुद्ध हो जाओगे। यहाँ ध्यान रहे कि-

**जो तो को कांटा बुवै ताहि बोउ तू फूल।**
**तो को फूल को फूल है वाको है तिरसूल।।**

कबीर के इस चिन्तन को रघुवीर, अथवा यदुवीर इन दोनों के सिद्धान्त के साथ देखिये- भगवान राम भी सागर निग्रह प्रसंग में स्पष्ट कहते हैं-

**भय बिनु होइ न प्रीति।**

और भगवान कृष्ण भी 'मम वर्त्मानुवर्तन्ते' कहकर इसी बात का संकेत करते हैं और नीति भी यही कहती है- "शठे शाठ्यं समाचरेत्" अतः-

**जो तो को कांटा बुवै ताहि बोउ तू फूल।।**

यह चिन्तन कायरों का, वेद विरोधियों का और नपुंसकों का है। यहाँ भगवान् और वेद दोनों की एक ही आज्ञा है कि-

**जो तो को कांटा बुवै ताहि बोउ तू भाला।**
**वो भी मूरख क्या समझे की पड़ा किसी से पाला।।**

भगवान वेद भी यही कह रहे हैं- 'योऽस्मान् धूर्वति तं धूर्वति वयं धूर्वाम' धूर्वि धातु का अर्थ हिंसा है। वेद कहते हैं कि जो हमें मारने आ रहा हो उसे हम मूल से उखाड़कर फेंक दें अर्थात् मार डालें। इसीलिए कौरवों के प्रति कोमल मत बनो, यही 'मम वर्त्मानुवर्तन्ते' का सारांश है।।श्री।।

**संगति-** पुनः अर्जुन प्रश्न करते हैं कि हे मदनमोहन! इस प्रकार आप जैसे सर्व सुहृद शरणागतवत्सल परमेश्वर प्राप्त करके भी लोग अन्य छोटे मोटे स्वार्थ परायण देवताओं की उपासना क्यों करते हैं? मानों यहाँ अर्जुन अपने लिए भी पश्चाताप कर रहे हों क्योंकि उन्होंने भी प्रभु को प्राप्त करके इन्द्र और शंकर की उपासना की। इस पर परम कारुणिक श्रीभगवान कहते हैं-

**कांक्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः।**
**क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा।।**
**४/१२**

क्रमशः........

गतांक से आगे-

# शिखा की वैज्ञानिकता का रहस्य

❑ पूज्यपाद पं० दीनानाथ शास्त्री सारस्वत

## शिखा ब्रह्मरन्ध्र की पताका

(१८) फलतः द्विजों की शिखा बल, वीर्य, स्वास्थ्य तथा आध्यात्मिक उन्नति के साधन होने के साथ ही साथ उत्तम जातीय-चिन्ह भी है। यह शिखा ब्रह्मरन्ध्र-स्थल की पताका है। इस शरीररूप किले के पाँच तट, सात गर्भगृह, साढ़े तीन लाख छोटी कोठियाँ तथा सात महल हैं। सातवें महल में सम्राट्रूप ज्योतिः-स्वरूप परब्रह्म का निवास है। जैसे दुर्ग के राजनिवास स्थल में विशेषता के लिए पताका-ध्वजा-झण्डा आरोपित किया जाता है; वैसे ही इस शरीर-रूप दुर्ग में ब्रह्मरन्ध्र-स्थल में जहाँ ब्रह्म गुप्त रहता है; वहीं शिखारूप पताका भी रखी गई है। यह शिखा उस ब्रह्मरन्ध्र को सूचित करती है; इसीलिए सनातन धर्म के आचार्यों ने वहाँ शिखा रखवाकर गायत्री मन्त्र से सन्ध्या के समय शिखाबन्धन की प्रणाली प्रचलित की है। शिखाबन्धन से केवल बिखरे हुए बालों के समेटने में तात्पर्य नहीं; जैसे कि अर्वाचीन सम्प्रदाय के व्यक्ति कहते हैं; किन्तु अपनी चित्तवृत्ति को सन्ध्या-समय में ब्रह्मरन्ध्र के पास ब्रह्मध्यान के बन्धन में बद्ध करने में तात्पर्य है।

उक्त किले के पाँच तट हैं पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश। सात गर्भगृह हैं रोम, चर्म, रुधिर, मांस, अस्थि, मज्जा, शुक्र। साढ़े तीन लाख नाडियाँ ही छोटी कोठियाँ हैं। सात महल सात पद्म हैं। पहला चतुर्दल-पद्म आधारचक्र है। दूसरा षड्दल-पद्म मणिपूरनामक चक्र है। तीसरा दशदल-पद्म स्वाधिष्ठान-चक्र है। चौथा द्वादशदल-पद्म अनाहत-चक्र है। पांचवां षोढशदल-पद्म विशुद्ध नामक चक्र है। छठा द्विदल-पद्म आज्ञाचक्र है, इस सन्धि-स्थान में ही अर्थात् त्रिकुटी महल में इतर नामक लिङ्ग है, जिसके द्वारा सहस्रदल-पद्म दिखलाई देता है। जिसकी कर्णिका में कोटि सूर्य के समान प्रभा वाला ब्रह्म रहता है। सातवाँ सहस्रदल पद्म है।

इस प्रकार वह ब्रह्मरन्ध्र-जिसके ऊपर शिखा है, उनमें सम्राट्-रूप ब्रह्म के निवास होने से उस पर पताकारूप शिखा का स्थापन भी आवश्यक सिद्ध हुआ। शिखा का मुख्य स्थापन धर्मरूप एवं कर्माङ्ग रूप से स्थापन द्विजों के लिए है, गौणता तथा चिह्नादि रूप से स्थापन हिन्दुजाति मात्र के लिए है। शिखा बांधकर कर्म करने से उसके निम्नस्थान में स्थित ब्रह्म के साथ सम्बन्ध होने से उस कर्म में मन की स्थिरता हो जाती है; इस स्थान की रक्षा भी हो जाती है। ग्रन्थि से बाह्य आघात से रक्षा अवश्य होती है। स्वा० दयानन्द जी ने भी अपनी 'पञ्चमहायज्ञविधि' (५ पृ० ११ पं०) में 'इसके अनन्तर गायत्री मन्त्र से शिखा को बाँध के रक्षा करे' इससे शिखाबन्धन से रक्षा मानी है। बालों के इधर-उधर न फैलने के लिए ही शिखा-बन्धन मानना तो शुष्कतर्कमात्र है; इस भय से तो लोग शिखा को ही कटवा देंगे- 'न रही बाँस, न बजी बाँसुरी'। तब इस प्रकार के तर्क अश्रद्धा के ही बढ़ाने वाले होते हैं।

## शिखा से दृष्ट-अदृष्ट में लाभ

(१९) इस प्रकार शिखा का अदृष्ट में जहाँ लाभ है; वहाँ वह हिन्दुत्व का चिह्न भी है; ३३ करोड़ की हिन्दु-धर्मशाला में प्रविष्ट हो चुके हुए का चिह्न है। उसस शारीरिक लाभ भी है, क्योंकि शरीर के सब

मर्मस्थानों का सम्राट् शिखास्थान में ही विराजमान है। वहाँ पर शीतोष्ण अत्यन्त शीघ्र प्राप्त हो जाता है। अधिकता से प्राप्त शीतोष्ण भीतरी स्नायु, मांस, रुधिर आदि में अपना प्रभाव पहुँचाकर हानि पहुँचा देते हैं। वहाँ पर पड़ा हुआ साधारण आघात भी हानि पहुँचाता है। वहाँ का शिखारूप केश संघात उस हानि से रक्षा करता है।

इसके अतिरिक्त 'ऊर्ध्वमूलं, अधःशाखा'। यह शरीर वृक्षरूप है। इसका मूल सिर है, शिखा के केश मूलशिफा (जड़ें) हैं। कन्धे के भाग से कमर तक का भाग शाखाएँ हैं, हाथ-पाँव आदि कर्मेन्द्रियाँ, नेत्र, श्रोत्र आदि ज्ञानेन्द्रियाँ प्रशाखा हैं। भांति-भांति के विषय इसके पत्ते हैं, सुकर्म-कुकर्म इसके फूल हैं, सुख-दुःख आदि इसके फल है। किसी वृक्ष की मूलशिफा (जड़ें) कभी काटी नहीं जातीं, क्योंकि उनके काटने से वृक्ष आरूढमूल नहीं होता। इसी कारण ही वृक्षारोपण के लिए एक स्थान से अन्य स्थान में ले जाने के समय जब पौधे को ले जाया जाता है; तब मूलशिफाओं के संरक्षणार्थ विशेष ध्यान दिया जाता है। फलतः वृक्ष के अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित, फलित होने के लिए जैसे उसकी मूलशिफाओं का काटना ठीक नहीं होता; वैसे ही शरीर-वृक्ष की रूढमूलता के लिए भी मूलशिफाभूत शिखा का रखना आवश्यक ही है, जिसके कारण हिन्दु जाति अनन्त शताब्दी-सहस्राब्दियों से लेकर आजतक भी जीवित है; शिखा के काटने-कटवाने वाली जातियाँ उत्पन्न होकर नष्ट हो गईं।

## शिखा की गाँठ

(२०) शिखा में गायत्री मन्त्र द्वारा ग्रन्थि दी जाती है। वैसे सब जानते हैं कि- शिखा मस्तिष्क के केन्द्र-बिन्दु पर स्थापित है। जैसे- रेडियों के ध्वनि विस्तारक केन्द्रों में ऊंचे खम्भे लगे होते हैं, वैसे ही हमारे मस्तिष्क का विद्युत भण्डार शिखास्थान पर है। इस केन्द्र में हमारे विचार, संकल्प और शक्ति-परमाणु प्रतिक्षण बाहर निकल-निकलकर आकाश में दौड़ते रहते हैं। इस प्रवाह से शक्ति का अनावश्यक व्यय होता है और अपना मानसिक कोष घटता है। इसका प्रतिरोध करने के लिए शिखा में ग्रन्थि लगाई जाती है।

सदा ग्रन्थि लगाये रहने से अपनी मानसिक शक्तियों का बहुत सा अपव्यय बच जाता है। इस ग्रन्थि को सन्ध्या के समय से बांधा जाता है। उस समय अनेक सूक्ष्म तत्त्व आकर्षित होकर अपने अन्दर स्थित होते हैं। वे सब मस्तिष्क-केन्द्र से निकलकर बाहर न उठ जाएँ कि-कहीं अपनी साधना के लाभ से वंचित रहना पड़ जाय, इससे शिखा में गाँठ लगाई जाती है।

फुटबाल के भीतर के ब्लेडर में एक हवा भरने की नली होती है, उसमें गाँठ लगा देने से भीतर भरी हुई वायु बाहर नहीं निकलने पाती। साईकल के पहियों में भरी हुई वायु को रोकने के लिए एक छोटी वाल्ट्यूब नामक रबड़ की नली लगी होती है, जिसमें होकर हवा भीतर तो जा सकती है, पर बाहर नहीं आ सकती। गाँठ लगी हुई शिखा से भी यही प्रयोजन पूर्ण होता है। वह बाहर के विचार और शक्ति समूह को ग्रहण तो करती है, पर भीतर के तत्त्वों को अनावश्यक व्यय नहीं होने देती। आचमन से पूर्ण शिखाबन्धन इसलिए नहीं होता, क्योंकि उस समय त्रिविध शक्ति का आकर्षण किया जाता है, फिर उसे बांध दिया जाता है। यही शिखा ग्रन्थि का रहस्य है।

क्रमशः........

(गतांक से आगे)

# रासपञ्चाध्यायी विमर्श ( ३ )

❑ **धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर**
**जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज**

**नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप।**
**अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः।।**
**भाग० १०/२९/१४**

अर्थात् हे महाराज! भगवान् श्रीकृष्ण में छहों ऐश्वर्य विराजते हैं। उनमें सम्पूर्ण ईश्वरता, सम्पूर्ण धर्म, सम्पूर्ण यश, सम्पूर्ण श्री अर्थात् लक्ष्मी और शोभा, सम्पूर्ण ज्ञान और सम्पूर्ण वैराग्य ये छहों भगपदवाच्य गुण निरन्तर विरजमान रहते हैं। किसी भी समय किसी भी परिस्थिति में भगवान् की ईश्वरता समाप्न नहीं होती। किसी भी समय में भगवान् को यश नहीं छोड़ता। उन्हें मनुष्य जैसा अपयश कभी नहीं मिलता, किसी भी समय भगवान् शोभा से दूर नहीं होते और किसी भी समय भगवान् में अज्ञान नहीं आता और कभी भी भगवान वैराग्य से विमुख नहीं होते। इसीलिए रासपंचाध्यायी का प्रारम्भ और रासपंचाध्यायी का विश्राम ये दोनों ही भगवान् शब्द से सम्पुटित हुये। प्रारम्भ और विश्राम में भगवान् शब्द का सम्पुट लगाकर ही रासपंचाध्यायी प्रस्तुत की गई अर्थात् उपक्रम और उपसंहार दोनों में ही भगवान् हैं और जैसे सम्पुट के दो पल्लों के बीच शालग्राम विराजते हैं, उसी प्रकार प्रारम्भ और विश्राम इन दोनों में भगवान् का सम्पुट लगाकर गोपियों के यश को शालग्राम की भाँति वेदव्यास जी ने प्रस्तुत किया है। यदि श्रीकृष्ण भगवान् हैं तो यहाँ व्यर्थ की शंका उठाना ही बहुत बड़ा अपराध है और व्यर्थ का प्रलाप करना ये केवल अपने समय को नष्ट कर देना है। तर्क होना चाहिए परन्तु कुतर्क नहीं। इसलिए मनु ने कहा कि तर्क से धर्म का अनुसन्धान करो, परन्तु उसमें कुतर्क का कोई अवकाश नहीं है कोई अवसर नहीं है **यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मं वेद नेतरः** परन्तु आगे कह दिया कि तर्क को स्वच्छन्द नहीं होना चाहिए **वेदशास्त्राविरोधीयस्तर्कश्चक्षुपरस्यताम् यः तर्क वेदशास्त्राविरोधी स एव अपस्यताम चक्षु** जो तर्क वेद और शास्त्र का अविरोधी हो जो वेद और शास्त्र के विरुद्ध न हो वही तर्क न देखनेवालों का नेत्र है। सामान्य सा सिद्धान्त है कि हरिद्वार में हरि की पैड़ी पर गंगा जी में स्नान करने की सभी को छूट है, करना चाहिए, परन्तु सिकरी पकड़कर। यदि सिकरी छूटी तो व्यक्ति गंगाजी में स्नान नहीं कर सकता वह तो बह जायेगा, समाप्त हो जायेगा। उसकी जीवनसरणी नष्ट हो जायेगी। वह कहीं का भी नहीं रहेगा। इसी प्रकार भारतीय संस्कृतिरूप गंगा में स्नान करते समय वेदरूप सिकड़ी को पकड़कर रखना चाहिए इसे कभी नहीं छोड़ना चाहिए इससे बहने का खतरा नहीं रह जायेगा बहने की समस्या नहीं रहेगी, आशंका नहीं रहेगी। अतएव हम जो कुछ भी सनातनधर्म के सम्बन्ध में विचार करेंगे वहाँ वेद की प्रामाणिकता को पहले स्वीकार करना पड़ेगा। वेद के विरुद्ध हम न तो कुछ कह सकते हैं और न सुन सकते हैं। हमें कुछ भी अभीष्ट नहीं होगा वेद के विरुद्ध। अतएव रासपंचाध्यायी का प्रारम्भ ही भगवान् से हुआ है ''**भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः**'' और इस

रासपंचाध्यायी का विश्राम भी भगवान् शब्द से हो रहा है ''**भक्तिं हरौ भगवति प्रतिलभ्य कामं**'' अर्थात् रासपंचाध्यायी के प्रारम्भ में भगवान् शब्द प्रथमा के एकवचन में आया है और इस रासपंचाध्यायी के विश्राम में भगवान् शब्द सप्तमी के एकवचन में आया है। इसका तात्पर्य यह है कि हमारे जीवन के भगवान् कर्ता भी हैं और हमारे जीवन के भगवान् आधार भी हैं। ''**आधारोऽधिकरम्**'' पा० अ० १/४/४५ आधार को अधिकरण कहा जाता है व्याकरण में अधिकरण तीन प्रकार का होता है ''वैषयिक, अभिव्यापक और औपश्लेषिक''। इसका यही तात्पर्य है कि भगवान् हमारे जीवन में तीनों प्रकार के आधार हैं। भगवान् हमारे वैषयिक आधार भी हैं, भगवान् हमारे अभिव्यापक आधार भी हैं और भगवान् हमारे औपश्लेषिक आधार भी हैं। हम जहाँ भी रह रहे हैं भगवान् के आधार पर रह रहे हैं। वैषयिक, भगवान् के विषय में ही हम रह रहे हैं। भगवान् के समीप रह रहे हैं। भगवान् हमारे अभिव्याप हैं जैसे तिल में तेल, जैसे दूध में घी उसी प्रकार हमारे कण-कण में भगवान् हैं। वो अभिव्यापक हैं जीव व्याप्य है भगवान् व्यापक हैं। भगवान् औपश्लेषिक आधार भी है अर्थात् औपश्लेषिक का तात्पर्य चिपके रहना। भगवान् हमसे चिपके हुए हैं, हमसे सटे हुए हैं, हमसे जुड़े हुए हैं, भगवान हमसे दूर कहाँ हैं। हम भगवान् में हैं और भगवान् हममें हैं। इसीलिए रासपंचाध्यायी के प्रथम श्लोक में भगवान् शब्द कर्त्तारूप में प्रकट हुआ। और प्रस्तुत हुआ विश्राम में सप्तमी के एकवचन के रूप में भगवति भगवान् भगवति। अतएव रासपंचाध्यायी का विचार करते समय इस सिद्धान्त को कभी नहीं छोड़ना चाहिए कि जब भगवान् में छहों भग हैं तो ये अनीश्वरों की भाँति कैसे कार्य करेंगे? जब भगवान् का ऐश्वर्य कभी समाप्त ही नहीं होता तो भगवान् असमर्थ क्यों हो सकते हैं? क्योंकि कामी कभी समर्थ नहीं होता वो असमर्थ हो जाता है, इसीलिए गोस्वामी जी ने कहा कामियों के सम्बन्ध में कि ''नारि विवश नर सकल गोसाईं। नाचइ नट मरकट की नाईं।।'' जैसे नट वानर मदारी की इच्छा से नाचता है, उसी प्रकार सामान्य जीव काम की इच्छा से नाचता है। परन्तु भगवान् कभी वानर की भाँति नाचते नहीं हैं। एक आश्चर्य ही तो है, भगवान् वानरों की भाँति नाचते नहीं हैं प्रत्युत् भगवान् वानरों को नचाते हैं। जैसे रामावतार में भगवान् स्वयं वानरों के चरवाहे बने ''**भजे बिनु वानर के चरवाहें**'' हम कभी-कभी विनोद में कहा करते हैं कि-

**गौओं को चराना खेल भी है,**
**किन्तु वानर को चराना खेल नहीं।**
**गिरिवर को उठाना खेल भी है,**
**किन्तु गिरिधर को उठाना खेल नहीं।**

इसलिए भगवान् काम के अधीन कभी नहीं होते क्योंकि काम के अधीन होता है अनीश्वर। ईश्वर का अर्थ है जो सब पर शासन करे। वे ब्रह्मा से लेकर कीटपर्यन्त जीव पर शासन करते हैं। भगवान कहते हैं-

**''मद् भयाद् वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति मद्भयात्।**
**वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निर्मृत्युश्चरति मद्भयात्।।''**

अर्थात् मेरे भय से वायु चलता है, मेरे भय से सूर्यनारायण नित्य तपते रहते हैं, मेरे भय से इन्द्र वर्षा करते हैं, मेरे भय से अग्नि में दाहकता रहती है। मेरे भय से मृत्यु भी इधर-उधर दौड़ता रहता है। इसलिए सबको भगवान् का डर है।

क्रमशः........

# प्यारे लगैं गुरुदेव

## ( पूज्यपाद जगद्गुरु जी की समर्चा में )

❑ श्रीमती कमला शर्मा 'आशा'

प्यारे लगैं गुरुदेव हमें तो बड़े प्यारे लगें
प्यारे लगें बड़े न्यारे लगें रे-२
गुरुवर के उपदेश हमें तो बड़े प्यारे लगें रे
प्यारे लगें बड़े न्यारे लगे रे-२
प्यारे लगें..................................।।

मस्तक सुन्दर तिलक बिराजे-२
हाथ त्रिदण्ड अरु माला साजे-२
सुन्दर भगवा वेश हमें तो बड़े प्यारे लगें रे
प्यारे लगें बड़े न्यारे लगे रे-२
प्यारे लगें..................................।।

चित्रकूट ही जिनको भाता-२
मन्दाकिनी मैया के स्नाता-२
जिनके विकलांग महेश हमें तो बड़े प्यारे लगें रे
प्यारे लगें बड़े न्यारे लगे रे-२
प्यारे लगें..................................।।

वाणी में शारदा समाई-२
हृदय बिराजत सिय-रघुराई-२
हनुमत जो स्वयंमेव हमें तो बड़े प्यारे लगें रे
प्यारे लगें बड़े न्यारे लगे रे-२
प्यारे लगें..................................।।

दिव्य-दिव्य जब चुटकी बजावें-२
वाद्य यंत्र सब फीके लागें- ( बाजे गाजे भी सब लाजें, ढोलक सारंगी शरमावैं, तबला हरमुनिया सकुचावैं )
गाएँ जैसे शेष हमें तो बड़े प्यारे लगे रे-२
प्यारे लगें..............................।।

गुरुदेव की महिमा भारी
गुरुगीता बरनी त्रिपुरारी
सप्तर्षिन हमें विशेष हमें तो बड़े प्यारे लगें रे
तपस्वियों हमें विशेष हमें तो बड़े प्यारे लगें रे
प्यारे लगें..............................।।

ना जाऊँ मथुरा ना जाऊँ काशी
गुरुवर चार धाम सुखराशी
गुरु ब्रह्मा विष्णु महेश हमें तो बड़े प्यारे लगें रे
प्यारे लगें..............................।।

मंगल भवन अमंगल हारी
तुलसी मण्डल के उपकारी
मानस के संदेश हमें तो बड़े प्यारे लगें रे
प्यारे लगें..............................।।

'आशा' तृष्णा नहीं सतावें
गुरुदेव की शरण जो आवें
मिट जाएँ तन कलेश हमें तो बड़े प्यारे लगें रे
प्यारे लगें बड़े न्यारे लगें रे
गुरुवर के उपदेश हमें तो बड़े प्यारे लगें रे
प्यारे लगें गुरुदेव हमें तो बड़े प्यारे लगें।।

❑❑❑

# सेवा का स्वरूप

❑ प्रस्तुति- श्रीशेषधर जी शुक्ल ( श्रीअयोध्या जी )

भगवान् का भक्त, जो भगवान् की सेवा को ही जीवन का स्वरूप बना लेता है, निरन्तर भगवत्सुखार्थ भगवान् की सेवा में संलग्न रहता है। ऐसे सेवापरायण सेवक का कैसा भाव-स्वभाव होता है, भक्तराज प्रह्लाद की निम्नलिखित पावन वाणी में उसके दर्शन कीजिये। भक्तवाञ्छा-कल्पतरु भगवान् श्रीनृसिंहदेव ने भक्तराज प्रह्लाद जी से जब वर माँगने को कहा तब प्रह्लाद जी अत्यन्त विनम्र शब्दों में भगवान् से कहते हैं- 'भगवन्! मैं तो जन्म से ही भोगासक्त हूँ, मुझे आप वरों का प्रलोभन मत दीजिये मैं तो भोगों के संग से डरकर उनके द्वारा होने वाली तीव्र वेदना का अनुभव कर उनसे छूटने की इच्छा से ही आपकी शरण में आया हूँ। जगद्गुरो! आप मेरी परीक्षा ही करते होंगे, नहीं तो दयामय! भोगों में फँसाने वाले वर की बात आप मुझसे कैसे कहते? परंतु प्रभो-

**यस्त आशिष आशास्ते न स भृत्यः स वै वणिक्।।**
**आशासानो न वै भृत्यः स्वामिन्याशिष आत्मनः।**
**न स्वामी भृत्यतः स्वाम्यमिच्छन् यो राति चाशिषः।।**
**अहं त्वकामस्त्वद् भक्तस्त्वं च स्वाम्यनपाश्रयः।**
**नान्यथेहावयोरर्थो राजसेवकयोरिव।।**

*(श्रीमद्भागवत ७/१०/४-६)*

'जो सेवक स्वामी से अपनी कामनाएँ पूर्ण करना चाहता है, वह चाकर-सेवक नहीं है; वह तो लेन-देन करने वाला बनिया है। जो स्वामी से कामनापूर्ति चाहता है, वह सेवक नहीं; और जो सेवक से सेवा कराने के लिये उसका स्वामी बनने के लिये उसकी कामना पूर्ण करता है, वह स्वामी नहीं। मैं कोई भी कामना न रखनेवाला आपका सेवक हूँ और आप मुझसे कुछ भी अपेक्षा न रखने वाले स्वामी हैं। हम लोगों का यह सम्बन्ध राजा और उसके सेवकों का प्रयोजनवश रहने वाला स्वामी-सेवक का सम्बन्ध नहीं है।'

ऐसा केवल सेवाव्रती सेवक किस प्रकार का त्यागी होता है, इसका स्पष्टीकरण करते हुए कपिलदेव के रूप में भगवान् कहते हैं-

**सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत।**
**दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः।।**
**स एव भक्तियोगाख्य आत्यन्तिक उदाहृतः।**
**येनातिव्रज्य त्रिगुणं मद्भावायोपपद्यते।।**

*(श्रीमद्भागवत ३/२९/१३-१४)*

'मेरे वे सेवक मेरी सेवा को छोड़कर दिये जाने पर भी सालोक्य (भगवान् के धाम में नित्य निवास), सार्ष्टि (भगवान् के समान ऐश्वर्यप्राप्ति), सामीप्य (भगवान् की नित्य समीपता), सारूप्य (भगवान् के जैसे दिव्य रूप-सौन्दर्य की प्राप्ति) और एकत्व (भगवान् के साथ मिल जाना- उसके साथ एक हो जाना या ब्रह्मरूप को प्राप्त होना)- इन पाँचों मुक्तियों को ग्रहण नहीं करते। यह भक्तियोग ही साध्य है। इसके द्वारा पुरुष तीनों गुणों को लाँघकर मेरे भाव को, दिव्य विशुद्ध भगवत्प्रेम को प्राप्त होता है।'

इन भगवान् की सेवा किनमें कैसे करनी चाहिये? अवश्य ही अपने इष्ट भगवान् के मङ्गलविग्रह स्वरूप (प्रतिमा)-की पूजा करना भी बड़ा श्रेयस्कर है, पर उतना ही पर्याप्त नहीं है। भगवान् आगे चलकर कहते हैं-

**अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्मावस्थितः सदा।**
**तमवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेऽर्चाविडम्बनम्।।**
**यो मां सर्वेषु भूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम्।**
**हित्वार्चां भजते मौढ्याद् भस्मन्येव जुहोति सः।।**

*(श्रीमद्भागवत ३/२९/२१-२२)*

'मैं आत्मा रूप से सदा सभी जीवों में स्थित हूँ; इसलिये जो लोग मुझ सर्वभूतस्थित परमात्मा का

अनादर करके केवल प्रतिमा में ही मेरा पूजन करते हैं, वे पूजन विडम्बनामात्र हैं। मैं सबका आत्मा, परमेश्वर सभी जीवों में स्थित हूँ; ऐसी स्थिति में जो मोहवश मेरी उपेक्षा करके केवल प्रतिमा के पूजन में ही लगा रहता है, वह तो मानो भस्म में ही आहुति डालता है।'

इसीलिये चराचर प्राणीमात्र में भगवान् को देखकर उनकी सेवा करनी चाहिये।

**'मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत।'**

यह भगवत्सेवा ही वास्तविक सेवा है। यही सबसे ऊँची प्रेमभृत्यता है। भगवान् इस प्रेम सेवा के दिव्य मधुर रस का आस्वादन करने के लिये नित्य निष्काम तथा नित्य तृप्त होने पर भी सकाम और अतृप्त हो जाते हैं। इसी दिव्य परम सेवा का उपदेश महात्माओं के पुण्य जीवन से प्राप्त होता है।

रुचि-वैचित्र्य, तम-रज-सत्त्व गुण तथा मनुष्य की मानस स्थिति के अनुसार सेवा के निकृष्ट-उत्कृष्ट बहुत-से रूप लोक में प्रचलित हैं; जैसे-

सेवा करना नहीं, पर सेवक कहलाना, सेवक के रूप में अपने को व्यक्त करना। यह दम्भ, पाखण्ड और पाप है।

किसी बड़े स्वार्थसाधन के उद्देश्य से ही या बड़ा बदला पाने के लिये ही किसी की कुछ सेवा करना; जैसे- अधिकाकरियों की सेवा, व्यक्तिगत रूप में मन्त्रियों आदि की सेवा, इसी लक्ष्य से संस्थाओं को तथा राजनीतिक पार्टियों को दान आदि देना, चुनाव में सहायता करना। चुनाव में जीतने या वोट पाने के लिये कहीं कुछ जनसेवा करके उसका विज्ञापन करना आदि। यह वास्तव में न सेवा है, न दान। यह एक प्रकार से थोड़ी पूँजी लगाकर बड़ा लाभ प्राप्त करने का व्यवसाय या जूआ है।

अपने को उपकार करने वाला मानकर सेवा का अभिमान करके सेव्य को अपने से नीचा मानना, उस पर अहसान करना, उसके द्वारा कृतज्ञता तथा प्रत्युपकार प्राप्त करने का अपने को अधिकारी समझना और न मिलने पर उसे कृतघ्न मानना यह भी शुद्ध सेवा नहीं है, व्यापार ही है।

सेव्य के सुख-हित या उसके मन के प्रतिकूल अपने इच्छानुसार बर्ताव करके उसको सेवा के नाम से सेव्य पर लादना-यह भी सेवा की विडम्बना ही है।

सेवा करने की शुद्ध इच्छा से अपने को प्राप्त तन-मन-धन के द्वारा यथायोग्य सेव्य की आवश्यक-तानुसार सेवा करके प्रसन्नता या आत्मसंतोष प्राप्त करना-यह अच्छी सेवा है।

श्रद्धापूत हृदय से सेव्य के सुख-हित के लिये अपनी इच्छा के विपरीत भी उसके मनोऽनुकूल सेवा करना तथा उसको सुखी देखकर परम सुखी होना- यह भी सराहनीय सेवा है।

अपनी प्राप्त वस्तुओं के द्वारा किसी अभावग्रस्त की मूक सेवा करना, जिससे उसको यह पता भी न लगे कि यह सेवा कौन कर रहा है। कुछ वर्षों पूर्व एक अभावग्रस्त सम्भ्रान्त सज्जन ने बताया था कि उनके पास घर-खर्च के लिये वर्षों से प्रतिमास विभिन्न नाम तथा स्थानों से अमुक रकम मनीऑर्डर से नियमित आती है, पर बहुत खोजन पर भी भेजने वाले का पता नहीं लगा। शबरी जी इसी भाँति छिपकर चोरी से ऋषियों के आश्रमों में प्रतिदिन झाड़ू लगाकर कुश-कण्टक दूर किया करती थीं। इसमें ख्याति से भय रहता है और सेवक कहलाने में संकोच तथा लज्जा का बोध। यह श्रेष्ठ सेवा है।

जो सेवा सेवा के लिये ही होती है, सेवा किये बिना चैन नहीं पड़ता, रहा नहीं जाता, जो आत्मसंतोष के लिये ही सहजभाव से होती है, यह बहुत श्रेष्ठ सेवा है। चराचर प्राणिमात्र में एक आत्मा मानकर अपने आपकी सेवा की भाँति आवश्यकतानुसार जो सब प्रकार की सेवा होती है- यह श्रेष्ठ आत्मसेवा है। इसमें प्राणियों के सुख-दुःख की अपने में अनुभूति होती है। यह आत्मतत्त्वज्ञान की परिचायक उत्कृष्ट सेवा है।

जड़-चेतन जीवमात्र में भगवान् के स्वरूप का दर्शन कर, भगवद्बुद्धि से अपने प्रत्येक कर्म के द्वारा उनकी यथायोग्य सहज उत्साह-उल्लासपूर्ण सेवा होती है। उसके प्रत्येक कार्य से जगत् चराचर के रूप में अभिव्यक्त भगवान् प्रसन्न होते हैं। यह सेवा उत्कृष्ट भगवत्पूजा है।

जिस सेवा में सेवक के अहं के सुख-कल्याण की, स्वर्ग-मोक्ष की और दुःख-नरक की स्मृति का ही सर्वथा अभाव रहता है; अपने प्रत्येक विचार, कर्म, पदार्थ आदि के द्वारा प्रियतमरूप भगवान् को सुख पहुँचाना ही जिसका अनन्य स्वभाव होता है, उसके द्वारा जो स्वाभाविक चेष्टा होती है, वह भुक्ति-मुक्ति को नगण्य मानकर उनके महान् त्याग के परम पवित्र अनन्य मधुर धरातल पर होने के कारण-परम प्रेमरूप सर्वोत्कृष्ट परम सेवा है। इस सेवा की कहीं तुलना नहीं है।

मनुष्य को सेवा का यही लक्ष्य सामने रखकर यथायोग्य सेवा के पवित्र पथ पर अग्रसर होते रहना चाहिये। ऐसी सेवा करने वाले सेवक के पास आत्म-साक्षात्कार कैवल्य मोक्षरूप सिद्धि तो स्वयमेव आती है और उसी स्वीकार करने के लिये अनुनय-विनय करती है, उसे नित्यमुक्तस्वरूप भगवान् को वश में करके उन्हें निरन्तर बाँधकर रखने वाला प्रेम प्राप्त होता है, जो मानव-जीवन के लिये साधन तथा साध्य दोनों है। निष्काम-कर्मरूप सेवा, भक्ति-साधनरूप सेवा, आत्मज्ञानरूप सेवा के साथ ही इस परम प्रेमरूप सेवा का आदर्श ग्रहण करके जीवन को धन्य बनाना चाहिये-

**'साधन सिद्धि राम पग नेहू।'**

काकभुशुण्डि जी गरुड़ जी से कहते हैं-

**सब कर मत खगनायक एहा।**
**करिअ राम पद पंकज नेहा।।**

❑❑❑

# माँ के उपदेश का महत्व

❑ **श्रीशिवकुमार गोयल**

गोपीचन्द प्रसिद्ध राजा थे। संतों के सत्संग तथा संसार की माया की निस्सारता देखकर उनके मन में वैराग्य की भावना पैदा हो गई। वे अपनी माँ के पास पहुँचे। बोले- 'मातुश्री- मैं राजपाट त्यागकर संन्यासी बनना चाहता हूँ। आपकी आज्ञा मांगने आया हूँ।'

माँ स्वयं अध्ययनशील तथा ज्ञानवती थी। वे बोलीं- 'बेटा संन्यासी बनना हंसी खेल नहीं है। इन्द्रियों पर संयम रखने का अभ्यास किए बिना संन्यास-धर्म निभाना असंभव है। संयम ही संन्यासी का प्रमुख गुण होता है। अतः तू महल में रहकर कुछ अवधि तक संयम पालन की साधन कर। मन व इन्द्रियों पर संयम का अभ्यास होते ही संन्यास ले लेना।

राजा गोपीचन्द ने संयम की साधना की। अभ्यास में उन्हें संयमी बना दिया। माँ का आशीर्वाद लेकर वे संन्यासी बनकर घर से निकल पड़े।

वर्षों तक तीर्थयात्रा करने, वृद्ध संत-महात्माओं का सत्संग करने के बाद एक दिन अचानक वे अपने महल के बाहर पहुँचे। हाथ में भिक्षापात्र था। भिक्षा देने की आवाज लगाई। माँ ने आवाज पहचान ली। भागी-भागी द्वार पर पहुँची। उसने चावल के तीन दाने भिक्षापात्र में डाल दिए और उपदेश देते हुए वह बोली- 'चावल के तीन दाने तीन उपदेशों के प्रतीक हैं। पहला उपदेश है जैसे पहले राजमहल में सुरक्षित रहता था- वैसे ही रहना। जिस प्रकार मेरे भोजन के बाद भोजन करता था- वृद्ध संतों के बाद भोजन करना और तीसरा है जैसे महल में निश्चिन्तता से सोता था वैसे ही जंगल में भी गहरी नींद सोना।'

गोपीचन्द माँ की अनूठी भिक्षा (उपदेश) ग्रहण कर गद्गद हो उठे।

❑❑❑

# भोगी और योगी का जीवन

भोगी देहाभिमानी होता है, योगी चिन्मात्रस्वरूप आत्माभिमानी होता है। भोगी कामी होने के कारण असत् संसार-प्रपञ्च का उपासक होता है और योगी त्यागी होने के कारण सत्स्वरूप परमात्मा का उपासक होता है। इसलिये भोगी पर जगत्-प्रपञ्च का प्रभाव पड़ता है। योगी पर निष्प्रपञ्च सत्याधार का प्रभाव पड़ता है। भोगी जगत्-प्रपञ्च में बँधकर सुख के पीछे दुःख एवं अशान्ति से घिरा रहता है और योगी सत्याधार का आश्रय लेकर शाश्वती शान्ति तथा शक्ति प्राप्त करता है।

भोगी स्वार्थी होता है और योगी परमार्थी होता है। भोगी अतृप्त और निर्बल होता है, योगी तृप्त और सबल होता है इसलिये भोगी संसार के पथ में सदा नीचे देखते हुए पतित होता है और योगी परमार्थ के पथ में सदा ऊपर देखते हुए उत्थान को प्राप्त होता है।

भोगी की विषयसुखानुभूति अपने से बहार पर-पदार्थों के संयोग पर निर्भर है और योगी का आनन्दानुभव अपने-आप में ही सत्यात्मा के योग पर निर्भर है। भोगी विषय-सुखों के भोग के लिये परतन्त्र है और योगी योगानन्द के लिये सदा स्वतन्त्र है। भोगी में भोगों के द्वारा शक्ति का अपव्यय होता है और योगी में योग के द्वारा शक्ति का संचय होता है। भोगी के समस्त साधन, संयम, तप आदि सीमित अहं के लिये होते हैं और योगी के समस्त साधन, संयम, तप आदि अपने परम प्रेमास्पद परमात्मा के लिये होते हैं। भोगी संसार का संयोगी होता है, किंतु योगी संसार का वियोगी होता है। संसार के संयोग से भोगों की सिद्धि होती है, संसार के वियोग से योग की सिद्धि होती है। जो अज्ञानी, अविवेकी है वही भोगी होता है; जो ज्ञानी, विवेकी है। वही योगी होता है।

भोग का पथ राग है जो अन्धकार में होकर जाता है और संसार की अतल गहराई में उतार देता है, योग का पथ त्याग है जो प्रकाश में होकर जाता है और परमोत्कृष्ट सत्य की असीम महानता में पहुँचा देता है।

जिन योगाभ्यासियों के मन में किसी प्रकार के सांसारिक ऐश्वर्य-सुख भोगों की कामना होती है, उनका योगाभ्यास शक्ति-प्राप्ति के लिये होता है। परंतु जिन लोगों में सांसारिक सुख-भोग की कामना नहीं रहती, जो तृप्त एवं विरक्त रहते हैं, उनका योगाभ्यास शक्तिमान् की प्राप्ति के लिये होता है। इसके अतिरिक्त जो साधक विरक्त होने के साथ सूक्ष्म बुद्धिवाले, तत्त्वान्वेषक हैं, उनका योग शान्ति-प्राप्ति के लिये होता है। जो साधक सांसारिक सुखों के कामी हैं, वे योगाभ्यास से शक्ति प्राप्त करने पर योगी बनते हैं। ऐसे व्यक्तियों में योगाभ्यास से शक्ति का जो कुछ विकास होता है, भोगाभ्यास से उतना ही शक्ति का ह्रास होता है। जो साधक सांसारिक सुख-भोगों से विरक्त हैं और परमाधार प्रभु के अनुरक्त हैं, वे योगाभ्यास से प्राप्त शक्ति के भोगी न बनकर उस शक्ति से असहायों की सेवा करते हुए शक्तिमान् के योगी बनते हैं। जो यथार्थ विवेकी पुरुष शक्तिमान् के स्वरूप को तत्त्वतः जान लेते हैं, वे अपने योगाभ्यास के द्वारा अपने-आप में ही परमाधार सत्ता का नित्य अभेदानुभव करते हुए परम शान्ति को प्राप्त होते हैं। मनुष्य का जितना अधिक जीवन सांसारिक सुखों को भोगते हुए व्यतीत होता है, उतना ही उसमें विषय-सुखों की वासना प्रबल होती है और आगे चलकर उन वासनाओं से मुक्त होने में उतनी ही कठिनता उस भोगी मनुष्य को होती है; क्योंकि विविध भोग-सुखों के त्याग करने पर भी उनके संस्कारों की गन्ध उसी प्रकार आया करती है, जिस प्रकार तेल के पात्र से तेल निकाल देने पर भी तेल की गन्ध आती रहती है। भोगी बन्धन में रहता है, योगी मुक्त होता है।

❑ कल्याण से साभार

# भगवान् आज ही मिल सकते हैं

**❑परमवीतराग सन्त श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदास जी महाराज**

परमात्मप्राप्ति बहुत सुगम है। इतना सुगम दूसरा कोई काम नहीं है। परंतु केवल परमात्मा की चाहना रहे, साथ में दूसरी कोई भी चाहना न रहे। कारण कि परमात्मा के समान दूसरा कोई है ही नहीं। जैसे परमात्मा अनन्य हैं, ऐसे ही उनकी चाहना भी अनन्य होनी चाहिये। सांसारिक भोगों के प्राप्त होने में तीन बातें होनी जरूरी हैं- इच्छा, उद्योग और प्रारब्ध। पहले तो सांसारिक वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा होनी चाहिये, फिर उसकी प्राप्ति के लिये कर्म करना चाहिये। कर्म करने पर भी उसकी प्राप्ति तब होगी, जब उसके मिलने का प्रारब्ध होगा। अगर प्रारब्ध नहीं होगा तो इच्छा रखते हुए और उद्योग करते हुए भी वस्तु नहीं मिलेगी। इसलिये उद्योग तो करते हैं लाभ प्राप्ति के लिये, पर लग जाता है घाटा! परंतु परमात्मा की प्राप्ति इच्छा मात्र से होती है। उसमें उद्योग और प्रारब्ध की जरूरत नहीं है। परमात्मा के मार्ग में घाटा कभी होता ही नहीं, लाभ-ही-लाभ होता है।

एक परमात्मा के सिवाय कोई भी चीज इच्छा मात्र से नहीं मिलती। कारण यह है कि मनुष्य शरीर परमात्मा की प्राप्ति के लिये ही मिला है। अपनी प्राप्ति का उद्देश्य रखकर ही भगवान् ने हमारे को मनुष्य शरीर दिया है। दूसरी बात, परमात्मा सब जगह हैं। सुईं की तीखी नोक टिक जाय, इतनी जगह भी भगवान् से खाली नहीं है। अतः उनकी प्राप्ति में उद्योग और प्रारब्ध का काम ही नहीं है। कर्मों से वह चीज मिलती है, जो नाशवान् होती है। अविनाशी परमात्मा कर्मों से नहीं मिलते। उनकी प्राप्ति उत्कट इच्छा मात्र से होती है।

पुरुष हो या स्त्री हो, साधु हो या गृहस्थ हो, पढ़ा-लिखा हो या अनपढ़ हो, बालक हो या जवान हो, कैसा ही क्यों न हो, वह इच्छा मात्र से परमात्मा को प्राप्त कर सकता है। परमात्मा के सिवाय न जीने की चाहना हो, न मरने की चाहना हो, न भोगों की चाहना हो, न संग्रह की चाहना हो। वस्तुओं की चाहना न होने से वस्तुओं का अभाव नहीं हो जायगा। जो हमारे प्रारब्ध में लिखा है, वह हमारे को मिलेगा ही। जो चीज हमारे भाग्य में लिखी है, उसको दूसरा नहीं ले सकता- '**यदस्मदीयं न हि तत्परेषाम्**'। हमारे को आने वाला बुखार दूसरे को कैसे आयेगा? ऐसे ही हमारे प्रारब्ध में धन लिखा है जो जरूर आयेगा। परंतु परमात्मा की प्राप्ति में प्रारब्ध नहीं है।

परमात्मा किसी मूल्य के बदले नहीं मिलते। मूल्य से वही वस्तु मिलती है, जो मूल्य से छोटी होती है। बाजार में किसी वस्तु के जितने रुपये लगते हैं, वह वस्तु उतने रुपयों की नहीं होती। हमारे पास ऐसी कोई वस्तु (क्रिया और पदार्थ) है ही नहीं, जिससे परमात्मा को प्राप्त किया जा सके। वह परमात्मा अद्वितीय है, सदैव है, समर्थ है, सब समय में है और सब जगह है। वह हमारा है और हमारे में है- '**सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः**' (गीता १५/१५), '**ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति**' (गीता १८/६१)। वह हमारे से दूर नहीं है। हम चौरासी लाख योनियों में चले जायँ तो भी भगवान् हमारे हृदय में रहेंगे। स्वर्ग या नरक में चले जायँ तो भी वे हमारे हृदय में रहेंगे। पशु-पक्षी या वृक्ष आदि बन जायँ तो भी वे हमारे हृदय में रहेंगे। देवता बन जायँ तो भी वे हमारे हृदय में रहेंगे। तत्वज्ञ, जीवन्मुक्त बन जायँ तो भी वे हमारे हृदय में रहेंगे। दुष्ट-से-दुष्ट, पापी-से-पापी, अन्यायी-

से-अन्यायी बन जायँ तो भी वे भगवान् हमारे हृदय में रहेंगे। ऐसे सबके हृदय में रहने वाले भगवान् की प्राप्ति क्या कठिन होगी? पर जीने की इच्छा, मान की इच्छा, बड़ाई की इच्छा, सुख की इच्छा, भोग की इच्छा आदि दूसरी इच्छाएँ साथ में रहते हुए भगवान् नहीं मिलते। कारण कि भगवान के समान तो भगवान् ही हैं। उनके समान दूसरा कोई था ही नहीं, है ही नहीं, होगा ही नहीं, हो सकता ही नहीं, फिर वे कैसे मिलेंगे? केवल भगवान की चाहना होने से ही वे मिलेंगे। अविनाशी भगवान् के सामने नाशवान् की क्या कीमत है? क्या नाशवान् क्रिया और पदार्थ के द्वारा वे मिल सकते हैं? नहीं मिल सकते। जब साधक भगवान् से मिले बिना नहीं रह सकते, तब भगवान् भी उससे मिले बिना नहीं रहते, क्योंकि भगवान् का स्वभाव है- **'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'** (गीता ४/११) 'जो भक्त जिस प्रकार मेरी शरण लेते हैं, मैं उन्हें उसी प्रकार आश्रय देता हूँ।'

मान लें कि कोई मच्छर गरुड जी से मिलना चाहे और गरुड जी भी उससे मिलना चाहें तो पहले मच्छर गरुड जी के पास पहुँचेगा या गरुड जी मच्छर के पास पहुँचेंगे? गरुडजी से मिलने में मच्छर की ताकत काम नहीं करेगी। इसमें तो गरुड जी की ताकत ही काम करेगी। इसी तरह परमात्म प्राप्ति की इच्छा हो तो परमात्मा की ताकत ही काम करेगी। इसमें हमारी ताकत, हमारे कर्म, हमारा प्रारब्ध काम नहीं करेगा, प्रत्युत हमारी चाहना ही काम करेगी। हमारी चाहना के बिना और किसी चीज की आवश्यकता नहीं है।

हम तो भगवान् के पास नहीं पहुँच सकते तो क्या भगवान् भी हमारे पास नहीं पहुँच सकते? हम कितना ही जोर लगायें, पर भगवान् के पास नहीं पहुँच सकते। परंतु भगवान् तो हमारे हृदय में ही विराजमान हैं! हम भगवान् को दूर मानते हैं, इसलिये भगवान् हमसे दूर होते हैं। द्रौपदी ने भगवान् को **'गोविन्द द्वारकावासिन्'** कहकर पुकारा तो भगवान् को द्वारका जाकर आना पड़ा। वह यहाँ कहती तो वे झट से यहीं प्रकट हो जाते! अगर हम ऐसा मानते हैं कि भगवान् अभी नहीं मिलेंगे तो वे नहीं मिलेंगे; क्योंकि हमने आड़ लगा दी।

गोरखपुर की एक घटना है। संवत् २००० से पहले की बात है। मैं गोरखपुर में व्याख्यान देता था। वहाँ सेवाराम जी नाम के एक सज्जन थे, जो बैंक में काम करते थे। एक दिन मैंने व्याख्यान में कह दिया कि अगर आपका दृढ़ विचार हो जाय कि भगवान् आज मिलेंगे तो वे आज ही मिल जायँगे! उन सज्जन को यह बात लग गयी। उन्होंने विचार कर लिया कि हमें तो आज ही भगवान् से मिलना है। वे पुष्पमाला, चन्दन आदि ले आये कि भगवान् आयेंगे तो उनको माला पहनाऊँगा, चन्दन चढ़ाऊँगा! वे कमरा बंद करके भगवान् के आने की प्रतीक्षा में बैठ गये। समय पर भगवान् के आने की सम्भावना भी हो गयी और सुगन्ध भी आने लगी, पर भगवान् प्रकट नहीं हुए। दूसरे दिन उन्होंने मेरे से कहा कि आज आप मेरे घर से भिक्षा लें। मैं कई घरों से भिक्षा लेकर पाता था। उस दिन उनके घर गया तो उन्होंने मेरे से पूछा कि भगवान् मिलने वाले थे, सुगन्ध भी आ गयी थी, फिर बाधा क्या लगी कि वे मिले नहीं? मैंने कहा कि भाई! मेरे को इसका क्या पता? परंतु मैं तुम्हारे से पूछता हूँ कि क्या तुम्हारे मन में यह बात आती थी कि इतनी जल्दी भगवान् कैसे मिलेंगे? वे बोले कि यह बात तो आती थी! मैंने कहा कि इसी बातने अटकाया! अगर मन में यह बात होती कि भगवान् मेरे को अवश्य मिलेंगे, उनको मिलना ही पड़ेगा तो वे जरूर मिलते। भगवान् ऐसे कैसे जल्दी मिलेंगे- ऐसा भाव करके तुमने ही बाधा लगायी है।

**अगर आप विचार कर लें कि भगवान् आज मिलेंगे तो वे आज ही मिल जायँगे! परंतु मन में यह छाया नहीं आनी चाहिये कि इतनी जल्दी कैसे मिलेंगे?** भगवान् आपके कर्मों से अटकते नहीं। अगर आपके दुष्कर्म से, पापकर्म से भगवान् अटक जायँ तो वे मिलकर भी क्या निहाल करेंगे? परंतु भगवान् किसी कर्म से अटकते नहीं। ऐसी कोई शक्ति है ही नहीं, जो भगवान् को मिलने से रोक दे। वे न तो पापकर्मों से अटकते हैं, न पुण्यकर्मों से अटकते हैं। वे सबके लिये सुलभ हैं। अगर भगवान् हमारे पापों से अटक जायँ तो हमारे पाप भगवान् से भी प्रबल हुए! अगर पाप प्रबल (बलवान्) हैं तो भगवान् मिलकर भी क्या निहाल करेंगे? जो पापों से ही अटक जाय, उसके मिलने से क्या लाभ? परंतु भगवान् इतने निर्बल नहीं है, जो पापों से अटक जायँ। उनके समान बलवान् कोई है नहीं, हुआ नहीं, होगा नहीं, हो सकता ही नहीं। आपकी जोरदार इच्छा हो जाय तो आप कैसे ही हों, भगवान् तो मिलेंगे, मिलेंगे, मिलेंगे! उनको मिलना पड़ेगा, इसमें संदेह नहीं है। परमात्मा की प्राप्ति के लिये ही तो मानवजन्म मिला है, नहीं तो पशु में और मनुष्य में क्या अन्तर हुआ?

**खादते मोदते नित्यं शुनकः शूकरः खरः।**
**तेषामेषां को विशेषो वृत्तिर्येषां तु तादृशी।।**
**सूकर कूकर ऊँट खर, बड़ पशुअनमें चार।**
**तुलसी हरि की भगति बिनु, ऐसे ही नर नार।।**

देवता भोगयोनि है। वे भी चाहते हैं कि भगवान् हमारे को मिलें– **'देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः'** (गीता ११/५२)। वे भगवान् को चाहते तो हैं, पर भोगों की इच्छा को नहीं छोड़ते। यही दशा मनुष्यों की है। अगर आप हृदय से भगवान् को चाहो तो उनका मिलना ही पड़ेगा, इसमें संदेह नहीं है पर आप ही बाधा लगा दो कि भगवान् नहीं मिलेंगे, तो फिर वे नहीं मिलेंगे! गीता में साफ लिखा है–

**अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।**
**साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः।।**
**क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।**
**कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।।**

*(गीता ९/३०-३१)*

'अगर कोई दुराचारी-से-दुराचारी भी अनन्यभक्त होकर मेरा भजन करता है तो उसको साधु ही मानना चाहिये। कारण कि उसने निश्चय बहुत अच्छी तरह कर लिया है।'

'वह तत्काल (उसी क्षण) धर्मात्मा हो जाता है और निरन्तर रहने वाली शान्ति को प्राप्त हो जाता है। हे कुन्तीनन्दन! मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता– ऐसी तुम प्रतिज्ञा करो।'

तात्पर्य है कि दुराचारी-से-दुराचारी मनुष्य भी यदि **'अनन्यभाक्'** हो जाय अर्थात् भगवान् के सिवाय कोई चाहना न रखे तो उसको भी साधु मान लेना चाहिये; क्योंकि उसने निश्चय पक्का कर लिया है कि भगवान् अवश्य मिलेंगे।

आप केवल भगवान् की ही इच्छा करो और कोई इच्छा मत करो। न जीने की इच्छा करो, न मरने की इच्छा करो। न मान की इच्छा करो, न बड़ाई की इच्छा करो। न भोगों की इच्छा करो, न रुपयों की इच्छा करो। केवल एक भगवान् की इच्छा करो तो वे मिल जायँगे। कम-से-कम मेरी बात की परीक्षा तो करके देखो! भगवान् आपको मिलते नहीं; क्योंकि आप उनको चाहते नहीं। आपके भीतर रुपयों की चाहना हो तो भगवान् बीच में कूदकर क्यों पड़ेंगे? संसार में सबसे रद्दी वस्तु रुपया है। रुपयों से रद्दी चीज दूसरी कोई है ही नहीं। ऐसी रद्दी चीज में आपका

मन अटका हुआ हो तो भगवान् कैसे मिलेंगे? रुपये देकर आप भोजन, वस्त्र, सवारी आदि खरीद सकते हो, पर रुपया स्वयं न तो खाने के काम आता है, न पहनने के काम आता है, न सवारी के काम आता है। तात्पर्य है कि रुपये काम नहीं आते, प्रत्युत उनका खर्च काम आता है।

**परमात्मा इच्छामात्र से मिलते हैं। उनको रोकने की ताकत किसी में भी नहीं है। छोटा बालक रोता है तो माँ आ ही जाती है। बालक घर का कुछ भी काम नहीं करता, उल्टे काम करने में आपको बाधा लगाता है, पर जब वह रोने लगता है, तब सब घरवाले उसके पक्ष में हो जाते हैं। सास-ससुर, देवर-जेठ सभी कहते हैं कि बहू! बालक रो रहा है, उसको उठा ले। माँ को सब काम छोड़कर बालक को उठाना पड़ता है। बालक का एकमात्र बल रोना ही है- 'बालानां रोदनं बलम्'। रोने में बड़ी ताकत है। आप सच्चे हृदय से व्याकुल होकर भगवान् के लिये रोने लग जाओ तो जितने भगवान् के भक्त हुए हैं, सन्त-महात्मा हुए हैं, वे सब-के-सब आपके पक्ष में हो जायँगे और भगवान् को उलाहना देंगे कि आप मिलते क्यों नहीं? वे ही भगवान् के सास-ससुर आदि हैं!**

वास्तव में भगवान् मिले हुए ही हैं। आपकी सांसारिक इच्छा ही उनको रोक रही है। आप रुपयों की इच्छा करते हो, भोगों की इच्छा करते हो तो भगवान् उनको जबर्दस्ती नहीं छुड़ाते। अगर आप सांसारिक इच्छाएँ छोड़कर केवल भगवान् को ही चाहो तो आपको कौन रोक सकता है? आपको बाधा देने की किसी की ताकत नहीं है। अगर आप भगवान् के लिये व्याकुल हो जाओ तो भगवान् भी व्याकुल हो जायँगे। आप संसार के लिये व्याकुल हो जाओ तो संसार व्याकुल नहीं होगा। आप संसार के लिये रोओ तो संसार प्रसन्न नहीं होगा पर भगवान् के लिये रोओगे तो वे भी रो पड़ेंगे।

बालक सच्चा रोता है या झूठा, यह माँ ही समझती है। बालक के आँसू तो आये नहीं, केवल ऊँ-ऊँ करता है तो माँ समझ लेती है कि यह ठगाई करता है! अगर बालक सच्चाई से रो पड़े, उसके साँस ऊँचे चढ़ जायँ तो माँ सब काम भूल जायगी और झट उसको उठा लेगी। यदि माँ उस बालक के पास न जाय तो उस माँ को मर जाना चाहिये! उसके जीने का क्या लाभ? ऐसे ही सच्चे हृदय से चाहने वाले को भगवान् न मिलें तो भगवान् को मर जाना चाहिये!

एक साधु थे। उनके पास एक आदमी आया और उसने पूछा कि भगवान् जल्दी कैसे मिलें? साधु ने कहा कि भगवान् उत्कट चाहना होने से मिलेंगे। उसने पूछा कि उत्कट चाहना कैसी होती है? साधु ने कहा कि भगवान् के बिना रहा न जाय। वह आदमी ठीक समझा नहीं और बार-बार पूछता रहा कि उत्कट चाहना कैसी होती है? एक दिन साधु ने उस आदमी से कहा कि आज तुम मेरे साथ नदी में स्नान करने चलो। दोनों नदी पर गये और स्नान करने लगे। उस आदमी ने जैसे ही नदी में डुबकी लगायी, साधु ने उसका गला पकड़कर नीचे दबा दिया। वह आदमी थोड़ी देर नदी के भीतर छपपटाया, फिर साधु ने उसको छोड़ दिया। पानी से ऊपर आने पर वह बोला कि तुम साधु होकर ऐसा काम करते हो! मैं तो आज मर जाता! साधु ने पूछा कि बता, तेरे को क्या याद आया? माँ याद आयी, बाप याद आया, धन याद आया या स्त्री-पुत्र याद आये? वह बोला कि महाराज, मेरे तो प्राण निकले जा रहे थे, याद किसकी आती? साधु बोले तो तुम पूछते थे कि उत्कट अभिलाषा

कैसी होती है, उसी का नमूना मैंने तेरे को बताया है। जब एक भगवान् के सिवाय कोई भी याद नहीं आयेगा और उनकी प्राप्ति के बिना रह नहीं सकोगे, तब भगवान् मिल जायँगे। भगवान् की ताकत नहीं हैं कि मिले बिना रह जायँ।

भगवान् कर्मों से नहीं मिलते। कर्मों से मिलने वाली चीज नाशवान् होती है। कर्मों से धन, मान, आदर, सत्कार मिलता है। परमात्मा अविनाशी हैं। वे कर्मों का फल नहीं हैं, प्रत्युत आपकी चाहना का फल हैं। परंतु आपको परमात्मा के मिलने की परवाह ही नहीं है, फिर वे कैसे मिलेंगे? भगवान् मानो कहते हैं कि मेरे बिना तेरा काम चलता है तो मेरा भी तेरे बिना काम चलता है। मेरे बिना तेरे काम अटकता है तो मेरा काम भी तेरे बिना अटकता है। तू मेरे बिना नहीं रह सकता तो मैं भी तेरे बिना नहीं रह सकता।

आप में परमात्मा प्रप्ति की जोरदार इच्छा है ही नहीं। आप सत्संग करते हो तो लाभ जरूर होगा। जितना सत्संग करोगे, विचार करोगे, उतना लाभ होगा– इसमें संदेह नहीं है। परंतु परमात्मा की प्राप्ति जल्दी नहीं होगी। कई जन्म लग जायँगे, तब उनकी प्राप्ति होगी। अगर उनकी प्राप्ति की जोरदार इच्छा हो जाय तो भगवान् को आना ही पड़ेगा। वे तो हरदम मिलने के लिये तैयार हैं जो उनको चाहता है उसको वे नहीं मिलेंगे तो फिर किसको मिलेंगे? इसलिये 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' कहते हुए सच्चे हृदय से उनको पुकारो।

**सच्चे हृदय से प्रार्थना, जब भक्त सच्चा गाय है।**
**तो भक्तवत्सल कान में, वह पहुँच झट ही जाय है।।**

भक्त सच्चे हृदय से प्रार्थना करता है तो भगवान् को आना ही पड़ता है। किसी की ताकत नहीं जो भगवान् को रोक दे। जिसके भीतर एक भगवान् के सिवाय अन्य कोई इच्छा नहीं है, न जीने की इच्छा है, न मरने की इच्छा है, न मान की इच्छा है, न रुपयों की इच्छा है, न कुटुम्ब की इच्छा है, उसको भगवान् नहीं मिलेंगे तो क्या मिलेगा? आप पापी हैं या पुण्यात्मा हैं, पढ़े-लिखे हैं या अनपढ़ हैं, इस बात को भगवान् नहीं देखते। वे तो केवल आपके हृदय का भाव देखते हैं–

**रहति न प्रभु चित चूक किए की।**
**करत सुरति शत बार हिए की।।**

(मानस, बाल० २९।५)

वे हृदय की बात को याद रखते हैं, पहले किये पापों की याद रखते ही नहीं! भगवान् का अन्तःकरण ऐसा है, जिसमें आपके पाप छपते ही नहीं। केवल आपकी अनन्य लालसा छपती है। भगवान् कैसे मिलें? कैसे मिलें? ऐसी अनन्य लालसा हो जायेगी तो भगवान् जरूर मिलेंगे, इसमें संदेह नहीं है। आप और कोई इच्छा न करके, केवल भगवान् की इच्छा करके देखो कि वे मिलते हैं कि नहीं मिलते हैं। आप करके देखो तो मेरी भी परीक्षा हो जायगी कि मैं ठीक कहता हूँ कि नहीं। मैं तो गीता के बलपर कहता हूँ। गीता में भगवान् ने कहा है– **'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'** (४।११) 'जो भक्त जिस प्रकार मेरी शरण लेते हैं, मैं उन्हें उसी प्रकार आश्रय देता हूँ।' हम भगवान् के बिना रोते हैं तो भगवान् भी हमारे बिना रोने लग जायँगे! भगवान् के समान सुलभ कोई है ही नहीं! भगवान् कहते हैं–

**अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।**
**तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।।**

गीता ८।१४

'हे पृथानन्दन! अनन्य चित्तवाला जो मनुष्य मेरा नित्य-निरन्तर स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर

मुझमें लगे हुए योगी के लिये मैं सुलभ हूँ अर्थात् उसको सुलभता से प्राप्त हो जाता हूँ।'

भगवान् ने अपने को तो सुलभ कहा है, पर महात्मा को दुर्लभ कहा है–

**बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।**
**वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।।**

(गीता ७।१९)

'बहुत जन्मों के अन्तिम जन्म में अर्थात् मनुष्य जन्म में 'सब कुछ परमात्मा ही हैं'– इस प्रकार जो ज्ञानवान् मेरे शरण होता है, वह महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है।'

**हरि दुरलभ नहिं जगत में, हरिजन दुरलभ होय।**
**हरि हेर्‌याँ सब जग मिलै, हरिजन कहिं एक होय।।**

भगवान् के भक्त तो सब जगह नहीं मिलते, पर भगवान् सब जगह मिलते हैं। भक्त जहाँ भी निश्चय कर लेता है, भगवान् वहीं प्रकट हो जाते हैं–

**आदि अन्त जन अनँत के, सारे कारज सोय।**
**जेहि जिव उन नह्यो धरै, तेहि ढिग परगट होय।।**

प्रह्लाद जी के लिये भगवान् खम्भे में से प्रकट हो गये–

**प्रेम बदौं प्रहलादहि को,**
**जिन पाहन में परमेश्वर काढे।।**

(कवितावली ७।१२७)

भगवान् सबके परम सुहृद् हैं। वे पापी, दुराचारी को जल्दी मिलते हैं। माँ कमजोर बालक को जल्दी मिलती है। एक माँ के दो बेटे हैं। एक बेटा तो समय पर भोजन कर लेता है, फिर कुछ नहीं लेता और दूसरा बेट दिनभर खाता रहता है। दोनों बेटे भोजन के लिये बैठ जायँ तो माँ पहले उसको रोटी देगी जो समयपर भोजन करता है; क्योंकि वह भूखा उठ जायगा तो शाम तक खायेगा नहीं। दूसरे बेटे को माँ कहती है कि तू ठहर जा; क्योंकि वह तो बकरी की तरह दिनभर चरता रहता है। दोनों एक की माँ के बेटे हैं, फिर भी माँ पक्षपात करती है। इसी तरह जो एक भगवान् के सिवाय कुछ नहीं चाहता, उसको भगवान् सबसे पहले मिलते हैं; क्योंकि वह भगवान् को अधिक प्रिय है। वह एक भगवान् के सिवाय अन्य किसी को अपना नहीं मानता। वह भगवान् के लिये दुःखी होता है तो भगवान् से उसका दुःख सहा नहीं जाता।

कोई चार-पाँच वर्ष का बालक हो और उसका माँ से झगड़ा हो जाय तो माँ उसके सामने ढीली पड़ जाती है। **संसार की लड़ाई में तो जिसमें अधिक बल होता है, वह जीत जाता है, पर प्रेम की लड़ाई में जिसमें प्रेम अधिक होता है वह हार जाता है।** बेटा माँ से कहता है कि मैं तेरी गोदी में नहीं आऊँगा, पर माँ उसकी गरज करती है कि आ जा, आ जा बेटा! माँ में यह स्नेह, भगवान् से ही तो आया है। भगवान् भी भक्त की गरज करते हैं। भगवान् को जितनी गरज है, उतनी गरज संसार को नहीं है। माँ को जितनी गरज होती है, उतनी बालक को नहीं होती। बालक तो माँ को दूध पीते समय दाँतों से काट लेता है, पर माँ क्रोध नहीं करती। अगर वह क्रोध करे तो बालक जी सकता है क्या? माँ तो बालक पर कृपा ही करती है। ऐसे ही भगवान् हमारी अनन्त जन्मों की माता हैं। वे भक्त की उपेक्षा नहीं कर सकते। भक्त को वे अपना मुकुटमणि मानते हैं– **'मैं तो हूँ भगतन को दास, भगत मेरे मुकुटमणि।'**

भक्तों का काम करने के लिये भगवान् चौबीसों घण्टे तैयार रहते हैं। जैसे बच्चा माँ के बिना नहीं रह सकता और माँ बच्चे के बिना नहीं रह सकती, ऐसे ही भक्त भगवान् के बिना नहीं रह सकता और भगवान् भक्त के बिना नहीं रह सकते। ❑❑❑

श्रीहनुमज्जयन्ती पर विशेष–

# श्रीमद्वाल्मीकि रामायण में श्रीहनुमच्चरित्र

❑ श्री पं० बालकृष्ण कौशिक ( सरदाशहर )

आदिकवि महर्षि वाल्मीकि ने रामायण में रामचरित्र को हृदयाह्लादिनी मणिमाला के रूप में काव्यगत श्रेष्ठताओं के साथ गुम्फित किया है। कथा के महानायक भगवान् राम के उदात्त चरित्र चित्रण में, जगज्जननी जानकी जी के चरित्र के साथ साथ लक्ष्मण, भरत, सुग्रीव, हनुमान, आदि पात्रों का भी विस्तृत वर्णन उल्लेखनीय है। रामायण के अनेक पात्रों के चरित्रचित्रण में कविकोकिल वाल्मीकि ने हनुमच्चरित्रांकन में विशेष काव्य कौशल प्रदर्शित किया है। अद्वितीय व अनुपमेय रामायण महाकाव्य संस्कृत वाङ्मय का आदिकाव्य है। वर्तमान में वैदिक वाङ्मय एवं संस्कृत भाषा के उत्कृष्ट एवं अद्वितीय मनीषी जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज ने तो वाल्मीकि को सभी महाकवियों से श्रेष्ठ सिद्ध किया है। वस्तुतः अनुष्टुप छन्द को आदिकवि ने रामायण का मुख्य छन्द बनाकर इसे जो महत्ता प्रदान की है, वह अतुल्य है। अस्तु,

इस आलेख का विषय रामायण में भी हनुमच्चरित्र पर कुछ विचार करना है। वाल्मीकि के हनुमान परम नीतिज्ञ, सुयोग्यसचिव, दूतकर्मकुशल, कार्यप्रयोजनलक्ष्याग्रवर्ती कुशलसंयोजक एवं नेतृत्वकर्ता, सेवकोचित विनम्रता के परमादर्श हैं। स्वामीभक्ति में हनुमान जी ने सुग्रीव एवं श्रीरामचन्द्र जी के प्रति जो प्रतिबद्धता दिखाई है, वह विलक्षण उदाहरण है। नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के प्रबल प्रतिमान, अनेक भाषाविद् एवं देववाणी संस्कृत के मर्मज्ञ विद्वान् हैं। बाल्मीकि के हनुमान कालोचित निर्णय में अद्वितीय हैं। वे महाबलशाली, पराक्रमी योद्धा, एवं वानर योद्धाओं में भी परमवीर, पूज्य, श्रेष्ठ, सम्मान्य योद्धा हैं। भगवान राम–लक्ष्मण के वन आगमन से भयभीत सुग्रीव को वे निर्भय रहने हेतु आश्वस्त करते हैं। किष्किन्धाकाण्ड के द्वितीय सर्ग में सुग्रीव को समझाते हुए वे कहते हैं–

**अहो शाखा मृगत्वं ते व्यक्तमेव प्लवङ्गम।**
**लघु चित्ततयात्मानं न स्थापयति यो मतौ।।**
**बुद्धिविज्ञानसम्पन्न इंगितैः सर्वमाचर।**
**नह्यबुद्धिं गतो राजा, सर्वभूतानि शास्ति हि।।**

(२/१७–१८)

हनुमान जी नीतिवान सचिव की तरह सुग्रीव को निर्भय करते हुए आश्वस्त करते हैं कि हे सुग्रीव! आप वानर बुद्धि छोड़कर धैर्यवान् बनें जिससे आप सभी प्राणियों को शासित कर सकें।

सुग्रीव के दूत के रूप में वे भिक्षुक विप्र का वेश बनाकर श्रीराम से मिलने जाते हैं, ताकि आगतजन से सरलता से परिचय प्राप्त कर सकें, क्योंकि विप्र वटुक पर सहसा कोई आक्रमण नहीं करता व उनका सर्वत्र निर्बाध आवागमन भी सुरक्षित रहता है। यहां वे दूत कौशल से रामलक्ष्मण की प्रशंसा करते हैं–

**पद्मपत्रेक्षणौ वीरौ जटामण्डल धारिणौ।**
**अन्योन्यसदृशौ वीरौ देवलोकादिहागतौ।।**
**सिंहस्कन्धौ महोत्साहौ समदाविव गौवृषो।**
**आयताश्च सुवृत्ताश्च बाहवः परिघोपमाः।।**

(३/१२–१४)

कमल के समान नेत्र वाले, जटामुकुटधारी, अद्वितीय वीर युगल क्या देवलोक से आये हैं? सिंह

के समान कन्धे वाले महान उत्साहसम्पन्न, मदमस्त बैल के समान, विशाल सुन्दर गोल-गोल व परिध के समान आपकी भुजाएँ हैं।

विनम्रता का भाव तो उनके भिक्षुरूप से ही पता लगता है, वे प्रभु से मिलने के लिए विप्र भिक्षुक का रूप बनाते हैं, वस्तुतः हनुमानजी महान ही नहीं वे महतामादर्श हैं, स्वपरिचय में विनम्रता का भाव दृष्टव्य है।

**''युवाभ्यां स हि धर्मात्मा सुग्रीवः सख्यमिच्छति।**
**तस्यं मां सचिवं वित्तं वानरं पवनात्मजम्।।**
**भिक्षुरूपप्रतिच्छन्नं सुग्रीवप्रियकारणात्।**
**ऋष्यमूकादिह प्राप्तं कामगं कामचारिणम्।।**

(३/२२-२३)

वे स्वयं को वानर बताते हुए, वायु का पुत्र व सुग्रीव का सचिव बताते हैं, एवं सुग्रीव से मित्रता के लिए निवेदन करते हैं।

हनुमान जी के वाक् चातुर्य व व्याकरण ज्ञान की प्रभुराम भी प्रशंसा करते हैं-

**नानृग्वेद विनीतस्य ना यजुर्वेद धारिणः।**
**ना सामवेद विदुषः शक्यमेवं विभाषितुम्।।**
**नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।**
**बहु व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम्।।**

(३/२८-२९)

श्रीरामलक्ष्मण से कहते हैं कि ऋग्वेद, यजुर्वेद व सामवेद का अध्ययन किये बिना व व्याकरण के स्वाध्याय बिना इतनी सुन्दर, शुद्ध भाषा में वार्तालाप सम्भव नहीं है।

सीतान्वेषण हेतु जब सुग्रीव अंगद, जाम्बवानादि वानर दल को दक्षिण दिशा में भेजते हैं, तब श्री रामद्वारा हनुमान जी को ही मुद्रिका दी जाती है, क्योंकि वे सुग्रीव के दूत के रूप में उनके नीतिज्ञान व निर्भीकता से सुपरिचित हो गए थे। वाल्मीकि जी यहां हनुमानजी का बड़ा सुन्दर वर्णन करते हैं-

**स तत् प्रकर्षन् हरिणां महद्बलं**
**बभूववीरः पवनात्मजः कपिः।**
**गताम्बुदे व्योम्नि विशुद्धमण्डलः**
**शशीव नक्षत्र गणोपशोभितः।।**

(३/४४/१६)

मेघ रहित विशुद्ध नीलगगन में चन्द्रमा जैसे नक्षत्रमण्डल में शोभित होता है, उसी प्रकार वानर दल में हनुमान शोभित हो रहे हैं। इतना ही नहीं श्रीराम जी हनुमान के बल का आश्रय लेते हुए कहते हैं-

**अतिबल बलमाश्रितस्तवाहं हरिवर विक्रम विक्रमैरनल्पैः।**
**पवनसुत यथाधिगम्यते सा जनकसुता हनुमंस्तथा कुरुष्व।।**

(३/४४/१७)

हे अत्यन्त बलशाली कपिश्रेष्ठ। मैंने तुम्हारे बल का आश्रय लिया है। पवनकुमार हनुमान जिस प्रकार भी जनकनन्दिनी सीताजी प्राप्त हो सकें तुम अपने महान बल से वैसा ही प्रयत्न करो।

निर्भयता हनुमान जी का परम वैशिष्ट्य है। सीतान्वेषण तत्पर अंगदनीत वानर दल के अन्य सदस्य नियत कालातीत होने पर जहाँ भयभीत व मृत्यून्मुखी हैं, वहाँ उसी दल में श्रीहनुमान समत्वबुद्धि धारण कर उत्साहसम्पन्न हैं। क्षुधापिपासार्त कपिदल में भी आगे-आगे निर्भीक महावीर हनुमान ही चलते हैं। स्वयंप्रभा की विशाल भयंकर गुफा में भी हनुमान प्रवेश कर विनम्र भाव से सबका संकट निवारण करते हैं।

**शरणं त्वां प्रपन्नाः स्मः सर्वे वै धर्मचारिणीम्**

यह गुफा इतनी बड़ी थी कि वानरों का अधिकांश सीतान्वेषण नियत समय इसी में घूमते घूमते बीत गया-

**स तु कालो व्यतिक्रान्तो बिले च परिवर्ततताम्**

अंगद जी जब मन में कायरता लाकर अन्य वानरों को भी निरूत्साहित करते हैं तब हनुमानजी युवराज से परम नीति पूर्ण वार्ता कह कर उन्हें सीतान्वेषण हेतु पुनः तत्पर करते हुए कहते हैं–

**त्वां नैते ह्यनुरंजेयुः प्रत्यक्षं प्रवदामि ते।**
**यथायं जाम्बवान् नीलः सुहोत्रश्च महाकपिः।।**
**यां चेमां मन्यसे धात्रीमेतद् बिलमितिश्रुतम्।**
**एतल्लक्ष्मणबाणानामीषत् कार्यं विदारणम्।।**

(३/५४/१०-१३)

वे अंगद को समझाते हैं कि राम, लक्ष्मण व सुग्रीव विमुख तुम्हारे को जाम्बवान, नल, नील आदि सभी वानर छोड़ देंगे। वे भेद नीति का सहारा लेते हुए लक्ष्मण के प्रबल बाण की अंगद को याद दिलाते हैं। वे अग्निपुत्र नील, ब्रह्मापुत्र जाम्बवान, सुहौत्र, शरारि, शरगुल्म, गज, गवाक्ष, गवय, सुषेण, वृषभ, मयन्द, द्विविद, हुतासन, गन्धमादन, उल्कामुख, अनंग एवं युवराज अंगद आदि सभी वानर वीरों का मार्गदर्शन करते हैं।

वाल्मीकि के हनुमान शस्त्रास्त्र से अवध्य हैं, जाम्बवान विस्तृत बल याद दिलाते हुए उनसे कहते हैं–

**प्रसादिते च पवने ब्रह्मा तुभ्यं वरं ददौ।**
**अशस्त्रवद्यतां तात समरे सत्यविक्रम।।**
**हनुमान् हरिराजस्य सुग्रीवस्य समो ह्यसि।**
**रामलक्ष्मणयोश्चापि तेजसा च बलेन च।।**
**बलम बुद्धिश्च तेजश्च सत्वं च हरिपुंगव।**
**विशिष्टं सर्वभूतेषु क्रियात्मानं न सज्जसे।।**

(३/६६-२७, ३,७)

बल बुद्धि में सुग्रीव, राम, लक्ष्मण के तुल्य हनुमान जी को बताया है। वे वायुदेव द्वारा माता अंजनी को दिये वरदान को भी याद करते हैं कि समुद्र लंघन में, हवा में उड़ने में तुम्हीं अपने पिता वायु के समान समर्थ हो–

**महासत्वो महातेजा महाबल पराक्रमः।**
**लङ्घने प्लवने चैव भविष्यति मया समः।।**
**उत्तिष्ठ हरि शार्दूल लंघयस्व महार्णवम्।**
**परा हि सर्वभूतानां हनूमन् या गतिस्तव।।**

(३/६६/१९,३६)

जब आत्मविस्मृत बल को नीतिवान् जाम्बवान् हनुमान जी को स्मरण करवाते हैं, तब उनका उद्घोष वाल्मीकि के शब्दों में बड़ा ही उत्साहवर्द्धक है। वे कहते हैं कि मैं श्रीराम के बाण की तरह ही, श्वास की तरह निकले बाण के समान रावणपालित लंका में जाऊँगा व यदि वहाँ सीता को नहीं खोज पाया, तो स्वर्ग में पता लगाऊँगा, यदि त्रिलोकी में रावण द्वारा छुपायी गई सीता को नहीं खोज पाया तो रावण सहित लंका को उखाड़कर ले आऊँगा।

**यथा राघवनिर्मुक्तः शरः श्वसनविक्रमः।।**
**गच्छेत् तद्वद् गमिष्यामि लंकांरावणपालितम्।**
**नहि दृक्ष्यामि यदि तां लंकायां जनकात्मजाम्।।**
**अनेनैव हि वेगेन गमिष्यामि सुरालयम्।**
**यदि वा त्रिदिवे सीतां नदृक्ष्यामि कृतश्रमः।।**
**बद्ध्वा राक्षसराजानमानयिष्यामि रावणम्।**
**सर्वथाकृतकार्योऽहमेष्यामि सहसीतया।।**
**आनयिष्यामि वा लंकां समुत्पाट्यसरावणाम्।**

(सुन्दरकाण्ड प्रथमसर्ग श्लोक ३९, ४०, ४२, ४३)

ब्रह्मचारी हनुमान सीतान्वेषणार्थ रावण के महलों में, रात्रि में विचरण करते हुए मन्दोदरी के महल में भी सोयी हुई अनेक राक्षसियों को प्रसुप्तावस्था में वस्त्राभूषणादि विच्छिन्न देखते हैं, जिससे उन्हें आत्मग्लानि होती है, परन्तु सर्वथाकामरहितमनसा उसका समाधान भी प्राप्त करते हैं। सुन्दरकाण्ड में देखें–

**परदारावरोधस्य प्रसुप्तस्य निरीक्षणम्।**
**इदं खलु ममात्यर्थं धर्मलोपं करिष्यति।।**
**कामं दृष्ट्वा मया सर्वा विश्वस्ता रावणस्त्रियः।**
**न तु मे मनसा किंचिद् वैकृत्यमुपपद्यते।।**
(४/११/३८,४१)

लंका के महलों में भी सीताजी न मिलने पर वे अपना उत्साह भंग नहीं करते। सतत प्रयत्न की प्रेरणा कविकुलशिरोमणि महर्षि वाल्मीकि के शब्दों में द्रष्टव्य है, सुन्दर नीति श्लोक है–

**अनिर्वेदो हि सततं सर्वार्थेषु प्रवर्तकः।**
**करोति सफलं जन्तोः कर्म यच्च करोति सः।।**

उत्साह सम्पन्न व्यक्ति ही कार्य में सफलता प्राप्त करता है पुनः उत्साहवर्द्धन हेतु वे अशोकवाटिका में प्रवेश से पूर्व राम, लक्ष्मण, जानकी व रूद्रादि देवों की वन्दना करते हैं–

**नमोऽस्तु रामाय स लक्ष्मणाय**
**देव्यै च तस्यै जनकात्माजायै।**
**नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानिलेभ्यो**
**नमोऽस्तु चन्द्राऽर्कमरुद् गणेभ्यः।।**

अशोक वाटिका को वाल्मीकि ने अशोकवनिका शब्द दिया है। वहाँ शिंशुपा वृक्ष के ऊपर बैठे हनुमान जी विचार करते हैं कि जानकी के साथ किस भाषा में वार्तालाप करूँ ताकि यह मुझ पर विश्वास कर सके व मैं श्रीराम का सन्देश सम्यक्रूपेण कह सकूँ। यहाँ हनुमान जी का दूत कौशल, भाषा ज्ञान व नीति निपुणता द्रष्टव्य है। स्वामी के कार्य सिद्धि हेतु अपना संस्कृत भाषा ज्ञान भी ज्ञानिनामग्रगण्य ने छोड़ दिया, वे अयोध्या की समीपवर्ती जनभाषा का ही प्रयोग करते हैं–

**यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।**
**रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति।।**
**अवश्यमेव वक्तव्यं मानुषं वाक्यमर्थवत्।**
**मया सान्त्वयितुं शक्या नान्यथेयमनिन्दिता।।**
**श्रावयिष्यामि सर्वाणि मधुराम् प्रब्रुवन् गिरम्।**
**श्रद्धास्यति यथा सीता, तथा सर्वं समादधे।।**
(४/३०/१८,१९,४३)

क्रमशः........

**पूज्यपाद जगद्गुरु जी के आगामी कार्यक्रम**

**प्रस्तुति- पूज्या बुआ जी**

| दिनाङ्क | विषय | आयोजक तथा स्थान |
|---|---|---|
| 24 अक्टूबर 2009 से 1 नवम्बर 2009 तक | श्रीरामकथा | श्री हनुमत् धाम – अयोध्या जी जनपद फैजाबाद (उ०प्र०), आयोजक – लाहोटी परिवार मो०– 09440061537 |
| 4 नवम्बर 2009 से 12 नवम्बर 2009 तक | श्रीरामकथा | दन्दरौआ डाक्टर हनुमान मंदिर जिला भिण्ड (म०प्र०) आयोजक– महन्त श्रीरामदासजी महाराज |
| 17 नवम्बर 2009 से 24 नवम्बर 2009 तक | 108 श्रीमद्भागवतकथा | श्रीराम जी मंदिर, गोण्डल (गुजरात) महन्त श्रीहरिचरण दास जी महाराज |

# मन को नियन्त्रित रखने से आध्यात्मिक लाभ

❑ पं० श्रीविनय कुमार जी

संतशिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास जी ने जीवन में प्रत्येक मनुष्य को स्व-कर्तव्यबोध की शिक्षा देते हुए काम, क्रोध, लोभ आदि दोषों से बचने तथा मन को नियन्त्रित रखने का आदेश दिया है। सुन्दरकाण्ड में इस बात की पुष्टि करते हुए बताया भी है-

**काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ।**
**सब परिहरि रघुबीरहिं भजहु कहहिं सद्ग्रन्थ।।**

यहाँ दोषों को छोड़ दें। काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, मत्सर आदि जो पाप बढ़ाने वाले दुर्गुण हैं, उनका हम परित्याग कर दें और फिर भगवद्भजन में तन-मन को लगायें। जब तक मन में दुर्गुण रहेंगे तब तक न तो भजन होगा, न साधना में मन लगेगा और न भक्ति ही भली प्रकार हो सकेगी।

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने इसीलिये अर्जुन को समझाते हुए कहा था कि काम, क्रोध, लोभ-ये नरक के मार्ग हैं, जिनसे उत्थान कदापि नहीं हो सकता, अतः अपने जीवन में आध्यात्मिक उत्थान के लिये इनका परित्याग निश्चित रूप से करना पड़ेगा। गीता में भगवान् स्पष्ट रूप से कहते हैं-

**त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।**
**कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्।।**

इतिहास इस बात का साक्षी है कि जितने भी महान् संत अथवा व्यक्ति हुए हैं, सभी ने दोषों का परित्याग कर सत्त्व का आश्रय लिया। भक्तराज हनुमान् जी एक ऐसे भक्त हैं, जिनका चित्त हमेशा भगवान् की सेवा में ही लगा रहता है, वे किसी भी सांसारिक काम, क्रोध, लोभ आदि दोषों से युक्त नहीं होते, प्रत्युत वे अपने लक्ष्य-भगवान् की सेवा-अर्चना आदि पर दृढ़ रहते हैं। जो व्यक्ति अपने कर्तव्य के प्रति असावधान होते हैं, उनकी तो दुर्गति होती ही है, अपयश भी हाथ लगता है। राक्षसराज रावण विद्वान् था, शास्त्रज्ञ था, परंतु जब वह अपने मन को नियन्त्रित न कर पाया, तो उसे कालकवलित हो जाना पड़ा। जहाँ उसके पुत्र और भाई का भी अंत हुआ, वहीं उसकी प्रिय लंकानगरी भी उसके हाथ से निकल गयी। इसीलिये कहा गया है कि जिसका मन वश में होता है, वह लोक और परलोक दोनों ही जगह लाभ पाता है- **'लोक लाहु परलोक निबाहू।'**

आज जब हम अपने जीवन पर दृष्टिपात करते हैं तो पता चलता है कि हम येन-केन-प्रकारेण स्वार्थलिप्सा में लगे हैं। धर्म-अधर्म या कर्तव्य-अकर्तव्य आदि से कोई सम्बन्ध भी नहीं रह गया है, जब कि शास्त्रों में अच्छे कर्म का लाभ स्पष्ट बतलाया गया है। मनुस्मृति में कहा गया है कि अधार्मिकों की दुर्गति देखकर भी जो धर्म में मन नहीं लगाते अथवा मन को वश में नहीं रखते, उनकी बड़ी हानि होती है-

**न सीदन्नपि धर्मेण मनोऽधर्मे निवेशयेत्।**
**अधार्मिकाणां पापानामाशु पश्यन् विपर्ययम्।।**

*(४।१७१)*

जीवन में जिसने अपने विचार अच्छे नहीं रखे अथवा अपना धर्म-कर्म अच्छा नहीं रखा, उन्हें दु:ख प्राप्त हुआ। प्रह्लाद का पिता हिरण्यकशिपु अपने आसुरी स्वभाव के कारण अधर्म का आचरण किया करता था। वह देवताओं का भीषण शत्रु बन गया। उसने अपने पुत्र प्रह्लाद को भगवान् के नाम की माला जपने, उनका नाम-स्मरण करने तथा सत्कर्म में प्रवृत्त नहीं होने दिया। इसके लिये प्रह्लाद को अनेक प्रकार से दण्डित भी किया। अन्तत: जीत धर्म की ही हुई। प्रह्लाद को कुछ नहीं हुआ। ऐसा इसलिये हुआ कि प्रह्लाद धार्मिक प्रवृत्ति के थे। उनकी प्रकृति सत्त्वगुण सम्पन्न थी। उन्होंने ईश्वर के प्रति सच्ची और एकनिष्ठ भक्ति की थी। उसी का यह प्रतिफल था कि उनका बाल-बाँका भी न हुआ।

सच तो यह है कि प्रह्लाद जी का मन पूर्णत: नियन्त्रित था और सांसारिक दोषों से मुक्त भी। इसीलिये प्रह्लाद जी की रक्षा के लिये भगवान् खंभे को फाड़कर बाहर आ गये। राणा ने मीरा को विष का प्याला पीने के लिये भेजा। मीरा जानती थी कि यह विष है फिर भी वह हँसते-हँसते पी गयी, और उसे कुछ न हुआ, क्योंकि उसके रक्षक थे '**दीनदयालु कृपालु नाथ।**'

संसार का समस्त दोष, शोक, अशान्ति और दु:ख एक मन से ही निष्पन्न होता है। इसीलिये तो कहा गया है-

**जहाँ योग तहँ भोग नहिं, जहाँ भोग तहँ रोग।**

वस्तुत: जहाँ सांसारिक आसक्ति होगी, वहाँ दु:ख-दारिद्र्य, अशान्ति आदि की प्राप्ति होगी। इसीलिये कहा गया है कि सब कुछ छोड़कर परमात्मा का भजन करो। अन्यथा पछताना पड़ेगा- '**मन पछितैहै अवसर बीते।**' मानवयोनि बार-बार नहीं मिलती। संत कवि गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी ने पहले भी कह दिया है-

**बड़े भाग मानुष तन पावा।**<br>**सुर दुर्लभ सब ग्रंथनि गावा।।**

जो व्यक्ति मन को वश में नहीं करेगा, वह साधना कैसे कर सकता है और उसकी साधना सफल कैसे हो सकती है?

अत: आज आवश्यकता इस बात की है कि हमें अपने चरित्र का निर्माण करते हुए मन को वश में करना चाहिये। मन ही सब दु:खों का कारण है। मन से ही सुख-शान्ति भी मिलती है। आज हम प्राय: छोटी-से-छोटी बातों पर क्रोध कर डालते हैं, अकरणीय कार्य करते हुए हर्षोन्मत्त हो फूले नहीं समाते। साथ ही शास्त्र-विहित कर्म का भी परित्याग करने में अपना गौरव-सा अनुभव करते हैं। इससे हमारा चरित्र, मन और तन प्रभावित होता है। मन जब तक पवित्र नहीं बनेगा, तब तक हमें सच्चा सुख और सच्ची शान्ति कदापि नहीं मिल सकेगी।

अत: जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मन को वश में रखने का प्रयत्न करना चाहिये। ऋग्वेद (१।२५।२१)- में कहा गया है कि '**उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत अवाधमानि जीवसे।**' अर्थात् पुत्रैषणा,

वित्तैषणा और लोकैषणा की भावना से हम उन्मुक्त रहें, क्योंकि ये ही वे शत्रु हैं, जिनसे हमारी आत्मा पतित होकर बारंबार दुःख पाती है।

अतः अपनी इन्द्रियों को हम परमात्मा के कार्यों में लगाये रखें, इसी से हमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होगी।

पवित्र कर्म से मुक्ति मिलती है जब कि अपवित्र और निकृष्ट कर्मों से पाप की प्राप्ति होती है। सच तो यह है कि श्रेष्ठ साधनारत पुरुष परमात्मा की उपासना तथा पवित्र कर्मद्वारा अपने दुःख और भव-बन्धनों को काटकर सुख प्राप्त करते हैं। हमें भी उनकी तरह परोपकारपूर्ण श्रेष्ठ कर्मों द्वारा सुख-शान्ति एवं सुयश प्राप्त करने तथा दुःखप्रद सांसारिक बन्धनों से छुटकारा पाने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये।

मन जब पूर्णतः नियन्त्रित हो जाता है, तब दिव्य सुख-शान्ति की प्राप्ति होती है। मन को नियन्त्रित करने के लिये जहाँ धर्म और सदाचार का पालन बतलाया गया है, वहाँ अच्छी संगति से भी लाभ मिलता है। मनुस्मृतिकार ने कहा है कि सच्ची रीति से संचित धन ही पवित्र धन है और यही जीवन में सुख-शान्ति पहुँचाता है। इसलिये सभी कर्मों में पवित्रता अर्थात् शुचिता को प्रश्रय देना चाहिये-

**सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम्।**
**योऽर्थे शुचिर्हि स शुचिर्न मृद्वारिशुचिः शुचिः।।**

*(५/१०६)*

जहाँ पवित्रता निवास करती है, वहाँ पर सभी प्रकार की सम्पत्तियाँ स्वयमेव पहुँच जाती हैं। पवित्र कर्म करने से मन भी पवित्र बन जाता है। पवित्र मन से पाप कर्म नहीं होते तथा मन भी नियन्त्रित होता है, साथ ही चित्त परिष्कृत भी बनता है।

चाणक्यनीति में इसीलिये कहा गया है कि कभी भी मन को पापकर्म में न लगायें। कामादि-जन्य व्यभिचार तो एक ऐसा महारोग है, जिसके समान दूसरा कोई रोग नहीं है। मोह और क्रोध ऐसे शत्रु हैं जो मन-तन को रुग्ण और दग्ध करके जलाते रहते हैं परंतु जब ज्ञान का अभ्युदय होता है, तब मनस्ताप मिटने लगता है और विचार-प्रवाह शुद्ध बनने लगता है साथ ही परम सुख की प्राप्ति भी हो जाती है-

**नास्ति कोपसमो वह्निर्नास्ति ज्ञानात् परं सुखम्।।**

अस्तु, हम मन के दोषों का परित्याग कर पवित्र वातावरण का सृजन करें। ऐसा पवित्र और निष्कलुष वातावरण बना लें कि हमारा जीवन उच्च आदर्शों से युक्त बन जाय। हम सांसारिक बन्धन का परित्याग करते हुए यह अनुभव करें कि सत्य ही मेरी माता है, ज्ञान ही मेरा पिता है, धर्म ही मेरा भाई है, दया ही मेरा मित्र है, शान्ति ही मेरी स्त्री है और क्षमा ही मेरा पुत्र है अर्थात् ये छः मेरे सच्चे एवं परम हितैषी बन्धु-बान्धव हैं-

**सत्यं माता पिता ज्ञानं धर्मो भ्राता दया सखा।**
**शान्तिः पत्नी क्षमा पुत्रः षडेते मम बान्धवाः।।**

*(चाणक्यनीतिदर्पण)*

❑❑❑

# व्रतोत्सवतिथिनिर्णयपत्रक

## आश्विन शुक्लपक्ष/सूर्य दक्षिणायन, शरद् ऋतु

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | व्रत पर्व आदि विवरण |
|---|---|---|---|---|
| द्वादशी | गुरुवार | धनिष्टा | 1 अक्टूबर | प्रदोष व्रत |
| त्रयोदशी | शुक्रवार | शतभिषा | 2 अक्टूबर | – |
| चतुर्दशी | शनिवार | पू0भा0 | 3 अक्टूबर | सत्यनारायण व्रत–शरद् पूर्णिमा |
| पूर्णिमा | रविवार | उ0भा0 | 4 अक्टूबर | महर्षिवाल्मीकिजयन्ती |

## कार्तिक कृष्णपक्ष/सूर्य दक्षिणायन, शरद् ऋतु

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | व्रत पर्व आदि विवरण |
|---|---|---|---|---|
| प्रतिपदा | सोमवार | रेवती | 5 अक्टूबर | पंचक दिन के 11/14 तक |
| द्वितीया | मंगलवार | अश्विनी | 6 अक्टूबर | – |
| तृतीया | बुधवार | भरणी | 7 अक्टूबर | श्रीगणेश चतुर्थी व्रत (करवा चौथ) चन्द्रोदय 7 बजकर 47 मिनट |
| चतुर्थी | गुरुवार | कृतिका | 8 अक्टूबर | – |
| पंचमी | शुक्रवार | रोहिणी | 9 अक्टूबर | – |
| षष्ठी | शुक्रवार | रोहिणी | 9 अक्टूबर | षष्ठी तिथि का क्षय |
| सप्तमी | शनिवार | मृगाशिरा | 10 अक्टूबर | – |
| अष्टमी | रविवार | आर्द्रा/पुनर्वसु | 11 अक्टूबर | श्रीदुर्गाष्टमी, अहोई अष्टमी व्रत |
| नवमी | सोमवार | पुष्य | 12 अक्टूबर | – |
| दशमी | मंगलवार | श्लेषा | 13 अक्टूबर | – |
| एकादशी | बुधवार | मघा | 14 अक्टूबर | **रमा एकादशी व्रत (सबका)** |
| द्वादशी | गुरुवार | पू0फा0 | 15 अक्टूबर | गोवत्स द्वादशी–प्रदोष व्रत |
| त्रयोदशी | शुक्रवार | उ0फा0 | 16 अक्टूबर | धनत्रयोदशी– श्रीहनुमज्जयन्ती, नरक चतुर्दशी |
| चतुर्दशी | शनिवार | हस्त | 17 अक्टूबर | सूर्य तुला में–संक्रान्ति वार– **दीपावली पर्व** |
| अमावस्या | रविवार | चित्रा | 18 अक्टूबर | **अन्नकूट गोवर्द्धन पूजा** |

## कार्तिक शुक्लपक्ष/सूर्य दक्षिणायन, शरद् हेमन्त ऋतु

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | व्रत पर्व आदि विवरण |
|---|---|---|---|---|
| प्रतिपदा | सोमवार | स्वाति | 19 अक्टूबर | चन्द्रदर्शनम्–भाईदूज विश्वकर्मा पूजन |
| द्वितीया | मंगलवार | विशाखा | 20 अक्टूबर | – |
| तृतीया | बुधवार | अनुराधा | 21 अक्टूबर | श्रीगणेश चतुर्थी व्रत |
| चतुर्थी | गुरुवार | ज्येष्ठा | 22 अक्टूबर | – |
| पंचमी | शुक्रवार | मूल | 23 अक्टूबर | – |
| षष्ठी | शनिवार | पू0षा0 | 24 अक्टूबर | सूर्य षष्ठी व्रत (बिहार) |
| सप्तमी | रविवार | उ0षा0 | 25 अक्टूबर | सूर्य षष्ठी व्रत की पारणा |
| अष्टमी | सोमवार | उ0षा0 | 26 अक्टूबर | श्रीदुर्गाष्टमी–गोपाष्टमी गौ पूजन |
| नवमी | मंगलवार | श्रवण | 27 अक्टूबर | पंचक प्रारम्भ 1/17 रात से अक्षय नवमी |
| दशमी | बुधवार | धनिष्ठा | 28 अक्टूबर | – |
| एकादशी | गुरुवार | शतभिषा | 29 अक्टूबर | **देव प्रबोधिनी एकादशी व्रत (सबका) श्रीतुलसीशालग्रामविवाह** |

卐 श्रीमद्राघवो विजयते 卐

धर्मचक्रवर्ती, महामहोपाध्याय, जीवनपर्यन्त कुलाधिपति, वाचस्पति, महाकवि
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य **स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज**
का राष्ट्रीय, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक चेतना का संवाहक

# श्रीतुलसीपीठसौरभ

**( मासिक पत्र )**

सीतारामपदाम्बुजभक्तिं भारतभविष्णु जनतैक्यम्।
वितरतु दिशिदिशि शान्तिं श्रीतुलसीपीठसौरभं भव्यम्।।

वर्ष १४ | अक्टूबर २००९ (४, ५ नवम्बर को प्रेषित) | अंक-२

**संस्थापक-संरक्षक**
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य
**स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज**

**संरक्षक एवं प्रकाशक**
**डॉ० कु० गीता देवी ( पूज्या बुआ जी )**
प्रबन्धन्यासी, श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास, चित्रकूट

**सम्पादक**
**आचार्य दिवाकर शर्मा**
220 के, रामनगर, गाजियाबाद–201001
**मो०–** 09971527545

**सहसम्पादक**
**डा० सुरेन्द्र शर्मा 'सुशील'**
डी–255, गोविन्दपुरम्, गाजियाबाद–201001
दूरभाष : 0120–2767255, मो०–09868932755

**प्रबन्ध सम्पादक**
**श्री ललिता प्रसाद बड़थ्वाल**
सी–295, लोहियानगर, गाजियाबाद–201001
0120–2756891, मो०– 09810949921

**सहयोगी मण्डल** (ये सभी पद अवैतनिक हैं)
**डा० श्रीमती वन्दना श्रीवास्तव,** ✆09971149779
**श्री दिनेश कुमार गौतम,** ✆ 09868977989
**श्री सत्येन्द्र शर्मा एडवोकेट,** ✆09810719379
**श्री अरविन्द गर्ग सी.ए.,** ✆ 09810131338
**श्री सर्वेश कुमार गर्ग,** ✆ 09810025852
**डॉ० देवकराम शर्मा,** ✆ 09811032029

**पूज्यपाद जगद्गुरु जी के सम्पर्क सूत्र :**
**श्रीतुलसीपीठ, आमोदवन,**
पो० नया गाँव श्रीचित्रकूटधाम (सतना) म०प्र०485331
✆–07670–265478, 05198- 224413
**वसिष्ठायनम् –** जगद्गुरु रामानन्दाचार्य मार्ग
रानी गली नं०–1, भूपतवाला, हरिद्वार (उत्तरांचल)
दूरभाष–01334–260323
**श्री गीता ज्ञान मन्दिर**
भक्तिनगर सर्कल, राजकोट (गुजरात)
दूरभाष–0281–2364465

**पंजीकृत सम्पादकीय कार्यालय एवं पत्र व्यवहार का पता**
आचार्य दिवाकर शर्मा,
220 के., रामनगर, गाजियाबाद–201001
**मो०–** 09971527545

# रामानन्दः स्वयं रामः प्रादुर्भूतो महीतले

## विषयानुक्रमणिका



## सुधी पाठकों से विनम्र निवेदन

१. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' का प्रत्येक अंक प्रत्येक दशा और परिस्थिति में प्रत्येक महीने की ४ तथा ५ तारीख को डाक से प्रेषित किया जाता है। पत्रिका में छपे महीने का अंक आगामी महीने में ही आपको प्राप्त होगा।
२. 'श्रीतुलसीपीठ सौरभ' मंगाने हेतु बैंक ड्राफ्ट 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' के नाम से ही बनबाएँ तथा प्रेषित लिफाफे के ऊपर हमारा नाम तथा पूरा पता स्पष्ट अक्षरों में लिखें। मनीआर्डर पर हमारा नाम-पता ही लिखें प्रधान सम्पादक अथवा प्रबन्ध सम्पादक कभी न लिखें।
३. पत्रव्यवहार करते समय अथवा ड्राफ्ट-मनीआर्डर भेजते समय अपनी वह ग्राहक संख्या अवश्य लिखें जो पत्रिका के लिफाफे के ऊपर आपके नाम से पहले लिखी है।
४. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' में **'पूज्यपाद जगद्गुरु जी'** से अभिप्राय **धर्मचक्रवर्ती श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज समझा जाए।**
५. 'श्रीतुलसीपीठ सौरभ' में प्रकाशित लेख/कविता/अथवा अन्य सामग्री के लिए लेखक/कवि अथवा प्रेषक महानुभाव ही उत्तरदायी होंगे, सम्पादक मण्डल नहीं।
६. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' प्राप्त न होने पर हमें पत्र लिखें अथवा फोन करें। हम यद्यपि दूसरी बार पुनः भेजेंगे। किन्तु अपने डाकखाने से भलीप्रकार पूछताछ करके ही हमें सूचित करें।
७. **डाक की घोर अव्यवस्था के चलते हमें दोषी न समझें। हमें और आपको इसी परिस्थिति में 'पूज्यपाद जगद्गुरु जी' का कृपा प्रसाद शिरोधार्य करना है।**
८. सुधी पाठक अपने लेख/कविता आदि स्पष्ट अक्षरों में लिखकर भेजें। यथासमय-यथासम्भव हम प्रकाशित करेंगे। अप्रकाशित लेखों को लौटाने की हमारी व्यवस्था नहीं है।

**–सम्पादकमण्डल**

### सदस्यता सहयोग राशि

| | |
|---|---|
| संरक्षक | ११,०००/– |
| आजीवन | ५,१००/– |
| पन्द्रह वर्षीय | १,०००/– |
| वार्षिक | १००/– |

श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास, चित्रकूट के स्वामित्व में मुद्रक तथा प्रकाशक डॉ0 कु0 गीतादेवी (प्रबन्धन्यासी) ने श्री राघव प्रिंटर्स, जी–17 तिरुपति प्लाजा, बेगम पुल रोड, बच्चापार्क, मेरठ, फोन (का0) 4002639, मो0–9319974969, से मुद्रित कराकर कार्यालय 220 के., रामनगर, गाजियाबाद से प्रकाशित किया।

सम्पादकीय-

# भगवदीयभाव भक्तों को सुख देते हैं

सनातन वैदिक धर्म के प्रतिपालक एवं मर्यादा और मानवता के प्रतिष्ठापक, अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक भगवान् श्रीसीताराम जी की अकारण करुणा के परिणामस्वरूप ही भक्तवृन्द भक्तिभगवती का परमानन्द प्राप्त करते हैं। उन्हीं की कृपा से जहाँ संसार का संचालन होता है वहीं भक्तों-सन्तों और साधकों का नित्य योगक्षेम होता है- ऐसा वे महानुभाव कहा करते हैं जो भारतीय इतिहास की घटनाओं को देखते-सुनते हैं तथा अपने जीवन में प्रतिक्षण अनुभव करते रहते हैं।

जिनको संसार की निस्सारता का संज्ञान है और भगवान् की कृपाकादम्बिनी की मस्ती प्राप्त है वे भले ही कम मात्रा में हों धन्य हैं उनका जीवन-वंश और सङ्ग प्रणम्य है। ऐसे पूज्यमहानुभावों को भगवान् के नामरूपलीलाधाम की प्रत्येक कथा में अद्भुत आनन्द आता है। भगवान् की बाललीलाओं के वर्णन सुनकर ऐसे सन्त अश्रुपूर्ण हो उठते हैं। भगवान् की रूपमाधुरी के दर्शन के समय वे अवाक् हो जाते हैं। भगवान् की भिन्न-भिन्न लीलाओं के रहस्यों का बोध करने के पश्चात् वे अमलात्मामहात्मा भक्तिरस में निमग्न हो जाते हैं। इतना ही क्यों जो पृथिवी के आभूषणस्वरूप हैं ऐसे भक्तजन भगवान् के विविधधामों में निवास करने को ही अपना परमसौभाग्य मानते हैं और सत्य है भी यही। आज भी भगवद्धामों में अनुभव किया जा सकता है कि वहाँ पूर्वकाल के तपस्वियों अथवा साधकों की साधना के परमाणु आज भी दानव को मानव बनाने का चमत्कार जैसा कर देते हैं। मनुष्य के सौभाग्य अथवा प्रारब्ध को जैसे ही सिद्धों की साधना के परमाणु मिलते हैं वे मनुष्य का जीवन सुगन्धित कर देते हैं। धन्य-धन्य कर देते हैं।

सौभाग्य से इस वर्ष भी मार्गशीर्ष शुक्ल पञ्चमी तिथि नवम्बर २००९ को भगवान् श्रीसीतारामविवाह भिन्न स्थानों पर सोल्लास सम्पन्न होगा। श्रीअवध और श्रीमिथिला में तो हजारों-लाखों नर-नारी इतने नव्य-नव्य, भव्य-भव्य भाव प्रकट करेंगे जिसका वर्णन शब्दों में सम्भव नहीं है। भक्तजन भावों में और दुष्टजन अभावों में जीते हैं-यह तथ्य किसी से छिपा नहीं है, तभी तो दुष्टजन भगवद् भक्तों के भवदीयभाव की चर्चा प्रारम्भ होते ही भाग खड़े हो जाते हैं और सन्तजन-भक्तजन अपने प्यारे प्राणधन रघुनन्दन अथवा नन्दनन्दन की भावभरी रसभरी एक पंक्ति पर ही नृत्य करने लगते हैं। सुखद संयोग है कि पूज्यपाद जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज द्वारा रचित "श्रीसीतारामकेलिकौमुदी" नामक अत्यन्त सुखद सुन्दर खण्डकाव्य रामभक्तों के कण्ठ का हार बना हुआ है। भगवान् के निरुपम भावाद्वैत का तृतीय किरण से एक पद पढ़कर भक्तों को ब्रह्मानन्द तो आएगा ही काव्यानन्द भी आएगा-

**राम ही सीता हैं सीता ही राम हैं दोऊ के भेद सुबेद मिटावै।**
**जोइ श्रीराम हैं सोई हैं सीता जू या ही रहस्य सदा श्रुति गावै।।**
**एकहिं ब्रह्म बन्यौ जुगलीला में माता ह्वै एक पिता एक भावै।**
**सोइ कुमार और सोई कुमारी हैं 'गिरिधर' द्वै कहि एक बतावै।।**

**आचार्य दिवाकर शर्मा**
**प्रधान सम्पादक**

**आचार्य दिवाकर शर्मा प्रधान सम्पादक से केवल**
**मोबाइल नं०- 09971527545 पर ही सम्पर्क करें**

(गतांक से आगे)

# वाल्मीकिरामायण सुधा ( ५४ )

❑ धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

तुम्हारा उद्योग, धैर्य, पराक्रम और सुग्रीव का सन्देश ये सब मुझे इस बात की सूचना दे रहे हैं कि तुम्हारे द्वारा कार्य की सिद्धि अवश्य होगी।

हनुमान जी को राम नाम की मुद्रिका दे दी। यही वैष्णवता है, जब तक जीवन में राम नाम की मुद्रा नहीं मिलती तब तक व्यक्ति संसार सागर को पार नहीं कर सकता। यही यहाँ का सिद्धान्त है। हम न तो प्रतीकवाद पर विश्वास करते हैं न प्रतीकवाद की चर्चा करते हैं। उपन्यासों में प्रतीकवाद होता है इतिहास में कभी प्रतीकवाद हो ही नहीं सकता। हनुमान जी महाराज चल पड़े। महर्षि वाल्मीकि वर्णन करते हैं–

**अतिबल बलमाश्रितस्तवाहं**
**हरिवर विक्रम विक्रमैरनल्पैः।**
**पवनसुत यथाधिगम्यते सा**
**जनकसुता हनुमंस्तथा कुरुष्व।।**

भगवान श्रीराम कहते हैं–पवनकुमार हनुमान! जिस प्रकार भी जनकनन्दिनी सीता जी तुम्हें प्राप्त हो सकें वैसा ही प्रयत्न करो। वानर पूरा विन्ध्य खोज डाले पर कहीं पता नहीं चला। अब अनशन की स्थिति बन गई। अंगद जी ने कह दिया अब अनशन करेंगे। हनुमान जी ने बहुत समझाया पर अंगद जी बोले जब कार्यसिद्धि में हम असफल हैं तो हमको मरने दीजिए। तब तक जटायु का नाम आ गया। वानर परस्पर कहने लगे कि जटायु जी धन्य थे जो राम जी की सेवा में मर गये। उधर बिल में से निकलने का स्थान नहीं मिला तो स्वयंप्रभा मिली। स्वयम्प्रभा ने कहा अपने उपार्जित तप से हम आप सबको सागर के तट पर पुनः भिजवा दे रहे हैं। पर सागर को तुम लोग कैसे पार करोगे? तीनों दिशाओं से वानर आ गये सबने बता दिया कि सीता जी का कहीं पता नहीं लगा। वाल्मीकीय रामायण में बहुत करुण वर्णन है। अंगद जी श्रीरामचरितमानस में कहते हैं–

**हम सीता के खोज बिहीना।**
**नहिं जैहैं जुबराज प्रवीना।।**

जटायु का नाम लिया तो सम्पति आये। परिचय पूछने लगे बोले मेरे भैया की चर्चा कौन कर रहे हैं। मेरे भैया का समाचार सुनाओ। अंगद आदि वानर भयभीत हो गये। सम्पाति ने कहा डरो मत मुझे मेरे भाई जटायु के विषय में विस्तार से बताओ। जटायु का वृत्तान्त जानकर सम्पाति ने कहा–

**रामस्य यदिदं कार्यं कर्तव्यं प्रथमं मया।**
**जरया च हृतं तेजः प्राणाश्च शिथिला मम।।**

यद्यपि वृद्धावस्था ने मेरा तेज हर लिया है और मेरी प्राणशक्ति शिथिल हो गयी है तथापि श्रीरामचन्द्र का यह कार्य मुझे सर्वप्रथम करना है। सम्पाति ने कहा–

**तरुणी रूपसम्पन्ना सर्वाभरणभूषिता।**
**ह्रियमाणा मया दृष्टा रावणेन दुरात्मना।।**

एक दिन मैंने भी देखा कि दुरात्मा रावण अलंकारों से सुशोभित एक रूपवती युवती को हरकर लिये जा रहा था।

**क्रोशन्ती राम रामेति लक्ष्मणेति च भामिनी।**
**भूषणान्ययविध्यन्ती गात्राणि च विधुन्वती।।**

वह मानिनी देवी हा राम! हा लक्ष्मण! की रट लगाती हुई अपने आभूषण गिराती हुई और काँपती हुई छटपटा रही थी। मेरा पुत्र सुपार्श्व मेरे लिए आहार लेने गया था वह तो रावण को पकड़कर उसका गला घोट रहा था पर रावण ने विनती की तब उसे छोड़ दिया। सुपार्श्व ने मुझे आकर बताया था पर मैंने ध्यान नहीं दिया। आप चिन्ता न करें मैं देख रहा हूँ और बता रहा हूँ। सौ योजन के पार एक द्वीप है। वहाँ रावण ने सीता जी को छिपा कर रखा है रावण आतंकवादियों का सरगना है। करोड़ों लादेन से भी भयंकर है रावण।

**तस्यां वसति वैदेही दीना कौशेयवासिनी।**

उस लंका की अशोकवाटिका में सीता जी रात दिन सोचती रहती हैं राम राम कहकर जी रही हैं। सहसा सम्पाति के पंख आ गये। सम्पाति ने कहा सूर्यनारायण के पास हम जा रहे थे मेरे पंख जल गये। निशाकर नाम के मुनि जिनको श्रीरामचरितमानस में चन्द्रमा कहा गया है उन्हीं को यहाँ निशाकर कहा गया है उन्होंने हमको बताया था कि वानर सन्त हैं सन्त के जब दर्शन होते हैं तो पक्ष (पंख) जम जाते हैं। वानरों को देखने से सम्पाति के पंख जम गये इसका भाव यह है जब तक भगवान का पक्ष निश्चित नहीं होगा। पक्ष (पंख) दो होते हैं उसी से व्यक्ति उड़ पाता है। या तो ज्ञान का पक्ष हो या भक्ति का। उनमें एक प्रधान होता है। भक्त के लिए दो पंख होते हैं। दोनों में आनन्द करता है, एक मिथिलापक्ष होता है और एक अवधपक्ष। हमारा भी दोनों में आनन्द रहता है पर हमारा प्रधानपक्ष अवधपक्ष है। मिथिला वालों के यहाँ प्रधानपक्ष मिथिला है। हम तो हैं ही अवध के इसे कोई नकार नहीं सकता है हम अवध के ही रहेंगे। संसार के सारे सम्बन्धों को हमने छोड़ रखा है पर भगवान के सम्बन्ध में आज भी आनन्द आता है। मिथिला में जब होते हैं तो बिना गारी के आनन्द नहीं आता। कल भी मिथिलानियों ने खूब गारी गाई और हमने चकाचक भोजन किया। सन्तों को देखकर सम्पाति के पंख क्यों जमे? इसका अर्थ यह है कि जब सन्त आते हैं तभी भक्ति का पक्ष जीवन में आता है। वानर सन्त हैं अतः सम्पाति को भक्ति का पक्ष मिल गया। सीता जी के दर्शन जब सम्पाति ने कराये तब वानरों ने कहा कि जब तुमने भक्ति की चर्चा की है तो तुम्हारे पास कोई न कोई सम्बन्ध होना चाहिए बिना सम्बन्ध के भक्ति नहीं हो सकती। पंख आते ही सम्पाति उड़ गया। वानर चिन्तित हैं। गोस्वामी जी लिखते हैं–

**निज निज बल सब काहू भाखा।**
**पार जाइ कर संशय राखा।।**

सब अपना बल कह रहे हैं। महर्षि वाल्मीकि वर्णन करते हैं–

**गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः।**
**मैन्दश्च द्विविदश्चैव सुषेणो जाम्बवांस्तथा।।**

सबने अपेन बल का वर्णन किया दस से प्रारम्भ किया नब्बे तक गये।

गज ने कहा मैं दस जा सकता हूँ गवाक्ष ने कहा मैं बीस योजन इसी प्रकार सब कहते गये। तब जाम्बवान ने कहा मैं बूढ़ा हो गया हूँ तब भी नब्बे योजन एक छलांग में जा सकता हूँ। अंगद जी ने कहा–

**अहमेतद् गमिष्यामि योजनानां शतं महत्।**
**निवर्तने तु मे शक्तिः स्यान्नवेति न निश्चितम्।।**

मैं एक छलांग में सौ योजन जा तो सकता हूँ पर लौटने में मैं सफल होऊंगा या नहीं यह कोई निश्चित नहीं है। हमार हनुमनऊ एकान्त में चुपचाप बैठे हैं। जाम्बवान हनुमान जी को प्रेरित करते हैं–

**ततः प्रवीतं प्लवतां वरिष्ठ-**
**मेकान्तमाश्रित्य सुखोपविष्टम्।**
**संनोदयामास हरिप्रवीरो**
**हरिप्रवीरं हनुमन्तमेव।।**

ऐसा कहकर वानरों और भालुओं के वीर जाम्बवान् ने वानरसेना के श्रेष्ठ वीर हनुमान जी को ही प्रेरित किया जो एकान्त में जाकर सुख से बैठे थे। उन्हें किसी बात की चिन्ता नहीं थी और वे दूर तक की छलाँग मारने वालों में सर्वश्रेष्ठ थे। जाम्बवान ने देखा–

**अनेकशतसाहस्त्रीं विषण्णां हरिवाहिनीम्।**
**जाम्बवान् समुदीक्ष्यैवं हनूमन्तमथाब्रवीत्।।**

असंख्य वानरीसेना को इस प्रकार विषाद में पड़ी देखकर जाम्बवान ने हनुमान जी से कहा–

**वीर वानरलोकस्य सर्वशास्त्रविदां वर।**
**तूष्णीमेकान्तमाश्रित्य हनूमन् किं न जल्पसि।।**

हे वानरलोकवीर तथा सम्पूर्ण शास्त्रवेत्ताओं में श्रेष्ठ हनुमान् ! तुम एकान्त में आकर चुपचाप क्यों बैठे हो? कुछ बोलते क्यों नहीं हो।

**बलं बुद्धिश्च तेजश्च सत्वं च हरिपुंगव।**
**विशिष्टं सर्वभूतेषु किमात्मानं न सज्जसे।।**

हे वानरशिरोमणे! तुम्हारा बल बुद्धि तेज और धैर्य भी समस्त प्राणियों में सबसे बढ़कर है फिर तुम स्वयं को समुद्र लाँघने के लिये तैयार क्यों नहीं करते? युवावस्था में यह वृद्धता कैसी? राजीवलोचन राम शोकाकुल हैं और तुम माला जप रहे हो। अंजनानन्दवर्धन यह उचित नहीं है। तुम वही हो जिसने एक छलाँग में उछलकर सूर्यनारायण को अपना ग्रास बना लिया था। इन्द्र ने जब वज्र मारा था तुम्हारा हनु (ठोड़ी) नहीं टूटा था प्रत्युत इन्द्र के वज्र के दाँत टूट गये थे। विचार करो–

**पवन तनय बल पवन समाना।**
**बुधि विवेक विज्ञान निधाना।।**
**कवन सो काज कठिन जग माहीं।**
**जो नहिं होइ तात तुम पाहीं।।**
**राम काज लगि तव अवतारा।**
**सुनि कपि भयऊ पर्वताकारा।।**

तुम्हारा अवतार श्रीराम के कार्य के हेतु हुआ है। अतः हे अंजनानन्दवर्धन–

**उत्तिष्ठ हरिशार्दूल लंघयस्व महार्णवम्।**
**परा हि सर्वभूतानां हनुमन् या गतिस्तव।।**

हे वानरश्रेष्ठ! उठो और इस महासागर को लाँघ जाओ। क्योंकि तुम्हारी गति सभी प्राणियों से बढ़कर है। सम्पूर्ण प्राणियों के गन्तव्य भगवान श्रीराम तुम्हारे वश में हैं। इस समय सभी वानर तुम्हारी ओर आशा से देख रहे हैं–

**विषण्णाः हरयः सर्वे हनुमन् किमुपेक्षसे।**
**विक्रमस्व महावेग विष्णुस्त्रीन् विक्रमानिव।।**

हे महावीर हनुमान्! सब वानर चिन्ता में पड़े हैं। इनकी आप उपेक्षा क्यों कर रहे हो। महान वेगशाली वीर! जैसे भगवान विष्णु ने त्रिलोकी को नापने के लिए तीन पग बढ़ाए थे उसी प्रकार तुम भी अपने पैर बढ़ाओ।

तब हनुमान जी में आ गया वह तेज। महर्षि वाल्मीकि वर्णन करते हैं–

**ततः कपीनामृषभेण प्रेरितः**
**प्रतीतवेगः पवनात्मजः कपिः।**
**प्रहर्षयंस्तांहरिवीरवाहिनीं**
**चकार रूपं महदात्मनस्तदा।**

इस प्रकार वानरों और भालुओं में श्रेष्ठ जाम्बवान की प्रेरणा पाकर कपिवर हनुमान जी को अपने महान वेग पर विश्वास हो गया। उन्होंने वानरवीरों की उस

सेना का हर्ष बढ़ाते हुए उस समय अपना विराट रूप प्रकट किया। हनुमान जी ने गर्जन करते हुए कहा–

**उत्सहेयमतिक्रान्तुं सर्वानाकाश गोचरान्।**
**सागरान् शोषयिष्यामि दारयिष्यामि मेदिनीम्।।**
**पर्वतांश्चूर्णयिष्यामि प्लवमानः प्लवंगमः।**
**हरिष्याम्युरुवेगेन प्लवमानो महार्णवम्।।**

मैं आकाशादि में विचरण करने वाले समस्त ग्रहनक्षत्रों को लाँघकर आगे बढ़ने का उत्साह रखता हूँ। मैं चाहूँ तो समुद्र को सोख लूँगा, पृथ्वी को विदीर्ण कर दूँगा और कूद कूद कर पर्वतों को चूर चूर कर डालूँगा। महान वेग से महासागर को फाँदता हुआ मैं अवश्य उसके पार पहुँच जाऊँगा।

**भविष्यति हि मे रूपं प्लवमानस्य सागरम्।**
**विष्णोः प्रक्रममाणस्य तदा त्रीन् विक्रमानिव।**

समुद्र को लाँघते समय मेरा वही रूप प्रकट होगा जो तीनों पगों को बढ़ाते समय भगवान विष्णु का हुआ था।

**बुद्ध्या चाहं प्रणश्यामि मनश्चेष्टा च मे तथा।**
**अहं द्रक्ष्यामि वैदेहीं प्रमोदध्वं ष्लवङ्गमाः।।**

वानरो! मैं बुद्धि से जैसा देख्ता या सोचता हूँ मेरे मन की चेष्टा भी उसके अनुरूप होती है। मुझे निश्चय है कि मैं विदेहकुमारी का दर्शन करूँगा अतः अब तुम सब लोग खुशियाँ मनाओ। सब वानर अत्यन्त हर्ष से एवं चकितभाव से उनकी ओर देख रहे थे। महर्षि वाल्मीकि कहते हैं–

**तच्चास्य वचनं श्रुत्वा ज्ञातीनां शोकनाशनम्।**
**उवाच परिसंहृष्टो जाम्बवान् प्लवगेश्वरः।।**

हनुमान जी की बातें वानरों के शोक को नष्ट करने वाली थीं। उन्हें सुनकर वानर सेनापति जाम्बवान को बड़ी प्रसन्नता हुई। वे बोले–

**वीर केसरिणः पुत्रो वेगवान् मारुतात्मजः।**
**ज्ञातीनां विपुलः शोकस्त्वया तात प्रणाशितः।।**

हे वीर केसरी के सुपुत्र, वेगशाली पवनकुमार! तुमने अपने बन्धुओं का महान शोक नष्ट कर दिया। हे तात!

**ऋषीणां च प्रसादेन कपिवृद्धमतेन च।**
**गुरूणां च प्रसादेन सम्प्लव त्वं महार्णवम्।।**

ऋषियों के प्रसाद, वृद्ध वानरों की अनुमति तथा गुहजनों की कृपा से तुम इस महासागर के पार जाओ। हम सब वानर–

**स्थास्यामश्चैक पादेन यावदागमनं तव।**
**त्वद्गतानि च सर्वेषां जीवनानि वनौकसाम्।।**

जब तक तुम लौटकर नहीं आओगे तब तक हम तुम्हारी प्रतीक्षा में एक पैर से खड़े रहेंगे। क्योंकि हम सब वानरों का जीवन तुम्हारे ही अधीन है। सबको भगवान अंजनानन्दन प्रभु प्रणाम कर रहे हैं।

**स वेगवान् वेगसमाहितात्मा**
**हरिप्रवीरः परवीर हन्ता।**
**मनः समाधाय महानुभावो**
**जगाम लङ्कां मनसा मनस्वी।।**

बोलो वीर बजरंगबली की जय, अंजनानन्दवर्धन प्रभु की जय। हनुमान जी महाराज की जय। स्वयं उनका प्रशस्त वेग है। हनुमान जी यह पहले कह चुके हैं कि जो गरुड़ का वेग है, जो पवन का वेग है उनसे दस गुना मेरा वेग होगा। काम क्रोध आदि से हनुमान जी का मन समाहित हो चुका है। उनके मन में किसी प्रकार का उद्वेग नहीं है। जिनकी कृपा से वानर वीर बने हैं, जो शत्रुओं को नष्ट करने वाले, महान प्रभाव सम्पन्न हनुमान जी भगवान राम में मन को लगाकर मन से लंका पहुँच गये।

**श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण का प्रथम भाग पूर्ण।**

क्रमशः........

# श्रीमद्भगवद्गीता ( ८५ )

( गतांक से आगे )

**( विशिष्टाद्वैक श्रीराघवकृपाभाष्य )**

**भाष्यकार–धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज**

**रा०कृ०भा० सामान्यार्थ–** हे अर्जुन! भिन्न भिन्न कर्मों की सफलता की इच्छा करते हुए लोग इस संसार में मुझसे अतिरिक्त इन्द्रादि देवताओं की पूजा करते हैं। अतः अत्यन्त शीघ्र ही मनुष्य लोक विषयिणी देवताओं के पूजन कर्म से उत्पन्न हुई सिद्धि उन्हें मिल जाती है।

**व्याख्या–** इसमें और कोई हेतु नहीं है, कारण है भौतिक वस्तुओं की प्राप्ति की इच्छा तत्तद् देवताओं को उद्देश्य बनाकर कर्मों की सफलता की इच्छा करते हुए मुझसे अतिरिक्त इन्द्र–शंकर आदि देवताओं की लोग उपासना करते हैं। इससे उन्हें मनुष्य लोक में निश्चित ही शीघ्र सफलता मिल जाती है। 'मानुषे लोके' में विषय सप्तमी है, अर्थात् अन्य देवताओं के पूजन से लौकिक सफलता मिलती है। पर पारलौकिक सफलता के लिए तो मेरी ही उपासना करनी होती है। जैसे तुमने ही इन्द्र की उपासना करके उनसे दिव्यास्त्र प्राप्त किये तथा शंकर भगवान का यजन करके उनसे पाशुपतास्त्र पाया।इनसे तुम बाह्य शत्रुओं को जीत सकते हो, पर संसाररूप वृक्ष को काटने के लिए और कामरूप शत्रु को मारने के लिए तुम्हारे यह शस्त्र उपयोगी नहीं होंगे। उनके लिये तो ज्ञानखड्ग और असङ्गशस्त्र अपेक्षित है, अतः इनके लिए तुम्हें मेरी ही उपासना करनी होगी। ।।श्री।।

**संगति–** फिर भगवान सिंहावलोकन न्याय से तृतीय अध्याय के पश्चात् छूटे हुए विषय का वर्णन करते हैं–

**चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः।**
**तस्य कर्तारपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्।।**
४।।१३।।

**रा० कृ० भा० सामान्यार्थ–** हे अर्जुन! जिसमें गुण और कर्म का विभाग विद्यमान है, ऐसे चातुर्वर्ण्य का वेदरूप मैंने ही सर्जन किया है। उस चातुर्वर्ण्य का कर्ता होने पर भी मुझ अविनाशी को अकर्ता ही समझो। अर्थात् कर्म करके भी मैं कर्तृत्वाभिमान से शून्य रहता हूँ।

**व्याख्या–** जिसमें गुणों और कर्मों का विभाग है वही 'गुणकर्म विभागशः' कहा जाता है, यहाँ प्रथमा को अर्थ में ही अत्यन्त स्वार्थिक शष् प्रत्यय हुआ है। 'सर्वस्य द्वे' पा० अ० ८–१–१ सूत्र के भाष्य में भगवान भाष्यकार ने 'एकैकशः' का प्रयोग करके अत्यन्त स्वार्थिक शष् प्रत्यय का निर्देश किया है। यहाँ गुण और कर्म पूर्व जन्म के समझने चाहिए, न कि वर्तमान जन्म के। कारण कि वर्तमान के गुण कर्मों के आधार पर वर्णव्यवस्था में अनवस्था होगी। क्योंकि यही व्यक्ति एक ही दिन में चारों वर्णों में प्रवेश कर लेगा। 'तस्य कर्तारं' का तात्पर्य है– चातुर्वर्णात्मक सम्पूर्ण जीव जगत की रचना करके भी मैं अपने को अकर्ता ही मानता हूँ जबकि जीव बहुत थोड़े कर्मों को करके भी अपने कर्तृत्वाभिमान से मारा जाता है। यहाँ चातुर्वर्ण्य प्राणिमात्र में है, केवल मनुष्य में नहीं।

पशुओं में भी गौ, बैल ब्राह्मण, सिंह क्षत्रिय, घोड़ा आदि वैश्य और गधा, कुत्ता आदि चतुर्थ वर्ण माने गये हैं। इसी प्रकार पक्षी में भी तोता–ब्राह्मण, और कौवे को चतुर्थ माना गया है।

अतः सम्पूर्ण चिदजिदात्मक जीव चातुर्वर्ण्य में विभक्त हैं। ।।श्री।।

**संगति–** इसी प्रकार मेरा चिन्तन करने से अर्थात् मेरे अकर्ता स्वरूप का श्रवण, मनन निदिध्यासन करने से तुम स्वयं कर्म बन्धन से मुक्त हो जाओगे। इस पर भगवान दो श्लोकों में कहते हैं–

**न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।**
**इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते।**
४/१४

**एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः।**
**कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम्।।**
४/१५

**रा० कृ० भा० सामान्यार्थ–** हे अर्जुन! मुझे कर्मलिप्त नहीं कर पाते। अर्थात् मेरे द्वारा किये जाते हुए भी सुभाषित फलों से दूषित नहीं करते। क्योंकि मुझे कर्मों के शुभ फल में स्पृहा नहीं है। इस प्रकार जो मुझे जानता है वह कर्मों द्वारा बाँधा नहीं जाता। मुझे इसप्रकार जान करके मोक्ष की अभिलाषा वाले तुमसे पूर्व पुरुषों द्वारा कर्म ही किया गया इसलिए तुम पूर्वजों द्वारा किये हुए अत्यन्त पूर्व कर्म को ही करो।

**व्याख्या–** 'न लिम्पन्ति' मुझे, कर्तृत्व का अभिमान नहीं है इसलिए कर्मों के शुभाशुभ फलों का मुझमें लेप नहीं होता। स्पृहा शब्द से उपलक्षण में अशुभ फल के द्वेष का भी निषेध समझना चाहिए। अर्थात् न तो भगवान को शुभ कर्म में स्पृहा होती है और न ही अशुभ फल में द्वेष। 'अभिजानाति' इस प्रकार जो मुझे कर्म लेप, एवं कर्मों के रागद्वेष से मुक्त परमात्मा का अभीष्ट या जानता है उसे कर्म नहीं बाँधते। इसलिये मुझे जानकर कर्म करो ये तुम्हें भी नहीं बाँधेंगे। एवं, यहाँ, माम् शब्द की अनुवृत्ति है इसलिए तुम कर्म ही करो 'कर्मैव' कुरु एवकार से अकर्म और विकर्म का व्यवच्छेद है। 'पूर्वैः' का तात्पर्य है कि तुमसे पूर्ववर्ती जनकादि और भरतादि ने कर्म ही किया। 'पूर्वतरं' अतसैन अत स ऐन पूर्वम्। यह वैदिक होने से अत्यन्त प्राचीन परम्परा प्राप्त है। अथवा पूर्वान् अतारयत इति पूर्व तरं अर्थात् इससे तुम्हारे पूर्व पुरुष संसार सागर से तरे। यह तुम्हें भी तारेगा। ।।श्री।।

**संगति–** यहाँ अर्जुन को जिज्ञासा है कि हे द्वारिकाधीश आपने कुरु कर्मैव कहकर एवकार द्वारा कर्म से अतिरिक्त किसी पदार्थ का व्यवच्छेद किया है वह क्या है जिसे आप करने के लिये मना कर रहे हैं। उसका क्या स्वरूप है। इस प्रकार अर्जुन को प्रश्न करने के लिए इच्छुक देखकर 'वदतां' वरिष्ठ वनमाली बोले–

**किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।**
**तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।।**
४/१६

**रा० कृ० भा० सामान्यार्थ–** कर्म क्या है, अकर्म क्या है, और विकर्म क्या है, इस प्रसंग में बड़े बड़े मनीषी भी मोहित हो जाते हैं। इसलिए मैं तुम्हारे लिए उस कर्म का प्रवचन करूँगा जिसे जानकर अशुभ विकर्म से छूट जाओगे।

क्रमशः........

गतांक से आगे-

# शिखा की वैज्ञानिकता का रहस्य

❑ **पूज्यपाद पं० दीनानाथ शास्त्री सारस्वत**

## एक तर्क

(२१) एक तर्क यह किया जाता है कि मुसलमान, ईसाई आदि शिखा नहीं रखते, उन्हें हानि क्यों नहीं होती? इस पर यह जानना चाहिये कि सूक्ष्मरूप से हानि होती अवश्य है, परन्तु उसके अनुभव न होने से उन्हें उसका पता नहीं लगता। इससे उसकी अनावश्यकता तथा अयुक्तता सिद्ध नहीं हो जाती। आयुर्वेद ने जो नियम शरीर के स्वास्थ्य के कहे हैं; उनका उल्लङ्घन करने से आपाततः तो हानि प्राप्त होती हुई नहीं दिखती; परन्तु सूक्ष्मरूप से वह होती अवश्य है। अनुभव न होने से उन नियमों को बताने वाला आयुर्वेद तथा वे नियम अयुक्त नहीं हो जाते। वह हानि उत्तरोत्तर नियमों के उल्लङ्घन करते रहने से भीतर सञ्चित होती हुई शारीरिक शक्ति की दुर्बलता में ज्वरादि-रूप में प्रकट हो जाती है; परन्तु हम उसका कारण नहीं जान पाते। वेसे शिखा के भावाभाव में भी जान लेना चाहिये। हिन्दुओं की ईसाई-मुसलमानों से कुछ विशेषता अवश्य है; और वह सर्वसम्मत है। उनमें हिन्दुओं जैसे संयम, तथा मर्यादितता आदि का अभाव है; इसमें हमारी शिखा की ही कारणता मानी जावेगी। क्योंकि-जो बात जिसके होने पर होती है, जिसके न होने पर नहीं होती, वह उसी की मानी जाती है। नैषधचरितके चतुर्थ सर्ग में लिखा है- 'तदुदितः स हि यो वदनन्तरः'। स्वा० शङ्कराचार्य ने ब्रह्मसूत्र (३।३।५३ सूत्र) के भाष्य में कहा है-'यो हि यस्मिन् सति भवति, असति च न भवति, स तद्धर्मत्वेन अध्यवसीयते'।

हमारे प्राचीन महानुभाव जहां लाभ देखते थे; उसको अवश्य नियत करते थे; बल्कि उसमें अर्थवादों का प्रयोग करने में भी संकुचित न होते थे। पहले समय यज्ञों में गुडूची (सतगिलोय या सोमरस) का उपयोग हुआ करता था; परन्तु उसके कसैले होने से बटु उससे मुंह फेर लेते थे। तब प्राच्य लोग कहते हैं-

'शिखा ते वर्धते वत्स! गुडूचीं श्रद्धया पिब'। जैसे आजकल के शिक्षित जनों को पता लग जावे कि- अमुक ओषधि के सेवन से दाढ़ी-मूँछ तथा चोटी के बाल उत्पन्न नहीं होते; तब उस ओषधि के कड़वी होने पर भी वे उसका सेवन बड़े संरम्भ से करेंगे; वैसे ही प्राचीनकाल में गुडूची को शिखा बढ़ाने वाला समझकर बटु उसका पानकर जाते थे; इससे स्पष्ट कि- वे बढ़ी हुई शिखा को लाभजनक मानते थे।

सनातन-हिन्दुधर्म में जिन वस्तुओं की पूजा प्रचलित है; जैसे कि-तुलसीपूजा, गोपूजा, व्रतानुष्ठान, शिखा-आदि; जिनके लिए वहाँ अर्थवाद भी उपन्यस्त किये जाते हैं; आपददर्शी लोग उनमें उपहास करते हैं; पर वैज्ञानिकों ने उनमें उनकी श्रद्धाधिकता पर विचार किया; तब उन्होंने तुलसी, गाय, व्रत आदियों में अनुसन्धान करके बड़े लाभ देखे। तब उन्होंने उन लाभों का प्रचार किया। अब वर्तमान शिक्षितों का भी उधर ध्यान रखने लगा है। खेद की बात है कि- आज के शिक्षित लोग हमारे पूर्वजों की आज्ञा से तो उनका आदर नहीं करते; पर जब आज के पाश्चात्य वैज्ञानिक उनपर अपनी स्वीकृति की मुहर लगाते हैं;

तभी उनका उधर ध्यान पड़ता है। वस्तुतः यह 'परप्रत्ययनेयबुद्धिता' है, जो ठीक नहीं।

## शिखा के अन्य लाभ

(२२) गोखुर-परिमित शिखा के रखने से वीर्य की गति ऊपर को होती है; वह वीर्य परिपाक को प्राप्त हुआ-हुआ तेजरूप होकर शिखा के नीचे रहता है। इसी तेज को हिन्दु लोग मस्तिष्क मानते हैं। मनुष्य में यह तेज जितना गाढ़ होता है, मनुष्य उतना ही मस्तिष्कशाली तथा चिरायु होता है। इसी तेज को ओज भी कहते हैं; शिखा उसके संरक्षण का मुख्य साधन है; वैसा होने पर बहुत पुत्र होते हैं; शिखा-त्यागियों की तो बहुत कन्याएं उत्पन्न होती हैं। अतः शिखास्थापन लाभप्रद ही है।

इसके अतिरिक्त बाल स्वाङ्ग (अपना अङ्ग) माने जाते हैं, शिखा के बाल तो विशेष अङ्ग हैं। जैसे अङ्गहीन मनुष्य अशुभ माना जाता है, वैसे ही शिखा के केशरूप स्वाङ्ग से रहित को भी समझना चाहिये। वह ऐहिक, पारलौकिक शुभकर्म कलाप का अधिकारी नहीं रहता। जो लोग शिखा से अपने सिर की शोभा की हीनता मानते हैं, सीमान्त (मांग निकालने) आदि से अपनी शोभा में लगे हुए स्त्रीत्व को बढ़ा रहे हैं; इसी के परिणामस्वरूप उनकी कन्या सन्तानें बढ़ रही हैं, अथवा सन्तानहीनता हो रही है।

सन्ध्या आदि के समय आकाश द्वारा शिखाग्रन्थि को द्वारीभूत करके व्यापक दिव्य-शक्ति का आकर्षण होता है और ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश होता है। इस विषय में पाश्चात्य विद्वान् विक्टर ई क्रोमर का मत पहले दिखलाया जा चुका है। एतदर्थ ध्यान के समय नंगे सिर रहने का तथा शिखाग्रन्थिबन्धन का नियम है। 'स्नाने दाने जपे होमे सन्ध्यायां देवतार्चने। शिखाग्रन्थिं विना कर्म न कुर्याद् वै कदाचन'।

जैसे वस्त्र में बंधी गांठ तरह-तरह के कार्य में लगे पुरुष को विशेष कार्य याद करा दिया करती है, वैसे ही शिखा की गांठ भी सांसारिक कार्य में ले हुए पुरुष को अपने कर्तव्य वैदिक कर्म कलापको याद करा देती है, शिखा-बन्धन मन, वाणी, शरीर की चंचलता नष्ट कर अपने कर्त्तव्य कर्म में स्थिरता कर दिया करता है। मन, वाक्, शरीर की स्थिरतापूर्वक किया हुआ ही कर्म शुभफलप्रद हुआ करता है। इस कारण शास्त्रकारों ने शुभ कर्म के प्रारम्भ में शिखाबन्धन का आदेश दिया है। इसीलिये 'आह्निकतत्त्व' में भी लिखा है-

'गायत्र्या तु शिखां बद्ध्वा नैर्ऋत्यां ब्रह्मरन्ध्रतः। जूटिकां च ततो बद्ध्वा ततः कर्म समारभेत् । निबद्धशिख आसीनो द्विज आचमनं चरेत् । कृत्वोपवीतं सव्यें से वाङ्मनः कायसंयतेः'। बद्ध शिखा कब छोड़नी चाहिये- इस विषय में भी कहा है- 'शौचेऽथ शयने सङ्गे भोजने दन्तधावने। शिखामुक्तिं सदा कुर्यादित्येन्मनुरब्रवीत्'। शौच-शयन आदि के समय उसे खोल देना चाहिये।

जबकि सब सम्प्रदायों में कई साम्प्रदायिक चिन्ह नियत दिखाई देते हैं; उनका विशेष प्रयोजन न होने पर भी उन्हें वे छोड़ते नहीं; तब शिखा को ही क्यों छोड़ दिया जाये? वह शिखा तो प्रयोजनवती भी है, हिन्दुजातीय विशेष चिन्ह भी है। तब उसका त्याग कैसे ठीक हो सकता है? स्वामी दयानन्दजी ने भी कहा है-विद्या (?) के चिन्ह यज्ञोपवीत और शिखा को छोड़कर मुसलमान ईसाइयों के सदृश बन बैठना व्यर्थ है। (सत्यार्थप्र० ११ समु० पृ० २४४)

क्रमशः........

(गतांक से आगे)

# रासपञ्चाध्यायी विमर्श ( ४ )

❑ धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

**ईश रजाई शीश सबही के।
उतपति थिति लय विषय अमी के।।''**

सबके शिर पर ईश्वर की आज्ञा चलती है। उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, विष और अमृत सब पर भगवान का नियंत्रण है। देखिये तो, विष और अमृत दोनों पर भगवान् का नियंत्रण है। अमृत की वर्षा दोनों दलों पर एक समान हुई, रामदल पर भी अमृतवर्षा और रावणदल पर भी अमृतवर्षा, परन्तु उस पर भगवान् का नियंत्रण है। वही अमृत रामदल पर बरसकर वानरों को जिलाने में समर्थ हुआ, और राक्षसदल पर बरस कर भी उसे नहीं जिला पाया। यही तो भगवान का नियंत्रण है।

**''सुधावृष्टि भई दोउ दल ऊपर।
जिये भालु कपि नहीं रजनीचर।।''**

इसीलिए तो अमृत जयन्त को नहीं बचा पाया। सुधा हुई विष, और विष हनुमान जी को मार नहीं पा रहा है। माता सुरसा के मुख में हनुमान जी प्रवेश कर रहे हैं पर उनका एक बाल बाँका नहीं हुआ।

**''बदन पैठि पुनि बाहेर आवा।
माँगा विदा ताहि शिर नावा।।''**

देवता रक्षा करते रह गये सब लोगों ने रक्षा की पर क्या भगवान् श्रीकृष्ण से विरोध करके कोई बच पाया? कोई नहीं बचा। स्वर्गलोक तक को उन्होंने जीता और यहाँ भगवान् की इच्छा के विरुद्ध होने पर छोटे से गर्भ के बालक को भी अश्वत्थामा का ब्रह्मास्त्र नहीं मार पाया। यही भगवान् की भगवत्ता है। अर्थात् भगवान् सब कुछ कर सकते हैं। ''**कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं समर्थ ईश्वरः।**'' उनकी इच्छा से ही जीव का जन्म होता है, उनकी इच्छा से पालन होता है, उनकी इच्छा से संहार हो जाता है। भगवान् क्षणभर में पर्वत को राई बना सकते हैं और राई को पर्वत बना सकते हैं। इसीलिए निरन्तर भगवान् की भगवत्ता का अनुसन्धान करते रहना चाहिए। भगवान् की भगवत्ता को नहीं भूलना चाहिए। जो इतना समर्थ है वह छोटे से काम के वश में होगा क्या? यह तो कहने में भी लज्जा लगनी चाहिए। भगवान् किसी भी मूल्य पर काम के वश में क्यों होंगे? भगवान् असमर्थ क्यों हो गये? इसलिए रासपंचाध्यायी भगवान् के यश का प्रतिपादन करती है और श्रीमद्भागवत की रासपंचाध्यायी एक संकेत देती है कि ईश्वर की कृपा से व्यक्ति सब कुछ कर सकता हैं। प्रश्न है भगवान् इतनी गोपियों के साथ क्यों खेलते हैं? इसकी क्या आवश्यता है? उत्तर बहुत स्पष्ट है– ''**स एकाकी नारमत्**'' कोई भी अकेले नहीं खेल सकता। खेलने के लिए तो साथी होना चाहिए तभी तो खेल होता है। यदि खेलने के लिए साथी हो तो उन्हीं के समान होना चाहिए, इसलिए भगवान् ने इन सम्पूर्ण जीवात्माओं को गोपीभाव में बनाया और कहा, चलो तुम हमारे साथ खेलो, आनन्द आयेगा। अब तक तो जीवात्मा काम के साथ खेल रहा था और अब जीवात्मा राम अथवा श्याम के साथ खेलेगा। राम में भी कोई आपत्ति नहीं है। 'रा' माने राधा और 'म' माने माधव। तो जीवात्मा को अब राम के साथ खेलना है काम के साथ नहीं। इसलिए जीवात्मा और परमात्मा की

अविच्छिन्न, निरुपद्रव, निर्दोष क्रीड़ा ही रासपंचाध्यायी है। अब जीवात्मा को परमात्मा के साथ खेलना है वो भी कब खेलना है? क्या दिन में? नहीं दिन में नहीं रात में। सामान्य व्यक्ति दिन में खेलता है, परन्तु परमात्मा रात में खेलते हैं, क्योंकि उनका सब कार्य जीवों से विलक्षण होता है। रात में कौन जागता है? गोस्वामी जी के श्रीरामचरितमानस में श्रीलक्ष्मण जी ने उत्तर दिया, ''**यहि जग जामिनी जागहीं जोगी। परमारथी प्रपंच वियोगी।।**'' इस जगत की मोहमयी रात में योगी जागते हैं। प्रपंची जीव नहीं जाग सकता। स्वार्थी नहीं जाग सकता और कुयोगी नहीं जाग सकता। इसलिए यहाँ जो भी श्रीकृष्ण भगवान् के साथ खेल रही हैं गोपियाँ उन्हें इन तीनों बातों को अनुसन्धान करना होगा, वे साधारण नहीं हैं, उनका योग पूर्ण हो चुका है इसलिए वे योगेश्वर के साथ आज खेलेंगी। उनका कोई स्वार्थ नहीं है, वे निःस्वार्थ हैं। उनमें परमार्थ पूर्णरूप से परिपक्व हो चुका है। इसलिए परमार्थस्वरूप परमात्मा से आज गोपियाँ खेलेंगी, उनके जीवन में अब कोई प्रपंच नहीं है, वे निष्प्रपंच हो चुकी हैं। प्रपंच का अर्थ है जहाँ पाँचों भूत प्रकर्ष को प्राप्त कर लें। गोपियों के जीवन में अब पृथ्वी की प्रबलता नहीं है। वे पृथ्वी से ऊपर उठ चुकी हैं। उनमें जल की परतंत्रता नहीं है उनका व्यक्तित्व जल के ऊपर चला गया है। वे अग्नि के अधीन नहीं है, अग्नि से ऊपर उठ गई हैं, अग्नि अब उन्हें नहीं जला सकता। उन्हें वायु नहीं उड़ा सकता और वे आकाश से भी ऊपर हैं आकाश उन्हें अब अपने में नहीं समेट सकता। क्योंकि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश से तो यह शरीर बनता है। और गोपियाँ अब इस शरीर से ऊपर उठ चुकी हैं। ''**क्षिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित यह अधम शरीरा।।**'' गोपियाँ अब शरीर नहीं हैं, गोपियाँ अब मन नहीं हैं, गोपियाँ अब बुद्धि नहीं हैं, वे तो कह रही हैं,

**''अहम् नो शरीरं न चैवेन्द्रियाणि**
**मनोऽहं न चाहं न बुद्धिर्न चित्तम्।**
**सदा कृष्णचन्द्रस्यदासोऽहमात्मा**
**सदा माधवीयो जनोऽहम् जनोऽहम् ।।''**

गोपियाँ कहती हैं कि हम तो भगवान की दासियाँ हैं ''श्यामसुन्दर ते दास्यः करवाम तवोदितम्।'' भा.१०/२२/१५ हम आपकी दासियाँ हैं। वे दास्य माँगती हैं वे कहती हैं कि हे बृजिनार्दन! हम आपको जानते हैं। लोग आपको जनार्दन कहते हैं पर हम आपको जनार्दन नहीं कहेंगी। भक्त भी कभी-कभी कुछ ऐसी बातें कह देता है जो बुद्धि से परे हो जाती है। जो किसी शब्दकोष में नहीं मिलती। क्योंकि भक्त का शब्दकोष एक प्रेम का कोष है। सब लोग भगवान को जनार्दन कहते हैं गोपियाँ कहती हैं हम आपको जनार्दन नहीं कहेंगी। क्या कहोगी? गोपियाँ कहती हैं हम आपको बृजिनार्दन कहेंगी। बृजिनार्दन कहोगी! जी हाँ, हम आपको बृजिनार्दन कहेंगी, जनार्दन नहीं कहेंगी, बृजिनार्दन कहेंगी। क्यों बृजिनार्दन कहोगी? बोलीं, जनार्दन का अर्थ ''जनानर्दयति'' जो दैत्य जनों को कुचल देता है। हमारी दृष्टि में आप जीवों को नष्ट नहीं करते। फिर क्या करता हूँ मैं? गोपियाँ कहती हैं हमारी दृष्टि में तो आप जीवों के पापों को मसल डालते हैं।

**''तन्न प्रसीद बृजिनार्दन तेऽङ्घ्रिमूलं**
**प्राप्ता विसृज्य वसतीस्त्वदुपासनाशाः।**
**त्वत्सुन्दरस्मितनिरीक्षणतीव्रकामतप्तात्मनां**
**पुरुषभूषण देहि दास्यम्।।''**

क्रमशः........

श्रीहनुमज्जयन्ती पर विशेष–

# श्रीमद्वाल्मीकि रामायण में श्रीहनुमच्चरित्र

❑ श्री पं० बालकृष्ण कौशिक (सरदारशहर)

श्री हनुमान जी रामकथा के सर्वप्रथम वाचक हैं वे ऊँचे वृक्ष पर बैठकर भूमि पर बैठी भूमिजा जानकी जी को रामकथा सुनाते हैं–

**''राजा दशरथो नाम रथकुंजर वाजिनाम्।**

.........................................

**यथारूपां यथावर्णा यथालक्ष्यवतीं च ताम्।**
**विररामैव मुक्त्वा स वाचं नरपुंगवः।।**

(३१/२७१६)

श्री हनुमान जी वक्ता व श्रोता दोनों के रूप में विशिष्ट हैं वे रामकथा वक्ता बनकर जानकी जी को ऊँचे आसन यानी पेड़ पर बैठकर कथा सुनाते हैं। जो शास्त्र मर्यादा के अनुरूप भी है, परन्तु विशिष्ट परिस्थिति वशात् वे प्रभु से गीता अर्जुन के रथ की ध्वजा पर बैठकर सुनते हैं, वहां उनका आसन वक्ता से उच्च है, बड़ी सुन्दर लीला है।

वे जानकी जी को परिचय देते हुए अपने को सेवक के रूप में छोटा ही बताते हैं–

**अहं रामस्य संदेशाद् देवि दूतस्तवागतः।**
**वैदेहि कुशलीरामः स त्वां कौशलमब्रवीत्।।**

छोटे से वाक्य में सारा राम सन्देश कह दिया। वाल्मीकि का भाषा सौष्ठव यहाँ उल्लेखनीय है।

हनुमान जी जानकी जी को अपनी पीठ पर बैठाकर श्रीराम से मिलाने हेतु भी तत्पर हैं, परन्तु जानकी जी मना कर देती हैं–

**पृष्ठमारोह मे देवि मा विकांक्षस्व शोभने।**
**योग मन्विच्द रामेण, शशांकेनेव रोहिणीम्।।**

जानकी जी द्वारा हनुमान के अल्पकाय होने की शंका करने पर–

**कथं चाल्पशरीरस्त्वं मामितो नेतुमिच्छसि।**
**सकाशं मानवेन्द्रस्य भर्तुमे प्लवगर्षभ।।**
**मेरूमन्दरसंकाशो बभौ दीप्तानलप्रभः।**
**अग्रतो व्यवतस्थे च सीताया वानरर्षभः।।**

तब हनुमानजी ने मन्दराचल पर्वत के समान अपना रूप दिखाकर जानकी जी को आश्वस्त किया। जानकीजी ने श्रीराम के अलावा स्वेच्छा से परपुरुष स्पर्श को अस्वीकार कर दिया।

सीताजी का पता लगाने बाद हनुमानजी ने पुनः दूतकौशल का अद्भुत, अतुल्य परिचय दिया। दूत का कार्य शत्रु की शक्ति, सेना, बुद्धि का भी पता लगाना होता है, इस हेतु उन्होंने विचार किया कि राक्षसों का साम, दाम व भेद नीति से पता नहीं लगाया जा सकता दण्ड नीति से ही अशोक वाटिका विध्वंस कर इन्हें उद्वेलित करना चाहिए। अतः पराक्रम दिखाकर इनके बल का पता लगाऊँ।

**न साम रक्षःसु गुणाय कल्पते,**
**न दानमर्थोपचित्तेषु भुज्यते।**
**न भेदसाध्या बल दर्पिता जनाः**
**पराक्रमस्त्वेष ममेह रोचते।।**

''ग्रहणेचापिरक्षोमिः मदन्येगुणदर्शनम्,
राक्षसेन्द्रेण संवादस्तस्माद्ग्रहन्तुमां परे''

## श्रीराम द्वारा हनुमान को आलिंगन दान

हनुमान जानकीजी के तेजोमय तपस्विनी स्वरूप का, श्रीराम विरहाग्निदग्ध उज्ज्वल, निर्मल, पतिव्रता स्वरूप का वर्णन करते हुए अपनी सूझ–बूझयुक्त वाणी द्वारा धैर्य प्रदान की वार्ता श्रीराम से बड़ी विनम्रता से कहते हैं–

**ततो मया वाग्भिरदीनभाषिणी**
**शिवाभिरिष्टाभिरभिप्रसादिता ।**
**उवाह शान्तिं मम मैथिलात्मजा**
**तवातिशोकेन तथातिपीड़िता।।**

(सुन्दर २९/६८)

श्रीराम कहते हैं कि जो कार्य हनुमान तुमने किया है वैसा भूमण्डल पर अन्य कोई मन से भी सोच नहीं सकता, मेरे पास रण क्षेत्र में और कुछ नहीं है, मैं मेरा परमफलदायक आलिंगन तुम्हें प्रदान करता हूँ।

**कृतं हनुमता कार्य, सुमहद् भूवि दुर्लभम्।**
**मनसापि यदन्येन न शक्यं धरणी तले।।**
**एष सर्वस्व भूतस्तु परिष्वंगो हनुमतः।**
**मयाकालमिमं प्राप्य दत्तस्तस्य महात्मनः।।**

(युद्धकाण्ड पंचमसर्ग)

राक्षस संग्राम में हनुमानजी का मंगल घोष व आत्मविश्वास महाकवि नें बड़े ओजपूर्ण शब्दों में निरूपित किया है:

**जयत्यतिबलोरामो लक्ष्मणश्च महाबलः**
**राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः।।**
**दासोऽहं कौसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः**
**हनूमान् शत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः।।**
**न रावणसहस्त्रं मे युद्धे प्रतिबलं भवेत्**
**शिलाभिश्च प्रहरतः पादपैश्च सहस्त्रशः।।**
**अर्दयित्वा पुरी लंकामभिवाद्य च मैथिलीम्**
**समृद्धार्थो गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षसाम्।।**

वे रावण को भयभीत करते हुए कहते हैं कि साक्षात् इन्द्र भी राम विमुख होकर सुखी नहीं हो सकता–

**अपकुर्वन् हि रामस्य साक्षादपि पुरन्दरः।**
**न सुखं प्राप्नुयादन्य किं पुनस्तद्विधोजनः।।**

कविकोकिल ने राक्षसों द्वारा हनुमान जी की पूंछ में आग लगाने पर उनकी पूंछ के परकोटे को सूर्यमण्डल के समान बताते हुए बड़ी सुन्दर शब्दावली प्रयुक्त की है।

**स तान् निहत्वा रणचण्डविक्रमः**
**समीक्षमाणः पुनरेव लंकाम्।**
**प्रदीप्त लांगूल कृतार्चिमाली**
**प्रकाशितादित्यइवार्चमाली ।।**

अग्नि की ज्वाला मालारूपी पूँछ से हनुमान जी सूर्यमण्डल की आभा से सुशोभित हो रहे हैं।

वाल्मीकि के हनुमान जी अपने युद्ध बल पराक्रम से वानरों में भी श्रेष्ठतम वीर के रूप में पूज्य हैं, उन्होंने अकम्पन, धूम्राक्ष, अक्षय आदि अनेक वीरों का स्वयं वध किया एवं रावण को भी मुक्का मारकर घायल कर दिया था।

राक्षस संग्राम में राक्षस वीरों को मारने पर–

**वानराणामधीशं हनुमान जी (कपीश)**

**स तु पवनसुतो निहत्य शत्रुन् क्षतजवहाः सरितश्य संविकीर्य**
**रिपुवधजनितश्रमो महात्मा मुदमगमत् कपिभिः सुपूज्यमानः।**
**स वीर शोभामभजन्महाकपि समेत्य रक्षांसि निहत्यमारुतिः**
**महासुरं भीमनमित्रनाशनं विर्ष्णुयथैवोरुबलं चमूमुखे।।**

राक्षसवीरों को मारने पर हनुमान जी वानरदल में कैसे सुशोभित हो रहे हैं जैसे देवसभा में भगवान् विष्णु सुशोभित होते हैं।

रावण भी मुष्टिप्रहार से भूमि पर गिरकर चक्कर खाने लगा–

**ततः कुद्धो वायुसुतो रावणं समभिद्रवत्।**
**आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रकल्पेन मुष्टिना।।**
**तेन मुष्टि प्रहारेण रावणो राक्षसेश्वरः।**
**जानुभ्यामगमद् भूमौ चचाल च पपात च।।**

(५९-११४-११५)

रावण भी हनुमानजी के बल पराक्रम की प्रशंसा करता है

**''साधु वानर वीर्येण, श्लाघनीयोऽसि मे रिपुः''**

वाल्मीकि जी के युद्ध काण्ड में तो श्रीराम हनुमान जी को गरुड़ की तरह युद्ध वाहन बनाते हैं, हनुमान जी बड़े वेग से राम जी को अपने कन्धों पर बैठाकर रावण से युद्ध करते हैं

**मम पृष्ठे समारूह्य राक्षसं हनुमत्तं महाकपिम्**

(१२५-५९-युद्ध)

इस प्रकार वाल्मीकि रामायण में हनुमान जी परम स्वामिभक्त, भक्त शिरोमणि एवं सेवाधर्म के प्रेरणास्त्रोत आदर्श पुरुष हैं।

महर्षि अगस्त्य से भगवान श्रीराम स्वयं हनुमान जी की प्रशंसा में कहते हैं- बालि और रावण अतुल बली थे, परन्तु दोनों भी बल में हनुमान जी के समकक्ष नहीं थे। मैं तो स्पष्ट घोषणा करूँगा कि हनुमान की भुजाओं के बल से मैंने लंका विजय की, सीता को प्राप्त किया, राज्य, लक्ष्मण, भरत आदि भाई एवं सुग्रीव, विभीषण जैसे मित्रों को पाया। वस्तुतः वाल्मीकि के हनुमान शौर्य के सागर, असीम बलवान व बुद्धिमान, वेश परिवर्तन कुशल दूत, राजनीतिज्ञ, सुन्दर वाक्पटु वक्ता, कर्तव्यनिष्ठ स्वामिभक्त सेवक हैं।

सारांशतः वाल्मीकि रामायण के हनुमच्चरित्र में हनुमान जी महावीर, अतुलित बलवान, सुमतिवान् सचिव, नीतिज्ञदूत, स्वामिभक्त, वाक्निपुण, वेदव्याकरणभाषाविद्वान, ब्रह्मचारी, चरित्रवान, रामभक्त, सुग्रीव हितैषी, जानकी शोकविनाशक, राक्षसकुल भय कर्ता एवं निर्भीक योद्धा हैं। वाल्मीकि रामायण में उनका परम उदात्त चरित्रचित्रण हुआ है।

## 'बर्हापीडं' गाने को ...........

### ( नैमिष तीर्थ में आशु रचना )

❑ पूज्यपाद जगद्गुरु जी

**बर्हापीडं गाने को जी चाहता है।**
**बर्हापीडं गाने को जी चाहता है।।**
**भागवत के श्लोकों में राधा जी रमत हैं।**
**राधा को मनाने को जी चाहता है।।**
**बर्हापीडं ........**

**बर्हापीडं में राधेश्याम जी रमत हैं।**
**उनको मनाने को जी चाहता है।।**
**बर्हापीडं ........**

**बर्हापीडं श्लोक में भक्ति बसत है।**
**भक्ति को पाने को जी चाहता है।।**
**बर्हापीडं ........**

**बर्हापीडं श्लोक में युगल छवि बसत है।**
**युगल को रिझाने को जी चाहता है।।**
**बर्हापीडं ........**

**बर्हापीडं रामभद्र जी को सरवस**
**नाच नाच गाने को जी चाहता है।**
**बर्हापीडं ........**

**सर्वस लुटाने को जी चाहता है।**
**बार बार गाने को जी चाहता है।**
**बर्हापीडं ........**

**प्रस्तुति-श्रीमती मधु शर्मा**

# परमपूज्य गुरुदेव के श्रीमुख से

## ( श्री नैमिष तीर्थ में दिव्य श्रीमद्भागवत कथा )

❑ आचार्य दिवाकर शर्मा

ज्ञातव्य है कि इस बार १९ सितम्बर से २७ सितम्बर २००९ तक अठासी हजार ऋषियों की तपस्थली एवं श्री मनु शतरूपा जी के तप से परमपुनीत नैमिष तीर्थ में ही सूत जी ने १००० वर्षों का सत्र चलाया था और ऋषियों को समस्त पुराण सुनाये थे। यमराज को भी उस सत्र में यजमान बनाया गया था और यमराज से कहा था कि १००० वर्ष तक किसी की मृत्यु नहीं होनी चाहिए।

परमपूज्य जगद्गुरु जी महाराज ने नवदिवसीय श्रीमद्भागवत कथा आरम्भ मंगलाचरण से इस प्रकार किया–

**नमस्यामः शुकाचार्यं वासिष्ठं व्याससम्भवम्।**
**पिबामो यन्मुखाम्भोजच्युतं भागवतामृतम्।।**
**शुकाचार्य के पद कमल पुनि पुनि करौं प्रणाम।**
**श्रीमद् भागवती कथा कहौं सुजन अभिराम।।**
**वृन्दावन के लतन को मरम न जाने कोय।**
**जहाँ डाल डाल अरु पात पात पै राधे राधे होय।।**

भगवान की कृपा से ही जीव का कल्याण होता है। सामान्य रूप से श्रुति कहती है– ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः अर्थात् ज्ञान के बिना मुक्ति सम्भव नहीं है। परन्तु श्रीमद्भागवत में कहा गया है– भक्त्या विमुच्येन्नरः अर्थात् मनुष्य की मुक्ति भक्ति से होती है। नारद जी और विश्वामित्र जी महान ज्ञानी थे पर विश्वमोहिनी और मेनका के मोह में पड़ गये। दूसरी ओर हनुमान जी को निरन्तर अप्सरायें रामायण सुनाती हैं पर वे मोहित नहीं होते। क्योंकि मानस जी में कहा गया है–

**रघुपति बिमुख जतन करि कोरी।**
**कवन सकइ भव बन्धन छोरी।।**

यही बात श्रीविनयपत्रिका में गोस्वामिपाद पुनः कहते हैं–

**वाक्य ज्ञान अत्यन्त निपुन**
**भवपाद न पावै कोई।**
**निसि गृहमध्य दीप की बातन्ह**
**तम निवृत्त नहि होई।।**
**रघुपति भगति वारि छालित चित**
**बिनु प्रयास ही सूझै।**
**तुलसिदास कह चिद्विलास जग**
**बूझत बूझत बूझै।**

अर्थात् जिस प्रकार रात्रि में दीपक की बातें करने से अन्धकार दूर नहीं होता जैसे ही कोई कितना भी ज्ञानी हो वह भक्ति के बिना संसार सागर को पार नहीं कर सकता। हमारे मन के विकार तो तभी छूटेंगे जब श्रीरघुनाथ जी की भक्तिरूपी जल से घुलकर चित्त निर्मल होगा तब अनायास ही उस चैतन्य के विलास रूप जगत का सत्य तत्त्व समझते समझते ही समझ में आयेगा। विवेक चूड़ामणि में भी इसी सत्य का प्रतिपादन किया गया है–

**मोक्षसाधन सामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी।**

अर्थात् मोक्ष के सभी साधनों में भक्ति ही सबसे महान है। नारद भक्ति सूत्र में भी सात्वस्मिन् परमप्रेमरूपा कहकर ही भक्ति का महत्व दर्शाया गया है। भक्ति रसायन में श्री मधुसूदन सरस्वती जी ने भी कहा है कि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष पुरुषार्थ नहीं हैं? तो पुरुषार्थ

क्या है? इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा भगवान के चरणों में अविरल भक्ति ही परम पुरुषार्थ है? भक्ति स्वयं रस है। जीव की तीन योनि हैं– देवयोनि, मनुष्य योनि और तिर्यक् योनि। भगवान श्रीराम ही हमारे परमदेवता हैं। गोस्वामी जी कहते हैं–

**तुम कहँ भरत कलंक यह हम सब कहँ उपदेश।**
**राम भगति रस सिद्धि हित भा यह समय गणेश।।**

हे भरत! यह राम बनवास की घटना तुम्हारे लिए कलंक और हम सबके लिए उपदेश है। क्योंकि हम साधु होकर भी एक छोटी सी कुटिया नहीं छोड़ सकते। यहाँ तो श्रीराम ने तुम्हारे लिए राज्य छोड़ा और तुमने श्रीराम जी के लिए। श्रीराम भक्ति रस सिद्धि के लिए यह समय गणेश बन गया है अर्थात् जिस प्रकार गणेश जी सम्पूर्ण विघ्नों को नष्ट कर देते हैं उसी प्रकार यह रामबनवास का समय श्रीराम भक्ति के रसत्व की सिद्धि में आने वाले सम्पूर्ण विघ्नों को नष्ट करता रहेगा। श्री गुरुदेव ने आगे प्रवचन में कहा कि भक्ति पृथक् रस है। गोस्वामी जी महाराज ने रसों की दो श्रेणियाँ मानी हैं सामान्य रस, विशेष रस। विशेष रस में उन्होंने भक्तिरस, प्रेमरस वत्सल रस को स्वीकार किया है। गोस्वामी जी महाराज मानस जी में वर्णन करते हैं–

**रामचरित जे सुनत अघाहीं।**
**रस बिशेष जाना तिन नाहीं।।**

श्रीमद् भागवत जी का प्रतिपाद्य भगवत् प्रेम है। स्वार्थयुक्त ममता प्रेम या प्यार हो सकता है परन्तु भगवान में निस्स्वार्थ प्रेम हो तो वह परमप्रेम या भक्ति है। मानस जी में कहा भी गया है–

**मम गुन ग्राम नाम रत गत ममता मद मोह।**
**ताकर सुख सोइ जानइ परानन्द सन्दोह।।**

ब्रजांगनाओं की भगवद् भक्ति भी निस्स्वार्थ प्रेम स्वरूपा है। वे गोपीगीत में श्रीकृष्ण से कहती हैं–

**यत्ते सुजात चरणाम्बुरुहं स्तनेषु**
**भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु।**
**तेनाटनीमटसि तद् व्यथते न किंस्वित्**
**कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवतायुषां नः।।**

तुम्हारे चरण कमल से भी सुकुमार हैं उन्हें हम अपने कठोर स्तनों पर भी डरते डरते बहुत धीरे से रखती हैं कि कहीं उन्हें चोट न लग जाय। वन में भ्रमण करते समय क्या कंकड़ पत्थर लगने से उनमें पीड़ा नहीं होती? हमें तो इसकी कल्पना मात्र से ही चक्कर आ रहा है। हे श्यामसुन्दर! हमारा जीवन तुम्हारे लिए है हम तुम्हारे लिए ही जी रही हैं। भक्त शिरोमणि हनुमान जी भी प्रथम दर्शन में प्रभु श्रीराम से विनय करते हुए पूछ रहे हैं–

**कठिन भूमि कोमल पर गामी।**
**कवन हेतु विचरहु बन स्वामी।।**
**मृदुल मनोहर सुन्दर गाता।**
**सहत दुसह बन आतप बाता।।**

हमारी सम्पूर्ण ममताओं के केन्द्र भगवच्चरणारविन्द हैं। जिस प्रकार छोटे बालक से प्रेम में हम कुछ नहीं चाहते उसी प्रकार हम भगवान से निस्स्वार्थ प्रेम करें। श्रीमद् भागवत कथा की चर्चा को आगे बढ़ाते हुए पूज्यपाद जगद्गुरु जी ने कहा कि धर्म के तीन भेद हैं प्रवृत्तिलक्षण धर्म, निवृत्तिलक्षण धर्म और प्रपत्तिलक्षण धर्म। धर्म भागवत जी की शरण में आया। सन्तों के संस्मरणों की तालिका ही श्रीमद् भागवत है। पहला संस्मरण शुकाचार्य जी का भगवान श्रीराम जी से प्रारम्भ होता है–

**यस्यामलं नृपसदस्सु यशोऽधुनापि**
**गायन्त्यघघ्नमृषयो दिगिभेन्द्रपट्टम्।**
**तं नाकपाल वसुपाल किरीटजुष्ट**
**पादाम्बुजं रघुपतिं शरणं प्रपद्ये।।**

भगवान शुकाचार्य जी राजा परीक्षित को भगवान श्रीराम की यशोगाथा वर्णन करते हुए कहते हैं कि भगवान श्रीराम का निर्मल यश समस्त पापों को नष्ट करने वाला है। वह इतना विस्तृत है कि दिग्गजों का श्यामल शरीर भी उनकी उज्ज्वलता से चमक उठता है आज भी बड़े बड़े ऋषि महर्षि राजाओं की सभा में उसका गान करते हैं। स्वर्ग के देवता और पृथ्वी के नृपति अपने सुन्दर किरीटों (मुकुटों) से भगवान श्रीराम के चरण कमलों की सेवा करते रहते हैं। मैं (शुकाचार्य) उन्हीं रघुवंश शिरोमणि भगवान श्रीरामचन्द्र की शरण ग्रहण करता हूँ। भगवान शुकाचार्य के जन्म की चर्चा करते हुए पूज्यचरणों ने बताया कि शुकाचार्य माता पिंगला के गर्भ मे बारह वर्ष रहे। उनके पिता भगवान वेदव्यास ने जब उनसे बाहर आने की प्रार्थना की तो उन्होंने शर्त रखी कि मैं भगवान श्रीकृष्ण के समक्ष ही आऊँगा। भगवान श्रीकृष्ण प्रकट हुए शुकाचार्य जी गर्भ से बाहर आये और दर्शन करके तुरन्त वन को चल पड़े।

महर्षि वेदव्यास जी ने प्रथम वसन्ततिलका छन्द में बहुत सुन्दर वर्णन किया है। नैमिषारण्य में सूत जी कथा सुनाते हुए कहते हैं–

**यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेत कृत्यं**
**द्वैपायनो विरह कातर आजुहाव।**
**पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदु-**
**स्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि।।**

अनुपेतम् – माता का दूध पीने नहीं गये, अपेतकृत्यं–जिनके सारे कृत्य समाप्त हो गये हैं ऐसे शुकाचार्य जी के जाते ही माता का प्राणान्त हो गया। व्यास जी भी अब द्वीप में कुटिया बनाकर रहने लगे अतः द्वैपायन हो गये। राजा गोपीचन्द का प्रसंग सुनाते हुए पूज्य गुरुदेव ने कहा कि जब राजा गोपीचन्द ने संन्यास में जाने से पहले माता से आज्ञा माँगी और कहा कि अब मैं आपके ऋण से भी मुक्त हूँ तब माता ने कहा कि मेरे ऋण से मुक्त तभी हो सकते हो जब गूलर के दूध से सात तालाब भरो और दसों नाखूनों में २१-२१ लोहे की कील चुभाओ। गूलर के दूध से एक तालाब भरा गया और एक नाखून में लोहे की कील चुभाई तो चिल्लाने लगे। भाव यह है कि व्यक्ति माता से कभी उर्ऋण नहीं हो सकता। किन्तु शुकाचार्य जी कहते हैं कि माता का दूध पीऊँगा तभी तो ऋण होगा। उपवीत होने के लिए पिता के पास नहीं गये, विद्याध्ययन हेतु गुरु के पास नहीं गये खेलने के लिए मित्रों के पास नहीं गये अतः सबके ऋण से मुक्त होकर वन में चले गये। मनुशतरूपा के तप की चर्चा करते हुए पूज्यचरणों ने बताया कि इसी पवित्र भूमि नैमिष तीर्थ में मनुशतरूपा ने २३ हजार वर्ष तक तप किया था। तब उन्हें

**भृकुटि विलास जासु जग होई।**
**राम बाम दिशि सीता सोई।।**

भगवान श्रीसीताराम जी के दर्शन हुए। भगवान का अवतार वैदिक धर्म की रक्षा के लिए ही होता है। एक ही स्वरूप राम और कृष्ण दो रूपों में प्रकट होता है। भक्त के प्रति भगवान का कितना प्रेम है वे भक्त के लिए किसी भी सीमा तक जा सकते हैं। वेदों में कहा गया है– भक्तिवश्यो हि पूरुषः। वश धातु कान्ति के अर्थ में होती है और कान्ति माने इच्छा अर्थात् भक्त जैसी इच्छा करता है भगवान स्वयं को भक्त की इच्छानुसार ढाल लेते हैं। भगवान की तो कोई इच्छा ही नहीं होती। वे तो– 'निज इच्छा निर्मित तनु' हैं। निज इच्छा में षष्ठी तत्पुरुष समास है। निजानां इच्छा अर्थात् अपने भक्तों की इच्छानुसार शरीर धारण करते हैं। कथा का मर्म समझाते हुए पूज्यपाद जगद्गुरु जी महाराज ने कहा कि हमारा वाच्य संसार है, लक्ष्य भगवान है और व्यंग्य भगवत्प्रेम है। गोस्वामी जी

महाराज ने कहा भी है–

**सब कर फल रघुपति पद सेवा।**

अर्थात् सभी साधनों का फल भगवच्चरणों में प्रेम है। प्रेम माने ममता। सुन्दरकाण्ड में वर्णन है–

**जननी जनक बन्धु सुत दारा।**
**तन धन भवन सुहृद परिवारा।।**
**सब कै ममता ताग बटोरी।**
**मम पद मनहिं बाँधि बरि डोरी।।**

ममता माने यह घर मेरा है। जबकि–

**हम तो हमारे राघव जू के**
**राघव जू हमारे हैं।**

हमारी सारी ममताएँ राम जी में ही सिमट जायें तभी हमारा जीवन धन्य होगा। जहाँ भगवान का प्रवेश होगा वहाँ समस्त ऋद्धि सिद्धि स्वयमेव आजायेंगी। जय विजय और चारों बालकों (सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार) के प्रसंग की चर्चा करते हुए पूज्य आचार्यश्री ने समझाया कि जय विजय को सेवा का अहंकार हो गया तभी उन्होंने चारों सन्त बालकों को प्रताडित किया और भगवद्दर्शन से रोका जब बालकों ने शाप दिया तो जय विजय ने सोचा कि सुदर्शन चक्र से इनका शाप नष्ट कर देंगे। तब तक शाप स्वयं शस्त्र धारण करके आ गया और जय विजय कुछ न कर सके और उन्हें शाप के वशीभूत होकर राक्षस योनि में जाना पड़ा।

पुरुष (जीवात्मा) और प्रकृति के सम्बन्ध में गम्भीर चर्चा करते हुए गुरुदेव ने समझाया कि पुरुष ने जब प्रकृति को देखा तो वह मोहित हो गया। जब वह प्रकृति को छोड़ेगा तभी मुक्त होगा। जीवात्मा प्रकृति को कैसे छोड़े? इसके उत्तर में आचार्यचरणों ने बताया कि प्रभु की भक्ति ही जीव को प्रकृति (माया) के बन्धन से मुक्त करा सकती है। श्रीराम के चरणों में आँसू गिरते ही जीव सबसे मुक्त हो जाता है। हमारा शरीर मन्दिर बने तभी यह सम्भव है। श्रीमद् भागवत में कहा भी गया है–

**यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्**

अर्थात् जो सदैव आपका नाम आपके लिए लेते रहते हैं उनकी भक्ति प्रशस्य है। ज्ञान से साधक भगवान के निकट तो आ जाता है पर योगमाया का आँचल उसे ढक लेता है परन्तु योगमाया के आँचल को हटाकर जो शक्ति भगवान को प्रकट कर देती है उसी का नाम भक्ति है।

श्रीगीता जी में कहा भी गया है–

**भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।**

श्रीमद्भागवत में भक्ति के तीन साधनों का वर्णन है–

कथा श्रवण, सन्तों की संगति और नाम जप।

कथा श्रवण से निरन्तर सन्तों के सत्संग से तथा निरन्तर प्रभु का नाम जप भक्ति को बढ़ाता है। निरन्तर सत्संग से कुसंग भी छूट जाता है। गोस्वामी जी महाराज ने श्री विनयपत्रिका में वर्णन किया है कि–

**भवसागर कहँ नाव शुद्ध सन्तन के चरन।**
**तुलसिदास प्रयास बिनु मिलहिं राम दुखहरन।।**

सन्त सुधार करते हैं भगवान उद्धार करते हैं।

जिस प्रकार सावन भादों में वर्षा होती है उसी प्रकार रामनाम जप से भक्तिरूप वर्षा होती है। भक्ति के चार भेद हैं– अविरला, प्रेमा, निर्भरा और अनपायिनी। जीवन में यम नियम का उतना महत्व नहीं है जितना निर्मल हृदय से भक्ति का है। नारद जी की दिनचर्या का वर्णन करते हुए पूज्यपाद गुरुदेव ने बताया कि नारद जी चौबीस मिनट से अधिक कहीं नहीं रुकते थे। इसका कारण यह था कि दक्ष जी का उन्हें शाप लगा क्योंकि नारद जी ने दक्ष के दस हजार पुत्रों को प्रवृत्ति मार्ग से हटाकर निवृत्तिमार्ग में लगा दिया था।

थकने पर नारद जी चार स्थानों में विश्राम करते हैं– श्रीचित्रकूट, श्रीअयोध्या जी, श्रीवृन्दावन और श्रीद्वारका जी। भगवान श्रीसीताराम जी और श्रीराधागोविन्द जी की भक्ति जीव के पाँचों कोशों को जला देती है। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि जीव पाँच कोशों में बँध जाता है– अन्नमय कोश, मनोमय कोश, प्राणमय कोश, विज्ञानमय (बुद्धि) कोश और आनन्दमय कोश। जीवात्मा इन्हीं पाँच कोशों में आनन्द लेता रहता है। पाँचों कोशों के नष्ट हो जाने पर भक्ति जीवात्मा को पाँच आनन्द देती है– सदानन्द, चिदानन्द, परमानन्द, ब्रह्मानन्द और प्रेमानन्द। भगवान के भजन गाना अच्छा है ये गीत भगवान के भजन के साधन हैं परन्तु स्वर भी पावन होना चाहिए। अविद्या के पाँच प्राणों को भगवान अपने ऐश्वर्य से अज्ञान को, धर्म से तन को, यश से मोह को श्री से महामोह को ज्ञान से तामिस्र को और वैराग्य से अन्ध तामिस्र को नष्ट कर देते हैं। हमें कैसे पता चले कि हममे भक्ति आ रही है? इसका बहुत सुन्दर समाधान बताते हुए परमाराध्य परमपूज्य गुरुदेव ने कहा कि जब भगवान के समक्ष दैन्य निवेदन करते हुए हमारे नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बहने लगे हमारे रोंगटे खड़े हो जाये तब समझो कि हममें भक्ति का उदय हो रहा है। वैष्णव जन मुक्ति नहीं माँगते वे तो केवल भगवान के श्रीचरणों में भक्ति चाहते हैं। भक्ति प्राप्त करने के उपाय का वर्णन करते हुए श्रीमद् भागवत में भगवान श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं–

**नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं**
**प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।**
**मयानुकूलेन नभस्वतेरितं**
**पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा।।**

यह मानव शरीर समस्त शुभ फलों की प्राप्ति का मूल कारण है और अत्यन्त दुर्लभ होने पर भी भगवत्कृपा से अनायास सुलभ हो जाता है। इस संसार सागर से पार जाने के लिए यह एक सुदृढ नौका है। शरण ग्रहण मात्र से ही गुरुदेव इसके केवट बनकर पतवार का संचालन करने लगते हैं और स्मरण मात्र से ही मैं अनुकूल वायु के रूप में इसे लक्ष्य की ओर बढ़ाने लगता हूँ। इतनी सुविधा होने पर भी जो मानव शरीर के द्वारा संसार सागर का पार नहीं होता वह तो अपने हाथों अपनी आत्मा का हनन अर्थात् स्वयं का अध:पतन कर रहा है।

श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध को गुरुदेव ने श्रीरामचरितमानस के सुन्दरकाण्ड के समान बताया। अन्त में श्रीमद्भागवत के इस श्लोक से पूज्यचरणों ने कथा को विश्राम दिया–

**तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवं**
**तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम्।**
**तदेव शोकार्णव शोषणं नृणां**
**यदुत्तमश्लोक यशोऽनुगीयते।।**

जिन वचनों से भगवान के परमपवित्र यश का गान होता है वही परमरमणीय और रुचिकर होते हैं। उन वचनों (कीर्तन आदि) से अनन्तकाल तक मन को परमानन्द की अनुभूति होती रहती है। मनुष्यों का सारा शोक चाहे वह समुद्र के समान गहरा और लम्बा हो भगवान के कीर्तन भजन के प्रभाव से सदा के लिए सूख जाता है। अन्त में पूज्यचरणों ने सार रूप में निम्न वाक्य कहे–

१. अच्छी बातें सबसे सीखो।
२. भगवान को प्रसन्न करने का उपाय सन्तों का संग है।
३. भगवद् भक्ति ही भगवान को प्राप्त करने का साधन है।
४. भगवत्प्राप्ति में सहायक गुरुदेव ही हैं।
५. मरण को शुद्ध करने के लिए भगवान का स्मरण करो।

❑❑❑

# रामनामजपतां कुतो भयम्

❑ आचार्य डॉ० श्रीजयमन्त जी मिश्र

राम नाम एक महामन्त्र है। यह आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक–इन त्रिविध तापों का शमन करता है। जीवन की गुरुतर समस्या और गम्भीर चिन्ता से मुक्त करने वाला यह एक चिन्तामणि तथा मनोऽभिलषित फल देने वाला कल्पतरु है।

भक्तशिरोमणि प्रह्लाद को प्राणान्तक यातनाएँ दी जा रही थीं। उनका कोई प्रभाव भक्त प्रह्लाद पर नहीं पड़ रहा था। इससे चकित दैत्यराज हिरण्यकशिपु से उन्होंने कहा था–

**रामनामजपतां कुतो भयं**
**सर्वतापशमनैकभेषजम् ।**
**पश्य तात मम गात्रसंनिधौ**
**पावकोऽपि सलिलायते यतः।।**

राम–नाम जपने वालों को किसी से भय नहीं होता। राम–नाम तो सभी सन्तापों को प्रशमित करने वाला अमोघ भेषज है। देखें पिताजी! प्रचण्ड अग्निका भी प्रभाव मेरे शरीर में श्रीराम–नाम की महिमा से शीतल जल जैसा हो रहा है।

भारतीय वाङ्मय में राम–नाम के बहुत से चमत्कार वर्णित हैं। गम्भीर चिन्ताजनक समस्याओं का समाधान राम–नाम से हो जाता है। इसके अनेक उदाहरण हैं। इस प्रसंग के दो रोचक दृष्टान्त निम्नलिखित हैं–

(१) श्रीराम अपने सैनिकों के साथ शीघ्र लङ्का पर आक्रमण करना चाहते थे। महासागर पार करने की जटिल समस्या सामने थी। प्रस्तर–खण्डों से सागर में पुल बनाने की योजना बनी; पर गभीर जलराशि को प्रस्तर–खण्डों से भरना सम्भव नहीं था। प्रभु श्रीराम स्वयं बहुत चिन्तित होने की लीला कर रहे थे। भक्तराज हनुमान् को एक उपाय सूझा– 'प्रस्तर–खण्डों' पर राम–नाम लिखकर उन्हें सागर में छोड़ा जाय। राम–नाम की महिमा से प्रस्तर–खण्ड सागर में तैरते रहेंगे। इस तरह आसानी से पुल बन जायगा।' वैसे ही किया गया। राम–नाम लिख–लिखकर प्रस्तर–खण्ड फेंके जाने लगे। वे सभी जल के ऊपर तैरने लगे। पुल का निर्माण आसानी से होने लगा।

श्रीराम के मन में एक विचार आया– 'मेरे भक्त मेरा नाम लिखकर प्रस्तर–खण्डों को जल में फेंकते हैं और वे तैरते ही रहते हैं, डूबते नहीं। यदि मैं स्वयं राम–नाम लिखकर इन्हें जल में डालूँ तो अतिशीघ्र पुल तैयार हो जाय।' पर साथ ही मन में एक संदेह भी हुआ। 'मेरे द्वारा लिखित राम–नाम से अङ्कित प्रस्तर–खण्ड यदि जल में डूब गये तो ...? पहले छुपकर इसकी परीक्षा कर लूँ।' वे किसी बहाने एक झाड़ी की ओर चले। भक्तराज हनुमान् को जिज्ञासा हुई– 'प्रभु अकेले कहाँ जा रहे हैं?' उन्होंने अतिलघु रूप धारणकर प्रभु का अनुसरण किया। झाड़ी के पास जाकर श्रीराम ने चारों ओर देखा। एकान्त समझकर स्वलिखित राम–नाम अङ्कित प्रस्तर–खण्ड को सागर में फेंका। यह क्या, वह खण्ड तो जल में

डूब गया! वे पुनः चारों ओर देखने लगे कि किसी ने देखा तो नहीं! भक्ततवर हनुमान् प्रकट हो गये और बोले– 'प्रभो! ऐसा होना तो सर्वथा उचित ही था। जो भक्त राम–नाम लिखकर प्रस्तर–खण्ड सागर में फेंकेगा, उसे तो तैरना ही है। उसे सागर में तैरना ही है। किंतु आप जिसे अपने हाथों से फेंक दें, उसे तो डूबना ही है। प्रभो! ऐसा तो होना ही था।' प्रभु मुस्कुराने लगे।

(२) दूसरी घटना लङ्का की है। श्रीराम सदल–बल लङ्का पहुँच गये। खर–दूषण और बालि जैसे महाबलियों को मारने वाले श्रीराम से रावण मन–ही–मन सशङ्कित था। सायंकाल का समय था। मन बहलाने के लिये लङ्केश एक पुष्करिणी के तट पर टहल रहा था। उसके सैकड़ों हितैषी सेवक आस–पास घूम रहे थे। उनमें से कुछ सेवकों ने निवेदन किया– 'महाराज! राम असाधारण पुरुष हैं। पत्थरों पर उनका नाम लिखकर बंदरों ने सागर में फेंका, सब–के–सब तैरते ही रहे और पुल का निर्माण हो गया। वे सदल–बल लङ्कापुर पहुँच आये हैं। क्यों न उनसे सन्धि कर ली जाय?'' रावण ने जोर से अट्टहास किया– 'अरे, यह कौन सी बड़ी बात हो गयी? देखो, मैं भी पत्थर पानी में फेंकता हूँ।' उसने एक पत्थर का बड़ा टुकड़ा उठाया। उस पर तर्जनी से कुछ लिखकर पानी में फेंक दिया। वह टुकड़ा भी पानी में तैरने लगा। देखते ही, सभी– 'महाराज की जय हो! लङ्केश की जय हो!!'– के नारे लगाने लगे। नतमस्तक रावण मन्दस्वर में बोला– 'फेंकने के पहले मैंने भी राम–नाम लिखकर मन–ही–मन में कहा था–देखना राम, अपने नाम की प्रतिष्ठा रखना।' रावण चिन्तित हो महल की ओर चल पड़ा। स्पष्टतः राम–नाम की महिमा अपरम्पार है। जो इस नाम का जप करे, फिर भला उसे भय कैसा?

# बाँहन में भर लूँगी ............

### ( नैमिष तीर्थ में आशु रचना )

❑ पूज्यपाद जगद्गुरु जी

बाँहन में भर लूँगी कन्हैया तोहे जाने न दूँगी।
जो मेरे मोहन तुम राजा बनोगे
मैं भी रानी बनूँगी कन्हैया तोहे जाने न दूँगी।
जो मेरे मोहन तुम स्वामी बनोगे।
मैं भी स्वामिनी बनूँगी कन्हैया तोहे जाने न दूँगी।
जो मेरे मोहन तुम ठाकुर बनोगे
मैं भी ठकुरानी बनूँगी कन्हैया तोहे जाने न दूँगी।
रामभद्र आचारज के मितवा
पल पल बस में करूँगी कन्हैया तोहे जाने न दूँगी।
बाँहन में भर लूँगी कन्हैया तोहे जाने न दूँगी।।

प्रस्तुति-श्रीमती माधवी अग्रवाल

# आध्यात्मिक और सांस्कृतिक तीर्थ-श्रीचित्रकूटधाम

❑ डॉ० हरप्रसाद दूबे

चित्रकूट एक आध्यात्मिक और सांस्कृतिक तीर्थ है। यह वह पावन धरा है जहाँ सृष्टि के पूर्व विधाता ने यज्ञ अनुष्ठान किया था। इसके अनन्तर यहाँ का स्वामी, शिव को मत्तगजेन्द्र स्वामी नाम प्रदान कर बनाया था। ब्रह्मा, विष्णु और शंकर ने चित्रकूट में दत्तात्रेय, चन्द्रमा और दुर्वासा के रूप में अवतार लिया था। यही वह पवित्र भूमि है जहाँ नारद दक्ष के शाप से मुक्ति पाये थे। भारतीय संस्कृति के इसी पुण्य क्षेत्र में राम ने सीता और लक्ष्मण के साथ वनवास के बारह वर्ष बिताये। पौराणिक, साहित्यिक स्थल चित्रकूट रचनाधर्मी मनीषियों-महर्षियों की सृजन-भूमि है। त्याग, वैराग्य और परम शान्ति का यह सिद्धपीठ कामनाओं की पूर्ति करने वाला कामद कल्पतरु है। राम का जीवन में आना ही चित्रकूट की यात्रा है। यही एक ऐसा तीर्थ है, जहाँ के शिलाखण्डों पर राम, सीता, लक्ष्मण और भरत के पादचिन्ह अभी भी हैं।

चित्रकूट के बिना राम की और राम के बिना चित्रकूट की कथा पूर्ण नहीं होती। चित्रकूट का तात्पर्य है कि चित्रों का पर्वत। चित्रकूट का महत्व वाल्मीकि रामायण, रामचरितमानस और अन्य पुराणों में वर्णित है। चित्रकूट प्राचीनकाल से तपोभूमि के रूप में प्रतिष्ठित है। पयस्विनी नदी के किनारे सीतापुर नामक क्षेत्र ही चित्रकूट नाम से विख्यात है। यह क्षेत्र विराट और सुरम्य है। चित्रकूट के प्रत्येक तीर्थ दूर-दूर तक बिखरे हैं। चित्रकूट का मात्र रामघाट बाँदा जिले में और शेष स्थल मध्य प्रदेश के सतना जिले में हैं। रामघाट पयस्विनी नदी के बायें किनारे स्थित है। यहीं ब्रह्मा द्वारा सम्पादित यज्ञ की वेदिका भी है। इसी घाट पर गोस्वामी तुलसीदास जी को राम के दर्शन हुए थे। पयस्विनी के पक्के घाटों में राम घाट, कैलास घाट, धृततुल्पा घाट और राघव घाट का स्थान महत्वपूर्ण है।

कामदगिरि चित्रकूट का अलौकिक दर्शनीय स्थल है। इसका दूसरा नाम कामतानाथ प्रसिद्ध है। कामदगिरि दर्शन और परिक्रमा से भक्तों के समस्त मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। परिक्रमा मार्ग की पूरी दूरी पाँच किलोमीटर है। यह गोलाकार पहाड़ी भगवान का स्वरूप मानी जाती है। इसके ऊपर कोई चढ़ता नहीं। भगवान श्रीराम ने यहाँ निवास किया था। परिक्रमा मार्ग में प्रथम पवित्र स्थल मुखारविन्द अत्यन्त पावन है। इसके अतिरिक्त हनुमान जी साक्षी गोपाल, लक्ष्मीनारायण, श्रीरामजी और तुलसीदास के स्थान, कैकेई और भरत जी के मन्दिर, चरण पादुका और श्रीलक्ष्मण मन्दिर उल्लेखनीय है। चरण पादुका स्थान प्रांगण में श्रीराम भरत मिलने के समय पत्थर पर उभर आए चरणचिन्ह दर्शनीय हैं। कामदगिरि के मुखारविन्द स्थल पर ही भगवान कामतानाथ (शिवजी) और राम, सीता-लक्ष्मण का विग्रह स्थापित है। यहीं से परिक्रमा आरम्भ की जाती है और यहीं पूर्ण भी होती है।

कामदगिरि के पार्श्व में लक्ष्मण पहाड़ी है, इस पर लक्ष्मण जी का मन्दिर है। ऐसी आस्था है कि यह स्थान लक्ष्मण को अत्यन्त प्रिय था। वे रात्रि में यहीं बैठकर वनवासकाल में पहरा देते थे। परिक्रमा मार्ग स्थित भरत मिलाप के विषय में आख्यान मिलता है

कि यहीं पर भगवान श्रीराम और भरत का मिलन हुआ था। सीतापुर से पूरक संकर्षण पर्वतमाला पर हनुमान धारा नामक पवित्र स्थल है। यहीं कोटि तीर्थ स्थित है। वहाँ से ऊपर आने पर बाँके सिद्ध, पम्पा सरोवर, सरस्वती नदी (झरना), यमतीर्थ, सिद्धाश्रम, गृधाश्रम (जटायु–तपोभूमि) है। हनुमानधारा बड़ी ऊँची चढ़ाई है। यहाँ पर्वतखण्ड से निकली जल की निर्मल धारा हनुमान जी का अभिषेक करती रहती है। यह कुण्ड में गिरकर पुनः भूमिगत हो जाती है। हनुमान धारा से ऊपर की ओर सौ सीढ़ियों के चलने पर सीता रसोई है। इसी मन्दाकिनी के पावन पुलिन पर अवस्थित है श्रीतुलसीपीठ, आमोदवन। यहाँ श्रीचित्रकूट बिहारी बिहारिणी जू के श्रीविग्रह विराजमान हैं। काँच मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध यह पावन परिसर विश्व के विलक्षण विभूतिपाद श्रीतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज द्वारा स्थापित है। भक्त शिरामणि श्रीहनुमान जी, भगवान् आद्यरामानन्दाचार्य, महर्षि वाल्मीकि एवं गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज के श्रीविग्रह भी यहाँ भव्यता के साथ विराजमान हैं यहीं श्रीरामचरितमानस का ऐसा मन्दिर है जहाँ सम्पूर्ण श्रीमानस जी दीवारों पर उत्कीर्ण हैं। नव्य भव्य यह मन्दिर चित्रकूट का प्रमुख दर्शनीय स्थल है।

यहीं पर उ० प्र० के भूभाग में जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय स्थित है। इसके जीवनपर्यन्त कुलाधिपति एवं संस्थापक स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज ही हैं। विकलांग सेवा के लिए तथा उनका सर्वाङ्गीण विकास करने वाला और निःशुल्क सेवा करने वाला यह विश्व का प्रथम और अनूठा विश्वविद्यालय है। यहाँ लगभग एक हजार विकलांग राष्ट्र की मुख्यधारा में रहते हैं। आगे जानकीकुण्ड है। पयस्विनी नदी तट पर श्रीजानकी जी स्नान करती थीं। यहाँ स्फटिक पत्थरों पर अनेक चरण चिन्ह अंकित हैं। जानकीकुण्ड से कुछ आगे पयस्विनी तट पर स्फटिक शिला स्थित है। यहीं इन्द्र के पुत्र जयन्त ने कौए का रूप धारण करके सीता जी के चरणों में चोंच मारी थी। यहाँ नदी के बाएँ तट पर श्वेत पत्थर के दो विशालखण्ड हैं। बड़ी शिला पर चरणचिन्ह अंकित हैं। इसी पर राम, सीता बैठे हुए थे। राम ने सीता को पुष्पहार पहनाया था। सुरम्य दृश्य हृदयस्पर्शी और नयनाभिराम है। प्राकृतिक छटा अनूठी है। मन्दिर में राम–सीता और लक्ष्मण का अनुपम श्रीविग्रह है।

अनसूया आश्रम चित्रकूट से १४ किलोमीटर दक्षिण स्थित है। यह स्फटिक शिला से आठ किलोमीटर दूर है। महर्षि अत्रि और अनसूया की तपोभूमि यही है। अत्रि ऋषि की प्यास बुझाने के लिए अनसूया ने अपने तप से पयस्विनी को प्रगट किया था। इस पयस्विनी को ही स्थानीय जनमानस मन्दाकिनी नाम से जानता है। अनसूया आश्रम के सम्मुख पयस्विनी की पतली धारा पर्वत से उतरती दिखाई देती है। मन्दिर के पीछे उच्चता में पर्वत सुशोभित है। पयस्विनी का स्नान और अनसूया मन्दिर का दर्शन माहात्म्ययुक्त है। यहाँ अत्रि, अनसूया, दत्तात्रेय, दुर्वासा, चन्द्रमुनि की प्रतिमाएँ देवालयों में प्रतिष्ठित हैं। घने वन क्षेत्र के मध्य यह स्थल अद्वितीय सौन्दर्य सम्पन्न है।

गुप्त गोदावरी अनसूया आश्रम से लगभग १० किलोमीटर दूर स्थित है। यह निर्मल प्राकृतिक जल स्त्रोतों से आप्लावित एक विशाल गुफा है। इस गुफा में १५ मीटर भीतर सीताकुण्ड है। गोदावरी गुप्त रूप में इसी गुफा में झरने के रूप में राम सीता के दर्शनार्थ प्रकट हुई थी, ऐसी जनश्रुति मिलती है।

गुप्त गोदावरी का जल कुण्ड में आकर गिरता है। इसके बाद भूमि में समा जाता है। अन्दर अँधेरा होने के कारण वहाँ दीप के साथ जाना होता है। गुफा से आती जलधारा बाहर के दो कुण्डों में गिरकर लुप्त हो जाने के कारण ही इसका नाम गुप्त गोदावरी पड़ गया। इसीलिए तो चित्रकूट दर्शन मात्र करने से मंगल की वृष्टि होती है–

**महर्षि सेवितः पुण्यः पर्वतः शुभदर्शनः।।**
**यावता चित्रकूटस्य नरः श्रृंगाण्यवेक्षते।**
**कल्याणानि समाधत्ते न पापे कुरुते मनः।।**

चित्रकूट का एक पावन तीर्थ है भरतकूप। यह ऐतिहासिक कूप सड़क मार्ग से कुछ दूरी पर है। अत्रि ऋषि के कहने पर राम राज्याभिषेक के लिए भरत जी द्वारा लाये गये सारे तीर्थों का जल इसी कूप में डाला गया था। यह कूप सर्वतीर्थस्वरूप है। ऋषि अत्रि ने इसे अनादि सिद्धस्थल कहा है "तात अनादि सिद्ध थल एहू। लोपेउ कालविदित नहि केहू।।" यहाँ श्रीसीताराम के दो पृथक् देवालय अत्यन्त भव्य हैं। भरतकूप से चित्रकूट लौटने में एक शिलाखण्ड मिलता है जिस पर दो प्राणियों के विश्राम करने का चिन्ह है। दोनों के मध्य में धनुष का चिह्न भी है। ऐसा कहा जाता है कि मर्यादापुरुषोत्तम राम ने जानकी जी के साथ इस शिला पर विश्राम किया था। मध्य में पार्थक्य के लिए धनुष रखा था। इस शिलाखण्ड का नाम रामशय्या है।

हनुमान धारा के पास सिद्धाश्रम से कुछ दूरी पर मणिकर्णिका तीर्थ स्थित है। इसके मध्य चन्द्र, सूर्य, वायु, अग्नि और वरुण पंच देवताओं का निवास होने के कारण इसे पंचतीर्थ कहा जाता है। यहीं से कुछ दूरी पर ब्रह्मपद तीर्थ भी है। गुप्त गोदावरी के पास 'मरफा' प्राचीनकाल में माण्डव ऋषि का आश्रम था। प्राकृतिक छटा हृदयस्पर्शी है। पहाड़ी पर श्री बालाजी का भव्य देवालय है। कई झरने हैं। नीचे पापमोचन सरोवर विद्यमान है। बाँकेसिद्ध प्राकृतिक कन्दरा यहाँ सौन्दर्य से परिपूर्ण है। चट्टान के नीचे निर्मित कक्ष धरातल से एक सौ फीट उच्च है। ऊपर से निर्मल जल का झरना उत्तरी भाग को नहलाता हुआ पर्वत के कक्ष में विलीन होता है। गणेशबाग पेशवा नरेशों की कीर्ति का साक्षी है। इसमें षटकोणी पंच मंदिर है।

प्रभु श्रीराम जानकी से कहते हैं चित्रकूट रमणीक स्थल है–

**दर्शनं चित्रकूटस्य मन्दाकिन्याश्च शोभते।**
**अधिकं पुरवासाच्च मन्ये तव च दर्शनात्।।**

चित्रकूट पावन तीर्थ है। यह सृष्टि की पावन धरा है–

**अर्थिनामर्थदातारं परमार्थं प्रकाशकम्।**
**कामिनां कामदातारं मुमूक्षुणां च मोक्षदम्।।**

❑❑❑

**मातर्दण्डय मां प्रचण्डविधिभिर्यष्ट्या मुहुर्भीषय**
**तूर्णं भर्त्सय धर्षयस्वपदयोः कृत्वा तले पीडय।**
**कामं ताडय पाणिकञ्जकरजैर्मा देहि मे भोजनं**
**स्वस्मात् किन्तु पदारविन्दयुगलात्पुत्रं न दूरं कुरु।।**

महाकवि स्वामी रामभद्राचार्य कृत श्रीभार्गवराघवीयम् १४/११

卐 नमो राघवाय 卐

**धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय कविकुलरत्न श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज की समर्चा में**

# 'षष्टिपूर्ति' अभिनन्दनग्रन्थ

दिनाङ्क.................................



मान्यवर,

वेदितव्य है कि वर्तमान हिन्दु समाज के शीर्षस्थ मार्गदर्शक, भारतीय वाङ्मय के चूडान्तमनीषी अलौकिक प्रतिभा तथा स्मृति के अक्षय भण्डार एवं जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय चित्रकूट (उ०प्र०) के जीवन पर्यन्त कुलाधिपति पूज्यपाद जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज का आगामी 14 जनवरी 2010 को षष्टिपूर्ति समारोह बहुत भव्यता के साथ चित्रकूट में मनाया जायेगा। इस शुभ अवसर पर श्रीराघव परिवार ने अपने परमाराध्य पूज्यपाद जगद्गुरु जी की समर्चा में ''षष्टिपूर्ति'' नामक अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित करने का निर्णय लिया है।

हमारे पूर्ण संज्ञान के अनुसार आपका पूज्यपाद जगद्गुरु जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से बहुत गहरा सम्बन्ध है। श्रीगीता जी में कहे गए 'मत्परः' कोटि के ये आचार्यश्री अनूठी विकलांग सेवा, उद्धरणीय राष्ट्रभक्ति, वन्दनीया महाकवित्व शक्ति, रामकथा एवं कृष्णकथा आदि की अद्वितीय प्रस्तुति अदूष्य वैदुष्य एवं अलौकिक शास्त्रीयशेमुषी एवं सनातनधर्मरूप कल्पवृक्ष के प्रति अगाध निष्ठा के कारण भगवद्भक्तों विपश्चितों एवं राष्ट्रपुरुषों द्वारा निरन्तर सम्पूजित हैं।

आपसे विनम्र प्रार्थना है कि ऐसे विश्वविलक्षण व्यक्तित्व के विषय में अपना लेख/कविता/संस्मरण अथवा उनका कोई फोटो आदि अन्य उपयोगी सामग्री शीघ्रातिशीघ्र निम्नलिखित पतों में से किसी एक पते पर प्रेषित करने की अवश्य कृपा करें। ज्ञातव्य है कि 15 नवम्बर 2009 तक आपकी प्रेषित सामग्री हमें अवश्य प्राप्त हो जाए। पूर्ण विश्वास है कि आप हमारी प्रार्थना पर अवश्य ध्यान देंगे।


- डॉ० त्रिभुवननाथ शुक्ल
  56 अशोकनगर, अधारताल,
  जबलपुर (म०प्र०)
  पिन– 482004
- डॉ० सुरेन्द्र शर्मा 'सुशील'
  शाश्वतम्, डी–255 गोविन्दपुरम्
  गाजियाबाद (उ०प्र०)

उत्तरापेक्षी
**षष्टिपूर्ति अभिनन्दन ग्रन्थ समिति**

| **अध्यक्ष** | **महामन्त्री** | **संयोजक** |
|---|---|---|
| 09871191984 | 09425044685 | 09868932755 |


संलग्नक– पूज्यपाद जगद्गुरु जी का अत्यन्त संक्षिप्त जीवन परिचय।

# ''पर उपदेश कुशल बहुतेरे''

❑ **साध्वी विश्वेश्वरी देवी ( मानस माधुरी )**
**श्रीरामकृपाधाम-हरिद्वार**

आज वर्तमान परिप्रेक्ष्य में, समाज में अधिकांशतः व्यक्तियों की स्वभाविक वृत्ति, व्यक्तित्व की अपेक्षा वक्तव्य पर अधिक होती है, ''स्व'' की अपेक्षा ''पर'' (गुण-दोष चिंतन पर) होती है। आज प्रत्येक व्यक्ति उपदेशक बनने की अनियंत्रित दिशाहीन दौड़ में शामिल हो रहा है। ऐसे लोग, जिन्होंने कदापि उपदेश की विषयवस्तु के विषय में न चिंतन ही किया है और न कदापि स्वजीवन में स्थान ही दिया है वे ही लोग सामने वाले को उन्मुक्त कण्ठ से उपदेश करते नजर आ रहे हैं। जिनका न कोई शास्त्र स्वाध्याय है, न स्वमौलिक चिंतन वे ही अधिकाँशतः वर्तमान में उपदेशक की भूमिका निभा रहे हैं।

वाक्संयम अत्यावश्यक है चूंकि वक्तव्य व्यक्तित्व का आइना (दर्पण) होता है, जैसा हमारा व्यक्तित्व होगा वैसा ही वक्तव्य भी होना चाहिए। क्योंकि आपकी वाणी से उच्चारित त्रुटिपूर्ण शब्द भी, दूसरे व्यक्ति के हृदय को बेध सकता है, अतएव श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण हमें बोलना सिखाते हैं-

**अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।**
**स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते।।**

गीता (१७-१५)

अर्थात् जो किसी की उद्वेग न करने वाला प्रिय, हितकारक एवं यथार्थ वाक्य है वहीं दूसरों के समक्ष बोलने योग्य है मनसा, वाचा, कर्मणा एक विषय का स्वर्णिम आयाम बनकर रह गया है। भगवान श्रीराम जी के लिये महर्षि वाल्मीकि जी ने जो लिखा है वह

**''रामो द्विर्नाभिभाषते''**

अर्थात श्रीराम जी दो प्रकार की वाणी नहीं बोलते वे जो चिन्तन करते हैं वही वाणी से मुखर होता है और जो वाणी से उच्चारित होता है वही शरीर द्वारा कर्म का रूप ले लेता है। यही वाणी का सर्वोत्तम फलित रूप है और ये अक्षरशः सत्य हुआ श्रीराम जी के व्यक्तित्व में।

महात्मा एवं दुरात्मा की पहिचान का सर्वश्रेष्ठ स्वरूप भी यही है कि-

**''मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्।**
**''मनस्यन्यद् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम्।।**

अर्थात् मन से वाणी तक आते अति चिन्तन का विषय और वर्ण बदल जायें तथा वाणी से व्यवहार बदल जाये यही दुरात्मा के लक्षण हैं। तथा मनसा, वाचा, कर्मणा एक हो वही महात्मा कहलाता है।

सर्वथा कष्टकारक वृत्ति यही है कि आज के उपदेशक समाज को उपदेश स्वरूप जो बाँट रहे हैं उसे वे अपने ही जीवन में नहीं जी पा रहे हैं। ऐसा ज्ञान ठीक वैसा ही है जैसे कि रेगिस्तानी ऊँट की पीठ पर चीनी के बोरे लदे हों और वहीं ऊँच कड़वी नीम की पत्तियाँ चबा रहा हो उनका ज्ञान ही उनके लिये भार बन गया है। वे उस ज्ञान के आनन्दरूपी मिठास का आनंद नहीं ले पा रहे हैं बल्कि विषय भ्रम रूपी नीम की कड़वी पत्तियाँ खाकर ही प्रसन्न हो रहे हैं इससे ज्यादा कष्टकारक दूसरा क्या हो सकता है।

दूसरों को उपदेश करते समय तो निरा मूढ़ भी महा बुद्धिमान बन जाता है किंतु जब उसी उपदेश के पालन का समय आता है तो फिर समस्त शिष्टताएँ भूलने लगता है यथा-

**''परोपदेशवेलायां शिष्टाः सर्वे भवन्ति हि।**
**विस्मरन्तीह शिष्टत्वं स्वकार्ये समुपस्थिते।।''**

उपदेश नहीं आचरण अत्यंत आवश्यक है जब तक पिता आचरणवान नहीं है तब तक पुत्र को उपदेश करने का अधिकारी नहीं है सनातन शास्त्रों में तो आचार्य अथवा गुरु जब शिष्य की विद्याध्ययन के पश्चात् उसको अन्तिम उपदेश देते हैं तो यही कहते हैं वत्स–

**''यानि अस्माकं सुचरितानि,**
**तानि त्वया सेव्यानि, नो इतराणि।''**

अर्थात् हमारे चरित्र में जो तुम्हें अच्छा लगा हो 'तुम उसी को अपने जीवन में लाना अन्य बातों को नहीं' कितना उच्चादर्श प्रस्तुत किया है सनातनी आचार्यों ने। किंतु कितने खेद के साथ कहना पड़ता है कि उस उच्चादर्श को वर्तमान के विकसित कहे जाने वाले व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र ने भुला दिया है। वर्तमान में तो जो मुख के सामने मीठा एवं सुन्दर (मिथ्या प्रशंसा एवं चापलूसी भरा) बोले वही सर्वाधिक अच्छा और हितैषी समझा जाता है। वास्तव में सत्यता यह है कि यदि उपदेश की आवश्यकता है तो सर्वप्रथम आपके मन और जीवन को ही सर्वाधिक आवश्यकता है। जब तक आपकी मानसिकता दूसरों की त्रुटि ढूँढने की होती है तब तक आप अपने अन्दर दोष नहीं देख पाते यदि आपका चिन्तन मात्र यही है कि हम तो पूर्णरूपेण सुधरे हुए हैं केवल सुधरना है तो सामने वाले को तो निश्चितरूपेण आप भी उसी श्रेणी में आते हैं जो कि सन्त चक्रचूड़ामणि कविवर गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी ने श्रीरामचरितमानस में लिखी है कि–

**''पर उपदेश कुशल बहु तेरे।**
**जे आचरहिं ते नर न घनेरे।।''**

❑❑❑

## पूज्यपाद जगद्गुरु जी के आगामी कार्यक्रम

❑ प्रस्तुति-पूज्या बुआ जी

| दिनाङ्क | विषय | आयोजक तथा स्थान |
|---|---|---|
| 4 नवम्बर 2009 से<br>12 नवम्बर 2009 तक | श्रीरामकथा | दन्दरौआ डाक्टर हनुमान मंदिर<br>जिला भिण्ड (म०प्र०)<br>आयोजक– महन्त श्रीरामदासजी महाराज |
| 17 नवम्बर 2009 से<br>24 नवम्बर 2009 तक | 108 श्रीमद्भागवतकथा | श्रीराम जी मंदिर, गोण्डल (गुजरात)<br>महन्त श्रीहरिचरण दास जी महाराज |
| 25 नवम्बर 2009 से<br>31 नवम्बर 2009 तक | श्रीमद् भगवद् गीता सप्ताह | श्री गीता ज्ञान मंदिर राजकोट (गुजरात)<br>श्रीगीता ज्ञान मंदिर ट्रस्ट<br>एवं जयनाथ हास्पिटल |
| 17 दिसम्बर 2009 से<br>25 दिसम्बर 2009 तक | श्रीरामकथा | आट्रम लाईन किंग्सवे कैम्प दिल्ली–९<br>पुरुषार्थी हरि मंदिर निर्माण समिति दिल्ली। |

**कृपया किसी भी कार्यक्रम में जाने से पूर्व परमपूज्या बुआ जी से सम्पर्क अवश्य करके जायें। कार्यक्रम में परिवर्तन भी हो सकता है।**

# शहद स्वास्थ्य का अमूल्य खजाना है

❑ श्री हरिनारायण 'महाराज'

सन् १९६६-६७ के दौरान परम गोभक्त महात्मा रामचन्द्र 'वीर' महाराज ने लम्बा अनशन किया था। मैंने देखा कि महीनों तक निराहार रहने के बावजूद वीर जी महाराज अधिक निर्बल नहीं हुए। जबकि इसी दौरान एक साधु अनशन के पन्द्रहवें दिन अपनी जीवन लीला समाप्त कर चुके थे।

इस संबंध में पूछने पर श्रीवीर जी ने बताया – आयुर्वेदिक ग्रन्थों में जिस मधु को अमृत की संज्ञा दी गयी है, उसी मधु की कृपा से मैं इतना लम्बा अनशन कर सका हूँ। मैं अनशन काल में औषधि के रूप में प्रतिदिन एक छटाँक (लगभग ६० ग्राम) शहद का सेवन करता रहा।

वीर जी के इस शहद-प्रयोग से मैं अत्यन्त प्रभावित हुआ और शहद में कौन सी शक्ति छिपी है, इसका अन्वेषण करने लगा तथा जो ज्ञात हो सका वह यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है-

आहार-विशेषज्ञ ने चीनी को स्वास्थ्य के लिए अनुपयोगी तथा हानिकारक बताया है और चीनी के स्थान पर गुड़ या शहद खाने की सलाह दी है। अतः जहाँ तक संभव हो चीनी के स्थान पर शहद का ही सेवन करना चाहिए।

शहद में पोषक तत्व तथा गुण-शहद शक्तिवर्द्धक, स्वास्थ्यप्रद और औषधीय गुणों से युक्त प्रकृतिप्रदत्त खाद्यपदार्थ तथा टॉनिक है। इसके सेवन से जहाँ हमें शक्ति प्राप्त होती है, वहीं हमारा रोगों से बचाव भी होता है। शरीर को शक्तिशाली तथा निरोग बनाये रखने के लिए जिन तत्वों का होना परम आवश्यक है, वे सभी प्रायः शहद में विद्यमान हैं। इसमें लगभग ४० प्रतिशत ग्लूकोज, ३८ प्रतिशत फ्रक्टोज, २ से ५ प्रतिशत सुक्रोज, मालटोज, डेक्सट्रिन्स, गोंद, मोम तथा क्लोरोफिल होता है। इसके अतिरिक्त इसमें प्रोटीन, एसिड्स एन्जाइम्स, लौह, कैलशियम, मैंग्नीशियम, मैंगनीज, सल्फर, कॉपर, क्लोरीन और फास्फोरस आदि चौदह प्राकार के खनिज लवण पाये जाते हैं। विटामिन में ए, सी तथ बी१, बी२, बी६ एवं बी१२ भी शहद में पाये जाते हैं। १०० ग्राम शहद से ३६० कैलोरी शक्ति प्राप्त होती है, जबकि १०० ग्राम देसी घी से ३०० कैलोरी शक्ति प्राप्त होती है। मूल्य में भी देशी घी की अपेक्षा शहद सस्ता बिकता है।

शहद पाचन क्रिया को स्वस्थ बनाता है। शारीरिक तथा मानसिक शक्ति बढ़ाता है। हृदय को शक्ति प्रदान करता है, थकावट दूर करता है और मनुष्य को स्वस्थ एवं दीर्घजीवी बनाता है। शहद का मुख्य गुण यह है कि पेट में पहुँचते ही पचकर तत्काल शक्ति प्रदान करता है।

सेवन विधि- शहद भोजन से पहले, भोजन के साथ तथा भोजन के बाद कभी भी लिया जा सकता है। इसका सेवन सभी ऋतुओं में लाभकारी है। यह खाद्यपदार्थों तथा औषधियों के साथ भी खाया जाता है और अकेले भी। योगवाही-वृत्ति होने के कारण यह जिस पदार्थ तथा औषधि के साथ लिया जाता है, उसके गुणों को कई गुणा प्रभावकारी बना देता है। इसी कारण आयुर्वेदिक औषधियाँ शहद के साथ खायी जाती हैं। शहद को जल, दूध, दही, मलाई, फलों के रस, रोटी, नींबू आदि किसी भी खाद्य पदार्थ के साथ खाया जा सकता है।

शहद न उष्ण है, न शीतल, गरम चीज के साथ लेने पर यह गरम तथा ठण्डी चीज के साथ लेने पर यह ठण्डा प्रभाव दिखलाता है। अतः गर्मियों में ठण्डे पेय के साथ, सर्दियों में गरम के पेय के साथ एवं वर्षा ऋतु में प्राकृतिक रूप में ही इसका सेवन करना चाहिए। अधिक गरम करने तथा अधिक गरम चीज में मिलाने से इसके गुण नष्ट हो जाते हैं। अतः इसे हल्के गरम पेय पदार्थ में ही मिलाना चाहिए। घी, तेल, आदि चिकने पदार्थों में समान मात्रा में शहद मिलाने से वे विषतुल्य बन जाते हैं। अतः चिकने

पदार्थों में समान मात्रा में शहद मिलाकर उनका सेवन नहीं करना चाहिए।

**विभिन्न अवस्थाओं में शहद का उपयोग-**

थकावट में-शहद का मुख्य गुण थकावट को दूर करना है। चीनी से पाचन-अंग खराब होते हैं। पेट में वायु पैदा होती है, किंतु शहद वायु बनना रोकता है, शारीरिक तथा मानसिक शक्ति को बढ़ाता है। अत: रात्रि में अथवा जब भी थकावट महसूस हो, दो चम्मच शहद आधे गिलास पानी में नींबू का रस निचोड़कर पीने से सारी थकावट दूर हो जाती है।

हृदय की कमजोरी में- शहद रोगग्रस्त हृदय को शक्ति देता है तथा स्वस्थ हृदय को पुष्ट एवं शक्तिशाली बनाता है। जब खून में ग्लाईकोर्जन की कमी से रोगी को बेहोश होने का डर हो तो शहद खिलाकर रोगी को बेहोश होने से बचाया जा सकता है। निर्बलता अथवा सर्दी के कारण जब हृदय की धड़कन अधिक हो जाए, दम घुटने लगे तो दो चम्मच शहद सेवन करने से नई शक्ति मिल जाती है। एक चम्मच शहद प्रतिदिन सेवन करने से हृदय सबल बनता है।

अपच तथा कब्ज में- शहद पाचन-अंगों में वायु बनना रोकता है, उदर-सम्बन्धी रोगों को दर कर भूख बढ़ाता है एवं भोजन को पचाकर शरीर को शक्ति प्रदान करता है। यह प्राकृतिक रूप से हल्का दस्तावर है, अत: कब्ज के रोगी के लिये विशेष उपयोगी है। प्रात: तथा रात्रि में सोने से पहले ५० ग्राम शहद पानी या दूध के साथ पीने से अथवा त्रिफला के साथ सेवन करने से मन्दाग्नि और कब्ज की शिकायत दूर हो जाती है।

दमा तथा फेफड़े के रोगों में- दमा तथा फेफड़े के रोग जैसे ब्रोन्काइटिस, निमोनियाँ, क्षय आदि रोग शहद के सेवन से दूर हो जाते हैं। शहद फेफड़ों को बल देता है। खाँसी, गले की खुश्की, स्नायुकष्ट तथा छाती में घरर-घरर की आवाज दूर करता है।

गर्भावस्था में- शहद में प्रोटीन तथा हारमोन होते हैं। गर्भावस्था में रक्त की कमी आ जाती है। दो चम्मच शहद प्रतिदिन सेवन करने से यह कमी नहीं आती तथा पर्याप्त प्रोटीन और हारमोन भी मिल जाते हैं। यदि गर्भवती महिला प्रतिदिन दूध के साथ शहद का सेवन करे तो एक ओर जहाँ वह स्वस्थ रहेगी, वहीं दूसरी ओर उसका बच्चा स्वस्थ, सुडौल तथा आकर्षक होगा।

नेत्ररोगों में- उन सभी खाद्य पदार्थों का सेवन जिनमें विटामिन ए होता है, नेत्रों की सुरक्षा एवं नेत्ररोगों को दूर करने में लाभकारी होता है, नेत्रों की सुरक्षा एवं नेत्ररोगों को दूर करने में लाभकारी होता है। नेत्र विशेषज्ञों के अनुसार प्रतिदिन एक बूँद शहद नेत्रों में डालने से मोतियाबिन्द से बचा जा सकता है। जिन लोगों को मोतियाबिन्द हो गया हो, यदि वे प्रारम्भिक अवस्था में तीन-चार सप्ताह का उपयोग करें तो उन्हें निश्चित रूप से लाभ होगा।

शिशु-अवस्था में- शिशुओं को प्रतिदिन दिन में तीन बार आधा-आधा चम्मच शहद चटाने से वे स्वस्थ तथा हृष्ट-पुष्ट रहते हैं। दाँत निकलने वाले बच्चों के मसूढ़ों पर शहद मलने से दाँत निकलते समय उन्हें कष्ट नहीं होता। नींद में रोने वाले बच्चों को नियमित शहद चाटने से उनका नींद में रोना बन्द हो जाता है।

**शुद्धता की पहचान**

- ❑ शुद्ध शहद पानी में नहीं घुलता।
- ❑ रुई की बत्ती शुद्ध शहद में भिगोकर जलाने पर जलती रहती है, बुझती नहीं।
- ❑ शुद्ध शहद कपड़े पर कागज पर डालने से उन पर निशान तथा धब्बे नहीं बनाता।
- ❑ शुद्ध शहद में जीवित मक्खी डालने पर वह उड़ जाती है। शहद उसके पंखों पर नहीं चिपकता।
- ❑ शुद्ध शहद को कुत्ता नहीं खाता।
- ❑ शुद्ध शहद सर्दी में जम जाता है तथा गरमी पाकर पिघल जाता है।

शुद्ध शहद के सेवन से मनुष्य स्वस्थ, बलिष्ठ, नीरोग तथा दीर्घजीवी बनता है। इसका सेवन वृद्धावस्था के कष्टों सें बचाता है। यदि मनुष्य आजीवन नियमित रूप से शहद का सेवन करे तथा स्वास्थ्य को हानि पहुँचाने वाले दुर्व्यसनों से बचा रहे तो वह दीर्घ आयु प्राप्त कर सकता है और दूषित मनोवृत्तियों के विकारों से भी बच सकता है।

❑❑❑

# व्रतोत्सवतिथिनिर्णयपत्रक

## मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष/सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त ऋतु

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | व्रत पर्व आदि विवरण |
|---|---|---|---|---|
| सप्तमी | सोमवार | पुष्य | 9 नवम्बर | श्रीकालाष्टमी–काल भैरवाष्टमी |
| अष्टमी | मंगलवार | श्लेषा | 10 नवम्बर | – |
| नवमी | मंगलवार | श्लेषा | 10 नवम्बर | नवमी तिथि का क्षय |
| दशमी | बुधवार | मघा/पू०फा० | 11 नवम्बर | – |
| एकादशी | गुरुवार | उ०फा० | 12 नवम्बर | **उत्पन्ना एकादशी व्रत (स्मार्त)** |
| द्वादशी | शुक्रवार | हस्त | 13 नवम्बर | **उत्पन्ना एकादशी व्रत (वैष्णव)** |
| त्रयोदशी | शनिवार | चित्रा | 14 नवम्बर | शनि प्रदोष व्रत |
| चतुर्दशी | रविवार | स्वाति | 15 नवम्बर | – |
| अमावस्या | सोमवार | विशाखा | 16 नवम्बर | सूर्य वृश्चिक में–संक्रान्ति दिवस सोमवती अमावस्या |

## मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष/सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त ऋतु

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | व्रत पर्व आदि विवरण |
|---|---|---|---|---|
| प्रतिपदा | मंगलवार | अनुराधा | 17 नवम्बर | – |
| द्वितीया | बुधवार | अनुराधा | 18 नवम्बर | चन्द्रदर्शन |
| तृतीया | गुरुवार | ज्येष्ठा | 19 नवम्बर | – |
| चतुर्थी | शुक्रवार | मूल | 20 नवम्बर | श्रीगणेश चतुर्थी व्रत |
| पंचमी | शनिवार | पू०षा० | 21 नवम्बर | **श्रीरामजानकी विवाहोत्त्सव** |
| पंचमी | रविवार | उ0षा0 | 22 नवम्बर | पंचमी तिथि की वृद्धि |
| षष्ठी | सोमवार | श्रवण | 23 नवम्बर | – |
| सप्तमी | मंगलवार | धनिष्ठा | 24 नवम्बर | पंचक प्रातः 9/32 से |
| अष्टमी | बुधवार | शतभिषा | 25 नवम्बर | श्रीदुर्गाष्टमी व्रत |
| नवमी | गुरुवार | पू०भा० | 26 नवम्बर | – |
| दशमी | शुक्रवार | उ०भा० | 27 नवम्बर | – |
| एकादशी | शनिवार | रेवती | 28 नवम्बर | **मोक्षदा एकादशी व्रत (सबका) श्री गीता जयन्ती पंचक समाप्त 5/25 प्रातः** |
| द्वादशी | रविवार | अश्विनी | 29 नवम्बर | प्रदोषव्रत |
| त्रयोदशी | सोमवार | भरणी | 30 नवम्बर | – |
| चतुर्दशी | मंगलवार | कृतिका | 1 दिसम्बर | श्रीसत्यनारायण व्रत |
| पूर्णिमा | बुधवार | रोहिणी | 2 दिसम्बर | – |

## पौष कृष्णपक्ष/सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त ऋतु

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | व्रत पर्व आदि विवरण |
|---|---|---|---|---|
| प्रतिपदा | गुरुवार | मृगशिरा | 3 दिसम्बर | विकलांग दिवस |
| द्वितीया | शुक्रवार | आर्द्रा | 4 दिसम्बर | – |
| तृतीया | शुक्रवार | आर्द्रा | 4 दिसम्बर | तृतीया तिथि का क्षय |
| चतुर्थी | शनिवार | पुनर्वसु | 5 दिसम्बर | श्रीगणेश चतुर्थी |
| पंचमी | रविवार | पुष्य | 6 दिसम्बर | – |
| षष्ठी | सोमवार | श्लेषा | 7 दिसम्बर | झण्डा दिवस |

卐 श्रीमद्राघवो विजयते 卐

धर्मचक्रवर्ती, महामहोपाध्याय, जीवनपर्यन्त कुलाधिपति, वाचस्पति, महाकवि
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य **स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज**
का राष्ट्रीय, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक चेतना का संवाहक

# श्रीतुलसीपीठसौरभ

**( मासिक पत्र )**

सीतारामपदाम्बुजभक्तिं भारतभविष्णु जनतैक्यम्।
वितरतु दिशिदिशि शान्तिं श्रीतुलसीपीठसौरभं भव्यम्।।

वर्ष १४ नवम्बर २००९ (४, ५ दिसम्बर को प्रेषित) अंक-३

# रामानन्दः स्वयं रामः प्रादुर्भूतो महीतले

## विषयानुक्रमणिका



## सुधी पाठकों से विनम्र निवेदन

१. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' का प्रत्येक अंक प्रत्येक दशा और परिस्थिति में प्रत्येक महीने की ४ तथा ५ तारीख को डाक से प्रेषित किया जाता है। पत्रिका में छपे महीने का अंक आगामी महीने में ही आपको प्राप्त होगा।

२. 'श्रीतुलसीपीठ सौरभ' मंगाने हेतु बैंक ड्राफ्ट 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' के नाम से ही बनबाएँ तथा प्रेषित लिफाफे के ऊपर हमारा नाम तथा पूरा पता स्पष्ट अक्षरों में लिखें। मनीआर्डर पर हमारा नाम-पता ही लिखें प्रधान सम्पादक अथवा प्रबन्ध सम्पादक कभी न लिखें।

३. पत्रव्यवहार करते समय अथवा ड्राफ्ट-मनीआर्डर भेजते समय अपनी वह ग्राहक संख्या अवश्य लिखें जो पत्रिका के लिफाफे के ऊपर आपके नाम से पहले लिखी है।

४. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' में **'पूज्यपाद जगद्गुरु जी'** से अभिप्राय **धर्मचक्रवर्ती श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज समझा जाए।**

५. 'श्रीतुलसीपीठ सौरभ' में प्रकाशित लेख/कविता/अथवा अन्य सामग्री के लिए लेखक/कवि अथवा प्रेषक महानुभाव ही उत्तरदायी होंगे, सम्पादक मण्डल नहीं।

६. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' प्राप्त न होने पर हमें पत्र लिखें अथवा फोन करें। हम यद्यपि दूसरी बार पुनः भेजेंगे। किन्तु अपने डाकखाने से भलीप्रकार पूछताछ करके ही हमें सूचित करें।

७. **डाक की घोर अव्यवस्था के चलते हमें दोषी न समझें। हमें और आपको इसी परिस्थिति में 'पूज्यपाद जगद्गुरु जी' का कृपा प्रसाद शिरोधार्य करना है।**

८. सुधी पाठक अपने लेख/कविता आदि स्पष्ट अक्षरों में लिखकर भेजें। यथासमय-यथासम्भव हम प्रकाशित करेंगे। अप्रकाशित लेखों को लौटाने की हमारी व्यवस्था नहीं है।

**–सम्पादकमण्डल**

| सदस्यता सहयोग राशि | |
|---|---|
| संरक्षक | ११,०००/– |
| आजीवन | ५,१००/– |
| पन्द्रह वर्षीय | १,०००/– |
| वार्षिक | १००/– |

श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास, चित्रकूट के स्वामित्व में मुद्रक तथा प्रकाशक डॉ0 कु0 गीतादेवी (प्रबन्धन्यासी) ने श्री राघव प्रिंटर्स, जी–17 तिरुपति प्लाजा, बेगम पुल रोड, बच्चापार्क, मेरठ, फोन (का0) 4002639, मो0–9319974969, से मुद्रित कराकर कार्यालय 220 के., रामनगर, गाजियाबाद से प्रकाशित किया।

सम्पादकीय-

# सदाचरण का पालन करना ही चाहिए

महाभारत का वचन है– वृत्तं यत्नेन संरक्षेत् । अर्थात् वृत्त जिसे आचरण कहा जाता है उसकी प्रयत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए। कारण स्पष्ट है आचारहीनं न पुनन्तिवेदाः अर्थात् आचरणहीन व्यक्ति को वेद भी पवित्र नहीं कर सकते। आचरणहीन व्यक्ति व्यष्टि और समष्टि सभी के लिए घातक होता है। दुराचरण का ही दुष्परिणाम है कि मनु भगवान् की सन्तान कहे जाने वाला जो मनुष्य सदाचरण के कारण विश्वगुरु बनकर पुजता था वह आज गिरते हुए खानपान से, आदर्शों की उपेक्षा से, जीवनमूल्यों की अवमानना से तथा भोगवादी बनने से विश्वमञ्च पर उपेक्षित और नगण्य होता जा रहा है। भले ही भौतिक सुखों तथा नश्वर उपाधियों का अम्बार मानव के पक्ष में आता हो किन्तु हमको हमारा प्राणधन जिसे सदाचरण अथवा धर्माचरण कहते हैं यदि हमसे सुदूर होता जा रहा है तो हमें एकबार पुनः अपने व्यक्तिगत और समष्टिगत आचरण को शुद्ध करना चाहिए। भारतीय जनमानस की पहचान भौतिक चाकचिक्य से नहीं है अपितु मौलिकता की रक्षा करने से है। लिखने में संकोच होता है कि आज हिन्दु जनमानस खानपान में बहुत विवेकहीन हो गया है। भक्ष्याभक्ष्य का विचार किए बिना कहीं भी कुछ भी खाकर पेट भर रहा है। जहाँ सावधानी रखनी चाहिए वहाँ तो शिथिलता है और जहाँ शिथिलता ही रखनी चाहिए वहाँ अधिक ध्यान है। इसी का दुष्परिणाम है कि मानव की बुद्धि शुद्ध नहीं है शरीर में दुर्गुण अधिक हो गए हैं इतना ही नहीं न उसे राष्ट्र की अस्मिता का ध्यान है, न उसे देश की रक्षा से कोई लेना देना है, भौतिक सुखों के संग्रह में वह व्यस्त है, त्याज्य वस्तुओं का दास बना हुआ है। धर्मविहीना राजनीति में तो इतनी अधिक गिरावट है जिसके वर्णन में लेखनी काँप उठती है। तुष्टिकरणरूप ताड़का भारत को गारत करने पर तुली है।

अब भी समय है जागने का और जाग्रत समाज को संघटित करने का। अभक्ष्य का त्याग और अपेय की उपेक्षा, भौतिक साधनों की मृगतृष्णा का मोह छोड़कर शुद्ध सात्त्विक वस्तुओं का सेवन और भारतीय परम्परा के अनुरूप जीवनशैली बनाने का सभी को अभ्यास करना चाहिए। बहुत आवश्यक है कि सरकार इस प्रवृत्ति को आश्रय दे, न कि कुचलने का कुचक्र चले। सरकार के समर्थन से तथा अनेक सामाजिक संघटनों के सहयोग से सामान्य व्यक्ति को भी शद्ध और सस्ता समान प्राप्त होगा। भारतीयता का पालन करने वाले महानुभावों को सन्तोष भी प्राप्त होगा। नमो राघवाय।

**आचार्य दिवाकर शर्मा प्रधान सम्पादक से केवल मोबाइल नं०- 09971527545 पर ही सम्पर्क करें**

**आचार्य दिवाकर शर्मा**
**प्रधान सम्पादक**

(गतांक से आगे)

# वाल्मीकिरामायण सुधा ( ५५ )

❑ धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

अब सुन्दरकाण्ड में प्रवेश कर रहे हैं। परन्तु महर्षि वाल्मीकि का सुन्दरकाण्ड बहुत विलक्षण है। महर्षि ने जैसा देखा वैसा लिखा। वे तो ऋषि हैं। सुन्दरकाण्ड के लिए टीकाकार कहते हैं।

**सुन्दरे सुन्दरो रामः सुन्दरे सुन्दरः कपि।**
**सुन्दरे सुन्दरी सीता सुन्दरे किन्न सुन्दरम् ।।**

अर्थात् सुन्दरकाण्ड में क्या नहीं सुन्दर है सब कुछ सुन्दर है। हनुमान जी महाराज अब चलेंगे। इस पर्वत के दो नाम हैं जहाँ से चल रहे हैं– एक महेन्द्राचल और दूसरा नाम है सुन्दराचल। क्योंकि सुन्दराचल से उछलकर समुद्र का लंघन करेंगे इसलिए भी इसका नाम सुन्दरकाण्ड हो गया। रावण के तीन शिखर हैं त्रिकूट पर्वत पर एक शिखर जहाँ रावण रहता है उसका नाम कनकशिखर है– 'कनककोटि विचित्रमणिकृत सुन्दरायतना घना'। दूसरे शिखर का नाम है सुबेल शिखर जहाँ रावण का युद्ध स्थल है जहाँ रावण का युद्ध होगा और तीसरा शिखर सुन्दर शिखर है जहाँ अशोकवाटिका है जहाँ सीता जी विराज रही हैं। क्योंकि सुन्दर शिखर पर हनुमान जी महाराज सीता जी के दर्शन करेंगे इसलिए भी इस काण्ड का नाम सुन्दरकाण्ड पड़ गया। इसमें सब कुछ सुन्दर है। काव्य भी सुन्दर है सीता जी भी सुन्दर हैं, हनुमान जी भी सुन्दर हैं, राम जी भी सुन्दर हैं। एक बार मैंने इसके चालीस कारण गिनाये थे। सुन्दरकाण्ड में चलते हैं–

**ततो रावणनीतायाः सीतायाः शत्रुकर्षणः।**
**इयेष पदमन्वेष्टुं चारणाचरिते पथि।।**

जिन्हें रावण ले गया है अथवा जिनके द्वारा रावण स्वयं मरण तक पहुँचा दिया गया है अथवा रावण की नीच राज्यलक्ष्मी का जिनके द्वारा विनाश किया जा चुका है ऐसी सीता जी को खोजने के लिए हनुमान जी चल पड़े। कोश में पद शब्द के अनेक अर्थ कहे गये हैं– पदं व्यवसितत्राण स्थान लक्ष्मांघ्रिवस्तुषु व्यवसित, त्राण, स्थान, लक्ष्म, अंघ्रि (चरण) और वस्तु। हनुमान यहाँ छः वस्तु खोज रहे हैं। व्यवसित–सीता जी का निश्चय क्या है? सीता जी का क्या चाहती हैं? क्या सीता जी रावण को मेरे द्वारा मरवाना चाहती हैं या श्रीराम जी के द्वारा उनका मन क्या है? सीता जी का निश्चय क्या है? हनुमान जी हृदयाकाश में सोच रहे हैं कि सीताजी ने क्या सोचा है? यदि सीता जी की आज्ञा हो कि मैं रावण का वध करूँ तब तो विलम्ब नहीं होना चाहिए। अभी मैं रावण का गला पकड़कर लाता हूँ। यदि वे मेरे द्वारा वध उचित नहीं मान रही हैं तो उसकी सेना का नाश कर दूँगा। सोचता हूँ पूरी लंका को मसल दूँ। परन्तु नहीं, यदि पूरी लंका को मसलूँगा तो लंका में विभीषण भी तो आ जायगा। लगता है सीता जी विभीषण का त्राण चाह रही हैं। फिर हनुमान जी के मन में आया कि विभीषण को बाहर निकालकर लंका को ही रौंद डालूँ। ध्यान आया कि लंका के स्थान को नष्टभ्रष्ट नहीं करना होगा क्योंकि जब तुलसी के बिरवा भी तो नष्ट हो जायेंगे तब विभीषण जी पूजा कहाँ करेंगे? लक्ष्म–सोचा कि पूरी लंका के चिह्न मिटा दूँ। नहीं क्योंकि लंका के चिह्न मिटाने पर मुझे ही (हनुमान को) परेशानी पड़ेगी। क्योंकि–

**रामायुध अंकित गृह शोभा बरनि न जाइ।**
**नव तुलसिका बृन्द तहँ देखि हरषि कपिराइ।।**

अतः लंका के चिह्न नहीं मिटाने। अंघ्रि– कहाँ कहाँ सीता जी के चरण पड़े हैं वे देखने होंगे। वस्तु– लंका जी की कौन वस्तु सीता जी को भाती है वही नष्ट नहीं की जायेगी। लंका का सब कुछ नष्ट होगा पर अशोकवृक्ष बचा रहेगा क्योंकि उसी के नीचे सीता भगवती विराजमान हैं।

**दुष्करं निष्प्रतिद्वन्द्वं चिकीर्षन् कर्म वानरः।**
**समुदग्रशिरोग्रीवो गवां पतिरिवा बभौ।।**

हनुमान जी महाराज ऐसा दुष्कर कर्म करने जा रहे हैं जो किसी के द्वारा किया नहीं जा सकता। टीकाकार तो हनुमान जी की मस्ती और स्वरूप को साँड के समान कह रहे हैं परन्तु वह उचित नहीं गवां पति का अर्थ शिव जी है अर्थात् साक्षात् शिव जी ही मानो लंका का ध्वंस करने जा रहे हैं। बोलो रुद्रावतार हनुमान जी महाराज की जय।

**अथ वैदूर्यवर्णेषु शाद्वलेषु महाबलः।**
**धीरः सलिलकल्पेषु विचचार यथासुखम्।।**

हनुमान जी भ्रमण करने लगे। महर्षि वाल्मीकि जी कहते हैं–

**स सूर्याय महेन्द्राय पवनाय स्वयम्भुवे।**
**भूतेभ्यश्चांजलिं कृत्वा चकार गमने मतिम्।।**

श्रीहनुमान जी सूर्य को, इन्द्र को, पवन को ब्रह्मा जी और भूतों (देवयोनिविशेषों) को प्रणाम करके–

**अंजलि प्राङ् मुखः कुर्वन् पवनायात्मयोनये।**
**ततो हि ववृधे गन्तुं दक्षिणो दक्षिणां दिशम्।।**

सबको प्रणाम करके अपने पिता पवनदेव को प्रणाम किया। तदनन्तर अपने कार्य में कुशल हनुमान जी दक्षिण दिशा में जाने के लिए बढ़े।

**अस कहि नाइ सबन कहँ माथा।**
**चलेउ हरषि हिय धरि रघुनाथा।।**

हनुमान जी महाराज चल रहे हैं, सब लोग देख रहे हैं। महर्षि वर्णन करते हैं–

**प्लवगप्रवरैर्दृष्टः प्लवने कृतनिश्चयः।**
**ववृधे रामवृद्ध्यर्थं समुद्र इव पर्वसु।।**

बड़े बड़े वानरों ने देखा जैसे पूर्णिमा के दिन समुद्र में ज्वार आने लगता है उसी प्रकार दृढ़ निश्चय वाले हनुमान जी श्रीराम की कार्यसिद्धि के लिए बढने लगे। इस दृश्य का वर्णन कवितावली में गोस्वामी जी महाराज करते हैं–

**जब अंगदादिन की मति गति मन्द भई**
**पवन के पूत को न कूदिबे को पलु गो।**
**साहसी ह्वै सैल पर सहसा सकेलि आइ**
**चितवत चहुँ ओर औरनि को कलु गो।।**
**तुलसी रसातल ते निकसि सलिल आयो**
**कोल कलमल्यो अति कमठ को बलु गो।**
**चारिहू चरन के चपेट चाँपें चिपिट गो**
**उचकैं उचकि चारि अंगुल अचलु गो।।**

हनुमान जी महाराज को कूदने में पलमात्र की भी देरी नहीं हुई। वे साहसपूर्वक सहसा कौतुक से ही पर्वत पर चारों ओर देखने लगे। इससे शत्रुओं की शान्ति भंग हो गई। रसातल से जल निकल आया। वाराह भगवान कलमला गये तथा शेष और कच्छप बलहीन हो गये। चरणों से जोर से दबाने से पर्वत पृथ्वी में चिपट गया और फिर हनुमान जी के कूदने पर चार अंगुल उचक गया। बोलो वीर बजरंग बली की जय। सिद्ध, गन्धर्वः विद्याधर स्तुति कर रहे हैं–

**एष पर्वतसंकाशो हनुमान् मारुतात्मजः।**
**तितीर्षति महावेगः समुद्रं वरुणालयम्।।**

अहा! ये पर्वत के समान महाकाय, महान वेगशाली पवनपुत्र हनुमान जी वरुणालय समुद्र को पार करना चाहते हैं–

**रामार्थं वानरार्थं च चिकीर्षन् कर्म दुष्करम्।**
**समुद्रस्य परं पारं दुष्प्रापं प्राप्तुमिच्छति।।**

हनुमान जी महाराज राम जी के लिए तथा वानरों के जीवन की रक्षा करने के लिए आज सम्पूर्ण सागर को पार करना चाहते हैं जो कि बहुत कठिन कार्य है सब लोग जयजयकार करते हैं। हनुमान जी ने वानरों को देखा, सबको प्रणाम किया और कहा– वानरो!

**यथा राघवनिर्मुक्तः शरः श्वसनविक्रमः।**
**गच्छेत् तद्वद् गमिष्यामि लंकां रावणपालिताम्।।**

जिस प्रकार श्रीरामचन्द्र जी का छोड़ा हुआ बाण वायुवेग से चलता है। उसी प्रकार मैं रावणपालित लङ्कापुरी में जाऊँगा। गोस्वामी जी महाराज लिखते हैं–

**जिमि अमोघ रघुपति कर बाना।**
**ताही भाँति चलेउ हनुमाना।।**

हनुमान जी राम जी के बाण की भाँति चले जा रहे हैं। राम जी के बाण का नियम है कि वह काम करके फिर तरकस में लौट आता है। इसी प्रकार हनुमान जी अपना कार्य करके फिर वापस लौट आयेंगे। राम जी का बाण काम करके पीछे चला जाता है इसी प्रकार हनुमान जी भी काम तो सारा करेंगे पर सबके पीछे रहेंगे। तभी तो अंगद जी रावण से कहते हैं कि जिस (हनुमान जी) को तुमने बहुत बड़ा वीर बताया वह सुग्रीव का छोटा सा सेवक है। यहाँ का पूरा प्रसंग लगाने के लिए आगे का दोहा है। वह दोहा जब तक आप ठीक से नहीं समझेंगे तब तक यहाँ का रामायण जी का प्रसंग नहीं लगेगा।

**वक्र उक्ति धनुवचन सर हृदय दहेउ रिपु कीश।**
**प्रति उत्तर सड़सिन मनहु काढ़त भट दशशीशा।।**

यहाँ वक्रोक्ति है–हे रावण! जिसको तुमने बहुत वीर कहा क्या वह सुग्रीव का छोटा सा दूत है? मूर्ख! तू भूल रहा है–

**चलइ बहुत सो वीर न होई।**
**पठवा खबर लेन हम सोई।।**

क्या हमने खबर लेने भेजे थे? तुम्हारी खबर लेने भेजे थे? अर्थात् हमने तुम्हारा समाचार लेने नहीं भेजे थे हम ने तो तुम्हारी सेना के धुरंधर वीरों को मारने के लिए भेजे थे। वहाँ पूरी वक्रोक्ति है। इसी प्रकार निम्नलिखित दोहे में–

**सत्य नगर कपि जारेउ बिन प्रभु आयसु पाइ।**
**फिरि न गयउ सुग्रीव पहँ तेहि भय रहा लुकाइ।।**

प्रश्न है–क्या तुम सत्य बोल रहे हो? क्या प्रभु की आज्ञा के बिना उन्होंने नगर को जलाया? क्या वे फिर सुग्रीव के पास नहीं गये? क्या वे सुग्रीव से भय से छिपे रहे? अर्थात् नहीं। रामायण सरल है पर सब कर्कश सिद्धान्त आयेंगे तब तो पढ़ना ही पड़ेगा। कभी कभी गलत अर्थ करने से बहुत अनर्थ हो जाता है। जैसे–

**जो मम चरन करसि शठ टारी।**
**फिरिहिं रामसीता मैं हारी।।**

इतनी छूट अंगद को नहीं हो सकती कि वह कह दे कि मैं राम सीता को हार जाऊँगा। वास्तविक अर्थ तो यह है कि यदि तुम मेरा चरण हटा सको तो सीताराम जी तो जायेंगे ही परन्तु मैं हार मान कर वानरीसेना को रोक लूँगा। राम बल की मर्यादा होती है। इतना अधिकार तो अभी भी राजनीति में नहीं दिया जाता राजदूत को, जो राजा को चैलेंज करे। जो लोग ठीक से पढ़ते नहीं है वे ही अर्थ का अनर्थ करते हैं। सब पूर्वापर देखकर अर्थ करना चाहिए। हनुमान जी महाराज ने कह दिया कि मैं राम जी के बाण के समान जाऊँगा। राम जी का बाण सोने का होता है हनुमान जी महाराज भी सोने के हैं–

**स्वर्णशैलाभदेहम्।** जब हनुमान जी चल पड़े तब सागर ने सोचा–

**तस्मिन् प्लवगशार्दूले प्लवमाने हनूमति।**
**इक्ष्वाकुकुलमानार्थी चिन्तयामास सागरः।।**
**जलनिधि रघुपति दूत विचारी।**
**कह मैनाक होहु श्रमहारी।।**

समुद्र ने सोचा मुझे सगर ने बनाया। इक्ष्वाकु वंश के ये सचिव हैं यदि इनकी सहायता नहीं करूँगा तो मेरी निन्दा अवश्य होगी। यहाँ तो सहायता कर रहे हैं वहाँ अड़ गये कि मैं मार्ग नहीं दूँगा। जब कहा–

**विनय न मानत जलधि जड़ गए तीनि दिन बीति।**

इसका कैसे समाधान किया जाय? इसका समाधान यह है कि राम जी की कोमलता देखकर समुद्र को सन्देह हो गया कि इतने छोटे बालक रावण को कैसे मारेंगे? अतः राम जी के पौरुष और बल की परीक्षा करने के लिए समुद्र ने तीन दिन तक यह नाटक किया। जब राम जी ने धनुष पर बाण चढ़ाया तो समुद्र खौल उठा तब कहा त्राहि त्राहि। तब राम जी ने बाण को वापिस लिया। लक्ष्मण जी ने कहा कि अब तक नाटक क्यों कर रहे थे? समुद्र ने कहा– तुम बालक हो। मैं राम जी का बल और पराक्रम देख रहा था। मार्ग में समुद्र में स्थित मैनाक पर्वत ने हनुमान जी से विश्राम करने की प्रार्थना की मैनाक ने हनुमान जी से कहा आपसे मेरे दो सम्बन्ध हैं। मैं आपका साला भी हूँ और चाचा भी हूँ। हनुमान जी मुस्कुराये बोले साले कैसे? मैनाक ने कहा यदि आप शिव हैं तो मैं पार्वती जी का भाई हूँ तब आपका साला हुआ। यदि आप पवन के पुत्र हैं तो मैं पवन का भाई हूँ तो आपका चाचा हुआ। हनुमान जी ने दोनों सम्बन्धों का सम्मान किया। साला मानकर तो हाथ मिला लिया– 'हनुमान तेहि परस कर' और चाचा मानकर 'पुनि कीन्ह प्रणाम' प्रणाम कर लिया। 'राम काज कीन्हे बिनु मोहि कहा बिश्राम' कह कर जाने की अनुमति माँगी। महर्षि वाल्मीकि जी लिखते हैं–

**त्वरते कार्यकालो मे अहश्चाप्यतिवर्तते।**
**प्रतिज्ञा च मया दत्ता न स्थातव्यमिहान्तरा।।**

हनुमान जी ने कहा मेरा कार्यकाल समाप्त हो रहा है (क्योंकि एक महीने का जो सीता जी को खोज लाने का समय मिला था उसका यह अन्तिम दिन है) और तीसरा पहर है दिन बीत रहा है मुझे आज रात्रि तक ही सीता जी को देख लेना है अन्यथा अनर्थ हो जायगा। मैंने प्रतिज्ञा की है कि जब तक मैं सीता जी को नहीं देख लूँगा तब तक विश्राम नहीं करूँगा।

**इत्युक्त्वा पाणिना शैलमालभ्य हरिपुंगवः।**
**जगामाकाशमाविश्य वीर्यवान् प्रहसन्निव।।**

इस प्रकार मैनाक जी को प्रणाम कर और आकाश में ऊपर उठकर हनुमान जी चल पड़े। हनुमान जी को आकाश में जाते हुए देखकर–

**ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः।**
**अब्रुवन् सूर्यसंकाशां सुरसां नागमातरम्।।**

तब देवताओं ने नागमाता सुरसा को बुलाया–

**जात पवनसुत देवन देखा।**
**जानै कहँ बल बुद्धि विशेषा।।**
**सुरसा नाम अहिन के माता।**
**पठएनि आइ कही तेहिं बाता।।**

सुरसा ने कहा ए! देवताओ आपने मुझे भोजन दिया है–

**अहं त्वां भक्षयिष्यामि प्रविशेदं ममाननम्।**

क्रमशः........

# श्रीमद्भगवद्गीता ( ८६ )

( गतांक से आगे )

## ( विशिष्टाद्वैतपरक श्रीराघवकृपाभाष्य )

भाष्यकार–धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

**व्याख्या-** यहाँ कर्म अकर्म के उपलक्षण से विकर्म का बोध है। 'कवि' शब्द का अर्थ है मनीषी अथवा श्रुति और स्मृति में कवि शब्द परमेश्वर के लिए ही आया है जैसे ई० उ० ८ में कविर्मनीषां और (गीता ८/९) में कविं पुराणं तात्पर्य यह है कि कवि अर्थात् मेरे अंश परशुराम बलराम और बुद्ध भी कर्म, विकर्म और अकर्म के सम्बन्ध में मोहित हैं। परशुराम, मेरे अंशावतार होते हुए भी पिता की आज्ञा को श्रेष्ठ मानकर माँ का वध कर बैठे। जबकि वह विकर्म था। क्योंकि पिता से माता दस गुनी बड़ी होती है। इस प्रकार ब्राह्मण होते हुए भी उन्होंने शस्त्र धारण किया। यदि कहें कि सहस्रबाहु को मारने के लिए वह उचित ही था परन्तु उसके अनन्तर बार–बार निर्दोष क्षत्रियों का संहार करना सर्वथा अनुचित था। इसीलिए श्रीरामावतार में परिपूर्णतम भगवान श्रीराम ने उनसे धनुषबाण ले लिया। ठीक तुम्हारी भी परिस्थिति वही है। परशुराम मेरे अंश थे, तुम मेरी विभूति हो। वे ब्राह्मण होकर क्षत्रियोचित कर्म कर रहे थे। शस्त्र धारण उनके लिए विकर्म था। तुम क्षत्रिय होकर ब्राह्मणोचित काम कर रहे हो। शस्त्र त्याग तुम्हारा विकर्म है। परशुराम से भगवान राम ने धनुष बाण लिया था और यहाँ मैं भी तुमसे शोक और मोह लूँगा। परशुराम जी को श्रीराम द्वारा पूर्व ही तोड़े गये जीर्ण से धनुष पर ममत्व था और तुमको मेरे द्वारा मारे गये जीर्ण भीष्मादि के शरीरों पर ममत्व है। परशुराम को कुमार श्रीलक्ष्मण के सम्वाद में अक्षर अक्षर पुरुषोत्तम का ज्ञान हुआ और तुम्हें भी गीता के पन्द्रहवें अध्याय में तीनों का ज्ञान होगा। परशुराम श्रीराम के वचन से मोह मुक्त हुए थे और तुम मेरे वचन से। परशुराम, राम संवाद के पश्चात् सीताजी का रक्त सिन्दूर से शृंगार हुआ था और कृष्ण–अर्जुन सम्वाद के पश्चात् द्रौपदी का दुश्शासन के रक्त से शृंगार होगा। वहाँ वरण हुआ था यहाँ रण होगा। इसी प्रकार मेरे भ्राता बलराम को कर्म, विकर्म तथा अकर्म में सन्देह था। मुझे परमात्मा के रूप में जानकर भी वे स्यमन्तक मणि के सम्बन्ध में मेरे प्रति संदेह कर बैठे। जैसा कि स्वयं भगवान श्रीकृष्ण भागवत जी में अक्रूर जी से कहते हैं–

**तथापि दुर्धरस्त्वन्यैस्त्वय्यास्तां सुव्रते मणिः।**
**किन्तु मामग्रजः सम्यङ् न प्रत्येति मणिं प्रति।।**

(भा० १०/५७/३८)

अर्थात् हे अक्रूर जी जिस मणि को और लोग नहीं रख पाये वह आपके पास ही रहे केवल एक बार सभा में दिखा दीजिए। क्योंकि मेरे बड़े भ्राता बलराम भी मणि के सम्बन्ध में मुझ पर विश्वास नहीं कर रहे हैं। इसी प्रकार विकर्म में लगे हुए दुर्योधन का बलराम जी ने पक्ष लिया जैसा कि श्रीमद् भागवत में कहते हैं–

**युवां तुल्यबलौ वीरौ हे राजन् हे वृकोदर।**

**एकं प्राणाधिकं मन्ये उतैकं शिक्षयाधिकम् ।।**
**तस्मादेकतरस्येह युवयोः समवीर्ययोः**
**न लक्ष्यते जयोऽन्यो वा विरमत्वफलो रणः।।**
(भा० १०/७९/२६/२७)

बलराम कहने लगे हे दुर्योधन तथा हे भीमसेन तुम दोनों समान बल वाले हो। एक शक्ति में अधिक है तो एक शिक्षा में। इसलिए दोनों में किसी एक का जय पराजय करना निश्चित करना कठिन है। अतः यह युद्ध समाप्त हो इसका कोई फल नहीं है। महाभारत में बलराम जी हल लेकर भीमसेन को मारने दौड़ पड़े जैसे–

**ततो लाङ्गलमुद्यम्य भीममभ्यद्रवद् वली।**
**तस्योर्ध्ववाहोः सदृशं रूपमासीन्मेमहात्मनः।**
**बहुधातुविचित्रस्य श्वेतस्येव महागिरेः।।**
**तमुत्पतन्तं जग्राह केशवो विनयान्वितः।**
**बाहुभ्यां पीनवृत्ताभ्यां प्रयत्नाद्बलवद्बली।।**
(शल्य म० भा० ६०/९, १०, ११)

इतना ही नहीं अधर्म में लगे दुर्योधन के प्रति बलराम जी के आशीर्वाद भी सुने जायेंगे जैसे–

**हत्वा धर्मेण राजानं धर्मत्मानं सुयोधनम् ।**
**जिह्मयोधीति लोकेऽस्मिन् ख्यातिं यास्यति पाण्डव।।**
**दुर्योधनोऽपि धर्मात्मा गतिं यास्यति शाश्वतीम्।**
**ऋजुयोधी हतो राजा धार्तराष्ट्रो नराधिपः।।**
**युद्धदीक्षां प्रविश्याजौ रणयज्ञं वितत्य च।**
**हुत्वाऽऽत्मानममित्राग्नौ प्राप चावभृथं यशः।।**
(म० भा० शल्य ६०/२७, २८,२९)

इसी प्रकार मेरे अंशावतार बुद्ध ने वेद विरुद्ध विकर्म का ही उपदेश किया। इसलिए कर्म का उपदेश करूँगा। यहाँ आकार का प्रश्लेष करके अकर्म का और उपलक्षणसे विकर्म का उपदेश समझना चाहिए। जिन तीनों को जानकर तुम अशुभ संसार से मुक्त हो जाओगे। ।।श्री।।

**संगति–** अब पूर्व प्रतिज्ञा अनुसार कर्म, विकर्म और अकर्म की चर्चा करते हैं। उनमें वर्णाश्रम से प्राप्त वेदविहित अनुष्ठान को कर्म कहते हैं। वेद विहित से विरुद्ध को विकर्म कहते हैं और 'कर्तृत्व शून्यत्व' अथा फलाभिसन्धि से रहित वेदविहित कर्म को अकर्म तथा कर्म के अभाव को अकर्म कहते हैं। इन्हीं तीनों की व्याख्या का प्रारम्भ करते हुए भगवान कहते हैं–

**कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।**
**अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः।।४/१७**

**रा० कृ० भा० सामान्यार्थ–** हे अर्जुन! तुम्हें कर्म के विषय में समझना है विकर्म के विषय में भी समझना है और अकर्म के विषय में भी समझना है क्योंकि कर्म, विकर्म और अकर्म की गति बहुत गहन है। यहाँ 'हि' हेत्वर्थक और 'अपि' निश्चयार्थक है और द्वितीय तथा तृतीय चरण में प्रयुक्त 'च' समुच्चयार्थक है। अतः इन तीनों के सम्बन्ध में तुम्हें समझना है अथवा 'कर्मणः' विकर्मणः, और अकर्मणः इन तीनों में कर्म के अर्थ में सम्बन्ध षष्ठी है। अर्थात् तुम्हें कर्म, विकर्म और अकर्म तीनों समझने में 'गति' शब्द ज्ञानार्थक है। यहाँ कर्मणः विकर्म औश्र अकर्म इन दोनों का उपलक्षण है। गहन शब्द का तात्पर्य है जैसे मेरी सहायता से तुमने खाण्डव वन को भस्म किया उसी प्रकार इस बार कर्मवन को जला डालो। 'गहनं गह्वरे वने' गहन जंगल को वन कहते हैं। ।।श्री।।

क्रमशः........

गतांक से आगे-

# शिखा की वैज्ञानिकता का रहस्य

❑ **पूज्यपाद पं० दीनानाथ शास्त्री सारस्वत 'विद्यावागीश'**

### दो आक्षेप

(२३) कई आक्षेप करते हैं कि मुद्‌गल नामक ब्राह्मण ने कार्तिक-माहात्म्य में (१५।५५-५६) 'इत्युक्तः सोऽपतद् वन्हौ सर्वेषामेव पश्यताम्। मुद्‌गलस्तु तदा क्रोधात् शिखामुत्पाटयत् स्विकाम्। ततस्त्वद्यापि तद्‌गोत्रे मौद्‌गला अशिखाभवन् ' अपनी शिखा उखाड़ डाली थी; अतः शिखा रखना न रखना अपनी इच्छा पर है' यह बात ठीक नहीं। रागद्वेष से किया जाने वाला कार्य प्रमाणभूत नहीं होता। जब चौल राजा से बहुत यज्ञदान आदि अपने आचार्यत्व में कराने पर भी राजगुरु मुद्‌गल ने उसकी सद्‌गति प्राप्ति न देखी, और उसके प्रतिद्वन्द्वी विष्णुदास ब्राह्मण की साधारण कार्तिकव्रत आदि से भी विमान प्राप्ति देखी; इस खेद से राजा का यज्ञकुण्ड की अग्नि में गिर जाना देखा; तो क्रोध से अपनी शिखा उखाड़ डाली। वह उनका क्रोधमूलक विरुद्ध आचार था। उन्हीं मुद्‌गल का अनुकरण मुद्‌गल गोत्रवालों को भी उचित नहीं; अन्यों का तो क्या कहना? इतिहास वर्णित सभी व्यवहार आचरणीय नहीं हो जाता। क्योंकि- "देश-जाति-कुलधर्माश्च आम्नायैरविरुदाः प्रमाणम्" (गौतम-वर्गसूत्र २।२।२०) शिखात्याग किन्हीं का कुलधर्म होने पर भी अम्नाय से विरुद्ध ही है, अतः बाह्य नहीं। 'श्रियै शिखा' (यजु० वा० सं० १९/९२) इस आम्नाय वचन से शिखा का स्वीकार अनिवार्य है। 'मङ्गलार्थं शिखिनोऽन्ये' (४०।७) इस 'काठक-गृह्यसूत्र' के सूत्र पर देवपालने लिखा है- 'निःशिखत्वं तु अमङ्गलधर्मोऽरिष्टहेतुः'। तथा च पठन्ति - 'अमेध्यमेतत् शिरोऽशिखम्' 'यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव' इति निन्दावादः, यन्मूलं शिखा कर्मस्मरणाम्'। 'खल्वाटत्वादिदोषेण विशिखश्चेन्नरो भवेत्। कौर्शीं तदा धारयीत ब्रह्मग्रन्थियुतां शिखाम्' यह 'नागदेव' का वचन खल्वाटत्व में अनुसरणीय है। तब कुशा की शिखा बनावे। शिखा को काटना पहले समय में तब होता था; जब किसी को मृत्युदण्ड जैसा दण्ड देना हो। तब उसे स्वयं कटवा डालना अपने आपको मृत्युदण्ड देना है।

(२४) कई महोदय उपनयनकाल में 'पारस्करगृह्यसूत्र' में 'पर्यप्तशिरसमलङ् कृतमानयन्ति' इत्यादि वचनों से 'मुण्डो वा' इस मनु-वचन से, 'सशिखं वपनं कार्यम् आम्नानाद् ब्रह्मचारिणाम्' इत्यादि छन्दोगपरिशिष्ट के वचन से चूडाकरण में लड़के का शिखा-सहित मुण्डन मानते हैं- वह भी ठीक नहीं, क्योंकि गृह्यसूत्रों में शिखा छोड़कर ही मुण्डन कहा है, यह हम पूर्व कह ही चुके हैं। इसलिए इस संस्कार का नाम भी 'चूडाकरण' है, 'चूडायाः-शिखायाः करणम् स्थापनम्। तब चूड़ा का करण शिखातिरिक्त केश मुण्डन से ही हो सकता है। 'तं च (कुमारं) पर्युप्तशिरसम्' (२।२।५) इस पारस्कर के वचन में 'परितः-सर्वतः उप्तम्-मुण्डितम्' यह देखकर मध्य शिखा का काटना तो ठीक नहीं। 'परिक्रमा' शब्द में जैसे 'परितः क्रमणम्' अर्थ में मध्यवाले देवप्रतिमास्थान को छोड़कर ही चारों ओर परिक्रमा होती है, 'पर्युक्षण' शब्द में जैसे 'परितः उक्षणम् ' अर्थ में यज्ञकुण्ड के मध्य वाले प्रदेश को छोड़कर ही चारों ओर जल सेचन होता है, 'परितः कृष्णं गोपाः' इसमें भी गोपों की स्थिति मध्यस्थित कृष्ण अधिष्ठित देश

को छोड़कर ही सर्वसम्मत है; वैसे ही सिर के मध्यदेश (शिखा) को छोड़कर ही मुण्डन 'पर्युप्तशिरसम्' शब्द से उपदिष्ट है, सम्पूर्ण नहीं। इसी कारण 'तासां (गौणशिखानां) मध्यशिखावर्जमुपनयने वपनं कार्यम्' यह 'निर्णयसिन्धु' में कहा है; 'उपनयनकाले मध्यशिखेतरशिखानां वपनं कृत्वा मध्यभाग एव उपनयनोत्तरं शिखा कार्या' यह 'धर्मसिन्धु' में कहा है। तब मध्यशिखा का मुण्डन कहीं भी विहित नहीं।

अथवा 'एते लूनशिखास्तत्र दशनैरचिरोद्गतैः। कुशाः काशा विराजन्ते बटवः सामगा इव' इस 'वीरमित्रोदय'- (संस्कार-प्रकाश, उपनीत-धर्मप्रकरण) स्थित 'विष्णु-पुराण' के वचन से कई छन्दोगशाखा वालों का, अथवा 'मुण्डा भृगवः' (४०।४) इस 'काठकगृह्यसूत्र' के वचन से भृगुगोत्रियों का शिखा सहित मुण्डन मान भी लिया जावे; तथापि इनसे भिन्नों का वैसा व्यवहार कैसे हो सकता है? एकदेशिक व्यवहार का सार्वदेशिकता में उपयोग करने में कोई प्रमाण नहीं।

(२५) अनेक का यह विचार है कि- 'चूड़ाकरण में मुण्डन इसलिए हुआ करता है कि- लड़का माता के गर्भ से जिन बालों को लाया; उनका मुण्डन कर्तव्य ही है; क्योंकि-उन गर्भज केशों में अशुद्धता तथा हानिप्रद गैस हुआ करती हैं; तब माता के गर्भ से आये हुए बालों को शिखा के लिए ही क्यों रखा जावे? इस कारण उनके सारे सिर का ही मुण्डन इष्ट है' परन्तु यह बात 'चूडाकरण' से विरुद्ध ही है; सर्वमुण्डन में 'चूडा-करण' किस प्रकार हो सकता है? तथापि उनके भी मत में बालक के अपने बालों के उत्पन्न होने के बाद शिखा का रखना इष्ट होता है; हमारे मत में तो मातृगर्भस्थ शिखाकेश स्वयं ही क्रम से गिर जाते हैं; क्रमशः नवीन केश उनके स्थान को लेते जाते हैं। अतः शिखा के केशों का मुण्डन आवश्यक नहीं। शेष केशों का ही वहाँ मुँडाना सफल है। 'मुण्डो वा, जटिलो वा स्याद् अथवा स्याच्छिखाजटः (२/२१९) यह मनु-वचन उपकुर्वाण सामग ब्रह्मचारियों के लिए है- जैसा कि पूर्व 'विष्णु-पुराण' का संवाद दे चुके हैं, सर्वसाधारण के लिए नहीं। अथवा 'मुण्डः' से नैष्ठिक ब्रह्मचारियों का बोध होता है; उनका संन्यासियों की तरह गेरुआ वस्त्र पहनने आदि का आचार होने से मुण्डन भी उनका उन्हीं की तरह शिखा-सहित हो जाता है। अस्तु-

इस प्रकार शिखा का स्थापन रहस्यमय होने से आवश्यक सिद्ध हुआ। परमुखापेक्षी, परानुकरणप्रवण तथा अकर्मण्य लोग ही दूसरों के अवगुणों को गुण जानते हुए, अपने गुणों को भी अवगुण जानते हैं; क्योंकि- अकर्मण्यता से उनकी विवेचना-शक्ति नष्ट हो जाती है; तभी वे अपने पूर्वजों से नियमित 'श्रियै शिखा' (यजु० १९/९२) इस वैदिक शोभा को भी अवहेलित करके शिखाहीनता को ही श्रीजनक मानते हैं; परन्तु इस प्रकार के दूसरों के अनुकरण में लगे व्यक्ति अपनी जाति एवम् अपने सम्प्रदाय तथा अपने धर्म के अहित-कारक होने से दूर से ही नमस्करणीय हैं। जो 'हैट' पहनने से तो सिर में भार नहीं समझते, परन्तु शिखा रखने से सिर में भार समझते हैं, लार्ड मैकाले के मानसिक दास परानुकरण-प्रवण वे वस्तुतः दयनीय हैं। यदि हिन्दुजाति शिखा को छोड़ देगी; तो उसके न होने पर निम्न हानियाँ होगी; तब अधिपति नामक सम्राट्भूत मर्मस्थानों की भी ग्लानि हो सकती है; जिससे शीत-उष्ण सहनशक्ति का नाश हो जा सकता है।

क्रमशः........

(गतांक से आगे)

# रासपञ्चाध्यायी विमर्श ( ५ )

❑ धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

गोपियाँ कहती हैं, हे बृजिनार्दन! आप हम पर प्रसन्न रहें। भगवान् ने कहा, बृजिनार्दन हमको क्यों कह रही हो? कहा, जनार्दन मे तो चार अक्षर हैं और आज आपके साथ हमारी पाँच प्रकार की क्रीड़ा होगी। आप हमसे पाँच प्रकार से खेलेंगे प्रभु। हमारी आत्मा से आप खेलेंगे, हमारे मन के साथ खेलेंगे, हमारी इन्द्रियों के साथ खेलेंगे, हमारी वाणी के साथ खेलेंगे और पुनः हमारे शरीर के साथ खेलेंगे। इसी दृष्टि से तो यहाँ पाँच अध्यायों का प्रस्ताव है। क्योंकि यहाँ भगवान का गोपियों के साथ पंचरमण है। यदि आप हमारे साथ पाँच प्रकार से खेलेंगे तो आपका नाम भी तो पाँच अक्षरों का होना चाहिए। अतः यहाँ जनार्दन संगत नहीं बृजिनार्दन संगत होगा। कैसा है गोपियों का आनन्द। गोपियों ने कहा, हमने अपने घरों को छोड़ दिया है, ''**प्राप्ता विसृज्य वसतीः।**'' क्यों छोड़ा अपने घरों को? कहा, इसलिए छोड़ा, ''**त्वदुपासनाशाः**'' हमको आपकी उपासना की आशा है। अब हम आपके समीप बैठना चाहती हैं। उपासना में तो घर छूटता ही है क्यों छोड़ा? क्या दोष था उनमें? बोलीं, ''**त्वदुपासनाशाः**'' क्योंकि वे घर आपकी उपासना को खा रहे थे, ''**तव उपासनां अश्नन्ति इति त्वदुपासनाशाः**'' इसलिए हमने अपना घर छोड़ दिया है। और अब क्या चाहती हो? बोलीं,''**त्वसुन्दरस्मित निरीक्षणतीव्रकाम-तप्तात्मनां**'' आपके सुन्दर चितवन और सुन्दर मुसकान को देखकर हमारे मन में आपकी सेवा की तीव्र कामना हो गई है और यदि थोड़ा सा भी विलम्ब हुआ इस कामना की पूर्ति में तो हमारा शरीर जलभुन जायेगा। इसलिए हे पुरुषभूषण! हमको कुछ दीजिये। क्या दें? तो गोपियों ने कहा, ''**दास्यं**'' अपनी सेवा का सौभाग्य दीजिए। यही है रासपंचाध्यायी का आनन्द। ये जीवात्मा के साथ परमात्मा का खेल है। जीवात्मा के साथ परमात्मा की क्रीड़ा है और वो भी रात्रि में।

**''या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।।''**

भगवान् गीता जी के द्वितीय अध्याय में कहते हैं कि तुम समझते हो? जब सब लोग सोते हैं तो संयमी जागता है और यहाँ रात्रि में सब सो रहे हैं। सारा संसार सो रहा है, क्योंकि रासलीला का प्रारम्भ निशीथ में हो रहा है। आज की भाषा में बोलूँ तो बारह बजे लगभग हो रहा है। जब सब लोग सो रहे हैं तब भगवान् गोपियों के साथ खेल रहे हैं। कोई असंयमी ऐसा कृत्य नहीं कर सकता। अतः आज भी अभी भी भगवान् खेल रहे हैं। समस्या इस बात कि है जैसा कि हम पहले भी कह चुके हैं कि जब तक हमारे जीवन में व्याकरण नहीं आ जाता अर्थात् जब तक हम शास्त्र को जीने का अभ्यास नहीं कर लेते तब तक हम वैदिक सिद्धान्त को नहीं समझ पाते। अब यह दायित्व वक्ता का है जब तक वक्ता शास्त्र को नहीं जीता तब तक वह शास्त्र का सिद्धान्तपीयूष पिला भी नहीं सकता। अतः वैदिक

सिद्धान्त अमृत को पिलाने के लिए शास्त्र को जीना पड़ेगा। उसमें भी श्रीमद्‌भागवत साक्षात् निगमकल्पतरु का फल हैं। वेद कल्पवृक्ष का सुन्दरतम फल है तो वेद के सिद्धान्त को समझने के लिए ''**मुखं व्याकरणं स्मृतम्**'' व्याकरण ही उसका मुख है। यदि मुख ही नहीं तो फिर वो बोलेगा कैसे? वेद से कोई कहे कि आप बोलिए, कुछ कहिए तो कहेगा कि जब मेरा मुख ही बन्द कर दिया आपने तो हम बोलेंगे कैसे? सो श्रुति माता कब बोलेंगी, जब उनका मुख ठीक होगा और आज आप देखते होंगे कि किसी के मुख में कैंसर हो जाता है तो वह नहीं बोल पाता है। कोई गूंगा हो जाता है तो नहीं बोल पाता है। तो हमने तो अपने प्रमाद के कारण वेद भगवान् के मुख को बन्द कर दिया है, सीं दिया है, उनके मुख की उपेक्षा कर दी है, इसीलिए हम वैदिक सिद्धान्तों को नहीं समझ पा रहे हैं और जब तक हमारे जीवन में व्याकरण नहीं आयेगा वह भी परमार्थ रूप में, जब तक हम व्याकरण को जीना नहीं सीख जायेंगे तब तक हम भगवान् के सिद्धान्तों को समझ नहीं पायेंगे। तब तक हमारी माँ श्रुति भगवती क्या कह रही हैं हम नहीं समझ पायेंगे। इसलिए मैं फिर अनुरोध कर रहा हूँ कि भगवान् को प्राप्त करने के लिए माँ श्रुति माता की शरण में जाना पड़ेगा और श्रुति माता को समझने के लिए उनके मुख व्याकरण की रक्षा करनी पड़ेगी, क्योंकि वो समझायेंगी तो मुख से ही। छोटे से बालक को जब माता उसके पिता का परिचय देती है तो मुख का ही तो अवलम्ब लेती है। अतएव हमें व्याकरण को जीना पड़ेगा। व्याकरण का प्रयोग हमें जीविका के लिए नहीं व्याकरण का प्रयोग हमको जानकीजीवन अथवा राधिकाजीवन के लिए करना होगा। तात्पर्य यह है कि जब तक हम रमण शब्द का अर्थ नहीं समझेंगे तब तक हमें रासपंचाध्यायी नहीं समझ में आयेगी और आज का दुर्भाग्य यह है कि मनुष्य रमण शब्द का बहुत ही अनुचित अर्थ समझने लगा है। इसीलिए उसका अध:पतन होता जा रहा है। रमण का अर्थ अनुचित अर्थों में नहीं लेना चाहिए। रमण का अर्थ स्त्री–पुरुष के ग्राम्य संयोग से नहीं समझना चाहिए। भगवान पाणिनि कहते हैं कि ''**रमु क्रीड़ायाम्**'' पा० धा० पाठ ८५३ 'रमु' धातु का अर्थ है खेलना। वो भी किसका खेलना? जीवों के खेलने को प्राय: रमण नहीं कहते। किसकी क्रीड़ा के लिए रमण शब्द का प्रयोग होता है? बालक के लिए। हिन्दी में तो ऐसा नहीं दिखता परन्तु जब हम गुजराती भाषा में देखते हैं तो वहाँ 'रम्' धातु का प्रयोग बिल्कुल निर्दोष बालक की क्रीड़ा के अर्थ में किया जाता है। कहते हैं वहाँ के लोग (गुजराती में कहा जाता है कि–) ''बाड़क रमकड़ाउनी शाथे रमी रह्यू छे'' बालक रमकड़ा माने खिलौने के साथ खेल रहा है और सौभाग्य से रासपंचाध्यायी में रम् धातु का प्रयोग ही बहुश: हुआ है। जैसे– ''**वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे।**'' भा० १०/२९/१ भगवान् ने रमण करने का मन बनाया, खेलने के लिए मन बनाया। यह नहीं लिखा कि ''**वीक्ष्य भोक्तुम्**''। भोगार्थ मन भगवान् का नहीं बन रहा है। भगवान् के मन में बुभुक्षा नहीं है, भगवान की भोग की इच्छा नहीं है। भगवान् को क्या लेना–देना भोग से। भगवान् अपने ऐश्वर्य के भाव से श्रीमद् भगवद् गीता में स्वभावत: बोल उठे, ''तुम्हें पता है मेरी साधारण लीलायें देखकर लोग मुझ पर सन्देह करते हैं।'' कौन हूँ मैं और कैसा है मेरा व्यक्तित्व? भगवान् बहुत गौरव और आत्मविश्वास के साथ बोल पड़े।

क्रमश:........

## आज राघव मगन

❑ पूज्यपाद जगद्गुरु जी

आज राघव मगन बाल सुख मोद में।
कभी इस गोद में कभी उस गोद में।।
जो है व्यापक निरामय निरंजन अगुण
आज प्रगटे वही व्याप्य सुन्दर सगुण।
पा के कोसल निवासी मुदित मोद में।
कभी इस गोद में........

केश घुँघराले कारे हैं प्यारी अलक
नैन कजरारे खंजन सुहानी पलक।
मानो खेल रहीं मछली दो पाथोद में।
कभी इस गोद में ..........

लेते पुलकित उछंगों में पुलकित लला
मानो मिल गया धरा को है सोभग भला।
झूम झूम चूमते हैं वदन सुप्रमोद में।
कभी इस गोद में ..........

सभी राम को निहार रहे अपलक नयन
प्रेम पुलकित सजल नेत्र गद्‌गद नयन।
रामभद्राचार्य हुलस रहे सुविनोद में
कभी इस गोद में कभी उस गोद में।।

❑❑❑

## वन्दे मातरम्

❑ प्रस्तुति- विवेकानन्द केन्द्र

सुजलां सुफलां मलयज-शीतलां
शस्य-श्यामलां मातरम्। वन्दे मातरम्
शुभ्र-ज्योत्स्ना-पुलकित-यामिनीम्
फुल्ल-कुसुमित-द्रुमदल-शोभिनीम्
सुहासिनीं सुमधुर-भाषिणीम्
सुखदां वरदां मातरम्।।
कोटिकोटि-कण्ठ-कलकल-निनाद-कराले
कोटिकोटि-भुजैर्धृत-खरकरवाले
के बोले मा तुमि अबले
बहुबल-धारिणीं नमामि तारिणीं
रिपुदल-वारिणीं मातरम्।।
तुमि विद्या तुमि धर्म
तुमि हृदि तुमि मर्म
त्वं हि प्राणाः शरीरे।
बाहुते तुमि मा शक्ति
हृदये तुमि मा भक्ति
तोमारइ प्रतिमा गड़ि
मन्दिरे मन्दिरे।
त्वं हि दुर्गा दशप्रहरण-धारिणी
कमला कमल-दल-विहारिणी
वाणी विद्यादायिनी
नमामि त्वां
नमामि कमलां अमलां अतुलां
सुजलां सुफलां मातरम्
वन्दे मातरम्।।
श्यामलां सरलां सुस्मितां भूषितां
धरणीं भरणीं मातरम्।
वन्दे मातरम्।।

❑❑❑

# भारत माता की बिन्दी हिन्दी

❑ डॉ० हरप्रसार स्थापक 'दिव्य'

हिन्दी भारत माँ की बिन्दी, इसे नई चमकार दो।।टेक।।
हिन्दी है हृदय की धड़कन, स्पंदन सुनता है संसार।
कंठहार बन जाय सभी की, मिल जाये जग भर का प्यार।।
पनप चुकी है हिन्दी अब, इसे तरुणाई के बोल दो।
रसवंती बन जाय जगत में, ऐसा अमृत घोल दो।।
हिन्दी है वैज्ञानिक भाषा, दुनिया को ललकार दो।।१।।
भाषायी विवाद अरे!, संकीर्ण विचारों के घेरे हैं।
उन्हें मिटाकर ही देशों ने, अपने शुभ दिन फेरे हैं।।
भरत भूमि में रहने वाले, माता के सब चेरे हैं।
हिन्दी को अपनाने में, क्यों उठे विवाद घनेरे हैं?।।
उठो हिन्द के वीर सपूतो, हिन्दी में हुंकार दो।।२।।
शांति, दया, करुणा, मैत्री के, संदेश घरों में जाते हैं।
सभी धर्म के लोग यहाँ, हिन्दी की अलख जगाते हैं।।
'देववाणी' की बिटिया है यह, इसको सदा दुलार दो।
भारत माँ के वीर सपूतो, हिन्दी को सच्चा प्यार दो।।
निज कंठहार बना लो इसको, बुलंदी से जयकार दो।।३।।
सब भाषाओं में वैज्ञानिक, माँ भारती स्वीकारती।
खुले कंठ अरु कर कमलों से, सदा उतारें आरती।।
चमक चाँदनी बन जाये, रोशन होगा सारा संसार।
भारत यदि संकल्पित हो, तो मिल जाये जगती का प्यार।।
बिन्दी चमके सूरज जैसी, इस वसुधा को उजियार दो।।४।।
हिन्दी लेखन अरु बोलन में, अन्तर की कोई बात नहीं है।
विश्व बन्धुत्व भाईचारे में, पड़ता कोई फर्क नहीं है।।
मातृभूमि के भाई-बहिन, जुट जायें इसे अपनाने में।
जैसा जोश भरा रहता है, राष्ट्रगान के गाने में।।
हिन्दी है पहचान हिन्द की, शाश्वत जीवनाधार दो।।५।।
'जगत्साक्षी' है स्थायी, प्रकाशित भू-नभ मण्डल परिवार।
हिन्दी की बिन्दी यह चमके तो, ईर्ष्या करना है बेकार।।
हिन्दी वैज्ञानिक भाषा में, संजीवन सी शक्ति अपार।
सब हँस बोलें हिन्दी में, दुनिया को नई पहचान दो।।
जीवट जीवन के हिन्द वीर, हिन्दी अपनाने आह्वान दो।।६।।

❑❑❑

# हिन्दु धर्म ग्रंथों का परिचय

❑ डॉ० कृष्णवल्लभ पालीवाल

हिन्दुओं के अनेक ग्रंथ हैं परन्तु इनमें अपौरुषेय वेद सबके आदि स्रोत और आधार हैं। इन ग्रंथों के मुख्य भाग ये हैं– (१) वेद, (२) वेदाङ्ग, (३) उपवेद, (४) पुराण, और ऐतिहासिक ग्रंथ, (५) स्मृति, (६) दर्शन, (७) निबन्ध, (८) आगम, (९) विविध ग्रंथ।

**१. वेद–** वेद संहिताएं चार हैं। इनमें से ऋग्वेद में १०५५२, यजुर्वेद में १९७५, अथर्ववेद में ५९७७ और सामवेद में १८७५ मंत्रों सहित चारों वेदों में कुल २०३७९ मंत्र हैं। वेदों के सत्यार्थ को समझने, यज्ञों में उनकी प्रयोग विधि जानने, आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति तथा उनकी सुरक्षा के लिए ऋषियों द्वारा रचित वेद सम्बन्धी ग्रंथों के छः भाग ये हैं– ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक, उपनिषद, सूत्रग्रंथ, प्रातिशाख्य और अनुक्रमणी।

**( अ ) ब्राह्मण ग्रंथ–** ये ग्रंथ वेद मंत्रों के अर्थ और उनकी यज्ञों में प्रयोगविधि बताते हैं तथा प्रत्येक वेद के अलग–अलग ब्राह्मण ग्रंथ हैं जैसे ऋग्वेद के ऐतरेय और कोषीतकी अथवा शांखायन, यजुर्वेद के तैत्तिरीय और शतपथ, अथर्ववेद का गोपथ और सामदेव का ताण्ड्य ब्राह्मण मुख्य हैं।

**( आ ) आरण्यक–** ये अरण्य या वन जैसे निर्जन शान्त स्थान में पढ़ने योग्य ब्रह्मविद्या सम्बन्धी ग्रंथ हैं जो कि अधिकांशत ब्राह्मण ग्रंथों के अंग हैं।

**( इ ) उपनिषद्–** इसका अर्थ है ईश्वर के पास पहुंचाने वाला ग्रंथ। इनमें आध्यात्मिक विद्या और ईश्वर जीव सम्बन्धों का विवेचन किया गया है। वैसे तो २२० उपनिषदों का उल्लेख मिलता है परन्तु इनमें से जिन मुख्य ग्यारह उपनिषदों पर भाष्य मिलता है वे हैं– ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, श्वेताश्वतर, छान्दोग्य और बृहदारण्यक।

**( ई ) सूत्र ग्रंथ–** इनके श्रौत सूत्र, गृह्य सूत्र और धर्म सूत्र तीन भाग हैं। इनमें वेदों के कर्मकाण्ड को स्पष्ट किया गया है तथा प्रत्येक वेद के अलग–अलग सूत्र ग्रंथ हैं। इने ऋग्वेद के आश्वलायन, और कौषीतकी, यजुर्वेद के आपस्तम्ब, कात्यायन और बोधायन, अथर्ववेद के बेतान व कौशिक तथा सामवेद के जैमिनीय, खादिर और गौतम मुख्य सूत्र ग्रंथ हैं।

**( उ ) प्रातिशाख्य–** ये वैदिक व्याकरण है तथा चारों वेदों के अलग–अलग प्रातिशाख्य हैं। इनमें से कात्यायन का शुल्बसूत्र विज्ञान की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

**( ऊ ) अनुक्रमणी–** ये एक प्रकार के सूची ग्रंथ हैं जिनका उद्देश्य वेदों की मौलिकता, सुरक्षा एवं वेदार्थ विवेचन करना है। इनमें वेद मंत्रों के देवता, ऋषि, छन्द, स्वर आदि की दृष्टि से सूचियां हैं। इनमें से ऋग्वेद को आर्षार्नुक्रमणी, छन्दोऽनुक्रमणी, देवतानुक्रमर्णा, अनुवाकानुक्रमणी, सर्वानुक्रमणी, वृहद्देवत, ऋगविज्ञान, और ऋक्प्रातिशाख्य और यजुर्वेद की आत्रेयानुक्रमणी चारायणीयानुक्रमणी, कात्यानुक्रमणी और प्रातिशाख्यसूत्र मुख्य हैं।

**२. वेदाङ्ग–** मानव शरीर के समान वेद के भी छः मुख्य अङ्ग माने गए हैं। तदनुसार वेद की आँख है ज्योतिष, कान हैं–निरुक्त, नाक है शिक्षा, मुख है व्याकरण, हाथ हैं कल्प और छन्द चरण हैं।

**( अ ) शिक्षा-** इन ग्रंथों में वेद मंत्रों के स्वर, अक्षर, मात्रा तथा उच्चारण का विवेचन किया गया है। इनमें ऋग्वेद की पाणिनीय शिक्षा, यजुर्वेद की व्यास एवं याज्ञयवल्क्य शिक्षा ग्रंथ, अथर्ववेद की माण्डूकी शिक्षा और सामवेद की गौतमी, लोमशी और नारदीय शिक्षा मुख्य हैं।

**( आ ) व्याकरण-** इसका कार्य मुख्यतया वैदिक भाषा के नियम निश्चित करना है। इन ग्रंथों में पाणिनि व्याकरण पर महर्षि पतञ्जलि का महाभाष्य मुख्य है।

**( इ ) निरुक्त-** ये वेदों की व्याख्या के नियम बतलाने वाले कोश हैं जिनमें यास्काचार्य का निरुक्त मुख्य है।

**( ई ) छन्द-** वैदिक मंत्रों के छन्दों का विवेचन करने वाले अनेक छन्द ग्रंथ हैं।

**( उ ) कल्प सूत्र-** ये यज्ञों की विधि का वर्णन करते हैं।

**( ऊ ) ज्योतिष-** इसका मुख्य प्रयोजन संस्कार और यज्ञों के लिए मुहूर्त बतलाना तथा यज्ञ स्थली मण्डप आदि का माप तथा विज्ञान बतलाना है। इनमें नारद, पराशर, वसिष्ठ आदि ऋषियों के अलावा, वराहमिहिर, आर्यभट्ट, ब्राह्मणगुप्त और भास्कराचार्य के ग्रंथ प्रमुख हैं।

**३. उपवेद-** प्रत्येक वेद का एक उपवेद है जो कि वेद की परिपूर्णता को समझने में सहायक होता है। ऋग्वेद का उपवेद अर्थ वेद, यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेद का गान्धर्व वेद और अथर्ववेद का उपवेद आयुर्वेद है। प्रत्येक उपवेद पर अनेकों ग्रंथ हैं।

**४. पुराण-** ये हिन्दू धर्म, संस्कृति एवं प्राचीन इतिहास के प्रमुख ग्रंथ हैं। इन्हें १८ पुराणों में बाँटा गया है। अठारह पुराणों के नाम हैं- **ब्रह्म, ब्रह्माण्ड, विष्णु, वराह, वामन, भागवत् , भविष्य, मत्स्य, गरुड, मार्कण्डेय, कूर्म, लिङ्ग, अग्नि, पद्म, स्कन्द, शिव, वायु और ब्रह्मवैवर्त्त पुराण।**

अठारह **उपपुराणों** के नाम ये हैं- **सनत्कुमार, नृसिंह, ब्रह्मनारदीय, दुर्वासा, कपिल, मानव, वरुण, कालिका, साम्ब, सौर, पराशर, आदित्य, वसिष्ठ, भार्गव, देवी, पशुपति, आदि और शिवधर्म।**

**४. ऐतिहासिक ग्रंथ-** इनमें महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण और महर्षि वेदव्यास रचित महाभारत हिन्दू धर्म एवं संस्कृति के प्राचीन मुख्य ऐतिहासिक ग्रंथ हैं। श्रीमद् भगवत गीता महाभारत के भीष्म पर्व का अंग है।

**५. स्मृति-** ये हिन्दू धर्म एवं समाज व्यवस्था के विधि विधान, शासन एवं दण्ड व्यवस्था के ग्रंथ हैं जिनकी विभिन्न कालों में ऋषियों ने रचना की है। इनमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि चारों पुरुषार्थों का समुचित विवेचन है। वैसे तो २५० स्मृतियों का उल्लेख मिलता है, मगर आज लगभग १०० स्मृतियां उपलब्ध हैं जिनमें से निम्नलिखित बाईस स्मृतियाँ अधिक प्रसिद्ध हैं- **मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति, अत्रिस्मृति, विष्णुस्मृति, कात्यायनस्मृति, हारीतस्मृति, औशतनतीस्मृति, अंगिरास्मृति, यमस्मृति, बृहस्पतिस्मृति, पराशरस्मृति, व्यासस्मृति, दक्षस्मृति, गौतमस्मृति, वसिष्ठस्मृति, आपस्तम्बस्मृति, संवर्तस्मृति, शंखस्मृति, लिखितस्मृति, देवलस्मृति, शातातपस्मृति और कौस्तुभस्मृति।**

**६. दर्शन शास्त्र- 'तत्त्व ज्ञान साधक'** ग्रंथों

का नाम दर्शन शास्त्र है। इनमें बुद्धि व तर्क के द्वारा किसी विषय का सत्य स्वरूप निर्धारित करने की विधियां बताई गई हैं। इन समस्त हिन्दू दर्शनों को वैदिक, बौद्ध और जैन दर्शन, इन तीन भागों में बांटा गया है। छः वैदिक दर्शनों के नाम हैं–कपिल का सांख्य दर्शन, पतञ्जलि का योग दर्शन, गौतम का **न्याय दर्शन**, कणाद का **वैशेषिक दर्शन**, जैमिनी का **पूर्व मीमांसा** और बादरायण का **उत्तरमीमांसा या वेदान्त दर्शन।**

**७. निबन्ध ग्रंथ–** ये ग्रंथ स्मृतियों के समान हैं जिनमें विभिन्न धर्माचरणों, विधि विधानों एवं विषयों को विस्तार से सुस्पष्ट किया गया है। इनकी संख्या लगभग पचास है।

**८. आगम–** वेदों से लेकर निबन्धग्रंथों तक की परम्परा को निगम कहा जाता है और जिन ग्रंथों में इष्टदेव की पूजा उपासना, अर्चना, ध्यान आदि का विवेचन है उन्हें आगम कहते हैं। अतः शैव, शाक्त, वैष्णव एवं जैनियों के अनेक आगम ग्रंथ हैं। संक्षेप में वैष्णवों के पाञ्चरात्र संहिताओं में १३ प्रमुख हैं तथा शैवों और शाक्तों के ६४–६४ प्रामाणिक आगम हैं। विस्तार में और भी ग्रंथ हैं।

ज्ञानेश्वरी एवं तिरुक्कुरल– मराठी भाषा में सन्त ज्ञानेश्वर की ज्ञानेश्वरी तथा तमिल भाषा में तमिल सन्त तिरुवल्लुवर कृत तिरुवक्कुरल अत्यन्त सरल व प्रेरणादायक धार्मिक कृतियाँ हैं।

ऊपर लिखे मूल ग्रंथों के भारतीय भाषाओं में अनेक भाष्य व टीकाओं के अलावा विभिन्न सम्प्रदायों के ग्रंथों की संख्या बहुत अधिक है।

**हिन्दूधर्मशास्त्रों का प्रामाणिक आधार ग्रंथ वेद–** हिन्दू समाज की अति प्राचीनता तथा विभिन्न कालों में हुए धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक परिवर्तनों से प्रभावित चिन्तन ही इस विविधता का मूल कारण है। जटिल और रहस्यमय वेदों से लेकर गीता, रामायण और पुराणों तक की सरल धार्मिक व्याख्या हिन्दू धर्म के लचीलेपन की विशेषता है। हिन्दू धर्म एवं संस्कृति की विशाल धरोहर में व्यापक विविधता होते हुए भी एक मूलभूत, अनवरत समानता, मौलिकता, एकता एवं समन्वयता विद्यमान है जो सुदूर प्रान्तों की विभिन्न भाषाओं, बोलियों व रीति–रिवाजों में भी अपनी मौलिकता को संजोए हुए हैं। यही राष्ट्रीय एकता, सांस्कृतिक समरसता एवं धार्मिक एकात्मता की सबसे बड़ी कड़ी है जिसका मुख्य आधार वेद हैं। ये ही हिन्दुओं के विभिन्न मतों, दर्शनों, एवं सम्प्रदायों के आदि स्रोत हैं। वेद ही हिन्दू धर्म के आदि, मौलिक और प्रामाणिक धर्म ग्रंथ हैं क्योंकि लाखों वर्षों के बाद में भी इनमें कोई मिलावट व न्यूनता नहीं आई है। कारण कि हमारे ऋषियों ने वेद के प्रत्येक शब्द को तेरह विभिन्न प्रकार से स्मरण कर परम्परागत ढंग से उन्हें अपने मौलिक रूप में सुरक्षित रखा है। इसीलिए सभी धर्म ग्रंथों एवं ऋषियों ने वेदों को ही अन्तिम प्रामाणिक धर्मशास्त्र माना है–देखिए प्रमाण–

१. लोकों के लिए वेद प्रामाणिक हैं (वेदा प्रमाणा लोकानां–महाभा० शां० २७०)
२. मनुष्य वेदों को प्रामाणिक मानकर अपने धर्म का पालन करें। (कुर्वन्ति धर्ममनुजाः श्रुति प्रामाण्य दर्शनात्, (म०भा० शां० २९७.३३)
३. श्रुति प्रामाणिक है (**श्रुति प्रामाण्याच्च** – न्याय द० ३.१.३२)
४. धर्म जिज्ञासुओं के लिए वेद ही प्रामाणिक हैं

(**धर्मंजिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः** मनु स्मृति २.१३

५. जो धर्मज्ञ हैं उनके लिए वेद ही प्रामाणिक हैं (**धर्मज्ञ समयः प्रमाण वेदाश्च**, आप० १.१.१२)

६. वेद धर्म का मूल है ऐसा विद्वान व स्मृति मानती हैं (**वेदो धर्ममूलमेतद्विदां च स्मृतिः** गौतमधर्मसूत्र)

७. समस्त धर्म का आधार वेद हैं ( **वेदोऽखिलो धर्ममूलम्** , मनु० स्मृति २.८)

८. श्रुति और स्मृति में विरोध होने पर वेदों को ही प्रामाणिक माना जाए (**श्रुति स्मृति विरोधे तु श्रुतिरेव गरीयसी**–जाबालस्मृति)

९. वेद से बढ़कर कोई शास्त्र नहीं है (**नास्ति वेदात्परं शास्त्रं**–अत्रि स्मृति)

१०. वेद सर्वकालीन प्रामाणिक सत्य और लक्ष्य ग्रंथ हैं अतः प्राचीन काल से आज तक सभी धर्म शास्त्रों व विद्वानों ने वेदों को ही हिन्दुओं का प्रामाणिक धर्मशास्त्र माना है तथा वेद भाष्य प्राचीन वैदिक परम्परा के ही अनुकूल होना चाहिए। पाश्चात्यों के अनुसार नहीं। इसीलिए **वेद सब सत्य विद्याओं का आदि ग्रंथ है। ''वेद का पढ़ना-पढ़ाना परम धर्म है''।।**

❑❑❑

# श्रीरामभद्राचार्यकं पञ्चकम्

❑ श्री रामानुग्रह शर्मा ( राँची )

**( १ )**

**रामभद्रो मुनिर्मानिनीयः कविः**
**व्यास देवोऽवतीर्णोऽमृताशुः शशी।**
**रामनामाननः सन्त सेव्य सुधीः**
**विष्णु दामोदरो माधवः श्रीहरः।।**

**( २ )**

**भानुदेवो विभातीश्वरो दीप्तिमान्**
**राघवेन्द्रो रवीराजते कीर्तिमान्।**
**वैष्णवानां धुरीणो महारविः**
**पूज्ये विभागे महाभामणिः।।**

**( ३ )**

**चित्रकूटे पवित्रे प्रसिद्धस्थले**
**रामभद्रैः पुनीते प्रसिद्धेऽचले।**
**जीवने मे प्रकाशं गतं साम्प्रतम्**
**घोर मोहान्धकारे सदा पीडितम्।।**

**( ४ )**

**ज्ञानदो विश्वव्यापी यती मुक्तिदः**
**प्राणवायुर्महाप्रेरकः सर्वदा।**
**किं न ध्येयो गुरुर्बन्धनान्मुक्तिदः**
**विश्वबन्धुः सखा रक्षकस्तारकः।।**

**( ५ )**

**रामभद्रो जनानां हृदिस्थः सदा**
**प्राणवायुर्महाप्रेरकः सर्वदा।**
**विश्वबन्धुः सखा रक्षकस्तारकः**
**किं न ध्येयो गुरुर्बन्धनान् मुक्तिदः।।**

❑❑❑

# जब हनुमान जी की प्रस्तर-प्रतिमा में कम्पन हुआ

❑ साहित्य-वारिधि डॉ० हरिमोहनलाल श्रीवास्तव

हनुमान जी के स्वरूप-ज्ञान और उनकी भक्ति के लिए 'हनुमानचालीसा' नामक अत्यन्त लोकप्रिय रचना 'बिन्दु से सिन्धु' के समान है। दो सौ वर्षों से अधिक पुरानी '**हनुमत्-पचासा**' नामक एक अन्य कृति यद्यपि बहुत कम विख्यात रही है, तथापि वह हनुमान जी की अनूठी आराधना के रूप में एक अमर कृति है। भक्ति-काव्य में यह विशिष्ट गुण बुन्देलखण्ड के सुप्रसिद्ध कवि मान की वाणी का प्रसाद है। भूतपूर्व चरखारी राज्य में राजा अमानसिंह के दरबारी कवि मान हनुमान जी के परम भक्त थे। काकनी नामक छोटे से ग्राम के निवासी इस कवि ने गांव की पहाड़ी पर स्थित हनुमान जी की सिद्ध मूर्ति के समक्ष जो पचास कवित्त सुनाए, वे भक्तों के लिए अमूल्य निधि बन गए।

वर्तमान वैज्ञानिक युग में जहाँ आस्था का अवमूल्यन होता जा रहा है, कितने लोग विश्वास करना चाहेंगे कि कालिदास और दण्डी की भांति मान भी केवल साधना के भरोसे ही बहुत बढ़े-चढ़े थे। किसी भी अच्छे साहित्यकार या कलाकार से ईर्ष्या रखनेवाले दस-बीस व्यक्ति प्रत्येक नगर में मिल जायेंगे। प्रसिद्ध है कि मान के राजकीय सम्मान के प्रतिद्वंद्वी एक मैथिल पण्डित ओक्रा को अपने कवित्व का बड़ा गुमान था। दोनों के बीच श्रेष्ठता निर्धारित किए जाने के लिए यह तय पाया गया कि दोनों काकनी के हनुमान जी की मूर्ति के समक्ष अपने-अपने काव्यों का पाठ करें और जिसके पाठ से प्रतिमा में कुछ भी परिवर्तन परिलक्षित होगा, उसी को श्रेष्ठतर स्वीकार किया जायेगा। कहा जाता है कि प्रथम दिन विशाल जनसमूह के समक्ष ओक्रा जी का पाठ हुआ और दूसरे दिन मान कवि का। ज्यों ही मान ने निम्नलिखित पचासवां कवित्त सुनाया, हनुमान जी की प्रस्तर प्रतिमा में कम्पन उत्पन्न हुआ और उनकी गर्दन भक्त मान की ओर झुकी हुई दिखायी दी। मूर्ति आज भी ज्यों कि त्यों टेढ़ी है और श्रद्धालुओं की सिद्धि-प्रदाता बनी हुई। मान के '**हनुमत्-पचासा**' का वह अन्तिम कवित्त इस प्रकार है-

**बाचे डेढ़ मासा सोक संकट बिनासा तपै**<br>**तप को तमासा बासा मंगल अनन्त को।**<br>**विभव बिकासा मन बांछित प्रकासा दसों**<br>**दिस सुख सम्पत्ति बिलासा सुर संत को।**<br>**महाबीर सासा पूज बीरा ओ बतासा करे**<br>**बिपत को ग्रासा तन त्रासा अरि अंत को।**<br>**सिख नख खासा रिद्ध सिद्ध को निवासा यह**<br>**दास आसा पूरक पचासा हनुमंत को।।**

नियमपूर्वक डेढ़ मास तक इस पचासा का पाठ अनेक प्रकार के अभीष्ट फलों को देनेवाला होगा- कवि की यह कामना उसको तो अक्षय यश देने वाली बनी ही, परंतु बीड़ा-बतासे के साथ महावीर की अर्चना का उसने जो कल्याणकारी मार्ग जनता को सुझाया वह भी एक दिव्य संदेश है। कवि का कथन है कि ऋद्धि-सिद्धि मुख्य स्थल नख-शिख ही है। अर्थात् हमारा शरीर ही समृद्धि और सफलता के निवास का मुख्य स्थल है।

श्रीहनुमान जी की स्तुति के पांच सुन्दर कवित्त इस विलक्षण आराधना के परिचयात्मक रूप में यथेष्ट व्याख्यासहित प्रस्तुत हैं-

**महाकाव्य महाबल महाबाहु महानख**
**महानद महामुख महा मजबूत है।**
**भनै कवि 'मान' महाबीर हनुमान महा-**
**देवन को देव महाराज रामदूत है।।**
**पैठ के पाताल कीन्हों प्रभु को सहाय महि**
**रावन दहायवे को प्रौढर-सपूत है।**
**डाकिनी को काल, शाकिनी को जीवहारी सदा**
**काकिनी के गिरि पै बिराजै पौन-पूत है।**

मान कवि हनुमान जी के बलशाली रूप का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वे शूरवीरों में अग्रणी हैं, देवाधिदेव श्रीराम के दूत हैं और अपने आराध्य की सहायता करते हुए अहिरावण के विरुद्ध उन्होंने अपनी प्रौढ़ सपूती का परिचय दिया। डाकिनी और शाकिनी के प्रबल शत्रु ये हनुमान जी काकिनी के पर्वत पर अचलरूप में आसीन हैं।

**बज्र की झिलन भानु मंडली गिलन**
**रघुराज कपिराज को मिलन मजबूत को।**
**सिन्धु मग झारबो उजारबो बिपिन लंक**
**बारबो उबारबो विभीषण के सूत को।**
**भनै कवि 'मान' ब्रह्म-शक्ति ग्रसन जान**
**राम भ्रात प्राण दान द्रोणगिरि ले अकूत को।**
**रंजन धनंजय, सोक गंजन सिया को लखो**
**भाल खल भंजन, प्रभंजन के पूत को।।**

अर्थात् मारुतनंदन इन्द्र के वज्र-प्रहार को सहनेवाले, सूर्यमण्डल को निगलने वाले, श्रीराम-सुग्रीव को मैत्री-सूत्र में बांधने वाले, सिन्धु मार्ग को निष्कण्टक बनाने वाले, लंका एवं अशोकवाटिका को उजाड़नेवाले, विभीषण एवं इन्द्र के सारथि के प्राणों की रक्षा करने वाले, ब्रह्मशक्ति को आत्मसात् करने वाले, विशाल द्रोणाचल को धारण करते हुए लक्ष्मण को प्राणदान देने वाले तथा अर्जुन और सीता को आनंदमय परंतु दुष्टों का मान-मर्दन करने वाले हैं।

**रौद्र रस रेले रन खेले मुख भेजे भार,**
**असुर उसेले जो उबेले सुर गाढ़ तें।**
**चपल निसाचर चमून चक चूरे महि,**
**पूरे लंक भाजन जरूप जाड़ पाढ़ तें।**
**जानत को डाढ़ैं शोक सागर तें काढ़ें सान,**
**साढ़े गुन बाढ़े खल बाढ़ तें,**
**परे प्रान पाड़े दल दुष्टन को ढाढे धन्य,**
**पौन पुत्र डाढ़े जे उखाड़े यम दाढ़ तें।।**

कवि ने एक-एक कवित्त में हनुमान जी की दृष्टि, नासिका, कपोल, अधर आदि का वर्णन करते हुए उनके हुंकार का विशद वर्णन किया है। उपर्युक्त कवित्त में हनुमान जी की दाढ़ों को कवि ने रणभूमि में रौद्र-रस का संचार करनेवाली बताया है। उनकी चपेट में आने वालों के प्राणों के लाले पड़ जाते हैं। दुष्टों को उनके कर्मों का दण्ड देने वाली पवनपुत्र की दाढ़ें यमराज की दाढ़ों के महत्व को उखाड़ फेंकने वाली हैं।

**अरुण ज्यों भौम सोम दृग लौं असीम लोम**
**कोमल ज्यों छेम करे कर सिय कंत के।**
**महा प्रलयों में मुनि लोमस के लोमन लौं**
**बैरिन बिलोम अनलोम सुर संत के।**
**बज्र मुद मोम छबि 'मान' संत सोम जे**
**अ-सोम ग्रह सोम कर अदिन के अंत के**
**खलन के खोम जोम होत है अजोम जोम**
**ज्वालिन के तोम बंदौं रोम हनुमंत के।।**

हनुमान जी की रोम-राशि की वंदना करते हुए कवि कहता है कि वह मंगल ग्रह की लालिमा से अनुरंजित है, चन्द्रमा के समान कोमल है तथा श्रीराम के कर-कमलों के समान संतापहारी है। लोमश मुनि

की भाँति वह महाप्रलय में भी नष्ट नहीं होती। शत्रुओं के लिए प्रतिकूल तथा देवों एवं संतों के अनुकूल यह रोमावली दुष्टों के उत्साह को तिरोहित कर देने वाली अग्नि है। जिसके समक्ष वज्र और मुद्गर भी मोम-तुल्य प्रतीत होते हैं।

उनके संपूर्ण शरीर का वर्णन करने वाला कवित्त देखिए-

**ज्वाल सों जले न जलजोर सों जले ना अस्त्र,**
**अरि को धले न जो चले ना जिमी जंग को।**
**काल दण्ड ओट सत कोट की न लागे चोट,**
**सात कोटि महामंत्र मंत्रित अभंग की।**
**कहे कवि 'मान' मघवान मिल गीरवान,**
**दीनों बरदान मान पान के प्रसंग की।**
**जीतमोह माया मार कीन्हो छार छाया राम,**
**जाया कर दाया धन्य काया बजरंग की।।**

सूर्य को एक फल समझकर निगल जाने वाले हनुमान जी की ठोढ़ी पर इन्द्र ने वज्र-प्रहार किया था। पवनदेव ने क्रुद्ध होकर संपूर्ण प्राणियों का श्वासोच्छ्वास अवरुद्ध कर दिया। तब अग्नि, वरुण, विश्वकर्मा, यम, इन्द्र, शिव आदि देवताओं ने हनुमान जी को वरदान दिया कि उनका कभी भी कोई अनिष्ट न होगा।

कवि मान का कथन है कि जिन हनुमान जी ने मोह-माया एवं मार (कामदेव) को निर्जीव कर दिया है और जो श्रीराम के कर-कमलों से पोषित हैं, उनकी दिव्य देह का वर्णन कैसे संभव है। धन्य हैं वे बलशाली हनुमान, जिन पर उनके स्वामी सदैव सानुकूल हैं। साधारण पाठकों के लिए हिन्दी-भाषा का यह काव्य विलक्षण वरदाता है-चाहिए केवल तन्मयतापूर्ण निष्ठा।

❑❑❑

## तू राम शरण में जा ( नैमिष तीर्थ में आशु रचना )

**❑ पूज्यपाद जगद्गुरु जी**

**तू राम शरण में जा मत कर तू मेरा मेरा।**
**धन सम्पत्ति सुख वैभव सारा यह सब झूठी माया।**
**इसके चक्कर में पड़ मूरख नरतन वृथा गँवाया।।**
**बड़े भाग्य ईश्वर की करुणा मानुष देह मिला है।**
**साधन करले मूढ चूक मत शतदल कमल खिला है।।**
**गोविन्द शरण में जा मत कर तू मेरा मेरा। तू रामशरण.....**
**झूठे हैं सम्बन्ध जगत के कोई नहीं है तेरा।**
**अब भी जान देख ले मूरख आया सुखद सवेरा।।**
**तू राम नाम को गा मत कर तू मेरा मेरा। तू रामशरण.....**
**राम मन्त्र का जप कर मूरख नर तन सफल बना ले।**
**'रामभद्र आचारज' प्रभु में चंचल मन को लगाले।।**
**तू राम में मन को लगा मत कर तू मेरा मेरा।**
**तू राम शरण में जा मत कर तू मेरा मेरा।।**

***प्रस्तुति - कु० गार्गी शर्मा***

# शरणागति में सभी का अधिकार है

❑ परमवीतराग सन्त स्वामी रामसुखदास जी महाराज

विचार करने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि आज के मनुष्य का जीवन स्वकीय शिक्षा, सभ्यता और संस्कृति के परित्याग के कारण विलासयुक्त होने से अत्यधिक खर्चीला हो गया है। जीवन-निर्वाह की आवश्यक वस्तुओं का मूल्य अधिक बढ़ गया है। व्यापार तथा नौकरी आदि के द्वारा उपार्जन बहुत कम होता है। इन कारणों से मनुष्यों को परमार्थ-साधन के लिये समय का मिलना बहुत कठिन हो रहा है और साथ-ही-साथ केवल भौतिक उद्देश्य हो जाने के कारण जीवन भी अनेक चिन्ताओं से घिरकर दुःखमय हो गया है। ऐसी अवस्था में कृपालु ऋषि-मुनि एवं संत-महात्माओं द्वारा त्रिताप-संतप्त प्राणियों को शीतलता तथा शान्ति की प्राप्ति कराने के लिये ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, हठयोग, अष्टाङ्गयोग, लययोग, मन्त्रयोग और राजयोग आदि अनेक साधन कहे गये हैं और वे सभी साधन वास्तव में यथाधिकार मनुष्यों को परमात्मा की प्राप्ति कराकर परम शान्ति प्रदान करने वाले हैं। परंतु इस समय कलि-मलग्रसित विषय-वारि-मनोमीन प्राणियों के लिए-जो अल्प आयु, अल्प शक्ति ाथा अल्प बुद्धि वाले हैं- परम शान्ति तथा परमानन्दप्राप्ति का अत्यन्त सुलभ तथा महत्त्वपूर्ण साधन एकमात्र भक्ति ही है। उस भक्ति का स्वरूप प्रीतिपूर्वक भगवान् का स्मरण ही है, जैसा कि श्रीमद्भागवत में भक्ति के लक्षण बतलाते हुए भगवान् श्रीकपिलदेव जी अपनी माता से कहते हैं-

**मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये।**
**मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ।।**
**लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम् ।**
**अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे।।**
**सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ।**
**दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः।।**
**स एव भक्तियोगाख्य आत्यन्तिक उदाहृतः।**
**येनातिव्रज्य त्रिगुणं मद्भावायोपपद्यते।।**
(३।२९।११-१४)

अर्थात् जिस प्रकार गङ्गा का प्रवाह अखण्डरूप से समुद्र की ओर बहता रहता है, उसी प्रकार मेरे गुणों के श्रवणमात्र से मनकी गति का तैलधारावत् अविच्छिन्नरूप से मुझ सर्वान्तर्यामी के प्रति हो जाना तथा मुझ पुरुषोत्तम में निष्काम और अनन्य प्रेम होना-यह निर्गुण भक्तियोग का लक्षण कहा गया है। ऐसे निष्काम भक्त, दिये जाने पर भी, मेरे भजन को छोड़कर सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य मोक्षतक नहीं लेते। भगवत्सेवा के लिये मुक्ति का भी तिरस्कार करने वाला यह भक्तियोग ही परम पुरुषार्थ अथवा साध्य कहा गया है। इसके द्वारा पुरुषार्थ अथवा साध्य कहा गया है। इसके द्वारा पुरुष तीनों गुणों को लाँघकर मेरे भाव को-मेरे प्रेमरूप अप्राकृत स्वरूप को प्राप्त हो जाता है।

इसी प्रकार श्री मधुसूदनाचार्य ने भी भक्तिरसायन में लिखा है-

**द्रुतस्य भगवद्धर्माद्धारावाहिकतां गता।**
**सर्वेशे मनसो वृत्तिर्भक्तिरित्यभिधीयते।।**

अर्थात् भागवत-धर्मों का सेवन करने से द्रवित हुए चित्त की भगवान् सर्वेश्वर के प्रति जो तैलधारावत् अविच्छिन्न वृत्ति है, उसी को भक्ति कहते हैं।

उपर्युक्त लक्षणों से सिद्ध होता है कि अनन्य भावयुक्त भगवत्स्मृति ही भगवद्भक्ति है।

भगवद्वचनामृतस्वरूप परम गोपनीय एवं

रहस्यपूर्ण ग्रन्थ श्रीमद्भगवद्गीता के आठवें अध्याय के आरम्भ में अर्जुन द्वारा किये हुए सात प्रश्नों में से अन्तिम प्रश्न यह है कि 'हे भगवन् ! आप अन्त समय में जानने में कैसे आते हैं? अर्थात् मृत्युकाल में आप प्राणियों द्वारा कैसे प्राप्त किये जा सकते हैं?' इसका उत्तर देते हुए उसी अध्याय के पाँचवे श्लोक में कहा गया है कि 'अन्तकाल में भी जो केवल मेरा ही स्मरण करता हुआ शरीर छोड़कर जाता है, वह निस्संदेह मुझको ही प्राप्त होता है। अतः हे अर्जुन! तू सभी समयों में मेरा ही स्मरण कर तथा युद्ध (कर्तव्य-कर्म) भी कर। इस प्रकार मुझमें मन-बुद्धि को लगाये हुए तू निस्संदेह मुझको ही प्राप्त होगा (गीता ८।७)।' ऐसे ही सगुण-निराकार परमात्मस्वरूप की प्राप्ति के विषय में भगवान् कहते हैं-

**अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।**
**परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ।।**

(गीता ८।८)

अर्थात् हे पृथानन्दन! यह नियम है कि परमेश्वर के ध्यान के अभ्यासरूप योग से युक्त, अन्य ओर न जाने वाले चित्त से निरन्तर चिन्तन करता हुआ प्राणी परमप्रकाशस्वरूप दिव्य पुरुष को अर्थात् परमेश्वर को ही प्राप्त होता है। फिर आगे के श्लोक में भगवान् कहते हैं-

**कविं पुराणमनुशासितार-**
**मणोरणीयांसमनुस्मरेद् यः ।**
**सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूप-**
**मादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।।**

(गीता ८।९)

अर्थात् जो पुरुष सर्वज्ञ, अनादि, सबके नियामक, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, सबके धारण-पोषण करने वाले, अचिन्त्यस्वरूप, सूर्य के सदृश नित्य चेतन, प्रकाशस्वरूप एवं अविद्या से अति परे शुद्ध सच्चिदानन्दघन परमात्मा को स्मरण करता है, वह परम पुरुष परमात्मा को ही प्राप्त होता है।

इसी अध्याय के ग्यारहवें श्लोक में निर्गुण-निराकार परमात्मस्वरूप की प्राप्ति के उस परब्रह्म प्रशंसा तथा बतलाने की प्रतिज्ञा करके बारहवें श्लोक में उस परमात्मा की प्राप्ति की विधि बतलाते हुए आगे के श्लोक में कहते हैं-

**ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्।**
**यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम्।।**

(गीता ८।१३)

अर्थात् 'ॐ' इस एक अक्षररूप ब्रह्म का उच्चारण करता हुआ और (उसके अर्थस्वरूप) मेरा चिन्तन करता हुआ शरीर को त्यागकर जाता है, वह पुरुष परम गति को प्राप्त होता है।'

इसीप्रकार भगवान् ने सगुण-स्वरूप तथा निर्गुण-स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति के उपाय बतलाये, परंतु दोनों साधनों में योग के अभ्यास की अपेक्षा होने के कारण साधन में कठिनता है, अतः अब आगे अपनी प्राप्ति की सुलभता बताते हुए भगवान् अपने प्रिय सखा कुन्तीनन्दन अर्जुन के प्रति कहते हैं-

**अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।**
**तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।।**

(गीता ८।१४)

'हे पृथापुत्र अर्जुन! जो मनुष्य नित्य-निरन्तर अनन्य चित्त से मुझ परमेश्वर का स्मरण करता है, उस निरन्तर मुझमें लगे हुए योगी के लिये मैं सुलभ हूँ- वह सुगमतापूर्वक मुझे पा सकता है।'

अब आप देखेंगे कि गीता भर में 'सुलभ' पद केवल इसी स्थान पर इसी श्लोक में आया है। इस सौलभ्य का एक मात्र कारण अनन्य भाव से नित्य-निरन्तर भगवान् का स्मरण ही है। आप कह सकते हैं कि जो प्रभु अपने स्मरणमात्र से इतने सुलभ हैं,

उनके स्मरण बिना उनके स्वरूप-ज्ञान को क्योंकर किया जा सकता है। इसका उत्तर यह है कि आजतक आपने भगवत्स्वरूप के सम्बन्ध में जैसा कुछ शास्त्रों में पढ़ा, सुना और समझा है, तदनुरूप ही उस भगवत्स्वरूप में अटल श्रद्धा रखते हुए भगवान् के शरण होकर उनके महामहिमशाली परमपावन नाम के जप में तथा उनके मङ्गलमय दिव्य स्वरूप के चिन्तन में आपको तत्परतापूर्वक लग जाना चाहिए और यह दृढ़ विश्वास रखना चाहिये कि उनके स्वरूपविषयक हमारी जानकारी में जो कुछ भी त्रुटि है, उसे वे करुणामय परमहितैषी प्रभु अवश्य ही अपना सम्यग्ज्ञान देकर पूर्ण कर देंगे, जैसा कि भगवान् ने स्वयं गीता जी में कहा है–

**तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।**
**नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता।।**
(१०।११)

'हे पृथापुत्र! उनके ऊपर अनुकम्पा करने के लिये उनके अन्तःकरण में स्थित हुआ मैं स्वयं ही उनके अज्ञानजनित अन्धकार को प्रकाशमय तत्त्वज्ञानरूप दीपक के द्वारा नष्ट कर देता हूँ।'

इस प्रकार प्रेमपूर्वक भगवान् का भजन करने से वे परमप्रभु हमारे योग-क्षेम अर्थात् अप्राप्त की प्राप्ति तथा प्राप्त की रक्षा स्वयं करते हैं।

भजन उसी को कहते हैं, जिसमें भगवान् का सेवन हो तथा सेवन भी वही श्रेष्ठ है, जो प्रेमपूर्वक मन से किया जाय। मन से प्रभु का सेवन तभी समुचित रूप से प्रेमपूर्वक होना सम्भव है, जब हमारा उनके साथ घनिष्ठ अपनापन हो और प्रभु से हमारा अपनापन तभी हो सकता है, जब संसार के अन्य पदार्थों से हमारा सम्बन्ध और अपनापन न हो।

वास्तव में विचार करके देखें तो यहाँ प्रभु के सिवा अन्य कोई अपना है भी नहीं; क्योंकि प्रभु के अतिरिक्त अन्य जितनी भी प्राकृत वस्तुएँ हमारे देखने, सुनने एवं समझने में आती हैं, वे सभी निरन्तर हमारा परित्याग करती जा रही हैं। अर्थात् नष्ट होती जा रही हैं।

इसीलिये संत कबीर जी महाराज कहते हैं–

**दिन दिन छाँड्या जात है, तासों किया सनेह।**
**कह कबीर डहक्या बहुत गुणमय गंदी देह।।**

अतः अन्य किसी को भी अपना न समझकर केवल प्रभु का प्रेमपूर्वक अनन्य भाव से स्मरण करना ही उनकी प्राप्ति का महत्त्वपूर्ण तथा सुलभ साधन है।

इस अनन्य भाव को प्राप्त करने के लिये यह समझने की परम आवश्यकता है कि यह जीवात्मा परमात्मा और प्रकृति के मध्य में है और जब तक इसकी उन्मुखता प्रकृति के कार्यस्वरूप बुद्धि, मन, इन्द्रिय, प्राण, शरीर तथा तत्सम्बन्धी धन, जन आदि की ओर रहती है, तब तक यह प्राणी अन्य का आश्रय छोड़कर केवल परमात्मा का आश्रय नहीं ले सकता। अतः मेरा कोई नहीं है तथा मैं सेवा करने के लिये समस्त संसार का होते हुए भी वास्तव में एक परमात्मा के सिवा अन्य किसी का नहीं हूँ– इस प्रकार का दृढ़ निश्चय ही प्राणी को अनन्यचित्त वाला बनाने में परम समर्थ है। इस प्रकार **'चेतसा नान्यगामिना'** (८।८); **'अनन्येनैव योगेन'** (१२।६), **'मां च योऽव्यभिचारेण'** (१४।२६); **'अनन्याश्चिन्तयन्तो माम्'** (९।२२), **मच्चित्ताः'** (१०।९), **'मन्मना भव'** (९।३४); (१८।६५); **'मच्चित्तः सततं भव'** (१८।५७); **'मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि'** (१८।५८), **'मय्येव मन आधत्स्व'** (१२।८) तथा **'मय्यर्पितमनोबुद्धिः'** (८।७) – आदि-आदि महत्त्वपूर्ण वाक्यों द्वारा परमात्मा की प्राप्ति रूप फल बतलाकर अनन्यभाव

से भगवान् के चिन्तन-भजन की अत्यधिक महिमा गायी गयी है, अस्तु जिसकी धारणा में श्री भगवान् के सिवा अन्य किसी के प्रति महत्त्वबुद्धि नहीं है, वही अनन्यचित्तवाला अर्थात् अनन्य भाव से स्मरण करने वाला है। अब रहा '**सततम्**' पद, सो निरन्तर चिन्तन तो प्रभु के साथ अखण्ड नित्य सम्बन्ध का ज्ञान होने से ही हो सकता है।

इस पर कबीरदास जी की निम्नांकित उक्ति पर ध्यान दें। वे कहते हैं-

**जहँ जहँ चालूँ करूँ परिक्रमा**
**जो कुछ करूँ सो पूजा।**
**जब सोऊँ तब करूँ दण्डवत**
**जानूँ देव न दूजा।।**

इस प्रकार उस नित्ययुक्त योगी के लिये भगवान् स्वतः ही सुलभ हैं। दुर्लभता तो हमनें भगवान् के अतिरिक्त अन्य सदा न रहने वाली अस्थायी वस्तुओं से सम्बन्ध जोड़कर पैदा कर ली है। इसके दूर होते ही भगवान् के साथ तो हमारा नित्य-निरन्तर अखण्ड सम्बन्ध स्वतः सिद्ध है ही; अतः हमें अपना सम्बन्ध अन्य किसी से न जोड़ना चाहिये, जो प्राणिमात्र के परम सुहृद् एवं अकारण कारुणिक हैं तथा उन्हीं से ममता करनी चाहिये। फिर तो वे दयामय श्रीहरि हमें आप ही अपना लेंगे, जैसा कि उन्होंने अपने परम प्रिय सखा अर्जुन को अपनाते हुए कहा था-

**सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।**
**अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।**
(१८।६६)

'(हे अर्जुन!) सम्पूर्ण धर्मों को अर्थात् सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मों को मुझमें त्यागकर तू एक मुझ सर्वशक्तिमान् सर्वाधार परमेश्वर की ही शरण में आ जा; मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर।'

यह नियम है कि स्वरचित वस्तु चाहे कैसी ही क्यों न हो, हमको प्रिय लगती ही है। ऐसे ही यह सम्पूर्ण विश्व प्रभु का रचा हुआ तथा अपना होने के नाते स्वाभाविक ही उन्हें प्रिय है ही। यथा-

**अखिल बिश्व यह मोर उपाया।**
**सब पर मोहि बराबरि दाया।।**

फिर उसके लिये तो कहना ही क्या है, जो सब ओर से मुख मोड़कर एकमात्र उन प्रभु का हो जाता है। वह तो उन्हें परम प्रिय है ही। यथा-

**तिन्ह महँ जो परिहरि मद माया।**
**भजै मोहि मन बच अरु काया।**
**पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ।**
**सर्ब भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ।।**

इसी प्रकार मानस में सुतीक्ष्ण जी भी कहते हैं-

**एक बानि करुनानिधान की।**
**सो प्रिय जाके गति न आन की।।**

अतः जिसको स्वयं भगवान् अपनी ओर से प्रिय मानें, उसे भगवान् सुलभ हो जायँ-इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता; जैसा कि श्रीभगवान् ने स्वयं अपने श्रीमुख से अर्जुन के प्रति कहा है-

**ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।**
**अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते।।**
**तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।**
**भवामि नचिरात् पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्।।**
(गीता १२।६-७)

'जो मेरे ही परायण रहने वाले भक्तजन सम्पूर्ण कर्मों को मुझमें अर्पण करके मुझ सगुणरूप परमेश्वर को ही अनन्य भक्तियोग से निरन्तर चिन्तन करते हुए भजते हैं, हे पार्थ! उन मुझमें चित्त लगाने वाले प्रेमी भक्तों का मैं शीघ्र ही मृत्युरूप संसार-सागर से उद्धार करने वाला होता हूँ।'

❑❑❑

# भगवद्भक्त श्रीरैदास जी

**सदाचार श्रुति सास्त्र वचन अविरुद्ध उचार्‌यो।**
**नीर-खीर बिबरन्न परम हंसनि उर धार्‌यो।।**
**भगवत कृपा प्रसाद परम गति इहि तन पाई।**
**राजसिंहासन बैठि ग्याति परतीति दिखाई।।**
**बरनाश्रम अभिमान तजि पदरज बंदहिं जास की।**
**संदेह ग्रंथि खण्डन निपुन बानि बिमल रैदास की।।**

*–भक्तमाल*

भगवान् को अपना सर्वस्व मानने और जानने वाले व्यक्ति के सौभाग्य का वर्णन नहीं हो सकता है। भगवान् के भक्त अच्युत गोत्रीय होते हैं, उनकी चरण–रज–वन्दना के लिये ऋद्धि–सिद्धि प्रतीक्षा किया करती हैं। सन्त रैदास भगवान् के परम भक्त थे, उनकी वाणी ने भागवती मर्यादा का संरक्षण कर मानवता में आध्यात्मिक समता–एकता की भावना स्थापित की। वे सन्त कबीर के अग्रज थे, भगवान् की कृपा ने उन्हें उच्च–से–उच्च पद प्रदान किया। रैदास को प्रभु की भक्ति ने नीच से ऊँच कर दिया। आचार्य रामानन्द के बारह प्रधान शिष्यों में उनकी गणना होती है। सन्त रैदास ने यवन–आक्रमण से त्रस्त भारतीय चेतना को सामाजिक क्रान्ति से समुत्तेजित कर सन्त मत की प्राण–प्रतिष्ठा की। भक्तिप्रधान हृदय में निर्गुण ज्ञानराशि की अलौकिक दीपशिखा प्रज्ज्वलित कर, अज्ञान–अन्धकार का नाश कर रामानन्द स्वामी के प्रधान शिष्य रैदास और कबीर ने ज्ञान और भक्ति के समन्वय को अपने सन्त मत का मूलाधार स्वीकार किया।

सन्त रैदास मध्यकालीन भारत की बहुत बड़ी ऐतिहासिक आवश्यकता थे। विदेशी शासक की धर्मान्धता से उन्होंने भारतीय संस्कृति की आध्यात्मिक धारा का संरक्षण किया। विक्रम की चौदहवीं और पन्द्रहवीं शती के अधिकांश भाग को उन्होंने अपनी साधना से धन्य किया था। उन्होंने राजनैतिक निराशा में ईश्वर–विश्वास की परिपुष्टि की। परमात्मा की भक्ति से जन–कल्याण की साधना की। 'सन्तन में रैदास सन्त हैं'–कबीर की वाणी नितान्त सच है।

सन्त रैदास का जन्म काशी में हुआ था। वे चमार कुल में उत्पन्न हुए थे। उनके पिता का नाम रघ्घू था और माता का नाम घुरबिनिया था। दोनों के संस्कार बड़े शुभ थे। वे परम भगवद्भक्त थे, इसलिये रैदास को उत्पन्न करने का श्रेय उन्हीं दोनों को मिल सका। शिशु रैदास ने जन्म लेते ही माता का दूध पीना बन्द कर दिया। लोग आश्चर्य में पड़ गये। स्वामी रामानन्द रघ्घू के घर आये। उन्होंने बालक को देखा, दूध पीने का आदेश दिया। ऐसा कहा जाता है कि पहले जन्म में भी रैदास रामानन्द के शिष्य थे, ब्राह्मण थे, गुरु की सेवा में कुछ भूल हो जाने से उन्हें जन्म लेना पड़ा। रामानन्द स्वामी ने भागवत पुत्र उत्पन्न होने के कारण रघ्घू दम्पति की सराहना की, उनके पवित्र सौभाग्य का बखान किया, अपने मठ में चले आये।

रैदास का पालन–पोषण बड़ी सावधानी से होने लगा। उनमें दैवी गुण अपने आप विकसित होने लगे। बाल्यकाल से ही वे साधु–सन्तों के प्रति आकृष्ट होने लगे, किसी सन्त के आगमन की बात सुनकर वे आनन्द में नाच उठते थे। सन्तों की सेवा को परम सौभाग्य मानते थे। माता–पिता के आज्ञा–पालन और प्रसन्नता–वर्द्धन में वे किसी प्रकार की कमी नहीं आने देते थे। उनकी रुचि देखकर माता–पिता को चिन्ता होने लगी कि कहीं रैदास बाल्यावस्था में घर त्याग कर संन्यास न ले लें। उन्होंने रैदास को विवाह–बन्धन में जकड़ने का निश्चय कर लिया।

रैदास का काम जूते सीना और भजन करना था। वे जूता सीते जाते थे और मस्ती से गाते रहते थे कि हे जीवात्मा! यदि तुम गोपाल का गुण नहीं गाओगे तो तुमको वास्तविक सुख कभी नहीं मिलेगा। हरि की शरण आने पर सत्यज्ञान का बोध होगा। जो राम के रंग में रंग जाता है उसे दूसरा रंग अच्छा ही नहीं

लगता है। वे जो कुछ भी जूते सीं कर कमाते थे उसमें से अधिकांश साधु-सन्तों की सेवा में लगा देते थे। सन्त रैदास को यह विश्वास हो गया था कि हरि को छोड़कर जो दूसरे की आशा करता है वह निस्सन्देह यम के राज्य में जाता है। रात-दिन ईश्वर की कृपा की अनुभूति करना ही उसका जीवन बन गया था। वे अपने चंचल मन को भगवान् के अचल चरण में बाँधकर अभय हो गये थे। यौवन के प्रथम कक्ष में प्रवेश करते ही रैदास का विवाह कर दिया गया। उनकी स्त्री परम सती और साध्वी थी, पति की प्रत्येक रुचि की पूर्ति में ही उसे अपने दाम्पत्य की पूरी तृप्तिका अनुभव होता था। भगवान् के भजन में लगे पति की प्रत्येक सुविधा का ध्यान रखना ही उसका पवित्र नित्य कर्म बन गया था इसका परिणाम यह हुआ कि भगवद्भक्ति के मार्ग में विवाह सहायक सिद्ध हुआ, गृहस्थाश्रम रैदास दम्पत्ति के लिये बन्धन न बना सका। दोनों अपने कर्तव्य-पालन में सावधान थे। रैदास के माता-पिता बहुत प्रसन्न थे। घर में सुख-सम्पत्ति की कमी नहीं थी पर सन्तों की सेवा में अधिक धन रैदास द्वारा व्यय होते देखकर उनके माता-पिता चिढ़ गये। यद्यपि रैदास गृहस्थी में अनासक्त थे, जल में कमल की तरह रहते थे तो भी उनके माता-पिता को यह बात अच्छी नहीं लगी कि वे मेहनत से पैसा पैदा करें और रैदास उसे घर बैठे साधु-सन्त की सेवा में उड़ा दिया करें। उन्होंने रैदास दम्पती को घर से बाहर निकाल दिया, अलग कर दिया। रैदास अपने घर के पीछे ही एक वृक्ष के नीचे झोंपड़ी डालकर अपनी पत्नी के साथ रहने लगे। उन्होंने पिता और माता का तनिक भी विरोध नहीं किया। हरि-भजन में लग गये।

धीरे-धीरे उनकी ख्याति दूर-दूर तक संत-मण्डली में बढ़ने लगी। वे पतित पावन हरि की भक्ति करने लगे। वे एकान्त में बैठकर अपनी रसना को सम्बोधित कर कहा करते थे कि हे रसना, तुम राम-नाम का जप करो, इससे यम के बन्धन से निस्सन्देह मुक्ति मिलेगी। वे रुपये-पैसे के अभाव की तनिक भी चिन्ता नहीं करते थे। सन्त रैदास परमात्मा के पूर्ण शरणागत हो गये। उन्होंने प्रभु के पादपद्मों से चिर-सम्बन्ध जोड़ लिया। उनके निवासस्थान पर संतों का समागम होने लगा। कबीर आदि उनके बड़े प्रशंसक थे। स्वामी रामानन्द जी के शिष्यों में उनके लिये विशेष आदर का भाव था, श्रद्धा और भक्ति थी। सन्त रैदास की साधना पर सन्त गनी मासूर की वाणी का भी प्रभाव था। वे ऐसे नगर के अधिवासी हो गये जिसमें चिन्ता का नाम ही नहीं था। उनकी उक्ति है-

**बेगमपुर शहर का नाम, फिकर अंदेस नाहिं तेहिं ग्राम।**
**कह 'रैदास' खलास चमारा, जो उस शहर सो मीत हमारा।।**

वे निश्चित होकर संतो के संग में रहने को धन्य जीवन समझते थे। यथाशक्ति अपने आराध्य निर्गुण राम की पूजा में व्यस्त रहते थे, कहा करते थे कि प्रभु, आपकी पूजा किस प्रकार करूँ, अनूप फल-फूल नहीं मिलते हैं, गाय के बछड़े ने दूध जूठा कर दिया है, ऐसी स्थिति में मन ही आपकी पूजा के लिये धूप-दीप है। वे सदा रामरस की मादकता में मत्त रहते थे। उनका विश्वास था कि उनके राम उन्हें भवसागर से अवश्य पार उतार देंगे।

रैदास को माता पिता से एक कौड़ी भी नहीं मिलती थी। जो कुछ दिन भर में कमा लेते थे उसी से संतोष करते थे। वैष्णवों और सन्तों को बिना मूल्य लिये ही जूते पहना दिया करते थे। कभी-कभी रात में फाका करना पड़ता था। एक छोटी-सी झोपड़ी में ही उनकी सम्पत्ति थी, उसमें भगवान् की प्रतिमा प्रतिष्ठित थी, अपने आप तो वे पेड़ के नीचे पत्नी के साथ रहते थे।

एक दिन वे पेड़ के नीचे बैठकर जूते सिल रहे थे। सत्संग हो रहा था। बहुत से सन्त एकत्र थे। सन्त रैदास ने साधुवेष में अपरिचित व्यक्ति को आते देखा उन्होंने अतिथि की चरणधूलि मस्तकपर चढ़ा ली। भोजन कराया, यथाशक्ति सेवा की। अतिथि ने चलते समय उन्हें पारसमणि देना चाहा पर सन्त रैदास ने

उसके प्रति तनिक भी उत्सुकता न दिखायी, लोहे को सोना बनाकर प्रभावित करना चाहा पर रैदास का परम धन तो राम-नाम था। वे पारस रखना नहीं चाहते थे, अतिथि ने पारस झोपड़ी में खोंस दिया, कहा कि यदि आवश्यकता हो तो इसका उपयोग कर लीजियेगा। जन्म-मरण के बन्धन से मुक्ति चाहने वाले रैदास का मन पारस में नहीं उलझ सका। उनके नयन तो सदा प्रभु को ही निहारा करते थे, भयानक दुख आने पर वे हरिनाम का स्मरण करते थे, पारस का उन्हें सपने में भी ध्यान न रहा। कुछ दिनों के बाद साधुवेष वाले अतिथि ने आकर उनसे पारस के सम्बन्ध में बात की। रैदास ने कहा कि मुझे तो इतना भी ध्यान न था कि झोपड़ी में पारस है, अच्छा हुआ, आप आ गये। उसे ले जाइये। अतिथि ने पारस लेकर बात-की-बात में अपनी राह पकड़ी, रैदास को विस्मय हुआ कि वह कहीं चला गया। उन्हें क्या पता था कि स्वयं मायापति भगवान् ही उनकी परख करने चल पड़े थे पर लाभ की बात यह थी कि उनकी माया पराजित हो गयी और सन्त रैदास ने अपने उपास्य देव का दर्शन कर लिया।

परमात्मा की लीला विचित्र है, वे अपने भक्तों और सेवकों की रक्षा में विशेष तत्पर रहते हैं, उन्हें इस तत्परता में आनन्द मिलता है। नित्य प्रातःकाल पूजा की पिटारी में उन्हें पाँच स्वर्ण मुद्रायें मिलने लगीं। रैदास ने आत्मनिवेदन की भाषा में कहा कि प्रभु अपनी माया से मेरी रक्षा कीजिये; मैं तो केवल आपके नाम का बंजारा हूँ, मुझे कुछ नहीं चाहिए। भगवान् ने स्वप्न में आदेश दिया कि मैं तुम्हारे निर्मल हृदय की बात जानता हूँ, मुझे ज्ञात है कि तुम्हें कुछ नहीं चाहिए पर मेरी रीझ और प्रसन्नता इसी में है। सन्त रैदास ने प्रभु से प्राप्त धन का सदुपयोग मन्दिर-निर्माण में किया, मन्दिर में भगवान् की पूजा के लिए एक पुजारी नियुक्त किया गया। सन्त रैदास मन्दिर के शिखर और ध्वजा का दर्शन पाकर नित्य प्रति अपने आपको धन्य मानने लगे।

एक बार एक धनी व्यक्ति उनके सत्संग में आये। सत्संग समाप्त होने पर सन्तों ने भगवान् का चरणामृत-पान किया। धनी व्यक्ति ने चरणामृत की उपेक्षा कर दी। चरणामृत उन्होंने हाथ में लिया अवश्य पर चमार के घर का जल न पीना पड़े- इस दृष्टि से लोगों की आँख बचाकर चरणामृत फेंक दिया, उसकी कुछ बूँदें कपड़ों पर पड़ी। घर आकर धनी व्यक्ति ने स्नान किया, नये कपड़े पहने और जिन कपड़ों पर चरणामृत पड़ा था उनको भंगी को सौंप दिया। भंगी ने कपड़े पहने, उसका शरीर नित्यप्रति दिव्य होने लगा और धनी व्यक्ति कोढ़ का शिकार हुआ। वे रैदास के निवासस्थान पर कोढ़ ठीक करने की चिन्ता में चरणामृत लेने आये, मन में श्रद्धा और आदर की कमी थी। सन्त रैदास ने कहा कि अब जो चरणामृत मिलेगा वह तो निरा-पानी होगा। धनी व्यक्ति को अपनी करनी पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ और क्षमा माँगी। सन्त रैदास की कृपा से तथा सत्संग की महिमा से कोढ़ ठीक हो गया।

रैदास की वाणी का प्रभाव राजरानी मीराबाई पर विशेष रूप से पड़ा था। मीरा ने उनको अपना गुरु स्वीकार किया है, उनके पदों में सन्त रैदास की महिमा का वर्णन मिलता है। राणा सांगा के राजमहल को अपनी उपस्थिति से रैदास ने ही पवित्र किया था। रैदास की आयु बड़ी थी, उनके सामने कबीर की इहलीला समाप्त हुई थी। यह निश्चित बात है कि राणा सांगा की पुत्रवधू मीरा को इन्होंने शिष्य के रूप में स्वीकार किया था। चित्तौड़ की झाली रानी भी उनसे प्रभावित थी। काशी यात्रा के समय झाली रानी ने उनको चित्तौड़ आने का निमन्त्रण दिया था। वे चित्तौड़ आये थे। चित्तौड़ में रैदास ने अनेक चमत्कार दिखाये थे। मीरा ने अपने एक पद में 'गुरु रैदास मिले मोहि पूरे' कहकर उनके प्रति सम्मान प्रकट किया है।

रैदास ने कठवत के जल में गंगा का दर्शन किया। एक ब्राह्मण किसी की ओर से गंगा जी की पूजा करने नित्य जाया करता था। एक दिन रैदास ने उसे बिना

मूल्य लिये जूते पहना दिये और निवेदन किया कि भगवती भागीरथी को मेरी ओर से एक सुपारी अर्पित कीजियेगा। उन्होंने सुपारी दी। ब्राह्मण ने गंगा की यथाविधि पूजा की और चलते समय उपेक्षापूर्वक उसने रैदास की सुपारी दूर ही से गंगा जल में फेंक दी पर वह यह देखकर आश्चर्यचकित हो गया कि गंगा जी ने हाथ बढ़ाकर सुपारी ली। वह संत रैदास की सराहना करने लगा कि उनकी कृपा से गंगाजी के दर्शन हुए। इस बात की प्रसिद्धि समस्त काशी में हो गयी पर गंगाजी ने रैदास पर साक्षात् कृपा की। सत्संग हो रहा था, रैदास को घेरकर सन्त मण्डली बैठी हुई थी, सामने कठवत में जल रखा हुआ था। रैदास और अन्य सन्तों ने देखा कि स्वयं गंगा जी कठवत के जल में प्रकट होकर कंकण दे रही हैं। रैदास ने गंगाजी को प्रणाम किया और उनकी कृपा से प्रतीकरूप में दिव्य कंकण स्वीकार कर लिया।

रैदास केवल उच्च कोटि के सन्त ही नहीं महान् कवि भी थे। उन्होंने भगवान् के निरञ्जन, अलख और निर्गुण तत्व का वर्णन किया। उनकी सन्त-वाणी ने आध्यात्मिक और बौद्धिक क्रान्ति के साथ-ही-साथ सामाजिक क्रान्ति भी की। उन्होंने अन्तःस्थ राम को ही परम ज्योति के रूप में स्वीकार किया। उन्होंने कहा है कि मैं तो सर्वथा अपूज्य था, हरि की कृपा से मेरे जैसे अधम भी पूज्य हो गये। उन्होंने निर्गुण वस्तु तत्व का अमित लौकिक निरूपण किया है। उनका सिद्धान्त था कि अच्छी करनी से भगवान् की भक्ति मिलती है और भक्ति से मुनष्य भवसागर से पार उतर जाता है। सन्त रैदास रसिक कवि और राजयोगी थे। उनकी उक्ति है-

**नरपति एक सेज सुख सूता सपने भयो भिखारी।**
**आछत राज बहुत दुख पायो सो गति भयी हमारी।।**

वे संस्कारी सन्त थे। लगभग सवा सौ साल की आयु में वे ब्रह्म लीन हुए।

**प्रस्तुति-श्रीमती सरिता त्रिपाठी (मुरादनगर)**

## पूज्यपाद जगद्गुरु जी के आगामी कार्यक्रम

**❑ प्रस्तुति-पूज्या बुआ जी**

| दिनाङ्क | विषय | आयोजक तथा स्थान |
|---|---|---|
| 17 दिसम्बर 2009 से 25 दिसम्बर 2009 तक | श्रीरामकथा | आट्रम लाईन किंग्सवे कैम्प दिल्ली-९ पुरुषार्थी हरि मंदिर निर्माण समिति दिल्ली। |
| 27 दिसम्बर 2009 से 4 जनवरी 2010 तक | श्रीरामकथा | महान्तश्री 1008 श्रीनारायण देवाचार्य जी महाराज ब्रह्मर्षि श्री डाकोरधाम (गुजरात) |
| 6 जनवरी 2010 से 14 जनवरी 2010 तक | श्रीमद्वाल्मीकि रामायण कथा एवं जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज की षष्टिपूर्ति-जन्म महोत्सव | श्रीराघव परिवार स्थान-श्रीरामचरित मानस मन्दिर आमोदवन, चित्रकूट |
| 17 जनवरी 2010 से 25 जनवरी 2010 तक | श्रीरामकथा | श्री सर्वेश्वर ब्रह्मचारी माघमेला क्षेत्र दण्डी बाबा श्रीरामलोचनस्वरूप ब्रह्मचारी जी का बाड़ा प्रयाग (उ०प्र०) |

**कृपया किसी भी कार्यक्रम में जाने से पूर्व परमपूज्या बुआ जी से सम्पर्क अवश्य करके जायें। कार्यक्रम में परिवर्तन भी हो सकता है।**

# बिसरे न छन भर मोहे

❑ पूज्यपाद जगद्गुरु जी

बिसरे न छन भर मोहे,
अवध की गलियाँ हे रघुनन्दन बबुआ।
सरजू के तीर मोहे सुहाए हे रघुनन्दन बबुआ।।
ऊँची-ऊँची अटा चढ़ि भामिनी सुहागिनि राघव,
भामिनी सुहागिनि हे रघुनन्दन बबुआ।
रउरे गुन गाइँ न अघाएँ हे रघुनन्दन बबुआ।।
सरजू के तीर ....
कौसिलाकुमार जहाँ धुरिया में खेलैं राघव,
धुरिया में खेलैं हे रघुनन्दन बबुआ।
मुखवा से जूठन गिराएँ हे रघुनन्दन बबुआ।
सरजू के तीर ....
दूधभात खात खात अँगना में भागैं राघव,
अँगना से भागैं हे रघुनन्दन बबुआ।
मुखवा में भात लपटाएँ हे रघुनन्दन बबुआ।
सरजू के तीर....
कौसिला सुकृत लखि तरसैं इन्द्रानी राघव,
तरसैं इन्द्रानी हे रघुनन्दन बबुआ।
फूल बरसि सुरपति हूँ सिहाएँ हे रघुनन्दन बबुआ।।
सरजू के तीर....
'गिरिधर' माँगैं बर जौन जोनि जन्मउँ राघव,
जौन जोनि जन्मउँ हे रघुनन्दन बबुआ।
रामभद्राचार्य ही कहाऊँ हे रघुनन्दन बबुआ।।
सरजू के तीर....

❑❑❑

# हे देवगुरु हे जगद्गुरु.....

❑ श्री जगदीश प्रसाद शर्मा (बभनान)

सन्त भगवन्त आपके चरणों में शत शत प्रणाम।
परमानन्द प्राप्त होता है लेकर श्रीराघव का नाम।।
आपश्री इस कलियुग में आये बनकर शुकाचार्य अवतार।
दिव्य कथाएँ सुना सुना करते हम जीवों का उद्धार।।
कैसा भी कोई प्राणी हो अधम और अज्ञानी।
दर्शन और कथाएँ सुनकर हो जाता है ज्ञानी।
दिव्य ज्योति है प्राप्त आपको मन की बात जान लेते हैं।
श्रीचरणों में आये जन को आप सँभाल लेते हैं।।
वाणी में ऐसा जादू है जैसे कान्हा की बंशी बजती हो।
सुनते ही मोहित हो जाता चाहे कितना भी नीरस हो।
कहते लोग जगद्गुरु श्रीमन् हमको देवगुरु लगते हो।
क्योंकि आपश्री जैसी वाणी देवगुरु ही कह सकते हैं।
हे देवगुरु हे जगद्गुरु, लो श्री चरणों में नमस्कार।
यह सेवक नत श्रीचरणों में करें शिष्यता अंगीकार।।

❑❑❑

# व्रतोत्सवतिथिनिर्णयपत्रक

## पौष कृष्णपक्ष/सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त ऋतु

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | व्रत पर्व आदि विवरण |
|---|---|---|---|---|
| सप्तमी | मंगलवार | मघा | 8 दिसम्बर | – |
| अष्टमी | बुधवार | पू०फा० | 9 दिसम्बर | श्रीदुर्गाष्टमी |
| नवमी | गुरुवार | उ०फा० | 10 दिसम्बर | – |
| दशमी | शुक्रवार | हस्त | 11 दिसम्बर | – |
| एकादशी | शनिवार | चित्रा | 12 दिसम्बर | **सफला एकादशी व्रत (सबका)** |
| द्वादशी | रविवार | स्वाति | 13 दिसम्बर | प्रदोष व्रत |
| त्रयोदशी | सोमवार | विशाखा | 14 दिसम्बर | – |
| चतुर्दशी | मंगलवार | अनुराधा | 15 दिसम्बर | धनु राशि में सूर्य–संक्रान्ति दिवस |
| अमावस्या | बुधवार | ज्येष्ठा | 16 दिसम्बर | मलमास प्रारम्भ अमावस्या |

## पौष शुक्लपक्ष/सूर्य दक्षिणायन, उत्तरायण शिशिर ऋतु

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | व्रत पर्व आदि विवरण |
|---|---|---|---|---|
| प्रतिपदा | गुरुवार | मूल | 17 दिसम्बर | – |
| द्वितीया | शुक्रवार | पू०षा० | 18 दिसम्बर | चन्द्रदर्शन |
| तृतीया | शनिवार | उ०षा० | 19 दिसम्बर | – |
| चतुर्थी | रविवार | श्रवण | 20 दिसम्बर | श्रीगणेश चतुर्थी |
| पंचमी | सोमवार | धनिष्ठा | 21 दिसम्बर | पंचक प्रारम्भ 5/2 सायंकाल से |
| षष्ठी | मंगलवार | शतभिषा | 22 दिसम्बर | – |
| षष्ठी | बुधवार | शतभिषा | 23 दिसम्बर | षष्ठी तिथि की वृद्धि |
| सप्तमी | गुरुवार | पू०भा० | 24 दिसम्बर | श्रीगुरु गोविन्द सिंह जयन्ती |
| अष्टमी | शुक्रवार | उ०भा० | 25 दिसम्बर | श्रीदुर्गाष्टमी |
| नवमी | शनिवार | रेवती | 26 दिसम्बर | पंचक समाप्त 2 बजकर 56 मिनट दिन में |
| दशमी | रविवार | अश्विनी | 27 दिसम्बर | – |
| एकादशी | सोमवार | भरणी | 28 दिसम्बर | **पुत्रदा एकादशी व्रत (सबका)** |
| द्वादशी | मंगलवार | कृतिका | 29 दिसम्बर | भौम प्रदोष व्रत |
| त्रयोदशी | मंगलवार | कृतिका | 29 दिसम्बर | त्रयोदशी तिथि का क्षय |
| चतुर्दशी | बुधवार | रोहिणी | 30 दिसम्बर | – |
| पूर्णिमा | गुरुवार | मृगशिरा | 31 दिसम्बर | **चन्द्रग्रहण रात 12/22 मोक्ष रात्रि 1/24 पर सत्यनारायण व्रत** |

## माघ कृष्णपक्ष/सूर्य दक्षिणायन, शिशिर ऋतु

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | व्रत पर्व आदि विवरण |
|---|---|---|---|---|
| प्रतिपदा | शुक्रवार | पुनर्वसु | 1 जनवरी 2010 | – |
| द्वितीया | शनिवार | पुष्य | 2 जनवरी | – |
| तृतीया | रविवार | श्लेषा | 3 जनवरी | श्रीगणेश चतुर्थी संकट चतुर्थी |
| चतुर्थी | सोमवार | मघा | 4 जनवरी | – |
| पंचमी | मंगलवार | पू०फा० | 5 जनवरी | – |
| षष्ठी | मंगलवार | पू०फा० | 5 जनवरी | षष्ठी तिथि का क्षय |

卐 श्रीमद्राघवो विजयते 卐

धर्मचक्रवर्ती, महामहोपाध्याय, जीवनपर्यन्त कुलाधिपति, वाचस्पति, महाकवि
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य **स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज**
का राष्ट्रीय, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक चेतना का संवाहक

# श्रीतुलसीपीठसौरभ

**( मासिक पत्र )**

सीतारामपदाम्बुजभक्तिं भारतभविष्णु जनतैक्यम्।
वितरतु दिशिदिशि शान्तिं श्रीतुलसीपीठसौरभं भव्यम्।।

वर्ष १४ दिसम्बर २००९ (४, ५ जनवरी २०१० को प्रेषित) अंक-४

**संस्थापक-संरक्षक**
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य
**स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज**

**संरक्षक एवं प्रकाशक**
**डॉ० कु० गीता देवी ( पूज्या बुआ जी )**
प्रबन्धन्यासी, श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास, चित्रकूट

**सम्पादक**
**आचार्य दिवाकर शर्मा**
220 के, रामनगर, गाजियाबाद-201001
**मो०-** 09971527545

**सहसम्पादक**
**डा० सुरेन्द्र शर्मा 'सुशील'**
डी-255, गोविन्दपुरम्, गाजियाबाद-201001
दूरभाष : 0120-2767255, मो०-09868932755

**प्रबन्ध सम्पादक**
**श्री ललिता प्रसाद बड़थ्वाल**
सी-295, लोहियानगर, गाजियाबाद-201001
0120-2756891, मो०- 09810949921

**सहयोगी मण्डल** (ये सभी पद अवैतनिक हैं)
**डा० श्रीमती वन्दना श्रीवास्तव,** ✆ 09971149779
**श्री दिनेश कुमार गौतम,** ✆ 09868977989
**श्री सत्येन्द्र शर्मा एडवोकेट,** ✆ 09810719379
**श्री अरविन्द गर्ग सी.ए.,** ✆ 09810131338
**श्री सर्वेश कुमार गर्ग,** ✆ 09810025852
**डॉ० देवकराम शर्मा,** ✆ 09811032029

**पूज्यपाद जगद्गुरु जी के सम्पर्क सूत्र :**
**श्रीतुलसीपीठ, आमोदवन,**
पो० नया गाँव श्रीचित्रकूटधाम (सतना) म०प्र०485331
✆-07670-265478, 05198- 224413

**वसिष्ठायनम् -** जगद्गुरु रामानन्दाचार्य मार्ग
रानी गली नं०-1, भूपतवाला, हरिद्वार (उत्तरांचल)
दूरभाष-01334-260323

**श्री गीता ज्ञान मन्दिर**
भक्तिनगर सर्कल, राजकोट (गुजरात)
दूरभाष-0281-2364465

**पंजीकृत सम्पादकीय कार्यालय एवं पत्र व्यवहार का पता**
आचार्य दिवाकर शर्मा,
220 के., रामनगर, गाजियाबाद-201001
**मो०-** 09971527545

# रामानन्दः स्वयं रामः प्रादुर्भूतो महीतले

## विषयानुक्रमणिका



## सुधी पाठकों से विनम्र निवेदन

१. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' का प्रत्येक अंक प्रत्येक दशा और परिस्थिति में प्रत्येक महीने की ४ तथा ५ तारीख को डाक से प्रेषित किया जाता है। पत्रिका में छपे महीने का अंक आगामी महीने में ही आपको प्राप्त होगा।
२. 'श्रीतुलसीपीठ सौरभ' मंगाने हेतु बैंक ड्राफ्ट 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' के नाम से ही बनबाएँ तथा प्रेषित लिफाफे के ऊपर हमारा नाम तथा पूरा पता स्पष्ट अक्षरों में लिखें। मनीआर्डर पर हमारा नाम-पता ही लिखें प्रधान सम्पादक अथवा प्रबन्ध सम्पादक कभी न लिखें।
३. पत्रव्यवहार करते समय अथवा ड्राफ्ट-मनीआर्डर भेजते समय अपनी वह ग्राहक संख्या अवश्य लिखें जो पत्रिका के लिफाफे के ऊपर आपके नाम से पहले लिखी है।
४. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' में **'पूज्यपाद जगद्गुरु जी'** से अभिप्राय **धर्मचक्रवर्ती श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज समझा जाए।**
५. 'श्रीतुलसीपीठ सौरभ' में प्रकाशित लेख/कविता/अथवा अन्य सामग्री के लिए लेखक/कवि अथवा प्रेषक महानुभाव ही उत्तरदायी होंगे, सम्पादक मण्डल नहीं।
६. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' प्राप्त न होने पर हमें पत्र लिखें अथवा फोन करें। हम यद्यपि दूसरी बार पुनः भेजेंगे। किन्तु अपने डाकखाने से भलीप्रकार पूछताछ करके ही हमें सूचित करें।
७. **डाक की घोर अव्यवस्था के चलते हमें दोषी न समझें। हमें और आपको इसी परिस्थिति में 'पूज्यपाद जगद्गुरु जी' का कृपा प्रसाद शिरोधार्य करना है।**
८. सुधी पाठक अपने लेख/कविता आदि स्पष्ट अक्षरों में लिखकर भेजें। यथासमय-यथासम्भव हम प्रकाशित करेंगे। अप्रकाशित लेखों को लौटाने की हमारी व्यवस्था नहीं है।

**सदस्यता सहयोग राशि**

| | |
|---|---|
| संरक्षक | ११,०००/– |
| आजीवन | ५,१००/– |
| पन्द्रह वर्षीय | १,०००/– |
| वार्षिक | १००/– |

**–सम्पादकमण्डल**

श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास, चित्रकूट के स्वामित्व में मुद्रक तथा प्रकाशक डॉ0 कु0 गीतादेवी (प्रबन्धन्यासी) ने श्री राघव प्रिंटर्स, जी–17 तिरुपति प्लाजा, बेगम पुल रोड, बच्चापार्क, मेरठ, फोन (का0) 4002639, मो0–9319974969, से मुद्रित कराकर कार्यालय 220 के., रामनगर, गाजियाबाद से प्रकाशित किया।

सम्पादकीय-

# पावन जन्म दिवस पर श्रीगुरुचरणारविन्दों में कोटि-कोटि नमोराघवाय

श्रीराघव परिवार के अन्यून सदस्यों तथा श्रीतुलसीपीठ सौरभ के हजारों सहयोगियों को यह भलीभाँति ज्ञात है कि १४ जनवरी मकर संक्रान्ति का पावन पर्व धर्मचक्रवर्ती श्रीचित्रकूट तुलसीपीठाधीश्वर श्रीमज्जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज का भी जन्मजयन्ती दिवस है। इस दिन लाखों-करोड़ों सनातनधर्मी महानुभाव भगवान् भुवन भास्कर को तो प्रणाम करते ही हैं साथ ही पूज्यपाद जगद्गुरु जी के प्रति भी पूर्ण आस्था और श्रद्धा अर्पित करते हैं। यह तथ्य किसी भी भारत, भक्त एवं भविष्णुता प्रेमी महानुभाव से तिरोहित नहीं है कि वर्तमान आध्यात्मिक जगत में विलक्षण प्रतिभा अद्‌भुत स्मृति और शास्त्रीय शेमुषी का जितना सुन्दर संगम पूज्यपाद आचार्य चरणों के रोमरोम में प्रवाहित है उतना अन्यत्र दुर्लभ है। विकलांगों के प्रति अनन्य निष्ठा और भारतीय आर्ष वाङ्मय की उत्तरोत्तर प्रतिष्ठा का पावन संकल्प लेकर पूज्यपाद जगद्गुरु जी अपनी स्वर्णयात्रा के १४ जनवरी २०१० को साठ वर्ष पूर्ण कर रहे हैं। इस शुभ अवसर पर पूज्य आचार्यश्री के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की प्रमुख चारुचर्चा तो श्रीतुलसीपीठ चित्रकूट में समायोजित होगी ही देश-विदेश के अनेक स्थानों पर भी उनके दिव्यगुणगणों का यशोगान किया जाएगा। परम सत्य भी यही है कि आप्तपुरुषों-महापुरुषों का प्राकट्य दिवस आस्था के धनी समाज के लिए 'महोत्सव' ही होता है। हो भी क्यों नहीं, जब श्रद्धा निष्ठा और आस्था का अर्घ्य अर्पित करने वाले भगवद्‌भक्तों को मनोवाञ्छित सुफल और निष्कण्टक सन्मार्ग प्राप्त हो जाए साथ ही भगवत्प्रेमानन्द का सागर अपनी उत्तालतरङ्गों से मानव जीवन की ऊँचाईयों को छूने जैसा लगे तब सौभाग्यशालियों को अपने आराध्यदेव का दर्श-स्पर्श किसी महोत्सव से कम नहीं होता। इस उत्सव के उत्स (झरने) में स्नान करने वाले महानुभाव अतिशय धन्यता का अनुभव करते हैं। यही कारण है कि श्रीराघव परिवार अपने परमाराध्य पूज्यपाद जगद्गुरु जी के प्रति सम्पूर्ण श्रद्धा-निष्ठा और आस्था समर्पित करने के लिए श्रीचित्रकूट में 'षष्टिपूर्ति महोत्सव' आयोजित करेगा साथ ही हरिद्वारीय महाकुम्भ में ''षष्टिपूर्ति'' नामक एक अभिनन्दन ग्रन्थ भी प्रकाशित करेगा।

श्रीतुलसीपीठ सौरभ के प्रस्तुत अङ्क में पूज्यपाद जगद्गुरु जी के कुशलकृतित्व ''जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय चित्रकूट'' की एक झाँकी ''समाचारपत्रों की सुर्खियों में'' निहारी जा सकती है। तो आइये, कीजिए वन्दन अपने गुरुवर को, दीजिए दान गुरुवर के महेश्वर विकलांगों को और लीजिए वरदान अपने आनन्द वर्धन आचार्य चरणों से। यही है मानव जीवन की सार्थकता और भगवत्कैंकर्य की श्रेष्ठता।

एक बार पुनः भगवान् श्रीसीताराम जी से पूज्यपाद जगद्गुरु जी के दीर्घायुष्य की विनम्र प्रार्थना और उनके संकल्प निर्विघ्न पूर्ण होने की अभ्यर्थना। नमो राघवाय।

**आचार्य दिवाकर शर्मा**
प्रधान सम्पादक

# वाल्मीकिरामायण सुधा ( ५६ )

(गतांक से आगे)

❑ धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

सुरसा ने कहा ए! देवताओं ने मुझे भोजन दिया है और हनुमान जी से बोली–

**अहं त्वां भक्षयिष्यामि प्रविशेदं ममाननम्।**

मैं तुम्हें खाना चाहती हूँ मेरे मुख में आ जाओ। यहाँ हनुमान जी को चार विघ्न पड़ रहे हैं जो संसार सागर में चारों पड़ते हैं। मैनाक–यही है जीव का अज्ञान, तीन मायाएँ–सुरसा–सात्विकी माया, सिंहिका–तामसी माया और लंकिनी–राजसी माया। हनुमान जी ने कहा देवता कब से सदावर्त बाँटने लगे। हनुमान जी ने कहा– मैं सीता जी को देखकर आ जाऊँ फिर खा लेना। सुरसा ने कहा– नहीं मैं तो अभी खाऊँगी। हनुमान जी ने कहा अच्छा अपना मुख फैलाओ। सुरसा ने दस योजन मुख फैलाया हनुमान जी ने अपना आकार बीस योजन कर दिया। बढ़ाते–बढ़ाते क्रोध में आकर उसने अपना मुख सौ योजन (चार सौ कोस) कर दिया। तब हनुमान जी छोटे बने अँगूठे के बराबर हो गये। अँगूठे के बराबर क्यों बने? क्योंकि जब किसी को मूर्ख बनाना हो तो अँगूठा दिखाते हैं। तब हनुमान जी ने सुरसा के मुख में प्रवेश किया और तुरन्त बाहर आ गये और जाने की आज्ञा माँगी। सुरसा ने अपने असली रूप में प्रकट होकर कहा ठीक है श्रीराम की कार्यसिद्धि के आप पधारें आपका कल्याण हो।

**अर्थसिद्ध्यै हरिश्रेष्ठ गच्छ सौम्य यथासुखम्।**
**समानय च वैदेहीं राघवेण महात्मना।।**

सीता जी को शीघ्र श्रीराम जी से मिलाओ। हनुमान जी चल पड़े आगे आये तो राहु की माता सिंहिका मिली यह सबकी छाया खींच लेती थी। हनुमान जी ने सोचा कोई रडार लगा है क्या? देखा तो समुद्र में राक्षसी थी तुरन्त शरीर को छोटा बनाकर उसके विकराल मुख में प्रवेश कर गये और नाखूनों से उसके शरीर को विदीर्ण कर डाला। इसके पश्चात् वेग से उछलकर बाहर निकल आये। सिंहिका मरी, राहु रोया। हनुमान जी ने कहा बेटा जाओ इसका श्राद्ध करो। बोलो वीर बजरंग बली की जय।

**शतयोजनविस्तीर्णं पुप्लुवे लवणार्णवम्।**

हनुमान जी समुद्र को पार कर गये। धीरे–धीरे सूर्यनारायण अस्त हो रहे हैं। अब हनुमान जी ने छोटा सा रूप बनाने का निश्चय किया। चारों ओर नगर में रक्षक है–

**पुर रखवारे देख बहु कपि मन कीन्ह विचार।**
**अति लघुरूप धरौं निशि नगर करौं पैसार।।**
**सूर्ये चास्तंगते रात्रौ देहं संक्षिप्य मारुतिः।**
**वृषदंशक मात्रोऽथ बभूवाद्भुतदर्शनः।।**

सूर्यनारायण के अस्त हो जाने पर शरीर को छोटा बनाया। कितना छोटा बनाया? 'वृषदंशकमात्र' टीकाकार ने कहा बिल्ली के आकार जैसा अर्थात् बिलाव के जैसे हनुमान जी बन गये। गोस्वामी जी महाराज कहते हैं–

**मशक समान रूप कपि धरी।**

वास्तव में यहाँ दोनों अर्थ ठीक होंगे। 'आखौ च वृषभो नृप' वृष माने चूहा और बैल दोनों होते है। कोशकार भी 'मशकस्तु विडालःस्यात्' मशक माने बिलाव। वृषं दंशतीति वृषदंशकः अर्थात् जो बैलों

को काटता है उतना बड़ा मच्छर का रूप बनाकर हनुमान जी चल पड़े। यह अर्थ भी उचित है क्योंकि आगे चलकर वानर कहेंगे भी–

**सुनि प्रभु वचन लाज हम मरहीं।**
**मशक कहूँ खगपति हित करहीं।।**

अतः मच्छर वाला अर्थ भी ठीक है। लंकिनी ने देखा और कहा– ए! कहाँ जा रहा है। हनुमान जी ने कहा लंका देखने जा रहा हूँ। लंकिनी ने कहा तुम विदेश जा रहे हो। हनुमान जी ने कहा– हाँ। विदेश ही जा रहा हूँ। वीजा लिया है क्या? हनुमान जी ने कहा वीजा तो नहीं लिया पर राम नाम का बीजमंत्र लिये हूँ। लंकिनी बोलीं तुम मुझे नहीं जानते। मैं रावण की नगरी लंका हूँ। हनुमान जी ने कहा तो मैं क्या करूँ? लंकिनी ने क्रोधित होकर कहा–

**ततः कृत्वा महानादं सा वै लंका भयंकरम्।**
**तलेन वानरश्रेष्ठं ताड़यामास वेगिता।।**

भयंकर गर्जना करके हनुमान जी को बड़े जोर से एक थप्पड़ मारा। इतने में तो हनुमान जी ने सिंहनाद करके–

**ततः संवर्तयामास वामहस्तस्य सोऽङ्गुलीः।**
**मुष्टिना अभिजघानैनां हनुमान् क्रोधमूर्च्छितः।।**

बायें हाथ की उँगलियों को मोड़कर एक मुक्का लगा दिया। लंका वृद्ध तो थी ही मुख पर मुक्का लगते ही सारे दाँत नमो राघवाय हो गये। लंकिनी गिरी और बोली मुझे ब्रह्मा जी ने कहा था–

**यदा त्वां वानरः कश्चित् विक्रमाद् वशमानयेत्।**
**तदा त्वया हि विज्ञेयं रक्षसां भयमागतम्।।**

जब कोई वानर तुमको विकल करे तब जान लेना राक्षसों को भय आ गया है।

**विकल होसि जब कपि के मारे।**
**तब जानेसु निशिचर संघारे।।**

तब हनुमान जी ने जाने की आज्ञा माँगी तो लंकिनी ने कहा–

**प्रविशि नगर कीजै सब काजा।**
**हृदय राखि कोसलपुर राजा।।**

अब जाओ और सब काम करना। हनुमान जी ने कहा कौन सा सब काम? तब लंकिनी ने कहा अब तो मैं मर ही जाऊँगी। तुम पूरी लंका को जला देना। हनुमान जी महाराज चल पड़े। प्रत्येक भवन देखा–प्रहस्त का, मेघनाद का, जम्बुमाली का भवन देखा पर सीता जी के दर्शन नहीं हुए। अन्त में जब रावण के यहाँ आये तो देखा रावण शयन कर रहा है। दशमुख हैं और बीस भुजाएँ हैं। उसकी मुख्य भुजाओं को हनुमान जी ने जब देखा तो–

**ऐरावत विषाणाग्रैरापीडन कृतवृणौ।**
**वज्रोल्लिखित पीनांसौ विष्णुचक्रपरिक्षतौ।।**

रावण के शरीर पर ऐरावत के दाँतों से कहीं घाव लगे थे। उसकी भुजाओं में हल्के हल्के वज्र के चिह्न बन गये थे। अर्थात् इन्द्र का वज्र भी उसे नहीं काट पाता था। विष्णु जी के चक्र के निशान भी बने थे अर्थात् सुदर्शन चक्र भी रावण की भुजाएँ नहीं काट पाता था। जिसकी भुजाओं को राम जी ने खचाखच काटा। रावण की पत्नियों को देखा। सोचा इन सबको देखने से मुझे पाप तो नहीं लगेगा। मेरे मन में विकार नहीं है और मन ही सभी पापों का मूल होता है। रावण के पास जब हनुमान जी ने मन्दोदरी को देखा तो प्रसन्न हुए और थोड़ा सा भ्रम हुआ कि ये ही सीता जी होंगी। फिर विचार किया– नहीं। ये सीता जी हो ही नहीं सकती क्योंकि–

**न रामेण वियुक्ता सा स्वप्तुमर्हति भामिनी।**
**न भोक्तुं नाप्यलंकर्तुं न पानमुपसेवितुम्।।**

राम जी से बिछुड़कर सीता जी इस प्रकार शयन

नहीं कर सकतीं। राम से बिछुड़कर सीता जी भोजन नहीं कर सकतीं। राम जी से बिछुड़कर सीता जी एक घूँट जल भी नहीं पी सकतीं। और भी–

**नान्यं नरमुपस्थातुं सुराणामपि चेश्वरम्।**
**न हि रामसमः कश्चित् विद्यते त्रिदशेष्वपि।।**

राम जी के अतिरिक्त सीता जी किसी पुरुष के पास नहीं जा सकतीं। यह कोई और महिला है हमारी सीता जी नहीं हैं। सीता जी नहीं मिल रही हनुमान जी चिन्तित हैं, सोचते हैं नियताहार होकर यहीं रह जाऊँ, मर जाऊँ क्या करूँ? मेरा श्रम व्यर्थ हो गया, सागर का लंघन व्यर्थ गया। सीता जी कैसी मिलेंगी। चिता लगाकर निर्णय ले लिया कि अब मैं जल जाता हूँ। ज्योंही चिता में प्रवेश करना चाहा फिर मन ने कहा– नहीं, नहीं। सब कुछ देखा पर अशोकवाटिका नहीं देखी। अब वहाँ चलता हूँ। तब हनुमान जी–

**नमोऽस्तु रामाय सलक्ष्मणाय, देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै।**
**नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानिलेभ्यो नमोऽस्तु चन्द्रार्कमरुद्गणेभ्यः।।**

देवताओं को नमस्कार करते हुए बोले– लक्ष्मण सहित श्रीराम जी को नमस्कार रावण के साथ जाती हुई उन देवी सीता जी को नमस्कार है। रुद्र, इन्द्र, यम जी, वायु देवता को नमस्कार है तथा चन्द्रमा, सूर्य और मरुद्गणों को भी नमस्कार यहाँ पर एक बड़ा मधुर वाक्य है। आज हनुमान जी ने सीता जी को 'रामस्य दयिता' और 'आचार्या' कहा। पहली बार श्रीवाल्मीकीय रामायण में शुरु के चौदहवें सर्ग के ४८वें श्लोक में सीता जी को डिमडिम घोष के साथ आचार्या कहा–

**रामस्य दयिताचार्या जनकस्य सुता सती।**

यहाँ पर भूषणकार ने पक्षपात किया है। आचार्या शब्द को हटाकर उन्हें भार्या कर दिया जो कि अनुचित है। दूसरे आचार्यों ने रामस्य दयिताचार्या ही माना है। किसी ने च आर्या भी कहा है पर मैं आपके समक्ष रहा हूँ कि यहाँ 'च आर्या' नहीं आचार्या है। सीता जी हमारी आचार्या भारत की प्रथम जगद्गुरु हैं। बोलो प्रथम जगद्गुरु सीता महारानी की जय। कोई जिज्ञासा करे तो उसे मेरा नाम बता देना मैं सबको उत्तर दे दूँगा।

**वनेचराणां सततं नूनं स्पृहयते पुरा।**
**रामस्य दयिताचार्या जनकस्य सुता सती।।**

वनचरों के प्रति उनको स्पृहा रहती है अतः सीता जी के दर्शन मुझे अवश्य होंगे।

**सन्ध्याकालमनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी।**
**नदीं चेमां शुभजलां सन्ध्यार्थे वरवर्णिनी।।**

यह प्रातःकाल की सन्ध्या का समय है इसमें मन लगाने वाली जनककुमारी सीता जी यहाँ अवश्य आयेंगी अतः मैं यहीं उनके दर्शन करूँगा। जब सीता जी को हनुमान जी ने आचार्या कह दिया तो अब आचार्या मिलेंगी। अब तो गुरुदेव को मिलना ही है–

**बन्दउँ गुरु पद पदुम परागा।**
**सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।**

हनुमान जी ने सागर को पार कर लिया है, रामनाम की मुद्रिका लेती है। जब राम जी की कृपा जीव पर होती है तब श्री जैसा समर्थ गुरु मिलता है। समर्थ गुरु मिल जाय तो क्या कहना। अवधी में कहते हैं– जब गुरु मेहरबान तो चेला पहलवान। हनुमान जी जैसा चेला क्या किसी को मिला? अब हनुमान जी महाराज देख रहे हैं–

**ततो मलिनसंवीतां राक्षसीभिः समावृताम्।**
**उपवासकृशं दीनां निःश्वसन्तीं पुनः पुनः।।**
**ददर्श शुक्लपक्षादौ चन्द्रलेखामिवामलाम्।।**

अब हनुमान जी महाराज ने सीता जी को देखा जैसे शुक्लपक्ष के आदि में द्वितीया के चन्द्रमा की

रेखा हो। मलिन वस्त्र धारण किये हुए और राक्षसियों से घिरी हुईं थीं। हनुमान जी दर्शन करके गद्‌गद हो गये–

**मन्दप्रख्याय मानेन रूपेण रुचिरप्रभाम्।**
**पिनद्धां धूमजालेन शिखामिव विभावसोः।।**

सीता जी ऐसी दिख रही हैं जैसे धुएँ से ढकी हुई अग्नि की शिखा हो।

**पीतेनैकन संवीतां क्लिष्टेनोत्तमवाससा।**
**सपङ्कामनलंकारां विपद्मामिव पद्मिनीम्।।**

भगवती सीता जी ने एक ही वस्त्र से चारों ओर से शरीर को ढक रखा था। जब से हरण करके आई हैं तब से उन्होंने इस वस्त्र को स्वच्छ नहीं किया है। स्नान नहीं किया है उपवास कर रही हैं। जल भी नहीं लिया है एक स्थान पर बैठी हैं। कोई अलंकर नहीं पहना है। ऐसा लग रहा है मानो कमल से रहित कीचड़ से युक्त कमलिनी हो उसी प्रकार भगवती जी दिख रही हैं। आँखों से निरन्तर आँसू बह रहे हैं। असहाय दिख रही हैं। महर्षि वर्णन करते है–

**नीलनागाभया वेण्या जघनं गतयैकया।**
**नीलया नीरदापाये वनराज्या महीमिव।**

एक उनकी चोटी है, चोटी नाग के फन के समान है, चोटी उनके चरण छू रही है। अपनी चोटी से उन्होंने इस प्रकार अपने मुख को ढक रखा है जैसे बादलो के छँट जाने पर नीली–नीली फसल से ढकी हुई पृथ्वी दिखाई पड़ती है। कोई उनका सहायक नहीं है।

**प्रियं जनमपश्यन्तीं पश्यन्तीं राक्षसीगणम्।**
**स्वगणेन मृगीं हीनां श्वगणेनावृतामिव।।**

सीता जी को प्रिय जन नहीं दिखाई पड़ रहे हैं, राक्षसियों से घिरी हैं। ऐसा लगता है जैसे कुत्तों से घिरी हुई बेचारी एक हरिणी हो। हनुमान जी सीता जी के दर्शन करके प्रसन्न हो रहे हैं, अपना धन्यभाग्य मान रहे हैं। सीता जी को प्रणाम कर रहे हैं। मन में सोच रहे हैं कि आज मैंने उन सीता जी देख लिया जिनके लिए मैं सागर को लाँघकर आया ये वही सीता जी हैं क्या? जिनको जनक जी के पृथ्वी से प्राप्त किया था। हनुमान जी मन ही मन विचार करने लगे–

**तुल्यशीलवयोवृत्तां तुल्याभिजनलक्षणाम्।**
**राघवोऽर्हति वैदेही तं चेयमसितेक्षणा।।**

सीता जी का शील, स्वभाव, अवस्था ओर व्यवहार श्रीराम के ही समान है। उनका कुल भी उन्हीं के तुल्य महान है। वास्तव में सीता जी ही राम जी के लिए उचित हैं और राम जी ही सीता के लिए उचित हैं।

**अस्या देव्या मनस्तस्मिस्तस्य चास्यां प्रतिष्ठतम्।**
**तेनेयं स च धर्मात्मा मूहूर्तमपि जीवति।।**

इन देवी का मन श्रीरघुनाथ जी में और श्रीरघुनाथ जी का मन इसमें लगा हुआ है। इसीलिए ये तथा धर्मात्मा श्रीराम जीवित हैं। इनके मुहूर्तमात्र जीवन में भी यही कारण है। महर्षि वाल्मीकि कितना करुण कहते हैं–

**दुष्करं कृतवान् रामो हीनो यदनया प्रभुः।**
**धारयत्यात्मनो देहं न शोकेनवसीदति।।**

इनके बिछुड़ जाने पर भी भगवान श्रीराम जो अपने शरीर को धारण करते हैं शोक से शिथिल नहीं होते यह अत्यन्त दुष्कर कार्य कर रहे हैं। हनुमान जी सोच रहे है कि मैं इनमें कैसे बात करूँ? एक तो मेरा शरीर अत्यन्त सूक्ष्म है दूसरे मैं वानर हूँ। दूसरे मैं वानर हूँ। वानर होकर भी मैं इनसे मानवोचित संस्कृत भाषा में बोलूँगा।

क्रमशः........

# श्रीमद्भगवद्गीता ( ८७ )

( गतांक से आगे )

**( विशिष्टाद्वैतपरक श्रीराघवकृपाभाष्य )**

**भाष्यकार–धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज**

**संगति-** अब ज्ञान की कुशलता में बुद्धिमत्ता का वर्णन करते हैं–

**कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।**
**स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्।।**
४।१८

**रा० कृ० भा० सामान्यार्थ-** हे अर्जुन! जो साधक मनुष्य कर्म में भी अकर्म देखे अर्थात् कर्म करता हुआ भी फल न चाहकर, मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूँ सोच ले तथा जो कर्मों के न होने पर कर्म देखे। अर्थात् यह समझ ले कि कर्मों का अभाव भी एक प्रकार का कर्म ही है अर्थात् उस परिस्थिति में भी श्रुतिविहित मर्यादा का उल्लंघन न करे, वही मनुष्यों में बुद्धिमान है, वही योगी है, वही सम्पूर्ण कर्मों को करने वाला है।

**व्याख्या-** इस सम्बन्ध में आचार्यों का परस्पर मतभेद है। यहाँ कर्मशब्द वेदविहित क्रियानुष्ठान के अर्थ में है। कुछ लोग कर्म शब्द को ब्रह्म में आरोपित संसार की सत्ता का वाचक मानते हैं और अकर्म को कर्म अभाव अर्थात् ब्रह्म के अर्थ में देखते हैं। उनके मत में ब्रह्म में आरोपित संसाररूप कर्म में जो अकर्म अर्थात् संसार का अपवाद करके ब्रह्म को ही देखता है और अकर्म अर्थात् कर्म के अभाव वाले ब्रह्म में जो संसार कर्म को देखता है वही मनुष्यों में बुद्धिमान और संसार के कर्म का वेत्ता है। यही अद्वैतवादियों के अध्यारोपापवाद न्याय का बीज है। पर उनसे यह पूछना चाहिए कि बुद्धिमान कौन होता है। सम्यक् दर्शन से या असत्य दर्शन से। यदि सम्यक् दर्शन से बुद्धिमत्ता होती है तो यह बताओ कि क्या कोई विशुद्ध ब्रह्म में असत् संसार का दर्शन करके बुद्धिमान होगा। क्या जिस ब्रह्म में संसार का बाध हो चुका क्या उसका आरोप सम्भव होगा। क्योंकि रस्सी को उसके स्वरूप से पहचान लेने पर उसमें फिर सर्प की प्रतीत कैसी? उसी प्रकार ब्रह्म को तत्व से जान लेने पर संसाररूप कर्म का कैसे अध्यारोप हो सकेगा? इन प्रश्नों का उत्तर वे ही जानें कुछ लोग अकर्म पद से ज्ञान अर्थ मानते हैं। अर्थात् जो ज्ञान में कर्म और कर्म में ज्ञान को देखता है वह बुद्धिमान है। अर्थात् ज्ञान में वेद विहितत्व का चिन्तन और कर्म में भगवान् का चिन्तन यही बुद्धिमत्ता है। किन्तु उस व्याख्यान में भगवान के वचन का विरोध होगा। क्योंकि भगवान ने गीता ४/३३ में ज्ञानोदय में कर्म की समाप्ति तथा गीता ४/३७ में ज्ञानाग्नि द्वारा कर्म को भस्म होने की बात कही। इसलिए ज्ञान में कर्म दिख ही नहीं सकता। अब मैं पक्षपात शून्य मन से इस श्लोक के व्याख्यान का प्रयास कर रहा हूँ।

कर्मों के अभाव और कर्मों के अनारम्भ को अकर्म कहते हैं। जो कर्म करता हुआ भी गुण ही गुणों में वरत रहे हैं मैं कुछ नहीं करता इस प्रकार आत्मकर्तृक कर्म का अभाव देखता है और कर्म का अनारम्भ न करने पर भी गुणों में गुणों के वर्तने के कारण गुणकर्तृक

कर्म देखता है। अथवा जो कर्म के अभाव में भी कर्म अर्थात् वेद विहितत्व का चिन्तन करता हुआ कर्मकाण्डियों की भाँति करणीय न रहने पर भी वैदिक मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता वही मनुष्यों में बुद्धिमान है। वही समत्व लक्षण से युक्त है और वही कृत्स्नकर्मकृत् अर्थात् सम्पूर्ण कर्मों को करने वाला अथवा 'कृत्स्नकर्माणि कृन्तति' इति 'कृत्स्नकर्म कृत्' अर्थात् वही सम्पूर्ण कर्म के वन को काटने वाला है। जैसे– भगवान श्रीराम ने 'धनुर्भंग' का रूप कर्म करने पर भी अकर्म देखा।

**छुवतहिं टूट पिनाक पुराना।**
**मैं केहि हेतु करौं अभिमाना।।**

और रावण वध जैसे उत्कृष्ट कर्म करने पर भी अकर्म देखा–

**कुम्भकरन रावण दोऊ भाई।**
**यहाँ हते सुर मुनि दुखदाई।।**

और अकर्म करणीय न रहने पर भी कर्म ही देखा। परमेश्वर होने से दशरथ, कौशल्या, वशिष्ठ को प्रणाम करना कोई करणीय नहीं था फिर भी किया–

**प्रातकाल उठि कै रघुनाथा।**
**मातु पिता गुरु नावहि माथा।।**

इसलिए युद्ध करो परन्तु उसमें कर्तृत्व अभिमान मत करो। ।।श्री।।

**संगति–** उसी अकर्म की व्याख्या करते हैं–

**यस्य सर्वे समारम्भाः कामसङ्कल्पवर्जिताः।**
**ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः।।**

४/१९

**रा० कृ० भा० सामान्यार्थ–** हे अर्जुन! जिस साधक के नित्य नैमित्तिक कर्मों के सभी शुभारम्भ कामनाओं के संकल्प से रहित होते हैं तथा ज्ञान रूप अग्नि में जिसके सभी शरीरोपयोगी प्रारब्ध से अतिरिक्त कर्म जल चुके हैं उसी को विद्वान लोग पंडित कहते हैं।

**व्याख्या–** क्रियायें बहुत होती हैं इलिए 'समारम्भाः' यह बहुवचनान्त प्रयोग हुआ। प्रत्येक आरम्भ बिना संकल्प के नहीं होता। इसलिए कर्मकाण्डी लोग सर्वत्र संकल्प पढ़ते हैं। परन्तु जिसके क्रियारम्भ काम संकल्प से वर्जित परन्तु राम संकल्प से सर्जित होते हैं वही पंडित है। यही कर्म में अकर्मता है।

**संगति–** अर्जुन फिर प्रश्न करते हैं कि प्रभो। कर्म में अकर्मता कैसे आ सकती है? इस पर भगवान कहते हैं–

**त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः।**
**कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित्करोति सः।।**

४/२०

**रा० कृ० भा० सामान्यार्थ–** हे अर्जुन! जो कर्म के फलों में आसक्ति छोड़कर मुझ नित्य परमात्मा के चिन्तन से तृप्त है तथा संसार के सभी आश्रयों को छोड़कर जिसने मुझ परमात्मा को अपना आश्रय अर्थात् शरण निश्चित कर लिया है वह कर्म में प्रवृत्त हुआ भी कुछ नहीं करता।

**व्याख्या–** 'कर्मफलासंग' यहाँ कर्मधारय तत्पुरुष और द्वन्द्व ये तीन समास होंगे। अर्थात् कर्म जिसमें फलित होते हैं ऐसे आसङ्ग अर्थात् आसक्त को छोड़कर अथवा कर्मों के फलों में वर्तमान आसक्ति ही कर्मफलासङ्ग है। अथवा कर्मफल और आसङ्ग ये दोनों ही छोड़ देने चाहिए। यहाँ नित्य शब्द परमात्मा का वाचक है। 'अभिप्रवृत्तः' अर्थात् जो मेरी आज्ञा से अभीष्ट बुद्धि से कर्म में प्रवृत्त हुआ है। ।।श्री।।

क्रमशः........

## शिखा की वैज्ञानिकता

(२६) समस्त जातियों में हिन्दु जाति ही शीत-उष्ण के द्वन्द्व के सहने में प्रसिद्ध है; शीतकाल में प्रातः स्नान-सन्ध्या आदि से नहीं डरती, उसका कारण शिखा का धारण ही है। शिखा छोड़ने पर मर्म स्थानों में दुर्बलता हो जाती है, जिससे वैसा व्यक्ति सर्दी-गर्मी नहीं सह सकता। सर्दी में भूलकर भी स्नान नहीं करना चाहता। गर्मी में अग्निहोत्र में नहीं बैठ सकता। इसके अतिरिक्त शिखा छोड़ने पर यह सामाजिक एवं धार्मिक चिह्न विशेष नष्ट होगा, जिसकी छत्रछाया में संपूर्ण हिन्दु-जाति की एकता स्थापित है। एकता नष्ट होने पर अनेकता होगी; उसकी हानि स्पष्ट है। शिखा के त्याग में शुक्रकी अधोगामिनी गति होने पर कैसी हानि होगी-यह भी परोक्ष नहीं। पुरुषत्व की हानि में अपनी स्त्रियाँ अपने वश में नहीं रहतीं, व्यभिचार में लग जाती है। हिन्दु-स्त्रियाँ पतियों की शिखा के कारण पतिव्रता प्रसिद्ध हैं। जिन जातियों में शिखास्थापन नहीं होता वा हटता जाता है; उस जाति की ही स्त्रियाँ अधिक व्यभिचार में लग जाती हैं; तलाक आदि वही करती या चाहती हैं। यह एक बड़ी भारी हानि है।

शिखा शुक्र की ऊर्ध्वगति में सहायक हुआ करती है। ऊर्ध्वरेताः ही जितेन्द्रिय होता है। जितेन्द्रियों के ही घर में योगियों का जन्म सम्भव हुआ करता है। उनकी स्त्रियाँ उनके वश में होती हैं। हिन्दुजाति में ही योगियों का जन्म अधिकतया हुआ है। शिखा त्याग में निकम्मी, निधर्मक सन्तानें हुआ करती हैं। इस प्रकार शिखा के छोड़ने में बहुत हानियाँ हैं। समाप्त

## यज्ञोपवीत रहस्य

❑ पूज्यपाद पं० दीनानाथ शास्त्री सारस्वत 'विद्यावागीश'

**'सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च।**
**विशिखो व्युपवीतश्च यत् करोति न तत् कृतम्।।'**

(कात्यायनस्मृतिः १/४)

**'अमौक्तिकमसौवर्णं ब्राह्मणानां विभूषणम्।**
**देवतानां पितृणां च भागो येन प्रदीयते।।**

(मृच्छकटिक १०/१८)

### उपनयन का अर्थ और उसके अधिकारी

संस्कार सोलह प्रसिद्ध हैं, इसे हम अग्रिम निबन्ध में लिखेंगे। उनमें भी उपनयन और विवाह यह दो संस्कार अत्यन्त प्रसिद्ध और प्रचलित हैं। इनमें यहाँ उपनयन-विषय पर कुछ विचार किया जाता है। यद्यपि संस्कार सभी हैं; पर 'संस्कार' यह नाम मुख्यतया उपनयन का ही प्रसिद्ध है। उपनयन का सम्बन्ध वेदाधिकारियों से है। जिनको वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है, उनको उपनयन का अधिकार भी नहीं है। इसलिए 'गर्भाष्टमेब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्। गर्भादिकादशे राज्ञो गर्भाच्च द्वादशे विशः' (मनु० २।३६) 'अष्टवर्षं ब्राह्मणमुपनयेत गर्भाष्टमे वा, एकादशवर्षं राजन्यम्, द्वादशवर्षं वैश्यम्' (पारस्क० २।२।१-२-३) इत्यादि वचनों से उपनयन ब्राह्मणादि तीनों का कहा है, न तो यहाँ मनुष्यमात्र शब्द है, न स्त्रियों का ग्रहण है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों का वास्तविक संस्कार इसी उपनयन-संस्कार से होता है। 'उप-समीपे नयनम्' यह इसका व्युत्पत्त्यर्थ है। परन्तु इसका केवल व्युत्पत्त्यर्थ स्वीकार करने पर जहां-तहां अतिव्याप्ति हो सकती है। तब तो किसी पुरुष को वेश्या के पास लेजाना (नयन) भी 'उपनयन' माना जा सकेगा; परन्तु

यह इष्ट नहीं। तब यह शब्द 'विवाह' 'श्राद्ध' आदि शब्दों की भाँति पारिभाषिक या रूढ या योगरूढ इष्ट है, केवल यौगिक नहीं। वेद में भी इस प्रकार के शब्द देखने से, वहाँ भी यही अर्थ विवक्षित होने से वेद में भी योगरूढ, रूढ वा पारिभाषिक शब्द सिद्ध हुए, जिन्हें वादी नहीं मानते।

परिभाषा के अनुसार 'आचार्य के समीप वैध नयन' ही 'उपनयन' शब्द वाच्य हुआ करता है। इसीलिए कहा है– 'गृह्योत्ककर्मणा येन समीपे नीयते गुरोः। बालो वेदाय, तद् योगाद् बालोपनयनं विदुः'। आचार्य के साथ ही साथ उपनेय वटु को अग्नि तथा गायत्री के समीप भी लाया जाता है। इसीलिए ही 'अष्टवर्षं ब्राह्मणामुपनयेत' (२।२।१) इस पारस्कर के सूत्र की व्याख्या करते हुए गदाधरभट्ट ने कहा– **'आचार्यस्य उप-समीपे माणवकस्य नयनम् 'उपनयन' शब्देन उच्यते। उपनयनं च विधिना आचार्यसमीपनयनम् , अग्निसमीपे नयनं वा, सावित्री वाचनं वा'।**

आचार्य के पास पहुँचने पर उस वटु को आचार्य की सेवा करनी पड़ती है जिसके द्वारा वह मानसिक–शक्ति को प्राप्त करता है और अपने कार्य में पटुता भी प्राप्त करता है। फिर उसे अग्नि की उपासना करनी पड़ती है, जिसके द्वारा वह शारीरिक शक्ति को पाता है, फिर गायत्री–मन्त्र की उपासना (जप) करनी पड़ती है, जिसके द्वारा वह बुद्धि–पवित्रतारूप आत्मिक बल को प्राप्त करता है।

इसी का नाम यज्ञोपवीत–संस्कार वा आचार्यकरण अथवा व्रत–बन्ध वा उपनयन है। उपनयन से पूर्व ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, 'एकज' होते हैं; उपनयन से वे 'द्विज' होते हैं। अर्थात् उनका एक जन्म माता के गर्भ से होता है। तभी श्रीमनु जी ने कहा है– 'आचार्यस्त्वस्य यां जातिं विधिवद् वेदपारगः। उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या, साऽजराऽमरा।।' (२।१४८) अर्थात् – आचार्य उपनयन के समय गायत्री मन्त्र के उपदेश से जिस जन्म का सम्पादन करता है, वह दृढ़ होता है।

आचार्य–द्वारा गायत्री प्रदान से पूर्व ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एकज थे। फिर 'द्विर्बद्धं सुबद्धं भवति' इस न्याय से उपनयन के समय आचार्य उन्हीं तीन एकज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों को तीन दिन अपने गर्भ में रखता है। तब तीन दिनों के बाद फिर उन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वेश्यों का दूसरी बार जन्म होता है। पहले वे एकज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य थे; अब द्विज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, हो गये। 'द्विर्बद्धं सुबद्धं भवति' इस न्याय के सुदृढ़ हो गये। इसीलिए वेद में भी कहा है–'आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणां कृणुते गर्भमन्तः। तं रात्रीस्तिस्त्र उदरे विभर्ति, तं जातं द्रष्टुमभिसंयति देवाः' (अथर्व० सं० ११।५।३)। यहाँ तीन रात आचार्य के गर्भ में रहकर उसके बाद उत्पन्न हुए ब्रह्मचारी के दर्शन के लिए देवता भी आते हैं–यह कहा है। तब आचार्य उपनयनसूत्र, यज्ञसूत्र या ब्रह्मसूत्र या उपवीत को विधिपूर्वक ब्रह्मचारी के गले में पहिनाता है। यज्ञोपवीत पहनाने का मन्त्र यह है– 'यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत् सहजं पुरस्तात्। आयुष्मयमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः' (पारस्करगृ० २।२।११)

क्रमशः........

# रासपञ्चाध्यायी विमर्श ( ६ )

❑ धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

**''न मे पार्थास्ति कर्त्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि।।''**
गी० ३/२२

तीनों लोकों में अब मुझे कुछ भी करणीय नहीं है। मेरे लिए कुछ भी करने की कोई बाध्यता नहीं है कोई विवशता नहीं है और संसार में प्राप्त करने योग्य कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो मुझे नहीं मिल गई हो। मुझे सब मिल चुका है। फिर भी कर्म करता हूँ कर्म में वरतता हूँ। इसका यहाँ क्या तात्पर्य है? भगवान् को गोपियों के साथ खेलने में कुछ मिलना नहीं है। क्योंकि उनको जो चाहिए वो सब उन्हें मिल चुका है। वे तो उद्धव की भाषा में **''स्वाराज्य लक्ष्म्याप्त समस्तकामः''** अपनी स्वराज्य लक्ष्मी के द्वारा वे समस्त कामनाओं को प्राप्त कर चुके हैं, फिर भी खेल रहे हैं। क्यों खेल रहे हैं? कुछ पाने के लिए? ऐसा नहीं है। भगवान पाने के लिए नहीं खेलते हैं। एक बालक खिलौने के साथ खेलता है क्योंकि उसका एक अपना आनन्द है। गोपियाँ भगवान् की खिलौना हैं और भगवान् बालक हैं, परन्तु साधारण बालक नहीं हैं, "तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं" भा० १०/३/१० गोस्वामी तुलसीदास जी के भगवान् श्रीराम अनुपम बालक हैं। और वेदव्यास जी के भगवान् श्रीकृष्ण अद्भुत बालक हैं। **''अनुपम बालक देखेनि जाई। रूपराशिगुन कही न शिराई।।''** मानस १/१९४/८ श्रीराम अनुपम बालक हैं, उनकी किसी से उपमा नहीं है। श्रीकृष्ण अद्भुत बालक हैं। **''तमुद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं''** दोनों विचित्र हैं। आज गोपियों के साथ खेलेंगे। क्यों? क्योंकि गोपियाँ उनका खिलौना हैं। श्रीमद्भागवत के चीरहरण के प्रसंग में भगवान् शुकाचार्य एक शब्द का प्रयोग कर रहे हैं। कैसी हैं गोपियाँ जिनके साथ भगवान् को महारास करना है। **''क्रीडनवच्च कारिताः''** वे तो भगवान् की खिलौना बन चुकी हैं। यहाँ एक अन्तर बहुत गम्भीरता से समझना होगा। मैं यही कह रहा हूँ कि भगवान् सामान्य बालक नहीं हैं अद्भुत बालक हैं। क्योंकि जब सामान्य बालक खिलौनों के साथ खेलते हैं तो खिलौनों की कोई चिन्ता नहीं करते उसे तोड़-फोड़ देते हैं और हमनें तो देखा है कि जो सीधा बालक होता है वह खिलौनों को दो-चार घंटे तक रखता है, पर जो चंचल बालक होता है उसे आज की भाषा में कहें तो जो शरारती बालक होता है वह तो एक ही मिनट में खिलौनों की ऐसी-तैसी कर डालता है। परन्तु भगवान् जिन खिलौनों के साथ खलते हैं उन्हें तोड़ते नहीं, उनकी कोई हानि नहीं करते प्रत्युत उनको धन्य-धन्य कर देते हैं। जिन गोपियों के साथ भगवान् ने खेला क्रीडनवत् बनाया, खिलौना बनाया उनको तोड़ा नहीं उनको इतना धन्य कर दिया कि उद्धव जैसे महाभागवत कहने लगे कि, अरे-अरे ! यदि मैं वृन्दावन की लता बन जाता अथवा वृन्दावन की कोई छोटी-सी घास बन जाता तो कम से कम गोपियों के श्रीचरणकमल की धूलि तो मुझे मिल जाती। इसीलिए-

**''आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्।।''**
भा० १०/४७/६१

४७वें अध्याय में उद्धव गीत का प्रारम्भ होता है। गोपियों को नमस्कार करके उद्धव जी गा रहे हैं

"ता नमस्यन्निदं जगौ।" उद्धव जैसे महाभागवत जिनके लिए भगवान कहेंगे कि उद्धव मुझसे अणुमात्र भी कम नहीं है, "नोद्धवोऽण्वपि मन्यूनो" भा ३/४/३१ वे गोपियों को नमन कर रहे हैं और कह रहे हैं कि अरे-अरे! जिन गोपियों ने न छोड़ने योग्य दुस्त्यज आर्यपथ को छोड़कर भगवान् के श्रीचरणों को भजन किया उनकी चरण की धूलि से लगी हुई किसी औषधि का शरीर मुझे मिल जाता तो मैं धन्य हो जाता। उद्धव से पूछा गया कि, उद्धव गोपियों के मस्तक में चरण नवाना चाहते हो? तो उद्धव जी ने कहा, नहीं-नहीं मेरी पात्रता ही नहीं कि मैं उनके चरण में मस्तक नवाऊँ। फिर उद्धव जी ने कहा कि गोपियों की चरण की धूलि के एक कण को यदि मैं जीवन भर नमन करता रहूँ तो भी मेरा सौभाग्य मान लेना चाहिए। उनके अर्थात् गोपियों की चरण धूलि के एक कण को ही नमन करने की यदि मुझे पात्रता मिल जाए तो मैं अपने को धन्य मानूँगा "**वन्दे नन्दब्रजस्त्रीणां पादरेणुं**"। कितनी बार? बोले, "अभीक्ष्णशः" निरन्तर। उनके एक कणिका का मैं वन्दन कर सकूँ ये मेरा सौभाग्य होगा। तात्पर्य यह है कि साधारण बालक जब खिलौनों से खेलता है तो वह खिलौनों को तोड़ डालता है। उसे कोई खिलौने की चिन्ता नहीं होती। अपने आनन्द में वह इतना तन्मय हो जाता है कि अपने खिलौने की योगक्षेम की वह चिन्ता नहीं करता, परन्तु भगवान् खेलते हैं अपने आनन्द में और साथ-साथ यह ध्यान भी रखते हैं कि ऐसी कोई क्रीड़ा न हो जाए जिससे इस खिलौने का कोई योगक्षेम बाधित हो, इसकी कोई हानि हो यह टूट जाए। अतएव गोपियाँ भी यह समझती हैं कि भगवान् हमारी कभी हानि नहीं करेंगे। भगवान् हमारे योगक्षेम की निरन्तर रक्षा करेंगे। अतएव गोपी चीरहरण का उपसंहार करते हुये शुकाचार्य जी गोपियों की मनोदशा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि लग रहा हे कि गोपियों के प्रति भगवान् श्रीकृष्ण का अत्याचार है। परन्तु वे समझ गई हैं नहीं-नहीं, प्रभु का हमारे प्रति अत्याचार हो ही नहीं सकता।

**दृढं प्रलब्धास्त्रपया च हापिताः**
**प्रस्तोभिताः क्रीडनवच्च कारिताः।**
**वस्त्राणि चैवापहृतान्यथाप्यमुं**
**ता नाभ्यसूयन् प्रियसंगनिर्वृताः।।**

भा० १०/२२/२२

शुकाचार्य जी कहते हैं कि भौतिक दृष्टि से लग रहा है कि भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा प्रलब्ध हो गईं, ठगी गईं "त्रपया च हापिताः" उनकी लज्जा समाप्त हो गई उन्हें "प्रस्तोभिताः" कड़ाके की ठंड में कंपा दिया गया और "क्रीडनवच्चकारिताः" उन्हें खिलौना बना दिया गया। "वस्त्राणि चैवापहृतानि" उनके वस्त्र ले लिए गये तथापित भौतिक दृष्टि से इतना होने पर भी "ताः अमुं नाभ्यसूयन्" गोपियों ने भगवान् श्रीकृष्ण की निन्दा नहीं की उनमें दोषदर्शन नहीं किया। वे जानती हैं कि भगवान् हम पर अत्याचार कर ही नहीं सकते। वे साधारण बालक नहीं हैं जो अपने आनन्द की पूर्ति के लिए खिलौनों को तहस-नहस कर डाले। वे तो हमें सजाने आए हैं और वस्तुतः हुआ वही भगवान् ने सजाया। भगवान् जानते हैं कि जब साधारण बालक खेलता है तब खिलौने नष्ट हो जाते हैं और भगवान् को तो इन खिलौनों के साथ अनन्तरात्रिपर्यन्त खेलना होगा। अतः पहले इनकी व्यवस्था कर दी। आज की भाषा में पहले इनको रिपेयर कर दिया बना लिया कि टूटें-फूटें नहीं। चीरहरण की भूमिका यही तो है। प्रश्न है क्यों हो रहा है चीरहरण? क्या भगवान् के मन में कोई वासना है? यहाँ का प्रसंग ठीक से यदि हम देखें तो सारी समस्याओं का स्वयं समाधान हो जायेगा। भगवान् इस समय छः वर्ष के बालक हैं और गोपियाँ भी बहुत छोटी हैं, "**नन्द ब्रजकुमारिकाः**" शास्त्रों को बिना जाने कुछ भी कह ले। कोई किसी की जीभ तो नहीं पकड़ने जा रहा है। क्रमशः........

# जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय, चित्रकूट ( उ०प्र० )

## विकलांग दिवस समारोह २००९

❑ कुलसचिव

जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय चित्रकूट उ०प्र० में विगत वर्षों की भांति इस वर्ष भी त्रिदिवसीय विकलांग दिवस समारोह का आयोजन ०१.१२.०९ से ०३.१२.०९ तक किया गया। समारोह का शुभारम्भ ०१.१२.०९ को अपराह्न ३ बजे विश्वविद्यालय के मुक्ताकाश मंच में किया गया। शिक्षकों, अधिकारियों कर्मचारियों एवं छात्र-छात्राओं की सक्रिय सहभागिता में चित्रकूट के अनेक संभ्रान्त नागरिकों तथा पदाधिकारियों की गरिमामयी उपस्थिति में उद्घाटन समारोह के मुख्य अतिथि चित्रकूट ग्रामोदय वि०वि० के माननीय कुलपति प्रो० ज्ञानेन्द्र सिंह जी ने दीप प्रज्वलन करके किया। इस अवसर पर श्री हेमराज सिंह चतुर्वेदी सदस्य व्यवस्थापक बोर्ड, प्रो० योगेन्द्र चन्द्र दुबे (अधिष्ठाता मानविकी संकाय), डा० अवनीश चन्द्र मिश्र (कुलसचिव) एवं अवधेश प्रताप सिंह वि०वि० रीवा के अर्थशास्त्र विभाग के प्रो० एम० पी० पाठक विशिष्ट अतिथि के रूप में उपस्थित हुए। मा० अतिथियों द्वारा सरस्वती जी की प्रतिमा पर माल्यार्पण करने के उपरान्त संगीत विभाग के छात्रों ने सरस्वती वंदना एवं स्वागत गीत प्रस्तुत किया। अतिथियों के सम्मान में स्वागत भाषण प्रस्तुत करते हुए मा० कुलसचिव डा० मिश्र ने विकलांग दिवस समारोह के अन्तर्गत होने वाले विभिन्न कार्यक्रमों की जानकारी दी तथा अतिथियों का स्वागत किया। उद्घाटन भाषण करते हुए मुख्य अतिथि प्रो० ज्ञानेन्द्र सिंह जी ने विकलांग छात्र-छात्राओं की प्रतिभा की प्रशंसा की तथा उन्हें हमेशा लक्ष्य की ओर उन्मुख रहने की सलाह दी। कार्यक्रम संचालक डा० तुलसीदास परोहा ने समारोह के अन्तर्गत होने वाली सांस्कृतिक एवं क्रीड़ा प्रतियोगिताओं की जानकारी दी। अध्यक्षीय उद्बोधन मा० हेमराज सिंह ने किया तथा आभार ज्ञापन प्रो० योगेशचन्द्र दुबे ने किया।

तदुपरान्त वि०वि० के छात्र-छात्राओं ने अनेक सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत कर लोगों का मन मोह लिया सुगम संगीत की प्रस्तुति पवन त्रिपाठी एवं युगल नृत्य कु० प्रिया सिंह एवं कु० प्रेमलता मिश्रा ने किया तथा एकल नृत्य बी०एफ०ए० की छात्रा कु० स्नेहा (मूकबधिर) तथा लोकगीत संगीत विभाग की छात्रा कु० ज्योति विश्वकर्मा ने प्रस्तुत किया।

खेलकूद के कार्यक्रम में भाला फेंक, गोला फेंक, क्रिकेट  (प्रज्ञाचक्षु छात्रों का), लम्बी कूद आदि में छात्र-छात्राओं ने भाग लेकर प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय स्थान प्राप्त किये।

मा० मुख्य अतिथि ने ललितकला विभाग के द्वारा आयोजित ललितकला प्रदर्शनी का अवलोकन किया। जिसमें लगभग १०० से अधिक कलाकृतियों का प्रदर्शन किया गया है। इसके अन्तर्गत चित्रकला, मूर्तिकला एवं मृदाकृतियों तथा टैक्सटाइल डिजाइन आदि का प्रदर्शन किया गया। रंगोली कार्यक्रम विशेष आकर्षण का केन्द्र रहा। जिसके संयोजक ललित कला विभाग के सहायक आचार्य श्री देवेन्द्र कुमार त्रिपाठी रहे। ललित कला से सम्बन्धित रंगोली प्रतियोगिता में कु० निधि ने प्रथम दुर्गेशकुमार पाण्डेय ने द्वितीय तथा शिखा जायसवाल ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। एप्लाइड एण्ड क्राफ्ट प्रतियोगिता में किरण भारद्वाज ने प्रथम मंतोष ने द्वितीय तथा पवन

कुमार सिंह ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। चित्रकला प्रतियोगिता में पवन ने प्रथम अभिजीत गुप्ता ने द्वितीय तथा मंतोष यादव ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। कार्टून प्रतियोगिता में ऊषा यादव ने प्रथम नेहा गंगवार ने द्वितीय तथा शिखा जायसवाल ने तृतीय स्थान प्राप्त किया।

समारोह के दूसरे दिन विभिन्न सांस्कृतिक एवं खेलकूद एवं पेंटिंग प्रतियोगिताओं का आयोजन हुआ। इन प्रतियोगिताओं में छात्र-छात्राओं ने बढ़-चढ़ कर प्रतिभाग किया। कार्यक्रम का शुभारम्भ कुलसचिव मा० अवनीशचन्द्र मिश्रा ने मां सरस्वती के चित्र पर माल्यार्पण करके किया। कार्यक्रम के प्रथम चरण में संगीत एवं साहित्य की प्रतियोगितायें सम्पन्न हुई। जिसमें छात्र पवन त्रिपाठी ने 'गा रहा हूँ इस महफिल में' गीत गाकर समां बांध दिया तथा प्रथम स्थान प्राप्त किया। ज्योति विश्वकर्मा तथा नेम सिंह तोमर ने भी अपनी प्रस्तुतियाँ दीं तथा द्वितीय एवं तृतीय स्थान प्राप्त किया। शास्त्रीय वादन (तबला) प्रतियोगिता के क्रम में नेमसिंह तोमर (एम०ए०) ने प्रथम सुनीता राज (बीएड) ने द्वितीय एवं मनीष सिरौठिया (बी०एड०) ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। इसके पश्चात् सुगम संगीत की प्रतियोगिता हुई जिसमें कुल ३५ प्रतिभागियों ने भाग लिया। इसमें प्रेमलता मिश्रा ने प्रथम, पवन त्रिपाठी ने द्वितीय एवं मु० शकील अंसारी ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। प्रतिभागियों ने लोक संगीत के द्वारा सम्पूर्ण वि०वि० के वातावरण में भारतीय संस्कृति की अमिट छाप छोड़ी। इस प्रतियोगिता में ज्योति विश्वकर्मा ने प्रथम, नेम सिंह ने द्वितीय तथा संजय शुक्ला ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। निबन्ध प्रतियोगिता में २३ प्रतिभागियों ने भाग लिया जिसमें कु० साधना मिश्रा (बी०ए०) ने तृतीय स्थान तथा हितेश कुमार एवं चंदन मिश्रा ने सांत्वना पुरस्कार प्राप्त किया। इस प्रतियोगिता में निर्णायकों ने प्रथम एवं द्वितीय स्थान के लिये किसी को उपयुक्त नहीं पाया। सामान्य ज्ञान के संवर्धन के लिए एक क्विज प्रतियोगिता का आयोजन भी किया गया। इस प्रतियोगिता में कुल पांच टीमों ने भाग लिया। जिसमें प्रथम स्थान पर रवीन्द्र नाथ टैगोर टीम के सदस्य संजीव कुमार एवं संजीत कुमार रहे। दूसरे स्थान में विवेकानन्द टीम के जियाउद्दीन एवं आनन्द कुमार पाल रहे। इसके पश्चात श्रोताओं के लिए एक क्विज प्रतियोगिता रखी गयी। जिसमें विनीत पाण्डेय ने प्रथम स्थान प्राप्त किया। स्वरचित काव्य पाठ प्रतियोगिता में १० प्रतिभागियों ने प्रतिभाग किया जिसमें रामदेव ने प्रथम, राजीव ने द्वितीय एवं सोनू त्रिपाठी ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। वाद-विवाद प्रतियोगिता जिसका शीर्षक "छोटे राज्यों का निर्माण देश के विकास में बाधक है" इसमें प्रतिभागियों ने पक्ष एवं विपक्ष में अपने विचार प्रस्तुत किये। जिसमें प्रथम स्थान पर रामू मिश्रा, द्वितीय स्थान पर अमर कुमार सिंह एवं तृतीय स्थान पर आनन्द कुमार पाल रहे। नृत्य प्रतियोगिता में समूह एवं एकल नृत्य की प्रथक-प्रथम प्रतियोगितायें आयोजित की गयी। जिसमें कु० प्रिया सिंह एवं कु० हेमलता मिश्र ने प्रथम तथा एकल नृत्य में कु० प्रिया सिंह ने प्रथम तथा प्रेमलता ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया।

कार्यक्रम के दूसरे चरण में क्रीड़ा प्रभारी श्री मनोज कुमार पाण्डेय के संयोजन में विभिन्न खेलकूद प्रतियोगिताओं का आयोजन हुआ। सर्वप्रथम नेत्रहीन छात्रों की प्रतियोगिता में दो टीमें थीं। प्रथम टीम ज० रामभद्राचार्य वि०वि० तथा दूसरी प्रज्ञाचक्षु तुलसीपीठ की टीम जो कि विजेता रही। गोला फेंक पुरुष वर्ग में

कुल २० प्रतिभागियों ने भाग लिया। जिसमें राममिलन प्रथम, गौरव द्वितीय तथा मायाशंकर ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। महिला वर्ग में कुल १२ प्रतिभागियों ने भाग लिया जिसमें रूबी राय ने प्रथम, प्रतिभा चौहान ने द्वितीय तथा अमृता ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। भाल फेंक पुरुष वर्ग में कुल ३१ प्रतिभागियों ने भाग लिया जिसमें राममिलन प्रथम, माया शंकर द्वितीय तथा चुनकू राम ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। महिला वर्ग में कुल १२ प्रतिभागियों ने भाग लिया जिसमें प्रतिभा चौहान प्रथम, नेहा द्वितीय तथा शिखा ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। डिस्कस थ्रो पुरुष वर्ग में कुल १८ प्रतिभागियों ने भाग लिया जिसमें राममिलन प्रथम, मया शंकर द्वितीय तथा प्रवीण कुमार तृतीय स्थान पर रहे। महिला वर्ग में कुल ८ प्रतिभागियों ने भाग लिया जिसमें रूबी राय प्रथम, अमृता सिंह द्वितीय तथा प्रतिभा चौहान ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। बालीबाल महिला वर्ग में निधि ने प्रथम एवं स्नेहा ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया।

त्रिदिवसीय विकलांग दिवस समारोह का मुख्य कार्यक्रम दिनांक ३ दिसम्बर को विश्वविद्यालय के प्रांगण में मा० कुलाधिपति जगद्गुरु रामभद्राचार्य जी एवं उ०प्र० सरकार के संस्कृति मंत्री मा० श्री सुभाष पाण्डेय के मुख्यातिथ्य में सम्पन्न हुआ। कार्यक्रम का शुभारम्भ दीप प्रज्ज्वलन एवं सरस्वती वंदना से हुआ। अतिथियों के सम्मान में संगीत विभाग के छात्रों ने स्वागत गीत गाया। मा० कुलसचिव डा० अवनीशचन्द्र मिश्र ने स्वागत भाषण दिया। इस अवसर पर सांस्कृतिक एवं क्रीड़ा प्रतियोगिताओं में प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय स्थान प्राप्त करने वाले प्रतिभागी छात्रों को मुख्य अतिथि द्वारा पुरस्कार प्रदान किये गये। सांस्कृतिक प्रतियोगिताओं में सर्वोत्तम प्रस्तुति के लिये कु० प्रेमलता मिश्र (बी०म्यूज०) को तथा क्रीड़ा प्रतियोगिता में सर्वोत्तम प्रदर्शन के लिए राममिलन (एम०ए०) को सर्वोत्तम पुस्कार से पुरस्कृत किया गया। अतिथियों के सम्मान में विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये। कार्यक्रम में डा० राजकुमार उपाध्याय मणि (सहा० आचार्य हिन्दी विभाग) द्वारा लिखित पुस्तक ''सूरदास और उनकी सूरसारावली'' का विमोचन किया गया।

समारोह के मुख्य अतिथि मा० संस्कृति मंत्री श्री सुभाष पाण्डेय ने अपने उद्बोधन में कहा विकलांग भाई-बहन अद्भुद मेधा के धनी होते हैं उनमें गजब का आत्मविश्वास तथा लक्ष्य को प्राप्त करने की धुन सवार रहती है। यह वि०वि० मानवता का एक मंदिर है जहां समाज की मुख्य धारा से कटे हुए विकलांगों को शिक्षा का अवसर उपलब्ध कराकर उन्हें राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़ने का महान कार्य संपादित होता है। मैं इस वि०वि० के लिए अपने व्यक्तिगत कोष से १० लाख रुपये के दान की घोषणा करता हूँ तथा संस्कृति मंत्रालय द्वारा कलाकारों की सहायता के लिये अपेक्षित सहयोग करता रहूँगा। कार्यक्रम का अध्यक्षीय उद्बोधन प्रदान करते हुए वि०वि० के मा० कुलाधिपति जगद्गुरु रामभद्राचार्य जी ने कहा विकलांग सहानुभूति का नहीं अपितु समानुभूति का पात्र है। यह वि०वि० विकलांगों के हित में निरन्तर प्रयत्नरत रहेगा। हम इसे पहले केन्द्रीय वि०वि० और फिर अन्तर्राष्ट्रीय वि०वि० बनाने के लिए संकल्पित हैं।

विकलांग दिवस के उपलक्ष्य में बेड़ी पुलिया से डिग्री कालेज तक (लगभग २ किमी०) की छात्रों की ट्राइसाईकिल दौड़ प्रतियोगिता आयोजित की गयी जिसमें २३ प्रतिभागियों ने भाग लिया जिसमें प्रथम,

द्वितीय एवं तृतीय स्थान प्राप्त क्रमशः अरुण कुमार, नत्थूलाल, तथा राकेश त्रिपाठी को ट्राइसाईकिल दौड़ प्रतियोगिता की मुख्य अतिथि पुलिस अधीक्षक (चित्रकूट) सु० अपर्णा एच० एस०, डा० अवनीश चन्द्र मिश्र कुलसचिव, क्रीड़ा अधिकारी मनोज कुमार पाण्डेय तथा तुषारकान्त शास्त्री (निर्णायक) द्वारा पुरस्कार प्रदान किये गये।

तदुपरान्त शिक्षक-कर्मचारियों की संयुक्त बालीबाल प्रतियोगिता वि०वि० के क्रीडांगन में श्री विपिन कुमार मिश्र (अपर पुलिस अधीक्षक) एवं प्रो० आर्या प्रसाद त्रिपाठी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई। प्रथम दल के कप्तान मा० कुलसचिव एवं दूसरे दल के कप्तान डा० शचीन्द्र उपाध्याय थे।

त्रिदिवसीय महोत्सव के समापन में आनन्द मेला का भी आयोजन किया गया। इसका उद्घाटन डा० कु० गीता देवी मिश्रा (महामहिम कुलाधिपति जी की निजी सचिव) द्वारा हुआ, इसकी संयोजिका डा० सुनीता श्रीवास्तव ने बताया कि छात्र-छात्राओं ने सभी प्रकार के व्यंजनों का निर्माण स्वयं किया। वि०वि० परिवार ने व्यंजनों का रसास्वादन किया।

ललितकला विभाग के सहा० आचार्य देवेन्द्र त्रिपाठी के निर्देशन में कला संकाय के छात्र-छात्राओं ने भारत माता का प्राकृतिक मानचित्र बनाकर दर्शनार्थियों को मंत्रमुग्ध कर दिया। मुख्य अतिथि ने वि०वि० के छात्रों द्वारा बनायी गयी रंगोलियों तथा कलाकृतियों का अवलोकन किया।

इस त्रिदिवसीय कार्यक्रम में सहभागिता देने वाले छात्र-छात्राओं, विभिन्न कार्यक्रमों के संयोजकों, शिक्षकों, कर्मचारियों, मीडिया, पत्रकारों आदि के प्रति कृतज्ञता के दो स्नेहिल शब्द प्रो० आर्या प्रसाद त्रिपाठी हिन्दी विभागाध्यक्ष ने व्यक्त किये एवं धन्यवाद दिया और संचालन डा० तुलसीदास परोहा (सांस्कृतिक समन्वयक) ने किया।

---

।।नमो राघवाय।।

# सादर आमन्त्रण

श्रीराघव परिवार के सभी सदस्यों को यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता होगी कि हमारे सभी के परमाराध्य एवं संरक्षक श्रीचित्रकूट तुलसीपीठाधीश्वर जगद्‌गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज का षष्टिपूर्ति जन्मजयन्ती समारोह आगामी १४ जनवरी २०१० मकरसंक्रान्ति को श्रीतुलसीपीठ आमोदवन के श्रीरामचरितमानस मन्दिर में सोल्लास मनाया जाएगा। यह कार्यक्रम १३ जनवरी २०१० से १४ जनवरी २०१० तक चार सत्रों में सम्पन्न होगा।

आप सभी से साग्रह अनुरोध है कि पूज्यपाद जगद्‌गुरु जी के दिव्य गुणगणों का गान करने के लिए तथा उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने के लिए इस कार्यक्रम में अवश्य पधारें।

आमन्त्रक

**श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास**

**आमोदवन चित्रकूट**

# जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय, चित्रकूट में पुनर्वास विकास केन्द्र की स्थापना

❑ डॉ० शचीन्द्र उपाध्याय

## पुनर्वास विकास केन्द्र के बढ़ते कदम

विकलांग जन को चिकित्सा प्रदान करने, प्रशिक्षण देने, तथा विभिन्न प्रकार के रोजगार एवं नौकरियों के लिये तैयार करने की दृष्टि से पुनर्वास विकास केन्द्र की स्थापना जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय में की गई है। एक उत्पादक नागरिक के रूप में विकलांगजन समाज के निर्माण में सहयोगी हो सके और साथ ही उन्हें गरिमा पूर्वक जीवन जीने का अवसर प्राप्त हो सके, यह पुनर्वास केन्द्र का लक्ष्य है।

पुनर्वास के लक्ष्य तक पहुँचने के लिए निम्नलिखित चक्र के माध्यम से पूर्ण पुनर्वास की स्थिति तक पहुँचने की प्रक्रिया को वर्शाया गया है और इसी माध्यम से संस्था अपने कार्य को आगे बढ़ा रही है।

जगद्गुरु रामभद्राचार्य जी की प्रेरणा से पुनर्वास विकास केन्द्र के द्वारा विश्वविद्यालय से ५० कि०मी० की परिधि में विकलांग जन जागरूकता एवं निःशुल्क प्रशिक्षण एवं उपचार शिविर का आयोजन किया जा रहा है। उ०प्र० एवं म०प्र० की सीमा पर स्थित यह क्षेत्र अभाव ग्रस्त तो है ही विकलांगता का प्रतिशत भी यहाँ अधिक है। जनजातीय और अनुसूचित जनजाति तथा निर्धन लोगों के उत्थान को ध्यान में रखकर केन्द्र ने विविध प्रयास प्रारम्भ किये हैं। इसी क्रम में राजापुर, ऐचवारा, मानिकपुर, मऊ, रैपुरा, रामनगर, अतर्रा, बाँदा, विसण्डा, मझगवा, पिण्डरा, सरधुवा, सतना में निःशुल्क जागरूकता प्रशिक्षण एवं उपचार शिविर सुनिश्चित किये गये हैं। इनमें अब तक ९ शिविरों का आयोजन किया जा चुका है जिनमें कुल ११९२ विकलांगों के साथ ही लगभग १७०० निर्धन व गरीब निराश्रित लोगों को चिकित्सा परामर्श दिया गया। इस दौरान रक्त परीक्षण मनोवैज्ञानिक (बुद्धि) परीक्षण श्रवण क्षमता परीक्षण, कर स्वास्वस्थ्य परीक्षण कर निःशुल्क औषधियों का वितरण किया गया जिस दौरान कुल ११९२ विकलांग चिन्हित किये गये जिनमें ४१० अस्थि विकलांगों में ट्राई साइकिल, बैसाखी, कैली पर्श, कृत्रिम पैर के लिये ९३ चयनित हुये ३९ दृष्टि बाधित में छड़ी, ब्रेल शिक्षा, प्रशिक्षण हेतु एवं चयनित हुए २१५ श्रवण बाधित में ६५ श्रवण यन्त्र के लिये चयनित हुए २१ मन्द बुद्धि में ०६ मन्द बुद्धि प्रशिक्षण हेतु चयनित लिये गये शिक्षित विकलांग जनों में ३६ सिलाई प्रशिक्षण ४६ बेकरी प्रशिक्षण ५६ कम्प्यूटर प्रशिक्षण १५ शॉर्ट हैण्ड/टाइपिंग हेतु चयनित किये गये। क्षेत्र में विकलांग अनुसूचित जाति जनजाति गरीब व निशश्रित लोगों को सरकारी तथा गैर सरकारी योजनाओं के प्रति जागरूक किया गया। विश्वविद्यालय में रह रहे छात्र, छात्राओं की चिकित्सा के साथ-साथ विश्वविद्यालय परिसर में विकलांग जनों की चिकित्सा हेतु निःशुल्क चिकित्सा सेवा उपलब्ध है जहाँ पर निम्न सुविधायें उपलब्ध है,

रक्त एवं मूत्र परीक्षण, मनोवैज्ञानिक बुद्धि परीक्षण, अत्याधुनिक मशीनों द्वारा श्रवण क्षमता परीक्षण रोजगार में मार्गदर्शन, सरकारी गैर सरकारी योजनाओं की जानकारी पुनर्वास विकास केन्द्र विश्वविद्यालय में

छात्र, छात्राओं के आने जाने के लिये अत्याधुनिक सुविधायुक्त बस नियमित रूप से चलायी जा रही हैं। जिसमें अस्थिविकलांग व्हीलचेयर सहित विश्वविद्यालय आ जा सकता है।

❑❑❑

## पूज्यपाद जगद्गुरु जी के आगामी कार्यक्रम

❑ प्रस्तुति-पूज्या बुआ जी

| दिनाङ्क | विषय | आयोजक तथा स्थान |
|---|---|---|
| 13 जनवरी 2010 से 14 जनवरी 2010 तक | जगद्गुरु स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी का षष्टिपूर्ति जन्म जयन्ती महोत्सव | श्रीराघव परिवार स्थान-श्रीरामचरितमानस मन्दिर तुलसीपीठ, आमोदवन चित्रकूट (म०प्र०) |
| 17 जनवरी 2010 से 25 जनवरी 2010 तक | श्रीरामकथा | माघमेला, दण्डी बाबा, श्रीरामलोचन स्वरूप ब्रह्मचारी जी का बाड़ा प्रयाग मो०नं०-09839963232 आयोजक-सर्वेश्वर ब्रह्मचारी जी |
| 31 जनवरी 2010 से 02 फरवरी 2010 तक | मानस सम्मेलन | श्रीरामचरितदास जी महाराज कमलपुर बक्सर (बिहार) |
| 05 फरवरी 2010 से 13 फरवरी 2010 तक | श्रीरामकथा | फूलबाग कानपुर (उ०प्र०) |
| 16 फरवरी 2010 से 24 फरवरी 2010 तक | श्रीरामकथा | श्रीराजेश वर्मा (विधायक गुनौर) अमानगंज जिला पन्ना (म०प्र०) सम्पर्क- 09827047871 |

**कृपया किसी कार्यक्रम में जाने से पूर्व परमपूज्या बुआ जी से सम्पर्क अवश्य करके जायें। कार्यक्रम में परिवर्तन भी हो सकता है।**

# समाचारपत्रों की सुर्खियों में
# जगद्‌गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय चित्रकूट में मनाया गया विकलांग दिवस समारोह २००९

## विकलांग बच्चे भी किसी से पीछे नहीं

❖ **तीन दिवसीय विकलांग समारोह का शुभारंभ**

❖ **खेलकूद व चित्रकला प्रदर्शनी का हुआ आयोजन**

**जागरण कानपुर २ दिसम्बर २००९**
**चित्रकूट, कार्यालय संवाददाता :** अंतर्राष्ट्रीय विकलांग दिवस को धूमधाम से मनाने के लिए रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय में तीन दिवसीय विकलांग दिवस का आयोजन प्रारंभ हुआ। जिसमें विकलांगों के खेलकूद व चित्रकला की प्रदर्शनी का आयोजन हुआ।

मंगलवार को त्रिदिवसीय विकलांग दिवस कार्यक्रम का उद्घाटन महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो० ज्ञानेन्द्र सिंह ने करते हुए कहा कि इस विवि में आकर यह निश्चित हो गया कि विकलांग बच्चे भी अपने जीवन में सब कुछ कर सकते हैं। ये कहीं से भी कमजोर नहीं नजर आते। विवि के कुलसचिव डा० अवनीश चंद्र मिश्रा ने कहा कि यह देश का पहला विवि है, जो विकलांगों को अपने पैरों पर खड़ा होने के लिए प्रेरित कर रहा है। इसके बाद विवि के छात्रों ने सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत कर लोगों का मन मोह लिया।

सुगम संगीत की प्रस्तुति पवन त्रिपाठी व प्रेम मिश्रा ने की। एकल नृत्य स्नेहा, लोकगीत ज्योति विश्वकर्मा, युगल नृत्य प्रिया सिंह व प्रेमलता ने प्रस्तुत किया। सांस्कृतिक कार्यक्रमों के बाद खेलकूद की प्रतियोगिताएं हुई। जिसमें भाला, गोला फेंक, लंबी कूद व प्रज्ञा चक्षु छात्रों की क्रिकेट प्रतियोगिता हुई। इसके बाद ललित कला विभाग द्वारा आयोजित प्रदर्शनी का उद्घाटन किया गया।

प्रदर्शनी के संयोजन सहायक आचार्य देवेन्द्र कुमार त्रिपाठी ने बताया कि इसमें १०० से अधिक कलाकृतियों का प्रदर्शन किया गया है। डा० राकेश कुमार, मनोज कुमार, डॉ० महेन्द्र उपाध्याय, अमरीश राय, डा० विपिन पांडेय, अर्चना खरे, पूनम पांडेय व गुलाब धर आदि मौजूद रहे।

## जे आर विकलांग विवि में तीन दिवसीय विकलांग दिवस समारोह शुरू

**आज २ दिसम्बर २००९ :** चित्रकूट, १ दिसम्बर। जगद्‌गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय में मंगलवार से तीन दिवसीय विकलांग दिवस समारोह का उद्घाटन महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो० ज्ञानेंद्र सिंह ने किया। समारोह की अध्यक्षता विवि बोर्ड के सदस्य हेमराज सिंह चौबे ने किया। इसके अलावा विवि के मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान संकाय के अधिष्ठाता प्रो० योगेश चंद्र दुबे, कुलसचिव डा० अवनीश चंद्र मिश्र तथा विशिष्ट अतिथि के रूप में वाणिज्य अर्थशास्त्र के विभागाध्यक्ष प्रो० एम०पी० पाठक उपस्थित रहे।

मुख्य अतिथि के रूप में मौजूद रहे कुलपति प्रो० ज्ञानेन्द्र सिंह ने मां सरस्वती के चित्र पर माल्यार्पण एवं दीप प्रज्ज्वलित कर समारोह का शुभारंभ किया। मंचासीन रहे अतिथियों का स्वागत माल्यार्पण कर कुलसचिव डा० अवनीश चंद्र मिश्र ने किया। अपने

उद्‌बोधन में मुख्य अतिथि प्रो० सिंह ने विवि द्वारा आयोजित विकलांग दिवस समारोह की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए कहा कि इस समारोह के माध्यम से विकलांग छात्र–छात्राओं को अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करने का मंच मिलेगा। उन्होंने कहा कि यह विवि अपने आप में अद्वितीय विवि है। यहां के विकलांग छात्र–छात्राएं जो प्रतिभाएं दिखाते हैं वह दूसरे विवि में नहीं देखने को मिलती। उन्होंने मां सरस्वती से कामना की यहाँ के छात्र–छात्राएं दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की करें।

समारोह में विभिन्न खेलकूद की प्रतियोगिताएं आयोजित कराई गई। ललित कला विभाग द्वारा ललित कला प्रदर्शनी का अवलोकन मुख्य अतिथि प्रो० सिंह ने किया इसके अंतर्गत चित्रकला, मूर्तिकला तथा टेक्स कला डिजाइन व रंगोली आकर्षण का केंद्र रहे। तदोपरांत विवि के छात्र–छात्राओं ने रंगारंग कार्यक्रम पेश कर अतिथियों का मन मोह लिया। सुगम संगीत की प्रस्तुति पवन त्रिपाठी ने किया। कु० प्रेम मिश्रा ने  एकल नृत्य पेश किया। बीएफए की छात्रा कु० स्नेहा व लोकगीत संगीत विभाग की छात्रा कु० ज्योति विश्वकर्मा ने प्रस्तुत किया। युगल नृत्य कु० प्रिया सिंह एवं प्रेमलता मिश्रा ने पेश किया।

कार्यक्रम की सफलता के लिए विवि के शिक्षक डा० राकेश तिवारी, मनोज पांडेय, डॉ० महेन्द्र उपाध्याय, अंबरीश राय, डा० विपिन पांडेय, डा० विनोद कुमार मिश्र, अर्चना खरे, डा० पूनम पांडेय, डा० गुलाब धर सहित तमाम कर्मचारियों व छात्र–छात्राओं की उल्लेखनीय उपस्थिति रही। समारोह गुरुवार तक चलेगा। जिसमें विकलांग छात्र–छात्राएं आयोजित होने वाली विविध प्रतियोगी कार्यक्रमों में बढ़चढ़ कर हिस्सा लेंगे। आभार प्रो० योगेशचंद्र दुबे ने जताया। जबकि संचालन डा० तुलसीदास परौहा ने किया।

## कृतियों ने मनमोहा

**अमर उजाला २ दिसम्बर २००९ :** जगद्‌गुरु स्वामी रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय ने हर साल की तरह इस बार भी त्रिदिवसीय विकलांग दिवस पर महोत्सव का शुभारंभ हुआ। महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विद्यालय के कुलपति प्रो० ज्ञानेन्द्र सिंह ने विकलांग छात्र–छात्राओं ने विभिन्न खेल प्रतियोगिताओं में हिस्सा लिया।

त्रिदिवसीय विकलांग दिवस के उद्‌घाटन की अध्यक्षता विकलांग विश्वविद्यालय व्यवस्थापक बोर्ड के सदस्य हेमराज चतुर्वेदी ने की। मुख्य अतिथि प्रो० ज्ञानेंद्र ने उद्‌घाटन करने के बाद ललित कला के द्वारा आयोजित कला प्रर्दशनी का अवलोकन किया। इसमें लगभग एक सौ अथितियों का प्रदर्शन किया गया। इसके चित्रकला, मूर्तिकला, मृदा कृतियां और टेक्सटाइल डिजाइन का प्रदर्शन किया। रंगोली विशेष आकर्षण का केंद्र रही। कुलपति प्रो० ज्ञानेंद्र सिंह ने इस अवसर पर अपने संबोधन में विश्वविद्यालय प्रबंधतंत्र के उस प्रयास की जमकर सराहना की। जिसके तहत विकलांग छात्र छात्राओं का भविष्य उज्ज्वल बनाया जा रहा है और उन्हें विकलांग होते हुए सामाजिक रूप से अपने पैरों पर खड़े होने के लिए तैयार किया जा रहा है। महोत्सव संयोजक ललित कला विभाग के सहायक आचार्य देवेंद्र कुमार त्रिपाठी रहे। इस मौके पर विवि के मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान संकाय के अधिष्ठाता प्रो० योगेश चंद्र दुबे, कुलसचिव डा० अवनीश चंद्र मिश्रा, विशिष्ट अतिथि रीवा विवि (मप्र) के वाणिज्य और अर्थशास्त्र विभाग के अध्यक्ष प्रो० एम०पी० पाठक उपस्थित रहे। कार्यक्रम का संचालन डा० तुलसीदास परौहा ने किया।

## 'अभिशाप नहीं है विकलांगता'

### कुलसचिव ने कहा, विकलांग विवि के बच्चे होनहार

**❖ तीन दिवसीय विकलांग समारोह हुआ शुरु**

**❖ विवि में सांस्कृतिक कार्यक्रमों ने मन मोहा**

**निज संवाददाता चित्रकूट**

**हिन्दुस्तान २ दिसम्बर २००९ :** जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय में मंगलवार को तीन दिवसीय विकलांग दिवस समारोह शुरू हुआ। पहले दिन छात्र-छात्राओं के रंगारंग सांस्कृतिक कार्यक्रमों ने सभी का मन मोहा। गीतों पर सुरताल का अनूठा संगम देख सकलांग भी हैरत में पड़ गए। दोपहर को ग्रामोदय विवि के कुलपति प्रो० ज्ञानेंद्र सिंह ने कार्यक्रम का उद्घाटन करने के बाद कहा कि यहाँ विवि के बच्चों में आत्मविश्वास की कमी नहीं है।

सांस्कृतिक कार्यक्रमों में छात्र महीप सिंह तोमर ने बुंदेलखंड लोक गीत गाया तो संगीता पांडेय ने मनमोहक गजल सुनाई। गीता पंडित ने भजन तो मो० शकील, ज्योति, संजय ने गीतों से समा बाँध दिया। दो घंटे के कार्यक्रम में छात्र-छात्राओं ने सुर लय ताल का अनूठा संगम पेश किया। कुलसचिव डॉ० अवनीश चंद्र मिश्रा विवि के व्यवस्थापक बोर्ड के सदस्य हेमराज सिंह चौबे, योगेशचंद्र दुबे आदि ने बच्चों को प्रोत्साहित किया। संचालन तुलसीदास परौहा ने किया। खेलकूद के कार्यक्रम में भाला फेंक, गोला फेंक, क्रिकेट, लंबी कूद आदि में छात्र-छात्राओं ने भाग लेकर प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय स्थान प्राप्त किए। ग्रामोदय के कुलपति ने ललितकला विभाग द्वारा आयोजित लित कला प्रर्दशनी का अवलोकन किया जिसमें लगभग १०० से अधिक कलाकृतियों का प्रदर्शन किया गया। इसके अंतर्गत चित्रकला, मूर्तिकला, टैक्सटाइल डिजाइन आदि का प्रदर्शन था। रंगोली विशेष आकर्षण का केन्द्र रहा है। इसके संयोजक ललितकला विभाग के सहायक आचार्य देवेंद्र त्रिपाठी थे। इस मौके पर विवि के डॉ राकेश त्रिपाठी, मनोज पांडेय, महेंद्र उपाध्याय, अंबरीश राय, डॉ विपिन पांडेय, डॉ विनोद मिश्रा, अर्चना खरे, पूनम पांडेय आदि रहे।

## विकलांग विवि में हुए कार्यक्रम

### प्रतियोगिताओं में विजेता छात्र छात्राओं को किया गया पुरस्कृत

**निज संवाददाता चित्रकूट**

**हिन्दुस्तान ३ दिसम्बर २००९ :** विकलांग विश्वविद्यालय में चल रहे तीन दिवसीय विकलांग दिवस समारोह के दूसरे दिन भी सांस्कृतिक कार्यक्रमों की धूम रही। खेलकूद, पेंटिंग प्रतियोगिताएँ हुई, इसमें छात्र-छात्राओं ने बढ़चढ़कर हिस्सा लिया। रजिस्ट्रार डॉ० अवनीश चंद्र मिश्रा ने बताया कि गुरुवार को अंतिम दिन ट्राईसाइकिल दौड़ आदि कार्यक्रम विश्व विकलांग दिवस में होंगे।

दूसरे दिन कार्यक्रम की शुरूआत कुलसचिव अवनीश चंद्र मिश्रा ने दीप प्रज्ज्वलित कर किया। कार्यक्रम में संगीत एवं साहित्य की प्रतियोगिताएँ हुईं। छात्र पवन त्रिपाठी ने गीत गाकर प्रथम स्थान प्राप्त किया। ज्योति विश्वकर्मा तथा नेम सिंह तोमर ने प्रस्तुतियाँ देकर द्वितीय व तृतीय स्थान पर रहे। शास्त्रीय वादन प्रतियोगिता में नेम सिंह तोमर प्रथम रहीं, सुगम संगीत प्रतियोगिता में कुल ३५ प्रतिभागियों ने भाग लिया। इसमें प्रेमलता मिश्रा प्रथम रही। लोकसंगीत ने विश्वविद्यालय वातावरण में भारतीय संस्कृति की अमिट छाप छोड़ी। इसमें ज्योति विश्वकर्मा ने प्रथम स्थान प्राप्त किया। निबंध प्रतियोगिता में २३ प्रतिभागियों ने भाग किया। क्विज प्रतियोगिता भी हुई। स्वरचित काव्य पाठ प्रतियोगिता में रामदेव प्रथम, राजीव राजीव एवं तृतीय सोनू त्रिपाठी रहे। वाद विवाद प्रतियोगिता में प्रतिभागियों ने अपने विचार पक्ष एवं विपक्ष प्रस्तुत किए इसमें प्रथम स्थान पर

रामू मिश्रा रहे। गोला फेंक पुरुष वर्ग और भाला फेंक पुरुष वर्ग दोनों में राममिलन प्रथम रहे। महिला वर्ग में प्रतिभा चौहान प्रथम रहीं। यहाँ प्रो० आर्या प्रसाद त्रिपाठी, डॉ तुलसीदास, निहार रंजन, मनोज, गोपाल मिश्रा, रामशंकर, महेंद्र उपाध्याय, देवेंद्र आदि रहे।

## लोक संगीत में ज्योति व सामान्य ज्ञान में विनीत विजेता

**❖ विकलांग समारोह का दूसरा दिन**

**जागरण कानपुर ३ दिसम्बर २००९**

**चित्रकूट, कार्यालय संवाददाता :** विकलांग विश्वविद्यालय में चल रहे तीन दिवसीय विकलांग दिवस समारोह के दूसरे दिन सांस्कृतिक, खेलकूद व पेंटिंग प्रतियोगिता का आयोजन हुआ। जिसमें सभी विभाग के छात्रों ने बढ़-चढ़कर भागीदारी की।

बुधवार को विश्वविद्यालय प्रांगण में आयोजित कार्यक्रम में कुलसचिव डा० अवनीश चंद्र मिश्रा ने संबोधित करते हुए कहा कि विश्वविद्यालय में विकलांगों को सकलांगों की भाँति मजबूत किये जाने का प्रयास किया जा रहा है। पढ़ाई के अतिरिक्त अन्य गतिविधियों में भागीदारी कराकर इन छात्रों का मनोबल बढ़ाया जाता है। संगीत व साहित्य प्रतियोगिता में पवन त्रिपाठी प्रथम, ज्योति विश्वकर्मा द्वितीय व नेम सिंह तोमर प्रथम, सुनीता राज द्वितीय व मनीष सिरौठिया तृतीय स्थान प्राप्त किया। शास्त्रीय वादन में नेम सिंह तोमर प्रथम, सुनीता राज द्वितीय व मनीष सिरौठिया तृतीय स्थान में रहे। सुगम संगीत प्रतियोगिता में ३५ प्रतिभागियों ने हिस्सा लिया। जिसमें प्रेमलता प्रथम, पवन त्रिपाठी द्वितीय व मो० शकील अंसारी ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। इसके बाद लोक संगीत प्रतियोगिता में छात्रों ने श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया। इसमें ज्योति विश्वकर्मा प्रथम, नेम सिंह द्वितीय व संजय शुक्ला तृतीय रहे। निबंध प्रतियोगिता में २३ प्रतिभागियों ने हिस्सा लिया। क्विज प्रतियोगिता में पांच टीमों ने हिस्सा लिया। जिसमें संजीव व संजीत की टीम प्रथम व जियाउद्दीन व आनंद पाल की टीम द्वितीय स्थान पर रही। सामान्य ज्ञान प्रतियोगिता में विनीत पांडेय ने प्रथम स्थान प्राप्त किया। कार्यक्रम के दूसरे चरण में खेलकूद व पेंटिंग प्रतियोगिता आयोजित हुई। गोला फेंक पुरुष वर्ग में राममिलन प्रथम, गौरव द्वितीय व दयाशंकर तीसरे स्थान पर रहे। महिला वर्ग में रूबी राय प्रथम, प्रतिभा चौहान द्वितीय व अमृता ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। भाला फेंक पुरुष वर्ग में राममिलन प्रथम, दयाशंकर द्वितीय व चुनकू राम तृतीय रहे। जबकि महिला वर्ग में प्रतिभा चौहान प्रथम, नेहा द्वितीय व शिखा तृतीय स्थान पर रहीं। डिस्कस थ्रो पुरुष वर्ग में राममिलन प्रथम, मायाशंकर द्वितीय, प्रवीण कुमार तृतीय रहे, जबकि महिला वर्ग में रूबी राय प्रथम, अमृता सिंह द्वितीय व प्रतिभा चौहान तृतीय रहीं। प्रो० आर्या प्रसाद त्रिपाठी, डा० तुलसी दास परौहा, निहार रंजन मिश्रा, देवेंद्र त्रिपाठी, किरन त्रिपाठी, सुनीता श्रीवास्तव, राकेश तिवारी, अंबरीश राय, विपिन पांडेय, विनोद मिश्रा, मनोज पांडेय, गोपाल मिश्रा, गौरव श्रीवास्तव, रमाशंकर, अमित अग्निहोत्री व महेंद्र उपाध्याय आदि मौजूद रहे।

## संगीत में पवन, प्रेमलता अव्वल

### विकलांग दिवस समारोह में खेलकूद व पेंटिंग प्रतियोगिताएं

**❖ अमर उजाला ब्यूरो**

**अमर उजाला ३ दिसम्बर २००९ चित्रकूट:** जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय में चल रहे तीन दिवसीय विकलांग दिवस समारोह के दूसरे दिन सांस्कृतिक कार्यक्रम की प्रस्तुतियों ने लोगों का मनमोह लिया। पवन त्रिपाठी ने 'गा रहा हूँ इस महफिल में' गीत गाकर प्रतियोगिता में प्रथम स्थान पाया। इसके अलावा खेलकूद और पेंटिंग प्रतियोगिताएँ भी हुईं।

कार्यक्रम का शुभारंभ विश्वविद्यालय के कुलसचिव डॉ० अवनीश चंद्र मिश्र ने मां सरस्वती के चित्र के समक्ष दीप जलाकर किया। प्रथम सत्र में संगीत प्रतियोगिता में पवन त्रिपाठी ने 'गा रहा हूँ महफिल में' गीत गाकर समा बांध दिया। इस गीत के लिए उसे प्रथम घोषित किया। ज्योति विश्वकर्मा और नेम सिंह तोमर को क्रमशः द्वितीय और तृतीय स्थान मिला। शास्त्रीय गायन (तबला) प्रतियोगिता में नेम सिंह तोमर को प्रथम, सुनीता राज को द्वितीय और मनीष सिरोठिया को तृतीय स्थान मिला। इसके बाद हुई सुगम संगीत प्रतियोगिता में प्रेम लता मिश्र, पवन त्रिपाठी और शकील अंसारी को क्रमशः प्रथम, द्वितीय और तृतीय स्थान मिला। लोक संगीत कार्यक्रम में ज्योति को प्रथम, नेम सिंह को द्वितीय और संजय शुक्ल को तृतीय स्थान मिला। निबंध प्रतियोगिता में २३ लोगों ने प्रतिभाग किया। इस सत्र में सामान्य ज्ञान, क्विज प्रतियोगिताएं भी हुई। दूसरे सत्र में खेलकूद और पेंटिंग प्रतियोगिताओं का आयोजन हुआ। नेत्रहीन छात्रों की प्रतियोगिता में प्रज्ञा चक्षु तुलसी पीठ की टीम विजेता रही। इस सत्र में गोला फेंक, भाला फेंक, डिस्कस थ्रो आदि प्रतियोगिताएं हुई। समारोह का संचालन प्रोफेसर आर्या प्रसाद ने किया। इस अवसर पर तुलसीदास परौंहा, निहार रंजन मिश्र, मनोज पांडे, गोपाल मिश्र, राम शंकर, अमित अग्निहोत्री, महेंद्र उपाध्याय, देवेंद्र त्रिपाठी, किरन त्रिपाठी, सुनीता श्रीवास्तव, डॉ राकेश तिवारी, अंबरीष राय के अलावा तमाम छात्र और छात्राएं मौजूद रही।

## विकलांगों को बजट का १० फीसदी देंगे

### संस्कृति मंत्री ने दिया आश्वासन

### विकलांग विवि को दस लाख रुपये दिए

### निज संवाददाता चित्रकूट

**हिन्दुस्तान ४ दिसम्बर २००९ :** विकलांग विश्वविद्यालय में गुरुवार को प्रदेश के संस्कृति मंत्री सुभाष पांडेय ने कहा कि विकलांग होना अभिशाप नहीं है। उनका प्रयास होगा कि होनहार कलाकारों के लिए सरकार बजट में १० फीसदी अनुदान दे ताकि प्रोत्साहित किया जा सके। उन्होंने विवि को १० लाख रुपये देने की घोषणा की।

गुरुवार को विकलांग दिवस समारोह के अंतिम दिन संस्कृति मंत्री ने कहा कि वर्तमान समय समाज के मानसिक विकलांगों को भी ऐसे विवि की जरूरत है। चित्रकूट त्याग की भूमि है जिसने भरत को सर्वस्व त्याग का संदेश दिया। यहाँ से हमें भ्रष्टाचार रहित जीवन जीने का संदेश मिलता है जो राजनीति में भी संभव है। विवि के आजीवन कुलपति जगद्गुरु रामभद्राचार्य ने कहा कि विकलांग बच्चे समानभूति के पात्र हैं न कि सहानुभूति के पात्र। विवि के बच्चों की आत्मा बहुत मजबूत है इसलिए उन्हें किसी के सहारे की आवश्यकता नहीं है। इस समारोह के अंतिम दिन ट्राईसाइकिल दौड़ बेड़ी पुलिया से डिग्री कालेज तक की प्रतियोगिता में २३ प्रतिभागियों ने भाग लिया जिसमें अरुण कुमार प्रथम, नत्थू लाल द्वितीय एवं राकेश कुमार ने तृतीय स्थान प्राप्त किया।

त्रिदिवसीय महोत्सव के समापन में आनंद मेला का भी आयोजन किया गया। इसका उद्घाटन डॉ० गीता देवी मिश्र ने किया। ललितकला विभाग देवेंद्र त्रिपाठी के द्वार छात्र-छात्राओं ने भारत माता का प्राकृतिक मानचित्र बनाकर दर्शनार्थियों को मंत्रमुग्ध कर दिया मुख्यअतिथि के द्वारा विवि के छात्रों द्वारा बनाई गई विभिन्न रंगोलियों तथा कलाकृतियों के अवलोकन किया प्रो आर्या प्रसार त्रिपाठी ने आभार जताया।

## छात्रों ने कलाकृतियाँ बनाकर दिखाया हुनर

**जागरण ४ दिसम्बर २००९ चित्रकूट संवाददाता:** विकलांग विवि के प्रागण में लगाये गये आनंद मेला में विकलांग छात्र-छात्राओं ने अपने

हुनर का कमाल दिखाया। हाथी घोड़े के साथ ही फूलदान व तमाम जानवरों व पक्षियों की कलाकृतियां इस बात की गवाही दे रहे थे कि वह भी किसी से पीछे नहीं हैं और वे अपनी बनाई वस्तुओं की नुमाइश लगाकर उसे बेच भी सकते हैं। रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय में बीएफए कर रही छात्रा निधि और नेहा ने बताया कि वैसे तो अभी तक उनके बनाये गए उत्पादों की बिक्री नहीं हुई है। यह उत्पाद पहली ही बार लगाए गए हैं लेकिन अगर ये बिकने लगेंगे तो फिर वे इसकी मार्केटिंग करने के लिए सोच सकते हैं। छात्राओं ने बताया कि इस हुनर को उन्हें सिखाने का काम उनके शिक्षक ने किया है और इस काम में उनकी पूरी फैकल्टी के छात्र व छात्राएँ लगे हुए हैं। इनको बनाने के लिए रद्दी, अखबारी कागज के अलावा रंगों का इस्तेमाल किया जाता है। इस काम में स्नेहा, शिखा, संतोष, कुशल, दुर्गेश, पवन, ज्ञानेंद्र आदि भी लगे हुए हैं।

## विकलांगों के कल्याण के लिए विश्वविद्यालय की है अहम् भूमिका : पाण्डेय

### केन्द्रीय विश्वविद्यालय बनाकर लूंगा दम : कुलाधिपति स्वामी रामभद्राचार्य, एस०पी० ने हरी झण्डी दिखा रवाना किया ट्राई साइकिल दौड़

**सीतापुर चित्रकूट ४ दिसम्बर २००९ :** जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित तीन दिवसीय विकलांग दिवस समारोह का समापन विश्वविद्यालय के आजीवन कुलाधिपति स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज एवं प्रदेश सरकार के संस्कृति मंत्री सुभाष पांडेय के करकमलों द्वारा किया गया। इस मौके पर सांस्कृतिक कार्यक्रमों के अलावा विकलांगों की ट्राई साइकिल दौड़ के आयोजन भी हुये। समापन समारोह की शुरुआत मुख्य अतिथि द्वारा सरस्वती के चित्र पर दीप प्रज्जवलन के साथ की गई। प्रिया सिंह, प्रेमलता मिश्रा, स्नेहा ने अतिथियों के सम्मान में नृत्य प्रस्तुत किया। डा० राजकुमार उपाध्याय मणि द्वारा लिखित व प्रकाशित ग्रंथ सूरदास और उनकी सूरसारावली का विमोचन भी संस्कृति मंत्री द्वारा किया गया।

संस्कृत मंत्री सुभाष पांडेय ने कहा कि कोई व्यक्ति विकलांग नहीं होता है बल्कि मन की विकलांगता उस व्यक्ति को विकलांग बनाती है। मानसिक विकलांगता दूर करने के लिए ऐसे विवि की आज जरूरत है। उन्होंने कहा कि इस विद्यालय का नाम विकलांग वि०वि० नहीं होना चाहिए क्योंकि यह वि०वि० मानवता का मन्दिर है। उन्होंने वि०वि० को सहायतार्थ अपने निजी कोष से १० लाख रुपये देने की घोषणा की और कहा कि उनका मंत्रालय हमेशा मदद के लिए खड़ा रहेगा। मंत्री ने नाना जी के योगदान की सराहना करते हुए कहा कि त्याग की भूमि है जिसमें भरत को त्याग का संदेश दिया था। इस चित्रकूट से हमें भ्रष्टाचार रहित जीवन जीने का संदेश मिलता है। कुलाधिपति रामभद्राचार्य जी महाराज ने कहा कि विकलांग बच्चे समानभूति के भूखे हैं न कि सहानुभूति के। उन्होंने आगे कहा कि इस वि०वि० के बच्चों की आत्मा बहुत मजबूत है। उन्हें किसी के सहारे की आवश्यकता नहीं है। स्वामी जी ने जय भारत जय विकलांग की उद्घोषणा करते हुए कहा कि यह वि०वि० जल्दी केन्द्रीय वि०वि० बनेगा और मैं जीवनपर्यन्त इसका कुलाधिपति बना रहूँगा। मैं संन्यासी हूँ मैं इस वि०वि० के विकास के लिए सदैव समाज से भिक्षा मांगता रहूँगा, अपने लिए नहीं। प्रातः १०.३० बजे बेडीपुलिया से गोस्वामी तुलसीदास डिग्री कालेज तक ट्राई साइकिल दौड का आयोजन हुआ जिसमें २३ प्रतिभागियों ने भाग लिया। दौड़ की शुरुआत पुलिस अधीक्षक अपर्णा एचएस ने हरी झण्डी दिखाकर की। इस मौके पर वि०वि० कुलसचिव

डा० अवनीश चन्द्र मिश्र, ग्रामोदय वि०वि० के क्रीडा अध्यक्ष डा० तुषारकान्त शास्त्री भी मौजूद रहे। तदुपरान्त शिक्षक कर्मचारियों की संयुक्त बालीबाल प्रतियोगिता अपर पुलिस अधीक्षक विपिन कुमार मिश्र एवं प्रो० आर्या प्रसाद तिवारी की देखरेख में सम्पन्न हुई। प्रथम दल के कप्तान कुलसचिव डा० अवनीश चन्द्र एवं दूसरे दल के कप्तान डॉ० शचीन्द्र उपाध्याय रहे। समापन के समय आनन्द मेला का भी आयोजन किया गया। जिसका उद्‌घाटन कुलाधिपति सचिव डा० गीतादेवी मिश्र द्वारा किया गया। इसकी संचालिका डा० सुनीता श्रीवास्तव का योगदान मेले के आयोजन में सराहनीय रहा। ललित कला विभाग देवेन्द्र त्रिपाठी के निर्देशन में छात्र छात्राओं ने भारत माता का प्राकृतिक मानचित्र बनाकर दर्शकों की वाहवाही लूटी। मुख्य अतिथि ने वि०वि० के विभिन्न प्रकल्पों व छात्रों द्वारा बनाई गई रंगोलियों कला कृतियों का अवलोकन भी किया। हिन्दी विभागाध्यक्ष ने सभी का आभार व्यक्त किया। जबकि कार्यक्रम का सफल संचालन डा० तुलसीदास परौहा द्वारा किया गया।

## व्यक्ति शरीर से नहीं मन से होता विकलांग

❖ **तीन दिवसीय विकलांग समारोह का समापन**

❖ **विकलांगों की ट्राई साइकिल दौड़ में अरुण बने विजेता**

❖ **संस्कृति मंत्री ने विजेता छात्र छात्राओं को किया पुरस्कृत**

**चित्रकूट संवाददाता ४ दिसम्बर २००९ :** रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय में चल रहे तीन दिवसीय कार्यक्रमों का समापन करने पहुँचे सूबे के संस्कृति मंत्री सुभाष पांडेय ने विकलांग विवि के नाम पर आपत्ति जताते हुए कहा कि मानवता के इस मंदिर का नाम विकलांग विवि नहीं होना चाहिये। उन्होंने विवि के लिए दस लाख रुपये की घोषणा करते हुए कहा वास्तव में कोई भी व्यक्ति विकलांग नहीं होता बल्कि उसका मन उसे विकलांग बना देता है। उन्होंने कहा आज के दौर में मानसिक विवि की भी आवश्यकता है। चित्रकूट को त्याग की भूमि बताते हुए कहा कि इस भूमि ने पूरे विश्व को भ्रष्टाचार रहित जीने का संदेश दिया है। इस काम के लिए उन्होंने नाना जी देशमुख की भी प्रशंसा की।

विवि के कुलाधिपति जगद्‌गुरु राभद्राचार्य ने कहा कि विकलांग बच्चे समानभूति के पात्र हैं सहानुभूति के नहीं। कहा कि विकलांग बच्चों की आत्मा बहुत मजबूत है इसलिए उन्हें किसी के सहारे की जरूरत नहीं है। उन्होंने कहा कि शीघ्र ही यह विवि केन्द्रीय विश्वविद्यालय बनेगा। अपने आप को संन्यासी बताते हुए कहा कि विवि के लिए वे सदैव भिक्षा मांगते रहेंगे। कुलसचिव डा० अमरीश चंद्र मिश्रा ने बताया कि आज प्रदेश सरकार ने इस विवि के श्रीनारायण यादव को दक्ष विकलांग व्यक्ति पुरस्कार प्रदान किया है।

कार्यक्रम को हेमराज सिंह व कु० गीता देवी बुआ जी ने भी संबोधित किया। संस्कृति मंत्री ने तीन दिनों से चल रही प्रतियोगिताओं के विजेताओं को प्रमाणपत्र व ट्राफी प्रदान की। इसके पूर्व उन्होंने विवि के सभागार में लगी कला प्रदर्शनी के साथ ही पूरे कैंपस को भी देखा। गुरुवार को विवि के छात्रों के दिन की शुरुआत बेड़ी पुलिया से हुई यहां ट्राई साइकिल दौड़ के हरी झंडी पुलिस अधीक्षक अर्पणा एच एच ने दिखायी। इस दौड़ के विजेता अरुण कुमार रहे। दूसरे स्थान पर नत्थू लाल व तीसरे स्थान पर राकेश त्रिपाठी रहे। इसके बाद विवि प्रांगण में वालीबाल का मैत्री मैच विवि के अधिकारी व कर्मचारियों के मध्य हुआ। जिसमें कुलसचिव की टीम को विवि के डा० शचीन्द्र उपाध्याय की टीम ने हरा दिया। विवि के लगाये गये आनंद मेला का उद्‌घाटन कुलाधिपति की निजी सचिव गीता देवी ने

किया। यहाँ विकलांग छात्र छात्राओं के खाने पीने की वस्तुओं के साथ ही हस्तशिल्प के उत्पादों की प्रदर्शनी लगायी थी।

## 'देश के नामचीन कलाकार के साथ मिलेगा मौका

### पाठा के विभिन्न इलाको में गुमनामी में जी रहे लोग कलाकारो के लिए अच्छी खबर कला के साथ वाद्ययंत्र भी चमका ले लोक कलाकार संस्कृति मंत्री

**चित्रकूट संवाददाता :** अत्यधिक पिछड़े पाठा के विभिन्न इलाकों में गुमनामी का जीवन जी रहे लोक कलाकारों के लिए एक अच्छी खबर है। क्योंकि मानिकपुर टाउन एरिया में करीब दो सप्ताह के भीतर एक अच्छा सांस्कृतिक मंच सजेगा जिसमें वे अपनी कला का जौहर प्रदर्शित कर सकेंगे। इसके अलावा देश के किसी एक नामचीन कलाकार का साथ भी मिलेगा। यह आश्वासन उत्तर प्रदेश के संस्कृति मंत्री सुभाष पांडे ने अमर उजाला में हुई एक अनौपचारिक बातचीत में दिया।

संस्कृति मंत्री सुभाष पांडे ने कहा कि चित्रकूट में एक ऐसा सांस्कृतिक मंच चाहते हैं जिस पर पचास फीसदी स्थानीय लोक कलाकारों को मौका मिले और पचास फीसदी कलाकारों को आमंत्रित किया जाएगा जिनकी कला का देशभर में लोग लोहा मानते हैं। बोले, डी०एम० से इस संबंध में बात करेंगे और हो सकेगा तो इस वर्ष ही चित्रकूट महोत्सव की शुरुआत करा देंगे। अगर इस बार महोत्सव न हो सका तो अगले वर्ष जरूर होगा। बोले, चित्रकूट महोत्सव के लिए वे लगातार प्रयास कर रहे हैं, इसके लिए संस्कृति विभाग से बात चल रही है। मंत्रालय और विभाग के सहयोग से धन आवंटित कर जल्द ही चित्रकूट में महोत्सव की शुरुआत की जाएगी जो कि अनवरत जारी रहेगा हमारी कोशिश रहेगी कि चित्रकूट महोत्सव को कैलेंडर पर लिया जाए ताकि हर साल इसका आयोजन हो। बोले, चित्रकूट महोत्सव के आयोजन से पहले वे स्थानीय लोक कलाकारों के लिए दो दिन का ट्रेनिंग कैंप भी लगवाएंगे। वे डीएम से बात कर मानिकपुर में दो सप्ताह के भीतर ही पाठा के लोककलाकारों को मौका देने को कार्यक्रम का आयोजन कराएंगे तथा लखनऊ जाते ही संस्कृति विभाग से बात कर धन भी आवंटित कर देंगे।

## 'भ्रष्टाचार रहित जीवन जीने का संदेश देती है तपोभूमि'

**अमर उजाला चित्रकूट ४ दिसम्बर २००९:** चित्रकूट त्याग की भूमि है जिसने भारत को सर्वस्व त्यागने का संदेश दिया। इस तपोभूमि से हमें भी भ्रष्टाचार रहित जीवन जीने का संदेश मिलता है। जो राजनीति में भी संभव है। यह उद्‌गार संस्कृति मंत्री सुभाष पांडे ने जगद्‌गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय में तीन दिवसीय विकलांग दिवस समारोह के अवसर पर व्यक्त किए।

गुरुवार को समापन समापन समारोह में मुख्य अतिथि संस्कृति मंत्री ने कहा कि कोई भी व्यक्ति विकलांग नहीं होता है बल्कि उसके मन की विकलांगता उसे विकलांग बनाती है। संस्कृति मंत्री ने विश्वविद्यालय को दस लाख रुपए देने की घोषणा करते हुए कहा कि कलाकारों को आगे बढ़ाने के लिए हमारा मंत्रालय अधिक से अधिक सहयोग करता रहेगा। इसके पूर्व मंत्री ने आनंद मेला का अवलोकन कर ललित कला संकाय के विद्यार्थियों निधि, नेहा, किरन, स्नेहा, शिखा, उमेश, कुशल, पवन और शिक्षक देवेंद्र त्रिपाठी द्वारा बनाई गई अखंड भारत माता के प्राकृतिक मानचित्र की भूरि-भूरि प्रशंसा की। कार्यक्रम में डॉ० राजकुमार उपाध्याय मणि द्वारा लिखित और प्रकाशित ग्रंथ 'सूरदास तथा उनकी सूरसारावली' का विमोचन भी किया गया। कुलाधिपति जगद्‌गुरु रामभद्राचार्य ने कहा कि विकलांग बच्चे सहानुभूति नहीं बल्कि समानभूति के पात्र हैं। इस अवसर पर

कुल सचिव डा० अवनीश चंद्र मिश्रा, कुलाधिपति की निजी सचिव गीता मिश्र उर्फ बुआ जी, हेमराज सिंह चतुर्वेदी, प्रभारी डीआईओएस क्रांति पांडे, तहसीलदास एके श्रीवास्तव, उप जिलाधिकारी गुलाब सिंह, समाजसेवी पंकज अग्रवाल सहित कई लोग उपस्थित रहे।

## हमसे दूर होता जा रहा धर्म

**❖ तुलसीपीठाधीश्वर श्रीरामभद्राचार्य की दैनिक जागरण से चर्चा**

**जागरण ५ दिसम्बर २००९ कानपुर स्टाफ रिपोर्टर:** धर्म अपरिवर्तित है, उसका अनादर हो रहा है। आज धर्म के नाम ही समाज का निर्माण हो रहा है। लोग कर्म भूलते जा रहे हैं। अपना कर्म करना ही सच्चा धर्म है। अशिक्षित समाज, साधु-संतों के कारण आज हम धर्म से दूर होते जा रहे हैं। भगवा व गेरुआ वस्त्र पहनने से ही कोई संत नहीं हो जाता।

दैनिक जागरण से चर्चा करते हुए तुलसीपीठाधीश्वर श्रीरामभद्राचार्य ने कहा कि अयोध्या में राम मंदिर वर्ष २०१० में बन जायेगा। भाजपा द्वारा नहीं, भव्य राम मंदिर न्यायिक प्रक्रिया से ही बनेगा। उन्होंने कहा कि जो लोग अशिक्षित हैं, लिखते-पढ़ते नहीं, वही रामायण में संशोधन की बात करते हैं।

मैंने इस महाकाव्य में संशोधन नहीं, संपादन किया है। संपादन करना किसी का भी मौलिक अधिकार है। श्रीरामभद्राचार्य ने कहा कि राक्षस तो मर गये लेकिन आज मुद्राराक्षस लोगों के सिर चढ़कर बोल रहा है। इससे समाज गलत दिशा में जा रहा है। आज धर्म हमसे दूर निकल गया है। इसे नहीं रोका गया तो, वैदिक काल से चली आ रही हमारी संस्कृति का ह्रास हो जायेगा। इसके लिए कदम उठाने के सवाल पर श्रीरामभद्राचार्य ने कहा कि उन्हें ऐसा करने कहां दिया जाता है।

### भगवान राम के हैं संत-पूज्य रामभद्राचार्य जी

**अमर उजाला कानपुर ५ दिसम्बर २००९ :** भाजपा ने साधु-संतों की दूरी को लेकर उठे सवाल का जवाब देते हुए तुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामभद्राचार्य ने कहा कि संतों का भाजपा अथवा किसी भी दल से कोई वास्ता नहीं है। साधु-संत तो सिर्फ भगवान राम के हैं। मेरा यह विश्वास है कि बगैर किसी दल की मदद से न्यायिक प्रक्रिया के अन्तर्गत जल्द ही अयोध्या में भव्य राम मंदिर बनकर तैयार होगा।

स्वामी रामभद्राचार्य विकलांग व्यावसायिक केंद्र में विकलांगों को उपकरण वितरित करने आए हुए थे। रामायण को लेकर उठे विवाद से उन्होंने कहा कि मैंने सिर्फ रामायण का संपादन किया है, संशोधन नहीं। जो लोग इसे विवादित बता रहे हैं, गलत है। रामभद्राचार्य के मुताबिक आज धर्म के नाम पर अशिक्षित साधु-सेंत आडंबर फैला रहे हैं। इसी कड़ी विश्व विकलांग दिवस के मौके पर कुलाधिपति रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय चित्रकूट धाम के स्वामी रामभद्राचार्य ने क्रीड़ा प्रतियोगिता के विजयी छात्र-छात्राओं को पुरस्कृत किया। साथ ही उन्हें स्व रोजगार हेतु सिलाई मशीनें टूल किट और बैसाखी वितरित की। स्वामी जी ने कुछेक छात्राओं से वादा किया कि वे उनका अपने कालेज में दाखिला कराएंगे और उनके विवाह का प्रयास करेंगे। वीआरसी प्रमुख आरआर मिश्रा ने स्वामी के जीवन के बारे में बताया। एटीआई के निदेशक दीपांकर मलिक, एस चटर्जी, एसके सक्सेना, पीके बिंदुआ, एसपी भट्टाचार्य मौजूद रहे।

## नाम-दाम वाला नहीं कर सकता सेवा

**पूज्यपाद जगद्गुरु जी ने कहा-**

**❖ जो राम से घृणा करता है, वह राष्ट्र से भी घृणा करता है।**

**❖ विकलांगों को तीन नहीं, १० फीसदी आरक्षण चाहिए।**

**❖ विकलांग पुनर्वास केन्द्र में बांटी सिलाई मशीनें, बैसाखी।**

**जागरण कानपुर ५ दिसम्बर २००९ कानपुर स्टाफ रिपोर्टर :** जो राम से घृणा करता है, वह राष्ट्र से भी घृणा करता है। उनके विश्वविद्यालय में सभी जाति, धर्म के विकलांग विद्यार्थी पढ़ सकते हैं, पर उन्हें वन्दे मातरम् कहना होगा। वे विकलांगों को तीन नहीं, १० फीसदी आरक्षण चाहते हैं जिसे लेकर रहेंगे। जो सेवा करते हैं, वह नाम के पीछे नहीं भागते। नाम, दाम चाहने वाले कभी सेवा नहीं कर सकते हैं। यह कहना है जगद् गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय के कुलाधिपति श्री रामभद्राचार्य जी महाराज का।

वे एटीआई परिसर उद्योगनगर स्थित विकलांग व्यावसायिक पुनर्वास केन्द्र में विकलांग दिवस पर आयोजित कार्यक्रम में मुख्य अतिथि के रूप में बोल रहे थे। उन्होंने कहा कि विकलांगों के उत्थान के लिए सरकारें काम कर रही हैं।

श्री रामभद्राचार्य जी महाराज ने कहा कि विकलांग की सेवा जरूरी है। जीवन को कामल बनाये। विकलांगों की सहानुभूति नहीं, बल्कि मानसिक संतोष देना जरूरी है। कार्यक्रम में पहुँचे श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज का विकलांग व्यावसायिक पुनर्वास केंद्र के सहायक निदेशक आर०आर० मिश्र ने पुष्पाहार से स्वागत किया।

कार्यक्रम में श्रीरामभद्राचार्य जी ने क्रीड़ा प्रतियोगिता के विजेताओं को पुरस्कार व स्वरोजगार हेतु ८ सिलाई मशीनें, १२ बैसाखियां, टूल किट आदि वितरित किये। इस मौके पर एटीआई निदेशक दीपांकर मलिक, आरडीएटी के क्षेत्रीय निदेशक एस० चटर्जी, एलिकमो के महाप्रबंधक एसके सक्सैना, आरएलसी के श्रम प्रवर्तन अधिकारी पीके बिंदुआ, बीआरसी के मनोवैज्ञानिक परवेज आलम मौजूद थे। कार्यक्रम के दौरान स्वागत गीत, मंगल आरती डा० विजयलक्ष्मी मिश्रा ने की।

**मैं दूँगा विकलांगों को रोजगार-** उन्होंने कहा कि विकलांग विश्वविद्यालय में पढ़ने वाले हर छात्र को रोजगार की गारंटी है। यहां पढ़ने आने वाले छात्र केवल पढ़ाई पर ध्यान दें। वे अपने रहने, खाने, पढ़ने पर होने वाले खर्च की चिंता नहीं करें। उन्होंने कहा कि शहरवासी मुझे दक्षिणा में सौ विकलांग दें। उनका पुनर्वास वे स्वयं करेंगे।

**केंद्र व राज्य से एक रुपया नहीं लिया-** श्रीरामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय भगवान श्रीराम ने बनवाया है। मेरा संकल्प है कि कथा, भागवत में मिलने वाला धन विश्वविद्यालय के नाम होगा। मेरा खर्चा पढ़ाई में मिलने वाले कई पुरस्कारों से चला जाता है। विकलांग विश्वविद्यालय के लिए केंद्र व राज्य सरकार से एक भी रुपया न लिया, न आगे लूंगा।

**मोनिका मेरी दत्तक पुत्री-** दृष्टिहीन इंटर की छात्रा मोनिका तिवारी मेरी दत्तक पुत्री है। इंटर की परीक्षा देने के बाद वह जुलाई माह में चित्रकूट आ जाये, उसकी पढ़ाई, नौकरी और शादी की सारी जिम्मेदारी अब मेरी है। रामभद्राचार्य जी ने समारोह में दक्षिणा में मिले एक हजार रुपये भी मोनिका को दे दिये। रामभद्राचार्य जी ने 'म्यूजिकल दौड़ प्रतियोगिता' में द्वितीय रही बीए की छात्रा अंजू जायसवाल को भी आगे की पढ़ाई के लिए अपने पास चित्रकूट आने का न्यौता दिया।

## हमसे दूर होता जा रहा धर्म

**❖ चित्रकूट तुलसीपीठाधीश्वर श्रीरामभद्राचार्य की दैनिक जागरण से चर्चा-**

**❖ भव्य राम मंदिर का निर्माण वर्ष २०१० होकर रहेगा**

**कानपुर स्टाफ रिपोर्टर :** धर्म अपरिवर्तित है, उसका अनादर हो रहा है। आज धर्म के नाम ही समाज का निर्माण हो रहा। लोग कर्म भूलते जा रहे हैं। अपना कर्म करना ही सच्चा धर्म है। अशिक्षित समाज, साधु-संतों के कारण आज हम धर्म से दूर होते जा रहे हैं। भगवा व गेरुआ वस्त्र पहनने से कोई संत नहीं हो जाता।

दैनिक जागरण से चर्चा करते हुए तुलसी-पीठाधीश्वर श्री रामभद्राचार्य ने कहा कि अयोध्या में राम मंदिर वर्ष २०१० में बन जायेगा। भाजपा द्वारा नहीं, भव्य राम मंदिर न्यायिक प्रक्रिया से ही बनेगा। उन्होंने कहा कि जो लोग अशिक्षित हैं, लिखते-पढ़ते नहीं, वही रामायण में संशोधन की बात करते हैं। मैंने इस महाकाव्य में संशोधन नहीं, संपादन किया है। संपादन करना किसी का भी मौलिक अधिकार है। श्रीरामभद्राचार्य ने कहा कि राक्षस तो मर गये, लेकिन आज मुद्राराक्षस लोगों के सिर चढ़कर बोल रहा है। इससे समाज गलत दिशा में जा रहा है। आज धर्म हमसे बिल्कुल दूर निकल गया है। इसे नहीं रोका गया, तो वैदिककाल से चली आ रही हमारी संस्कृति का ह्रास हो जायेगा। इसके लिए कदम उठाने के सवाल पर श्रीरामभद्राचार्य ने कहा कि उन्हें ऐसा करने कहां दिया जाता है।

## विकलांगों को अनाथ नहीं, जगन्नाथ मान करें सेवा

❖ **विकलांग व्यवसायिक पुनर्वास केन्द्र में विश्वविकलांग दिवस समारोह**

**राष्ट्रीय सहारा ५ दिसम्बर २००९ कानपुर ( एलएनबी ) :** विकलांगों को अनाथ नहीं, जगन्नाथ मानकर सेवा करें तो हमें चारों धाम जाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। विकलांगों को हमारी सहानुभूति की जरूरत नहीं है, बल्कि हमें विकलांगों की अभावजनित पीड़ा को दूर करना होगा। यह बात शुक्रवार को जगद्गुरु रामानन्दाचार्य रामभद्राचार्य जी महाराज ने गोविंदनगर सीटीआई स्थित विकलांग व्यवसायिक पुनर्वास केन्द्र में आयोजित विश्व विकलांग दिवस समारोह में कही।

उन्होंने कहा कि जब मैं विकलांगों की सेवा करता हूँ तो मुझे लगता है कि मैं जगन्नाथ की सेवा कर रहा हूँ। उन्होंने कहा कि मैंने विकलांगों के लिए रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय खोला है, जहां पर विकलांगों को निःशुल्क शिक्षा दी जाती है। विश्वविद्यालय को प्रदेश व केंद्र सरकार से एक भी पैसे का अनुदान नहीं मिलता है, और न ही वे लेना चाहते हैं, क्योंकि सरकार कागजों पर बहुत कुछ करती है और होता कुछ और है। उन्होंने कहा कि विश्वविद्यालय के लिए यदि मैं सरकारी प्रपंचों में रहूँगा तो विकलांगों की सेवा नहीं हो पायेगी। उन्होंने कहा कि मेरे विश्वविद्यालय में शिक्षा ग्रहण करने वाले विकलांग को रोजगार उपलब्ध कराने की गारंटी मेरी होती है। उन्होंने नगर के विकलांगों से विश्वविद्यालय में आकर शिक्षा ग्रहण करने का आह्वान किया। कार्यक्रम के दौरान स्वामी रामभद्राचार्य ने विकलांगों को सिलाई मशीन, टूल किट व बैसाखी वितरित की। उन्होंने 'रघुपति राघव राजा राम' भजन गाने वाली छात्रा मोनिका तिवारी को एक हजार रुपये का नगद पुरस्कार भी दिया। इस मौके पर वीआरसी कानपुर के प्रमुख आर०आर० मिश्रा, एटीआई के निदेशक दीपांकर मलिक, मनोज त्रिपाठी, एस चटर्जी, एसके सक्सैना, पीके बिंदुआ, एसपी भट्टाचार्य, परवेज आलम आदि मौजूद थे। ❑❑❑

।।श्री।।

# पिबत भागवतं रसमालयम्

## पूज्यपाद जगद्गुरु जी के श्रीमुख से पुनः ऐतिहासिक भागवत कथा श्रीद्वारका धाम ( गुजरात ) में

अत्यन्त प्रसन्नता का समाचार है कि श्रीबदरीनाथ श्रीजगन्नाथपुरी तथा श्रीरामेश्वरम् में पूज्यपाद जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज के श्रीमुख से श्रीमद्भागवत कथा कराने के उपरान्त श्रीराघव परिवार पुनः चौथे धाम श्रीद्वारका (गुजरात) में दिनांक १ मई २०१० से ८ मई २०१० तक श्रीमद्भागवत कथा का आयोजन करा रहा है।

आप सभी भागवत कथा प्रेमियों से विनम्र प्रार्थना है कि इस कथा में सम्मिलित होने के लिए ३१ जनवरी २०१० तक हमारे निम्नलिखित पते पर अपनी स्वीकृति भेजने की कृपा करें। साथ ही व्यवस्था सम्बन्धी सुझाव तथा सहयोग देकर इस कार्यक्रम को और अधिक सफल बनाने में हमारी सहायता करें। आशा है आप पूर्व की भाँति अपनी कृपादृष्टि अवश्य बनाए रखेंगे।

निवेदक

**राजेन्द्र प्रसाद गुप्ता**

मुख्य यजमान

१८८ कटरा नबाव चाँदनी चौक

दिल्ली-११०००६

# व्रतोत्सवतिथिनिर्णयपत्रक

## माघ कृष्णपक्ष/सूर्य उत्तरायण, शिशिर ऋतु

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | व्रत पर्व आदि विवरण |
|---|---|---|---|---|
| सप्तमी | बुधवार | उ0फा0 | 6 जनवरी | **श्रीआद्य जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जयन्ती** तथा **स्वामी विवेकानन्द जयन्ती** |
| अष्टमी | गुरुवार | हस्त | 7 जनवरी | श्रीदुर्गाष्टमी |
| नवमी | शुक्रवार | चित्रा | 8 जनवरी | — |
| दशमी | शनिवार | स्वाति | 9 जनवरी | — |
| एकादशी | रविवार | विशाखा | 10 जनवरी | — |
| द्वादशी | सोमवार | अनुराधा | 11 जनवरी | **षट्तिला एकादशी व्रत (सबका)** |
| त्रयोदशी | मंगलवार | ज्येष्ठा | 12 जनवरी | भौम प्रदोष व्रत |
| त्रयोदशी | बुधवार | मूल | 13 जनवरी | त्रयोदशी तिथि की वृद्धि लोहड़ी उत्सव |
| चतुर्दशी | गुरुवार | पू0षा0 | 14 जनवरी | **मकरे सूर्य—मकर संक्रान्ति जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी की जन्म जयन्ती** |
| अमावस्या | शुक्रवार | उ0षा0 | 15 जनवरी | मौनी अमावस्या सूर्यग्रहण दिन 11—53 से 15—12 तक |

## माघ शुक्लपक्ष/सूर्य उत्तरायण, शिशिर ऋतु

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | व्रत पर्व आदि विवरण |
|---|---|---|---|---|
| प्रतिपदा | शनिवार | श्रवण | 16 जनवरी | चन्द्रदर्शनम् |
| द्वितीया | रविवार | श्रवण | 17 जनवरी | पंचक प्रारम्भ 11/38 रात से |
| तृतीया | सोमवार | धनिष्ठा | 18 जनवरी | गौरी तृतीया व्रत |
| चतुर्थी | मंगलवार | शतभिषा | 19 जनवरी | श्रीगणेश चतुर्थी व्रत |
| पंचमी | बुधवार | पू0भा0 | 20 जनवरी | श्रीवसन्त पंचमी श्रीसरस्वतीपूजा |
| षष्ठी | गुरुवार | उ0भा0 | 21 जनवरी | — |
| सप्तमी | शुक्रवार | रेवती | 22 जनवरी | पंचक समाप्त रात 10/51 पर अचला सप्तमी |
| अष्टमी | शनिवार | अश्विनी | 23 जनवरी | श्रीदुर्गाष्टमी व्रत |
| नवमी | रविवार | भरणी | 24 जनवरी | — |
| दशमी | सोमवार | कृतिका | 25 जनवरी | — |
| एकादशी | मंगलवार | रोहिणी | 26 जनवरी | **जया एकादशी व्रत (सबका), गणतन्त्र दिवस** |
| द्वादशी | बुधवार | मृगशिरा | 27 जनवरी | प्रदोष व्रत |
| त्रयोदशी | गुरुवार | आर्द्रा | 28 जनवरी | — |
| चतुर्दशी | शुक्रवार | पुनर्वसु | 29 जनवरी | सत्यनारायण व्रत |
| पूर्णिमा | शनिवार | पुष्य | 30 जनवरी | सन्त रैदास जयन्ती माघ स्नान पूर्ण |

## फाल्गुन कृष्णपक्ष/सूर्य उत्तरायण, शिशिर ऋतु

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | व्रत पर्व आदि विवरण |
|---|---|---|---|---|
| प्रतिपदा | रविवार | श्लेषा/मघा | 31 जनवरी | — |
| द्वितीया | रविवार | श्लेषा/मघा | 31 जनवरी | द्वितीया तिथि का क्षय |
| तृतीया | सोमवार | पू0फा0 | 1 फरवरी | — |
| चतुर्थी | मंगलवार | उ0फा0 | 2 फरवरी | श्रीगणेश चतुर्थी व्रत |
| पंचमी | बुधवार | हस्त | 3 फरवरी | — |
| षष्ठी | गुरुवार | चित्रा | 4 फरवरी | — |